Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MADHURI 1940 G.K.U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

76327
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़रीब और निर्धनों के लिये

ख़ास कर भूकम्प-पीड़ित देश-भाइयों के लिये !

सच्ची ख़ुशख़बरी !!

१ अप्रेल से ३० अप्रेल तक—तीस दिन।

जो कभी नहीं हुआ, सदा होगा भी नहीं, वही होगा। अनमोल रत्नों की नदी बहेगी—आपके सुख के लिये, हम स्वयं निर्धन और फ़क़ीर होंगे। अगर इस मौक़े से आप फ़ायदा न उठावें तो आपकी भारी ग़लती होगी !

माया और काया की क्षणभंगुरता के कारण

स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचन्द्रोदय आदि के लेखक—

बाबू हरिदासजी के प्राणनाशक रोग से निजात पाने

और

होली के दिन आग में सर्वस्व स्वाहा होते होते बच जाने की

ख़ुशी में

हमने जो ग्रन्थरत्न हज़ारों आदमियों के रोने कलपने पर भी, कम क़ीमत में नहीं दिये, वही अनमोल ग्रन्थ स्वास्थ्यरक्षा और शतक वग़ैरः, गाँववालों की जीवनरक्षा और उनको रोग शोक आदि से बचाने के लिए, हम

१ अप्रेल से ३० अप्रेल तक

आधी क़ीमत में

देकर फ़क़ीर बनेंगे। कृपया नीचे लिखे नियम समझ लीजिये।

(१) एक आदमी एक-एक तरह की एक-एक ही पुस्तक ख़रीद सकेगा।
(२) पुस्तक बेचनेवालों को इस मौक़े पर पुस्तकें नहीं मिलेंगी। जो धोका देंगे, पाप के भागी होंगे।
(३) रेल-भाड़ा या डाक-महसूल ख़रीदारों को ही देना होगा। सब तरह की एक-एक पुस्तक मँगानेवालों का रेल-भाड़ा हम देंगे। सारी पुस्तकें १३५) एकसौ पैंतीस की हैं, पर ६५) पैंसठ में मिलेंगी।
(४) आप चाहें एक पुस्तक मंगावें, चाहे अनेक; चाहें पाँच रुपयों की चाहें सौ रुपयों की, आपसे ३० अप्रेल तक, आधी क़ीमत ली जावेगी।
(५) किताबें अजिल्द मिलेंगी—सजिल्द होंगी तो देंगे और फ़ी जिल्द पूरे १२ आने अलग चार्ज करेंगे।
(६) दस रुपयों से ज़्यादा कीमत की पुस्तकें मंगानेवालों को चौथाई रुपया मनीआर्डर से पेशगी भेज देना होगा। अगर आप इस नियम पर ध्यान न देंगे, तो हम पुस्तकें नहीं भेजेंगे। ३० अप्रेल निकल जाने से फिर पछताना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* सब से बड़ी बात *

हम ३० अप्रेल तक आधी कीमत में सभी पुस्तकें देंगे, पर अगर कोई या सभी पुस्तकें हमारे स्टाक में न रहीं स्टाक ख़ाली हो गया, तो हम नई पुस्तकें और छपाकर, आधी कीमत में नहीं देंगे। यह बात इसलिये साफ़ कर दी है, कि हज़ारों लोगों ने हमारी पुस्तकें पौनी कीमत में माँगीं; रोये गिड़गिड़ाये, पर हमारा पत्थर हृदय नहीं पसीजा, पर अब वेही पुस्तकें —पूरी क़ीमत में धड़ाधड़ बिकते हुए भी, आधी कीमत में १ मास तक दी जावेंगी। इसलिये हमें डर है कि, हमारा स्टाक ख़ाली न हो जावे। मतलब यह कि, स्टाक में पुस्तक न रहने पर या ३० अप्रेल निकल जाने पर, हम आधी कीमत में पुस्तकें देने को बाध्य न होंगे। जिनके आर्डर पहिले आवेंगे, उन्हीं को पहिले माल भेजा जावेगा। बिहारी भाइयों के पत्रों पर पहले ध्यान दिया जावेगा। ३० अप्रेल बाद कोई भी सज्जन हमसे कम कीमत में पुस्तकें नहीं माँगें। जो नियम सदा से है, वही चलेगा। जो इस मौक़े से चूकेंगे और हमें पीछे उलाहना देंगे या कीमत कम करने का रोना रोयेंगे, वे अक्लमन्द नहीं समझे जावेंगे, और उनकी कुछ भी सुनाई न होगी।

हमारी बेशक़ीमत और चुनीदा पुस्तकों के नाम और पूरे दाम।

ये सभी अजिल्द पुस्तकें (१ अप्रेल से ३० अप्रेल तक) जो क़ीमत नीचे छपी है, उससे आधी क़ीमत में मिलेंगी।

स्वास्थ्यरक्षा अजिल्द	३)
चिकित्साचन्द्रोदय अजिल्द १ला भाग	३)
,, ,, २रा भाग	५)
,, ,, ३रा भाग	४।)
,, ,, ४था भाग	४।)
,, ,, ५वां भाग	५)
,, ,, छठा भाग	३॥)
,, ,, ७वां भाग	१०॥)
भर्तृहरिकृत नीतिशतक अजिल्द	४।)
वैराग्यशतक अजिल्द	४)
श्रृंगारशतक ,,	३)
हिन्दी भगवद्गीता अजिल्द	३)
अक़्लमन्दी का ख़ज़ाना	२।)
हिन्दी गुलिस्ताँ	२॥)
अँगरेज़ी हिन्दी शिक्षा पहिला भाग	१)
,, ,, दूसरा भाग	२)
,, ,, तीसरा भाग	२)
,, ,, चौथा भाग	२)
अँगरेज़ी अनुवाद शिक्षक ५वां भाग	२)
नवीन अँगरेज़ी शिक्षा	॥=)
सूक्तमुक्तावली (४०० ग्रन्थों का मक्खन)	१॥।)
नेपोलियन बोनापार्ट (सजिल्द)	२॥)
ब्रह्मयोगविद्या, परीक्षितयोगक्रियायें	१।)
देवी चौधरानी	२)
द्रौपदी (सचित्र)	२॥)
दो साहित्य सेवी	।=)
शान्ति और सुख	॥।)
बालादर्श	।=)
बालगल्पमाला	।॥)
पत्रोपहार	॥)
हज़रत मुहम्मद साहब	॥।)
पापपरिणाम	१)
धर्मपद	।॥=)
काव्यवाटिका (सचित्र)	३)
संयोगिता (सचित्र)	।-)
सप्त आश्चर्य (सचित्र)	१)
महाकवि दाग़	१)
महाकवि नज़ीर	१)
उस्ताद ज़ौक़	।॥)
महाकवि ग़ालिब	॥)
नैषध चरित्र चर्चा	॥)
जीवनी शक्ति	।=)
स्वर्णोपदेश	॥।)
वक्तृत्वकला (लेक्चरबाज़ीकेतरीके)	।=)
बंगला हिन्दी शिक्षा पहला भाग	१)
,, दूसरा भाग	१)
,, तीसरा भाग	१)
कृष्णकान्त की विल	१॥)
चन्द्रशेखर	२)
सीताराम (लाजवाब उपन्यास)	२)
कपालकुंडला	१।)
नवीना	१॥।)
अदृष्ट (भाग्य के खेल)	३)
सावित्री (उपन्यास)	१॥)
शैलबाला (सचित्र)	१)
अभिमानिनी	२)
रमासुन्दरी	२।)
कोहनूर	२)
राधाकान्त	१॥)
खूनी मामला	॥)
बेलून विहार	१॥)
हाजी बाबा (सचित्र, उपन्यासों का बादशाह)	३॥)
अलिफ़लैला	१॥)
रूपलहरी	१॥)
बिछुड़ी हुई दुलहन (सचित्र)	१॥)
सुहागिनी सचित्र (उप०सम्राट्)	३।)
फूलों का हार	१।)
वीरचूड़ामणि	॥।)
लवंगलता	१॥)
कलंक	१)

मैनेजर—हरिदास एण्ड कम्पनी—६ गंगाभवन, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी

संस्थापक—
स्व० श्रीविष्णुनारायण भार्गव

संरक्षक और स्वत्वाधिकारी—
श्रीरामकुमार भार्गव, श्रीतेजकुमार भार्गव

संपादक—मातादीन शुक्ल

वर्ष १२, खंड २ | चैत्र, ३१० तुलसी-संवत् [१९९१ वि०] | संख्या ३, पूर्ण संख्या १४१

ममता की रानी !

अब न सताओ आह ! वेदना की कैसी यह ज्वाला
धधक रही यह किन पापों की विपुल वह्नि विकराला
इस काजल की हिम रजनी में साँय-साँय रव छाया
मलिन पीत तारों में कैसा खर ज्वर ताप समाया
प्राण-गर्जना की ये घड़ियाँ, यह विप्लव की वेला
सुलग उठी कैसी यह धूनी—मैं जल रहा अकेला
मैं——मैं तो उल्कापातों-सा इस जगती में आया
क्या सुख होता है जीवन में—अब तक जान न पाया
यह जीवन तो एक पाप है अभिशापों की छाया
जहाँ वासना-सी फैली है लोलुप उर की माया
किसकी पूरी हुई यहाँ पर हिय की तरल पिपासा
स्वप्नों की प्रिय मृगतृष्णा में किसे मिली है आशा
दु:सहनीय प्रचंड वेग से छलक-छलक अंतस्तल
अपनी ही हुंकृत हिलोल में किसे खोजता चंचल
अब न सही जाती यह ज्वाला हे ममता की रानी !
अब न जलाओ आह, चूम लूँ चरणों को दीवानी !

श्री० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूफ़ीमत की भावी प्रगति

[पं० चंद्रबली पांडे एम्० ए०]

सूफ़ीमत की आधुनिक परिस्थिति उसके अनुकूल नहीं है ; उसकी वर्तमान प्रगति को देखकर उसके भविष्य की चिंता स्वाभाविक है । हम देख रहे हैं कि इस्लामी देशों में उसकी माँग नहीं है ; ग़ैर-इस्लामी देश भी उसको नहीं चाहते । जहाँ कहीं दरवेशों की प्रतिष्ठा बनी है, जहाँ कहीं उनका आदर-सत्कार हो रहा है, वहाँ शिक्षा एवं ज्ञान का अभाव है । विज्ञान के पूर्ण प्रकाश में उनमें फ़क़ीरों का सम्मान बना रहेगा, इसकी कल्पना हम नहीं कर सकते । जब हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि आजकल की चहल-पहल भाव-भजन के विपरीत है, आजकल के आंदोलन देशप्रेम से ओतप्रोत हैं, आजकल के अनुसंधान अल्लाह के विमुख हैं, आजकल के पंडित इलहाम के प्रतिकूल हैं, आजकल के ज्ञानी हाल को मज़ाक़ समझते हैं—तब हमारी धारणा हो जाती है कि अब तसव्वुफ़ की चिंता करना व्यर्थ है । परंतु जब हम देखते हैं कि सूफ़ीमत का अध्ययन ख़ूब हो रहा है, लोग मिस्टिक कहलाने के फेर में पड़ गये हैं, चारों ओर विश्वप्रेम का राग अलापा जा रहा है, लोभ और स्वार्थ की घोर निंदा की जा रही है—तब समझते हैं कि भविष्य सूफ़ियों के साथ है । सूफ़ीमत के इतिहास पर ध्यान देते ही यह व्यक्त हो जाता है कि उसके जीवन में न जाने कितने अवसर इतने विकट आये, कितने प्रसंग इतने भयंकर उपस्थित हुए, कितने आंदोलन इतने भीषण छिड़े, कितने कांड इतने वीभत्स हुए कि उसके स्वरूप का सहसा लोप-सा हो गया; किंतु उसके स्वभाव का प्रादुर्भाव बराबर होता ही रहा । जो लोग तसव्वुफ़ के मर्म से भली भाँति परिचित हैं, उसके स्वभाव को अच्छी तरह जानते हैं, किसी हवा में बह नहीं जाते, रुककर विचार कर सकते और वर्तमान में भविष्य की झलक पाते हैं, उनकी दृष्टि में सूफ़ियों का भविष्य अत्यंत ही निर्मल है । सूफ़ी हृदय के सच्चे सपूत हैं । मानव-हृदय उनको छोड़ नहीं सकता । वह उचित परिधान देकर समय के शीत-वात से उनकी रक्षा अवश्य करेगा । उनका अभ्यंतर सदैव सरस रहेगा । बाह्य तो एक भुलावे की चीज़ है । सूफ़ी कभी उसको विशेष महत्त्व नहीं देते ।

सूफ़ियों को इस्लाम का सदा से भय रहा है और इस्लाम को सदा से हेतुवादियों का । सूफ़ी और मुसलिम के संयोग से इस्लामी-साहित्य का सृजन हुआ । यदि सूफ़ी न होते तो इस्लाम में अध्यात्म-विद्या का प्रचार न होता । आज जो हम मुसलिम संस्कृति का नाम लेते हैं, उसका बहुत कुछ श्रेय इन्हीं सूफ़ियों को है जिनके विरोध में बहुत दिनों से कट्टर मुसलमान लगे हैं । तुर्कों ने सूफ़ियों की जो भर्त्सना की है उसका प्रधान कारण इस्लाम नहीं, समय की गति है । इस्लाम के विषय में उनका कहना है कि वह उस समय उन अरबों के लिए मंगलप्रद था, जिनको मुहम्मद साहब उभार रहे थे । आज हमें उसकी आवश्यकता नहीं । हमको तो आज कमालपाशा के विधानों में इस्लाम का स्वरूप मिलता है । सूफ़ियों के प्रेम और उपासना की हम प्रशंसा नहीं कर सकते । हमें संसार में समर्थ होकर रहना है । यहीं पर स्वर्ग-सुख भोगना है ।

अब इस्लाम के शुद्ध रूप से किसी को संतोष नहीं हो सकता । जो संप्रदाय इस्लाम की रक्षा के लिए चले हैं, उनमें तसव्वुफ़ का पूरा योग है । 'इजतिहाद' के संबंध में हमें स्मरण रखना चाहिए कि अब वह सुन्नी संघ में भी मान्य हो चला है । वास्तव में यह इजतिहाद सूफ़ियों का प्रसाद है । सूफ़ियों ने इलहाम की उद्भावना कर रसूलों के लिए 'वही' का विधान कर दिया था । उनका आशय यह था कि अल्लाह से हृदय का सीधा संबंध है ; इस लगाव की कभी इति नहीं होती । जब सफ़वी वंश अथवा सूफ़ी संतानों को राष्ट्र के हित के लिए या नवीन प्रश्नों के समाधान के लिए एक नवीन अमोघ अस्त्र की आवश्यकता पड़ी, तब उन्होंने चिंतन या व्यवस्था के क्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'इजतिहाद' की उसी प्रकार प्रतिष्ठा की, जिस प्रकार इस्लाम की भजन के क्षेत्र में सूफ़ी कर चुके थे। शीया-मत के विवेचन से स्पष्ट होता है कि उसमें तसव्वुफ़ का मूर्त विधान है। तात्पर्य यह कि इस्लाम की आधुनिक प्रगति तसव्वुफ़ के आधार पर हो रही है। सूफ़ियों के केवल उस अंग का विरोध हो रहा है जो शामी संकीर्णता के प्रतिकूल और विश्व प्रेम के अनुकूल है। सूफ़ियों के अपकर्ष का मूल मंत्र वह स्वार्थ है, जिसके लिए संसार पागल हो उठा है और जिसका आराधना में मुसलिम भी दत्तचित्त हो गये हैं। वहाबियों के क्रूर इस्लाम से सूफ़ियों का ह्रास नहीं हो सकता। काबे के विध्वंस को स्वयं मुसलमान ही नहीं सह सकते। रही क़ुरान और मुहम्मद साहब की बात, उसके संबंध में निवेदन है कि अब उनका काम समाप्त हो गया। अब स्वतंत्र चिंतन का युग है, रसूल या 'वही' का नहीं। क़ुरान या रसूल की प्रतिष्ठा अब उस अर्थ पर निर्भर है जिसकी व्यंजना सूफ़ी आरंभ से करते आ रहे हैं; अलग़ैब के महज़ कलाम पर हरगिज़ नहीं।

महासमर के कारण मुसलिम शासकों में जो विचार कसरत से आ रहे हैं, वे अवश्य ही सूफ़ियों के प्रतिकूल हैं। इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि वर्तमान वातावरण में मज़हब का निर्वाह कठिन होता जा रहा है। लोग इश्क़ के पीछे मर रहे हैं। सूफ़ियों ने मज़हब को तिलांजलि दे जिस इश्क़ को चुना था, वह सामान्य इश्क़ से ऊपर उठाकर इंसान को अलक्ष्य की ओर अग्रसर करता था। उसका आलंबन अल्लाह या हक़ था। वह देश-काल से मुक्त, एक परम सत्य की झलक दिखा, ख़ुदी को मिटा देनेवाला इश्क़ था। आज भी पश्चिम की कृपा से इश्क़ का प्रचार हो रहा है। जो लोग इस्लाम के परम हितैषी हैं, क़ुरान को सभी विद्याओं का आगार समझते हैं, इस्लाम के विश्व-व्यापक राज्य का स्वप्न देखते हैं और जीवमात्र के उद्धार का एकमात्र साधन इस्लाम को मानते हैं—उनके सामने भी आज बंधुभाव का प्रश्न है, उनको भी इस्लाम को प्रेम-प्रचारक सिद्ध करना है। अहमदिया-संघ की ओर से जो क़ुरान की टीका निकली है, उसके अव-लोकन से स्पष्ट हो जाता है कि कतिपय मुसलिम पंडित क़ुरान में क्या-क्या नहीं दिखाने की चेष्टा कर रहे हैं। यह तो एक साधारण बात है कि इस्लाम में भाईचारे का बहुत गहरा संबंध है। एक मुसलमान अपने को मुसलमान पहले समझता है, फिर किसी कारणवश अपने को कुछ और कहता है। तुर्कों के रक्षण के लिए भारत के कुछ मुस-लमानों ने अपने जन्मस्थान को इसलिए त्याग दिया कि उसका शासक इस्लामी नहीं था। अफ़ग़ानिस्तान में कुछ दिन निवास करने के अनंतर उनका जोश ठंढा पड़ा। तुर्कों के विधानों की ग़ैर-इस्लामी बाढ़ से, ख़िलाफ़त की अवहेलना से उनको वास्तविक परिस्थिति का पता चला। मुसलमानों में राष्ट्रभावना बढ़ी। भारत को छोड़कर सभी अपने मुल्क के इश्क़ में मरने लगे।

देश-प्रेम ने मानव-दृष्टि को संकुचित कर दिया है। हम देश-प्रेम को, चाहें तो, पश्चिम की शरारत कह सकते हैं। कम से कम सूफ़ियों की दृष्टि में तो मुल्क-परस्ती का हक़परस्ती के सामने कुछ महत्त्व नहीं। योरप के देश-प्रेम का भीषण दुष्परिणाम सबको भोगना पड़ा है। मुसलिम अधिपति आज देशप्रेम के शिकार हो रहे हैं। चारों ओर संदेह, संशय और आशंका का आतंक छा रहा है। लोग समझते हैं कि देश-प्रेम संपूर्ण मानव-जाति के विकास, मंगल तथा कल्याण में बाधा उत्पन्न करता है, पर परस्पर के अविश्वास के कारण वे अपनी शक्ति के संग्रह में लगे हैं और बच्चों को देश-प्रेम का पाठ पढ़ा रहे हैं। जो दूरदर्शी हैं, जिन पर परमात्मा की कृपा है, जो संसार का श्रेय चाहते हैं, जिनका हृदय भेद-भाव से मुक्त है—वे विश्वप्रेम के संपादन में लगे हैं। देश-प्रेम भी वास्तव में विश्व-प्रेम का एक अंग है। स्वार्थ में अर्थ अनिष्ट नहीं है। सूफ़ी अर्थ से अधिक 'स्व' की व्याख्या करते हैं। उनके मत में 'स्व' का जितना ही विस्तार होगा, उतना ही उसका अर्थ भी व्यापक और कल्याणप्रद होगा। जो देश को 'स्व' समझता है, वह उसके लिए स्वशरीर की चिंता नहीं करता। वह अवसर आने पर कण-कण को 'स्व' समझ सकता है। कारण, उसके मानस में व्यष्टि का लोप और समष्टि का उदय हो गया है। अस्तु, कर्मशील सूफ़ियों के विचार में देश-प्रेम उसी प्रकार परम प्रेम का सोपान है, जिस प्रकार व्यक्तिप्रेम अल्लाह के प्रेम का। सूफ़ियों का सर्वप्रधान सिद्धांत है कि प्रेम से चित्त प्रांजल हो जाता है और उसमें द्वैतभाव नहीं रह जाता। व्यक्तिविशेष के प्रेम से देश-प्रेम यदि अधिक मंगल-प्रद न होता, तो सूफ़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदापि लोक-संग्रह में न लगते । सारांश यह कि देश-प्रेम से तसव्वुफ़ को भय नहीं ; भय उसे उसके उस रूप से है, जो भोग-विलास के लिए अहंकारवश अन्य देशों का स्वत्व अपहरण करता तथा भेद-भाव का बीज बोता है । लोभ एवं लिप्सा के आधार पर जो देश-प्रेम का कीर्तन करते हैं, उनके प्रेम का स्वागत सूफ़ी नहीं कर सकते । वह तो लोलुप आततायियों का काम है । सूफ़ीमत उस प्रेम का प्रचारक है जिसमें त्याग हो, ध्वंस नहीं । सूफ़ियों के देश-प्रेम में आत्मसमर्पण है, जो परमात्मा की प्रेरणा से लोक-मंगल के लिए प्राण-विसर्जन करने की अनुमति देता है, किसी का अधिकार नहीं छीनना चाहता । सूफ़ी इस्लाम के नाम पर मर मिटनेवाले उपद्रवी जीवों को ग़ैर मुसलिम धर्मों का महत्त्व समझाते रहे हैं । कोई कारण नहीं कि भविष्य में देश के अंधे उपासकों को वे उन नेत्रों का दान नहीं देंगे, जिनकी ज्योति में भावी मंगल और सृष्टिमात्र का हित छिपा है । आज भी सर्वत्र ऐसी मंगल मूर्तियों का उदय हो रहा है, जिनके प्रकाश से स्वार्थांध व्यक्तियों का ह्रास और सच्चे स्वदेश-प्रेम का प्रसार प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । सूफ़ियों का तो कहना ही है कि प्रेम सदैव ऊपर को उठाता है, चाहे उसका आलंबन कुछ भी क्यों न हो । हाँ, प्रेम हो—एषणा नहीं ।

राष्ट्र-भावना के मूल में यदि लोक-मंगल की कामना होती, भोग-विलास की तीव्र तृष्णा न रहती, तो उससे तसव्वुफ़ को प्रोत्साहन मिलता । हमारी आँखों के सामने जो 'नग्न फ़क़ीर' देश-सेवा में मग्न है, वही इस बात का पक्का प्रमाण है । योरप में जो मसीही मत प्रचलित था, उसकी दृष्टि में मसीह के अतिरिक्त किसी अन्य को 'पिता का पुत्र' होने का अधिकार न था । शामी-जाति की संकीर्णता मसीही मत में बनी रही । क्रूसेड के कारण उसको और भी प्रोत्साहन मिल गया । निवृत्ति-प्रधान मसीह के उपदेशों में मनोरागों का पूरा प्रबंध न था । इस्लाम के पतन के उपरांत योरप का व्यापार बढ़ा । पोप की प्रतिष्ठा भंग होने लगी । मसीही-संघ में जो दोष आ गये थे, उनके निवारण की इतनी उग्र चेष्टा की गयी कि उसमें अनेक दल हो गये । अन्य जातियों के संसर्ग में आ जाने से योरप में विज्ञान का उदय हुआ । विज्ञानियों का मसीही-संघ ने उतना विरोध किया कि उनको विवश होकर स्वतंत्र हो जाना पड़ा । विज्ञान से व्यापार में सहायता मिली और बायबिल का भेद खुला । लोगों का विश्वास उससे उठने लगा । निवृत्ति-प्रधान मसीही मत में भोग-विलास का सिक्का जमा । परमार्थ को स्वार्थ ने नष्ट कर दिया । योरप में विज्ञान के प्रचार से धर्म का पतन हुआ । आत्मरक्षा तथा आत्मविस्तार के लिए राष्ट्र-भाव का प्रचार किया गया । योरप में असुरवृत्तियों का सत्कार बढ़ा । देखते ही देखते योरप विश्व का विधाता हो गया । रूस ने धर्म की गवेषणा न की । उसको धोखे के धर्म से घृणा थी । उसने चटपट मज़हब का गला घोट दिया । उसकी उन्नति को देखकर अन्य राष्ट्र भी आगे बढ़े । तुर्कों ने इस्लाम को त्याग दिया । मुसलमानों ने तसव्वुफ़ से घृणा की । उन्होंने सूफ़ियों को इसलिए कोसा कि उनमें विश्वप्रेम का भाव है; वे योग को भोग से अच्छा समझते हैं । परंतु वास्तव में किसी जाति के उद्धारक वहाँ के कर्मशील वीर संत ही होते हैं । टाल्स्टाय रूस का आदिम पथप्रदर्शक था ।

सच्ची राष्ट्र-भावना में सूफ़ियों का हित है । उससे उनको भय नहीं । भय तो उन्हें उस विज्ञान से है जिसमें प्रत्यक्ष का प्रतिपादन और परोक्ष का खंडन किया जाता है । यह तो निर्विवाद है कि विज्ञान के आधार पर उस अल्लाह का निरूपण नहीं किया जा सकता, जो किसी दिव्य धाम में अर्श-कुर्सी पर विराजता है । सूफ़ी बहुत पहले से उस अल्लाह से मुँह मोड़ चुके हैं । वे जिस सत्य की उपासना करते हैं, उसका निरूपण नहीं हो सकता । विज्ञान उसका खंडन भी नहीं कर सकता । विज्ञान जिसको व्यक्त करता है, सूफ़ी उसको उस परम सत्य की एक अदा मानते हैं । अतः उनका विज्ञान से विरोध नहीं हो सकता । हाँ, उन बातों का महत्त्व अवश्य नष्ट हो जायगा, जो अज्ञान के कारण प्रतिष्ठित हैं ।

सूफ़ियों को सबसे बड़ा ख़तरा मनोविज्ञान से है । मनोविज्ञान ने भक्ति-भावना को शीर्ण कर दिया है । मानस-शास्त्र के पंडितों ने जो अनुसंधान किये हैं, उनके देखने से इस बात का स्पष्टीकरण हो जाता है कि भविष्य में मादन-भाव के लिए कम स्थान है । श्रीलूबा ने तो यहाँ तक कह दिया है कि उसमें रतिभाव के अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कुछ भी नहीं है। उनके मत में रति के भूखे व्यक्तियों ने मसीह अथवा मरियम की शरण इसीलिए ली कि उनसे उनको तृप्ति मिले। पुरुष मरियम और स्त्री मसीह को आलंबन बना रति-व्यायाम में मग्न हुए। प्रेमी सूफ़ियों के आलंबन के विषय में तो हम देख ही चुके हैं कि वे 'अमरदपरस्त' बने। जब हम योरप के मध्यकाल की परिस्थिति पर ध्यान देते हैं, तब हमें श्रीलूबा का निष्कर्ष साधु समझ पड़ता है कि मादन-भाव के मूल में रति की तीव्र आकांक्षा है। रति के इस अलौकिक विधान का मुख्य कारण सहजानंद और धार्मिक भीरुता का संयोग है। इस्लाम संभोग का पक्षपाती था। मुहम्मद साहब मसीह अथवा पाल की भाँति संन्यासी न थे। उनके मत में विवाह आधा स्वर्ग था। निदान, प्रेमी सूफ़ियों का काम किसी के भी प्रेम से चल जाता था; किसी दिव्य मसीह या मरियम की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

योरप स्त्रीप्रधान देश है। वहाँ स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कहीं अधिक है। क्रूसेड का प्रभाव योरप पर ख़ूब पड़ा। शिवालरी की प्रतिष्ठा से स्त्री की महिमा बढ़ी। वह पतित से पूजनीय हो गयी। शूरवीर, स्त्री और ईश्वर के सेवक बन गये। धीरे-धीरे स्त्री को पश्चिमी सभ्यता में वह पद मिला जिस पर वह आज प्रतिष्ठित है।

पश्चिम का प्रभाव इस्लाम पर व्यापक रूप से पड़ रहा है। इस्लाम में स्त्रियों की मसीहियों से अधिक प्रतिष्ठा थी, पर आज योरप में स्त्रियों को वह सम्मान प्राप्त है जिसकी समता इस्लाम नहीं कर सकता। इस्लाम भी धीरे-धीरे पश्चिम का स्वागत कर रहा है। इस आदर-सत्कार का प्रभाव मादन-भाव पर अवश्यंभावी है। सूफ़ियों की पद्धति में परिवर्तन होना अनिवार्य है।

सूफ़ी-काव्य में प्रेम प्रतीक होता है। उसकी 'अमरद-परस्ती' का लक्ष्य यद्यपि हक़ है, तथापि उसके प्रेम-प्रदर्शन में किसी किशोर या किशोरी की उपेक्षा नहीं की गयी है। भविष्य में किसी सूफ़ी प्रेमी का आलंबन किशोर होगा अथवा नहीं, यह कहना कठिन है। परंतु इतना अवश्य है कि परदे के बहिष्कार और स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद संपर्क से उसमें कमी अवश्य होगी। जो लोग परंपरा का अनुसरण करेंगे, उनकी बात जाने दीजिए। सामान्यतः स्त्री-पुरुष के सहज संबंध में एक दूसरे का आलंबन होता है। पश्चिम में जहाँ भोग की मनचाही व्यवस्था हो रही है, वहीं इस बात पर भी ज़ोर दिया जा रहा है कि स्त्री भोग की सामग्री नहीं है। स्त्री क्या है, इसके विवेचन की ज़रूरत नहीं। आवश्यकता तो इस बात को जान लेने की है कि इस वातावरण में प्रेम की क्या गति होगी। मानस-शास्त्र के मर्मज्ञों का कहना है कि जब मिथुनीकरण की उस वासना को, जो जीवमात्र में निवास करती है, किसी प्रकार का बंधन दिया जाता है तब उसको अपना रूप कुछ बदल देना पड़ता है। मध्यकाल के मसीही संतों अथवा सूफ़ियों ने जिस प्रकार उसको परम रूप दिया, उसको स्पष्ट करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। आधुनिक काल में भी जो प्रेम-गीत गाये जा रहे हैं, उनका लक्ष्य भी वही दीदार या वस्ल है जिसके लिए सूफ़ी सदा तरसते रहते हैं। संभोग के प्रति एक प्रकार की अरुचि, घृणा अथवा जुगुप्सा का भाव बहुत दिनों से चला आ रहा है। आदम के पतन का कारण संभोग ही समझा गया था। मसीह तो वैरागी योगी थे ही; मुहम्मद भी उसका नियंत्रण कर गये थे। पश्चिम की सभ्यता से जहाँ भोग-विलास को प्रोत्साहन मिला है, वहीं मसीह का कुछ विराग भी। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंध को नियमित करने में भी संतान की कामना बराबर बनी रहती थी। संतान के अतिरिक्त अन्यथा समागम को पापकर्म समझने की आदत इंसान को पड़ चुकी है। और, संसार को आज संताननिरोध करना है। अतः सत्त्ववृत्ति के प्राणियों के लिए परम प्रेम का आश्रय लेना अनिवार्य-सा हो गया है। अस्तु, हम कह सकते हैं कि भविष्य में सांसारिक प्रेम को अलौकिक प्रेम का रूप देना एक सामान्य बात हो जायगी। उस प्रेम के प्रदर्शन में शायद नख-शिख का विधान न होगा। उसमें विभाव की उपेक्षा भावों का विस्तृत विवरण रहेगा। सूफ़ी भावों की व्यंजना में कुछ अधिक संयत और अस्पष्ट होंगे। कारण, उनको सदा यह डर लगा रहेगा कि कहीं उनके प्रेम को लोग सांसारिक न समझ लें। प्रेमी कवियों का यह दुराव अभी से परिलक्षित हो रहा है। मनोविज्ञान में प्रेम को वह अलौकिक रूप नहीं मिल सकता जिसका संकेत सूफ़ी प्रायः किया करते हैं। प्रणाली की सूक्ष्मता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम के मूल को नहीं बदल सकती। सूफ़ी प्रेम का अभ्यास इसलिए नहीं करते कि वह अलौकिक अथवा दिव्य है। उनके रति-व्यायाम का रहस्य तो यह है कि उससे अहंभाव अथवा ख़ुदी का नाश हो जाता है और उनका स्वच्छ रूप निखरकर हक़ बन जाता है।

विज्ञान के प्रचार से 'हाल' और इलहाम से आस्था उठ चली है। श्री० जेम्स ने संतों की अनुभूतियों का विश्लेषण कर जो निष्कर्ष निकाला, उससे साक्षात्कार अथवा दिव्य दर्शन को कुछ मदद मिली। परंतु श्रीलूबा ने श्री० जेम्स के विचारों में आपत्ति की। उनका कथन है कि भक्ति-भावना के विवेचन में मनोविज्ञान से बाहर जाकर अध्यात्म से सहायता लेना ठीक नहीं है। पश्चिम के पंडितों में उक्त विषय में जो मतभेद हैं, उनके समीक्षण की आवश्यकता नहीं। उनके अवलोकन से तुरंत अवगत हो जाता है कि अब पाखंड का समय नहीं। अब वही बात यथार्थ होगी, जिसका प्रतिपादन बुद्धि-संगत होगा। बात-बात में हाल और इलहाम की शरण न लेकर बुद्धि और विवेक की गवाही ली जायगी। दिव्य दर्शन की दिव्यता तभी मान्य होगी, जब द्रष्टा भी दिव्य हो। दिव्य चक्षु की प्रतिष्ठा तभी स्थापित हो सकती है, जब ज्ञान-चक्षु उसके विपरीत न हो। अनुभव-गम्य भावों को तर्क सिद्ध नहीं कर सकता, न करे; अनुभूति तो उनकी सच्ची होनी चाहिए। सच्ची अनुभूति हम उसी को कह सकते हैं जो प्रज्ञा पर टिकी हो, किसी वासना की स्फूर्ति न हो। चित्त की चंचलता बनी रहे और सच्चिदानंद की अनुभूति भी हो जाय, ख़ुदी न मिटे और ख़ुदा का दीदार भी मिल जाय—यह असंभव है असंभव, यह कभी नहीं हो सकता। ख़ुदा होने के लिए ख़ुद को जानना लाज़िम है। आत्मज्ञान प्रज्ञा का परिणाम है। भविष्य का सच्चा सूफ़ी आशिक़ नहीं, आरिफ़ होगा। वह अनलहक़ का द्रष्टा होगा, किसी माशूक़ का भोक्ता नहीं। विज्ञान से उसे भय नहीं होगा, वह विज्ञान का ज्ञाता होगा। वास्तव में उसकी अनुभूति उसके विज्ञान की जान होगी, जो उसके बिना प्रत्यक्ष न होगी। अनुभूति शांत चित्त की स्फूर्ति का एक प्रचलित नाम है, किसी वासना का फल नहीं; नित्य चिंतन से उसकी उपलब्धि होती है, नाचरंग से नहीं।

विज्ञान के कारण हाल एवं इलहाम की महत्ता चाहे जितनी नष्ट हो जाय, 'समा' की महिमा कभी कम नहीं हो सकती। विज्ञानियों को भी मनोविनोद के लिए संगीत की आवश्यकता पड़ती ही है, उसके विरोध में वे क्यों लगेंगे। जब मुहम्मद साहब के कट्टर अनुयायियों में संगीत का प्रवेश हो गया, तब किसी अन्य समाज की बात ही क्या। सूफ़ियों ने तो समा का संपादन ही किया है। उससे विमुख वे क्यों होने लगे। रही जनता की बात, उसमें तो संगीत के लिए सहज भावना होती ही है। संगीत का प्राणिमात्र पर अक्षुण्ण अधिकार है। जीव-जंतु सभी उस पर मुग्ध हैं। इस्लाम के तत्त्वदर्शी पंडितों ने भी उसका प्रतिपादन किया है। किंदी, सीना, फ़ाराबी आदि मनीषियों की रचनाएँ मिलती हैं जिनमें संगीत का विवेचन है। संगीत में जो आनंद मिलता है, उसको सूफ़ी ईश्वर-परक बना लेते हैं। जो लोग परमेश्वर को आनंदघन समझते हैं, उनको किसी भी आनंद में उसी का साक्षात्कार होता है। जो लोग नास्तिक हैं, उनको भी समा में मज़ा मिलता है। समा का संबंध मनोरागों से है, जो जीवमात्र पर अपना अधिकार रखते हैं। अतः भविष्य में भी उसकी प्रतिष्ठा बराबर बनी रहेगी। किसी दशा में उसका लोप नहीं हो सकता, प्रत्युत प्रतिदिन उसका विकास हो रहा है। सहृदय संगीत-प्रिय अवश्य होंगे। विज्ञान के शुष्क विश्लेषण से आक्रांत हृदय का सहारा संगीत होगा। उसी से तृष्णा शांत होगी। उसी में आनंद मिलेगा। सूफ़ी उसके संपादन में मग्न रहेंगे। उनको इस्लाम की चिंता न रहेगी।

करामात और पीरपरस्ती का संबंध वास्तव में तसव्वुफ़ से नहीं है। सच्चे सूफ़ी करामात नहीं दिखाते। इंद्रजाल या जादू का नाम तसव्वुफ़ नहीं है। परंतु लोग उसी के पीछे लगते हैं, जिसमें कुछ चमत्कार या कुछ अद्भुत शक्ति देखते हैं। पीरों की महिमा बढ़ाने में मुरीदों का बहुत कुछ हाथ होता है। लोभ-मोह के कारण जनता उनको पूजती है। उसका विश्वास होता है कि किसी पीर के प्रसाद से उसके कष्ट कट जायँगे। अंध-विश्वास के कारण सूफ़ियों की जो प्रतिष्ठा है, वह अधिक दिन तक नहीं ठहर सकती। विज्ञान की कृपा से वे दृश्य जनता के सामने उपस्थित हो रहे हैं, जिनको देखकर वह चकित हो जाती है। अब उसको उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृश्यों का भेद मिल जाता है तब वह उनको करामात नहीं समझती। उसकी समझ में यह बात आ जाती है कि सारी बातें किसी अलौकिक ढंग से नहीं हो रही हैं। उनका भी एक नियम है, जिसको कोई भी व्यक्ति सीख-समझकर अन्यों को चकित कर सकता है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि विज्ञान के प्रचार से करामात और पीरों के चमत्कार कुछ विशेष महत्त्व के न रहेंगे। भविष्य में फ़क़ीरों की ख्याति करामात के कारण इतनी न फैल सकेगी जितनी उनके शील, स्वभाव और सहानुभूति के कारण। स्वतः सूफ़ी करामात को अधिक महत्त्व नहीं देते; उनका ध्यान सर्वदा प्रेम पर रहा है। जो करामात की शक्ति रखते अथवा मानते हैं, वे भी करामात के पक्ष में नहीं रहते। उनके विचार में प्रकृति के किसी भी विधान में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं। उनका तो सत्य का साक्षात्कार करना रहता है।

गुह्य विद्या में गुरु की प्रतिष्ठा अनिवार्य है। विज्ञान ने अभी जिन तथ्यों का उद्घाटन किया है, उनके आधार पर गुरु का महिमा बढ़ चली है। गुरुभक्तों का कहना है कि किसी भी सत्य के साक्षात्कार के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। बिना भेदिया के भेद नहीं मिलता। भौतिक पदार्थों के उद्बोधन में जब किसी गुरु की आवश्यकता मान्य होती है, तब आध्यात्मिक अनुशीलन में उसकी अवहेलना किस प्रकार संभव है। तसव्वुफ़ में मुरशिद की पूरी प्रतिष्ठा है। परंतु सूफ़ियों में बहुत-से इस ढंग के भी मिलते हैं, जिनको ग़ैब या अलख की ओर से दीक्षा मिलती है। अतः कहना पड़ता है कि भविष्य में भी सूफ़ियों को कुछ विशेष आशंका नहीं है। स्वतंत्रता के जो विचार उठ रहे हैं, उनसे गुरु-शिष्य के संबंध को धक्का अवश्य लगेगा; किंतु उसका सर्वथा विनाश नहीं हो जायगा। जो कमी मनुष्य के स्वभाव में है अथवा जिसका अज्ञानवश वह अनुभव करता है उसके उत्पादन के लिए किसी सिद्ध, अनुभवी ज्ञानी गुरु की आवश्यकता उसे पड़ेगी। वही उसका पथप्रदर्शक बनेगा, फिर चाहे साधक सिद्ध आस्तिक बने या नास्तिक। आज भी न जाने कितने संप्रदाय प्रकाश में आये हैं और विज्ञान के आधार पर गुरु की महिमा गाते हैं। कुछ भी हो, गुह्य विद्या किसी भी दशा में गुरु को छोड़ नहीं सकती। जब तक तसव्वुफ़ है तब तक पीरी-मुरीदी किसी न किसी रूप में बनी रहेगी, उसका लोप नहीं हो सकता।

तसव्वुफ़ का मूल सिद्धांत है अद्वैत और मुख्य भाव है प्रेम। प्रेममार्ग से चलकर सूफ़ी अद्वैत, का अनुभव करते हैं। प्रेम एवं अद्वैत के आधार पर सूफ़ीमत स्थिर है। जब तक प्रेम की प्रतिष्ठा और अद्वैत का सम्मान है, तब तक तसव्वुफ़ के राज्य में मंगल और आनंद है। विज्ञान और तर्क से उसके सच्चे स्वरूप का प्रकाशन होता है। बुद्धि और विवेक से उसका रूप निखरता है। वास्तव में भविष्य का सूफ़ी तत्त्वदर्शी प्रेमी होगा, जो विज्ञान एवं दर्शन के आधार पर अद्वैत का संपादन करेगा। किसी अलक्ष्य के प्रेम का पाखंड नहीं करेगा। 'अनल हक़ (अहं ब्रह्मास्मि) उसका वास्तविक उद्घोष होगा, 'तत्त्वमसि' उसका अंतिम निर्देश होगा। प्रेम उसका सच्चा उपदेश होगा। आनंद उसका परम लक्ष्य होगा। वह सबमें अपने को तथा अपने में सबको देखेगा। वह साम्यवादी नहीं समदर्शी होगा। सूफ़ी उसी को 'इंसानुलकामिल या क़ुत्ब कहेगा। इस्लाम का भय उसे न रहेगा। उसकी किताब प्रकृति होगी। किसी तारक मध्यस्थ की उसे आवश्यकता नहीं पड़ेगी; क्योंकि वह स्वतः हक़ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य कैसे मरता है *

[योगनिष्णात श्रीविश्वामित्र वर्मा]

[मृत्यु क्या है—मनुष्य का असली स्वरूप (True self)—जीवित और मृत शरीर में अंतर—मृत्यु क्यों होती है—शरीर की रचना और शक्ति—मन की शक्ति—विचारों का प्रभाव—दीर्घजीवन—मौत और निद्रा—प्राण—जीवात्मा के दो स्थान—दो कार्य—मृत्यु की क्रिया—प्राणगमन के मार्ग—मृत्यु के समय उपचार]

मौत का विषय ही अजीब व ग़रीब है। लोग जब सांसारिक कार्यों से घबराते हैं, तब कहते हैं—'हमें मौत भी नहीं आती', 'मरें तो छुट्टी मिले', आदि-आदि। सचमुच भौतिक जगत् और स्थूल शरीर से मुक्ति पाने का मार्ग "मौत" ही है। स्थूल शरीर से हमारा मतलब है—तत्वों के लाखों करोड़ों अगणित अदृश्य अणु-परमाणुओं आदि के सम्मिश्रण से बने हुए उस भयानक और विचित्र मनुष्य-पिंड से जिसमें आत्मा निवास करती है, जिसकी शक्तियाँ अनन्त हैं, जो इस लोक में सब प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ है। उसकी शक्तियाँ इतनी अधिक हैं कि उनका पूरा ज्ञान अभी तक स्वयं उसे नहीं हुआ है। परंतु समय के साथ ज्यों-ज्यों परिवर्तन और विकास होता जाता है, त्यों-त्यों यह विचित्र और भयानक कारख़ाना (Wonderful and fearful human factory) नवीन और अद्भुत शक्तियों का भांडार पाया जाता है। मृत्यु का अनुभव बहुत ही रहस्यमय है। इस रहस्य को समझ लेने से मौत के विषय में जो कुछ भी भय होता है, वह सब दूर हो जायगा। मृत्यु मनुष्य का आख़िरी अटल दुश्मन (Unavoidable last enemy) है। इस दुश्मन से सभी डरते हैं। कारण यह है कि लोग अपना असली स्वरूप (True self) नहीं समझते। वे कूपमंडूक के समान इस भौतिक जगत्—दृश्य जगत् को ही जीवन-स्थल समझते हैं और स्थूल शरीर को ही अपना रूप समझकर यह मान लेते हैं कि इस शरीर के नष्ट होने पर हमारा अस्तित्व नहीं रहता। इसीलिए उन्हें "खाओ, पीओ और मज़े करो" ही जीवन का ध्येय प्रतीत होता है, और इसी कारण भौतिक जगत् से अधिक प्रेम रहता है। विषय गंभीर है—मैं संक्षेप में यहाँ कुछ विचार प्रकट करूँगा। पाठक अंत में सार निकाल लेंगे। आइए, इस रहस्यपूर्ण अनुभववाले विषय का अध्ययन करें जिससे इस लोक का कोई भी प्राणी, कोई भी रूपधारी नहीं बचा है और न बचेगा, जिससे चक्रवर्ती साम्राट् भी डरता है—डरता इसलिए है कि वह इस विषय को ठीक-ठीक नहीं समझता। परंतु योगी, संत, महात्मा, अंतर्दर्शी, लँगोटी लगानेवाले लोग इससे नहीं डरते; क्योंकि वे इन बातों के रहस्यों को समझते हैं। मनुष्य का मन अभी इतना उन्नत नहीं है, इसलिए वह इन सूक्ष्म रहस्यों को नहीं समझता। भौतिक जगत् के व्यापारों में लिप्त—भौतिक जगत् के नियमों से बँधे रहने पर उनकी दृष्टि भौतिक जगत् में ही रहती है। उनका मत यही रहता है कि जो कुछ आँख से दिखता है वही सत्य है; जो नहीं दिखता, वह नहीं है। अतः सर्वसाधारण का यही विश्वास है कि मौत के बाद न कुछ है, और न कुछ होता ही है। स्थूल शरीरधारी होने से वह सूक्ष्म अदृश्य जगत् को नहीं देख सकता। उसकी शक्तियाँ अभी इतनी उन्नत और विकसित नहीं हैं, कि वह भौतिक जगत् में जीवन व्यतीत करते हुए आध्यात्मिक सूक्ष्म अदृश्य जगत् के जीवन, नियम, व्यापार आदि को जान सके। उसकी

*मेरे अँगरेज़ी लेख Process of death से हिंदी में रूपांतरित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञप्ति

१० जनवरी, सन् १९३१ की वह भयानक कालरात्रि, जब मेरे पिता पूज्यचरण मुंशी विष्णुनारायणजी भार्गव का मदरास में स्वर्गवास हुआ। उनका क्रियाकर्म करके लखनऊ आया तो मालूम हुआ, नवलकिशोर-इस्टेट को गवर्नमेंट ने कोर्ट आफ़् वार्ड्स ऐक्ट के अनुसार अपनी देखरेख में ले लिया है। अस्तु, पिछले सवा तीन वर्ष उसी की देखरेख में बीते; इस्टेट कोर्ट आफ़ वार्ड्स के प्रबंध में रही। किंतु इसी अप्रैल-महीने से वह कोर्ट के प्रबंध से छूट गयी है। अब इस्टेट के सारे कारबार हमारी अपनी देखरेख में चलेंगे। अन्य विभागों की भाँति 'माधुरी' भी नवलकिशोर-इस्टेट का एक अंग है; नवलकिशोर-प्रेस की यह पत्रिका है। आज से बारह वर्ष पूर्व मेरे स्वर्गीय पिताजी ने लखनऊ-जैसे उर्दू-भाषा के केंद्रस्थान में इसका ध्वजारोपण किया था। अतएव जैसे 'अवध-अख़बार' मेरे पूज्य प्रपितामह मुंशी नवलकिशोर साहब सी० आई० ई० का स्मारक है, वैसे ही माधुरी मेरे पूज्य पिताजी का स्मृति-स्तंभ है। कोर्ट आफ़ वार्ड्स के समय में एक ऐसा भी अवसर आया जब माधुरी को बंद कर देने का विचार हो गया। कारण यह कि पिछले वर्षों में माधुरी के पीछे नवलकिशोर-इस्टेट लगभग सत्तर-अस्सी हज़ार रुपये फूँक चुकी थी, और कोर्ट आफ़ वार्ड्स किसी भी घाटा देनेवाले डिपार्टमेंट को क़ायम नहीं रख सकता था। किंतु मेरे स्वर्गीय पिताजी की पुण्य प्रेरणा और माधुरी के प्रेमी पाठकों की सदिच्छा ने समय की प्रतिकूलता का सामना किया, यहाँ तक कि माधुरी-विभाग को, घाटे की कौन कहे, पिछले वर्ष के अंत में कुछ लाभ ही हुआ। अतएव स्पष्ट है कि परिस्थितियाँ पहले की अपेक्षा आज अधिक अनुकूल हैं। यह अनुकूलता उस सर्वशक्तिमान् जगदाधार की कृपा पर निर्भर है जिसकी भृकुटी के संकेत-मात्र से इस विश्व का संचालन होता है; मनुष्य तो केवल निमित्त रहता है। अब उसी के श्रीचरणों में यह प्रार्थना है कि अपनी अपार अनुकंपा का वह बल—वह उत्साह मुझे प्रदान करें कि पूज्यचरण स्वर्गीय पिताजी के लगाये हुए इस पौदे को अपनी सारी शक्तियों से सींचता रहूँ और इस स्मृति-स्तंभ की रक्षा करने में यथा-शक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकूँ। तथास्तु।

श्रीरामकुमार भार्गव

अध्यक्ष, नवलकिशोर-इस्टेट.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा कूपमंडूक की सी है। बाहर रहते हुए घर के अंदर का हाल नहीं दिखता—नहीं मालूम होता; अंदर रहते हुए बाहर का नहीं मालूम होता। कारण—

The spiritual—finer forces are not yet so developed as to be able to penetrate to see behind the viel—beyond the physical plane.

परंतु गहरी छान-बीन, गंभीर विचार करने से मालूम होगा—विदित हो जायगा कि संसार के सारे व्यापार और नियमों के संबंध में मनुष्य को जितना भी अब तक ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो सका है, उस सबसे अधिक अनुभव मनुष्य को अपनी मौत का हुआ है। हम लोग सैकड़ों हज़ारों लाखों बार मर चुके हैं और ज़िंदा हो चुके हैं—अन्य लोकों में नहीं, इस शरीर के जन्म के पहले नहीं, पूर्व जन्मों में नहीं—वरन् यहीं, इसी जगत् में, इसी शरीर में। संसार के सारे जीव मरते-जीते रहते हैं और मनुष्य हमेशा उन सबसे अधिक मरता-जीता रहता है। मनुष्य में सबसे अधिक और शीघ्रता से परिवर्तन होता रहता है; क्योंकि वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है—सर्वश्रेष्ठ इसलिए है कि उसको एक बड़ा ज़बरदस्त हथियार मिल गया है। यह हथियार है—"विचार"। यह हथियार न हो तो वह बिलकुल निकम्मा हो जाय, अन्धा हो जाय। मनुष्य में प्रतिक्षण विचित्र परिवर्तन होता रहता है। पुराने अनुपयोगी विचार, पुराने और अनुपयोगी अणु-परमाणु सब निकलते रहते हैं और नये आते रहते हैं। इस प्रकार पुरानी आदतें मरती जाती हैं और मनुष्य नवीन जीवन प्राप्त करता रहता है। परंतु वह अपने विषय के इन आंतरिक सूक्ष्म व्यापारों पर ध्यान नहीं देता। इसीलिए उसको अंतिम मृत्यु से भय लगा रहता है, जब भौतिक जगत् से हमारी "बदली" होती है। जीवन में अंतर नहीं, नियमों में अंतर नहीं, केवल कार्यरूप और अवस्था में अंतर है। श्रेणी का अन्तर है। हम एक दिन बच्चे थे, फिर बड़े हुए, बालक हुए, युवक हुए। इस प्रकार समय के अनुसार हमारी शारीरिक वृद्धि के साथ मानसिक शक्ति का भी विस्तार होता गया। जैसे—दस वर्ष पूर्व हमारा जैसा शरीर था, वैसा आज नहीं है। दस वर्ष पूर्व हमारे जो विचार थे, वे आज नहीं हैं। आज हम उन्नत हैं। दस वर्ष की बात जाने दीजिए, दस वर्षों में तो अकथ भयानक और विचित्र परिवर्तन हो जाता है। अधिक बारीकी से देखिए। कल हमारे जो विचार थे, वे आज नहीं हैं। एक ही दिन में हमारे शरीर में, विचारों में, जीवन में विचित्र परिवर्तन हो जाते हैं। कल की बातें गयीं—मर गयीं; आज नया दिन है—नवीन जीवन है। दिन-भर की भी बात अब जाने दीजिए। क्षण-प्रतिक्षण हमारे शरीर में और विचारों में परिवर्तन होता रहता है। हम मरते रहते हैं और पुनः जीवित होते रहते हैं।

एक मनुष्य चपरासी है, एक खज़ांची है, एक प्रोफ़ेसर है, एक गवर्नर है; सबके कार्यों में अंतर है—जीवन की अवस्थाओं में, रहनसहन में, ज्ञान में, शक्ति में, अधिकार में, सब बातों में अंतर है। एक से बढ़कर एक अधिकार लोगों को प्राप्त है। एक झोपड़ी में रहता है दूसरा मामूली मकान में, तीसरा एक बँगले में और गवर्नर साहब अपनी कोठी में रहते हैं। उन्नति करके चपरासी को ऊँचा काम मिल सकता है। उसके रहन-सहन और विचारों में परिवर्तन हो जायगा। उसकी उन्नति उसकी मानसिक उन्नति पर निर्भर है। एक मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान को बदल दिया जाता है; उसके मकान, कार्य, रहन-सहन, जलवायु, प्रकृति प्रायः सब बातों में परिवर्तन हो जाता है। पहले स्थान की परिस्थिति से नये स्थान की परिस्थिति भिन्न होती है।

बस, अब इन विचारों को भौतिक दृश्य जगत् से सूक्ष्म अदृश्य जगत् में बदल दीजिए। नीचे की मंज़िल से ऊपर की मंज़िल में अधिक शांति मिलती है। वहाँ की बनावट, सजावट, इन्तज़ाम, वातावरण सब कुछ भिन्न हैं। पर मनुष्य वही मनुष्य रहता है। अब यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि "मनुष्य-शरीर" मनुष्य का असली रूप (True self) नहीं है; उसका असली रूप उसका "मन" भी नहीं है। यह कहना बहुत कठिन है कि मनुष्य का असली रूप क्या है। अस्तु, आइए विचार करें। लोग कहा करते हैं—"मैंने खाया", "मैं बंबई से कलकत्ते गया था।" इस प्रकार के वाक्यों का यह मतलब होता है कि "मनुष्य शरीर" में भोजन गया और "मनुष्य-शरीर" ही एक स्थान से दूसरे स्थान—बंबई से कलकत्ते—गया था। अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई यदि उसे बंबई में ढूँढ़े तो वह वहाँ न मिलेगा, वरन् कलकत्ते में अवश्य मिल जायगा। कहनेवाले ने अपने को "शरीर" समझकर उपर्युक्त दो वाक्य कहे। अब आगे चलकर वार्तालाप में यह भी सुनने में आया कि "मैं उद्विग्न हूँ", "मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता" इत्यादि—ऐसी बातें शरीर से बिलकुल संबंध नहीं रखतीं। ये बातें "मन" के विषय में कही गयी हैं। मन उद्विग्न है और मन को ही नहीं अच्छा लगता। यहाँ पर यह निर्णय किया जा सकता है कि मनुष्य का रूप "मन" है। परंतु आगे सुना जाता है—"मेरा मन विचलित रहता है।" इस प्रकार के वाक्यों में जब "मेरा" आता है, तब मालूम होता है कि मन से पृथक् भी कोई है जिसका मन से संबंध है। अतः मनुष्य का असली व्यक्तित्व इन सबसे परे है, जो "मैं" की आवाज़ निकालता है। हम, मन और शरीर दोनों से मिले हुए जीते-जागते चलते-फिरते बोलते पुतले को मनुष्य कहते हैं। परंतु हमारा असली रूप न तो मन है, और न शरीर है—दोनों में एक भी नहीं। दोनों भी नहीं हो सकते। अतः "मैं" मनुष्य नहीं है। ऋषि, महात्मा, रहस्यवादी प्रभृति ने "आत्मा", "सोऽहम्" आदि कहा है। परंतु "मेरी आत्मा नहीं कहती कि किसी को कष्ट दो या अन्याय करो"—ऐसे वाक्यों से यह मालूम होता है कि "आत्मा" से भी संबंध रखनेवाली कोई पृथक् सत्ता है। शब्दों के उपयोग में, इस विषय में, बहुत झगड़ा मच जाता है। अस्तु "सोऽहम्" "I AM," "मैं हूँ।" मैं क्या हूँ, कौन हूँ, क्यों हूँ—आदि का उत्तर अकथनीय है। मैं हूँ—और मैं जानता हूँ कि मैं हूँ, अतः मैं हूँ। "मैं हूँ"—इससे अधिक आगे कुछ कहना नहीं। बस, मैं हूँ। यही 'मैं हूँ" "True self" है—परिवर्तन से परे, अनादि और अनंत, विशुद्ध, पवित्र, पूर्ण स्वतंत्र।

मनुष्य पूर्ण शरीर हो या अपूर्ण, कैसी भी अवस्था में हो—बालक, युवा, वृद्ध—पुनः कैसी भी परिस्थिति में हो—वह "मैं" के सिवा अन्य शब्दों का उपयोग न करेगा। बीमार हो या स्वस्थ, ग़रीब हो या अमीर, अंधा हो चाहे आँखें हों, शरीर पूर्ण हो या कोई हाथ-पैर कटा हो, उसके "मैं" में कोई कमी न होगी। बचपन, युवा और वृद्धावस्था में भी उसके "मैं" में परिवर्तन नहीं होगा। क्षण-प्रतिक्षण उसके शरीर में प्रत्येक अंग में, अणु-परमाणु में, जीवन के व्यापार में और उसके विचारों में भयानक और विचित्र परिवर्तन होता रहे—घटती बढ़ती होती रहे, परंतु "मैं" वही रहेगा। परंतु मैं दुःखी हूँ, ग़रीब हूँ,—आदि वाक्य अज्ञानता के कारण कहे जाते हैं; क्योंकि दुःख "मैं" को नहीं होता और न "मैं" कभी ग़रीब-अमीर होता है। सुख-दुःख, शरीर और मन की अवस्थाएँ हैं और ग़रीबी-अमीरी, बाह्य परिस्थिति की अपूर्णता और पूर्णता अवनति और उन्नति के दूसरे नाम हैं। मशीन ख़राब होने पर बिजली का कुछ न बिगड़ेगा। शक्ति में कोई परिवर्तन या गड़बड़ी, कमी या घटी नहीं हो सकती। "मैं" सदा अपरिवर्तनशील है। "मैं" ही जीवन है; शरीर में इसके रहने से ही शरीर को सुख-दुःखादि होते हैं। यदि यह "जीवन" न रहे तो शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है। फिर उसको सुख-दुःखादि कुछ नहीं भासता। वह एक निकम्मी मशीन-सरीखा हो जाता है। शरीर और मन रहे या न रहे, "मैं" अवश्य रहेगा। मशीन ख़राब हो जाय, दूसरी मशीन से काम होगा; दूसरे रूप की, दूसरे प्रकार की मशीन से उसी शक्ति द्वारा दूसरा कार्य होगा। शरीर की मृत्यु के पश्चात् वही "मैं" कहीं अन्यत्र अन्य शरीर में जा सकता है—स्थूल नहीं तो सूक्ष्म।

मृत्यु से यदि "पूर्ण विनाश" का अर्थ लिया जाता हो तो भ्रम है; क्योंकि यदि "विनाश" होने लगे, तो "जन्म" कहाँ से हो—नयी रचना कहाँ से हो।

कोई भी वस्तु "विनाश" को नहीं प्राप्त होती। जो कुछ "है", वह "नास्ति" को नहीं प्राप्त हो सकता। और, "शून्यता" में से कोई "रूप" नहीं प्रकट हो सकता। दृश्य वस्तुओं का, भौतिक स्थूल वस्तुओं का केवल रूप-परिवर्तन होता रहता है; स्थूल से सूक्ष्म बनतीं और फिर स्थूल बन जाती हैं। इसी क्रिया द्वारा महान् परिवर्तन होता रहता है और नाना प्रकार के रूप बनते रहते हैं। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना ही मृत्यु है। केवल अवस्था-परिवर्तन है। अतएव मृत्यु एक मार्ग है—एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने का प्रवेशद्वार है।

हमारा शरीर और मन सैकड़ों बार मर चुका है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िंदा हो चुका है। बचपन को छोड़कर बाल्य, फिर किशोर, फिर युवा, प्रौढ़, वृद्ध—कितनी ही अवस्थाएँ प्राप्त हुईं। यह सब एकाएक नहीं हुआ। एक ही शरीर में एक ही रूप में हुआ। दूसरा रूप नहीं धारण करना पड़ा। मा के गर्भ से निकलकर एक रूप धारण करने पर उसी रूप की "क्रमशः" वृद्धि होती रही ; यह क्रिया बहुत ही धीरे-धीरे होती रही—इतनी धीरे-धीरे कि हम इस पर ध्यान नहीं देते थे कि हमारा शरीर और मन वृद्धि कर रहा है। हमारे शरीर की अवस्था और शक्ति में इतने धीरे-धीरे वृद्धि हो रही थी कि उसका अनुमान बहुत सूक्ष्म है। केवल मनुष्य-शरीर का ही यह हाल नहीं है, प्रत्युत प्रत्येक रूपधारी हरएक प्राणी में, चल और अचल, चेतन और जड़ कहलानेवाली वस्तुओं और जीवों में भी यही क्रिया सदैव चालू रहती है और रूप-परिवर्तन होता रहता है। पुराने रूप, पिंड अथवा शरीर अपना जीवन-कार्य समाप्त करके अनुपयोगी हो जाते हैं—और सड़-गल अथवा सूखकर उनके सब तत्त्व अणु-परमाणु अदृश्य जगत् में चले जाते तथा अन्य रूपों में अन्य वस्तु की रचना करते हैं। किसी भी वस्तु का विनाश नहीं होता।

The streaming atoms fly on to clash together again, and make another and another state of things forever. All the substance that ever was in material form—even thousands and millions of years before—exists now, *in some form.* All the substance that ever will be in material form, already exists now in *some form.* Any thing, at any time may be *at any form* whether visible or invisible.

अदृश्य पदार्थों अथवा तत्त्वों से ही दृश्य-रूप बनता है और उस वस्तु का उस रूप में उपयोग हो जाने के पश्चात् वे तत्त्व—अदृश्य अणु-परमाणु, जो लाखों करोड़ों की संख्या में एकत्रित होकर स्थूल रूप की सृष्टि करते थे, अब संचालक शक्ति (Intelligence) के बिना उस शरीर से अलग होकर अदृश्य भंडार में चले जाते हैं एवं अन्य रूप की रचना करने के लिए आवश्यकता-वश विश्व-व्यापी नियमानुसार शक्ति द्वारा संचालित होकर आवश्यक स्थान पर चले जाते हैं। स्वयं उनका कभी विनाश नहीं होता। भिन्न-भिन्न तत्त्वों के भिन्न-भिन्न परमाणु मिलकर भिन्न रूपों की सृष्टि करते हैं।

They remain ever the same, but combining their forces become transformed into men and the numberless beings besides. These are now joined in one love binding the many together; now once again they are scattered, dispersing through hatred and strife.

See, for a clear demonstration, how the limbs of man are constructed, all that the body possesses in beauty and pride of existence, all put together by love, are the elements there forming one. Afterwards hatred and strife come, and fatally tear them asunder, once more they wander alone, on the desolate confines of life. So it is with the bushes and trees and the water-inhabitting fishes, wild animals roaming the mountains, and ships swiftly borne by their sails.

कितना भयानक और विचित्र है अदृश्य जगत् का व्यापार ! कैसा विचित्र और भयानक भंडार हमारे चहुँओर है ! कैसा विचित्र और भयानक है यह विश्व ! हमें यह सब चर्मचक्षुओं से नहीं दिखता, इसीलिए हम इन बातों पर ध्यान नहीं देते। हमारे हाथ में जो एक मामूली चीज़ रहती है, उसी की विचित्रता हम नहीं देख पाते।

Even the things which be in our hands—these, knowing, we know not. Jiggle an atom here and every other atom in the universe, some how, some time, jiggles in response. Call it radiation or what you will. Stub your toe here on earth and Mars feels it, and later on the earth responds to the reaction of Mars.

मनुष्यशरीर एक भयानक और विचित्र कारख़ाना है। वैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य-शरीर एक "विश्व" है और इसमें भी सौर जगत् है तथा अन्य अनेक जगत् हैं; इनका कार्य अनन्त है और इनका संबंध उन विश्वों से है जिन्हें हम बाहर देखते हैं। मनुष्य अनन्त शक्तियों का भण्डार है, परंतु बहुत थोड़ी शक्तियाँ अभी तक ज्ञात हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं एवं उनका पूर्णतः विकास भी अभी नहीं हुआ है। विश्व के समान शरीर का प्रत्येक अणु-परमाणु सदैव चलता रहता है—आंतरिक व्यापार सदैव चालू रहता है—थकने का नाम भी नहीं। हृदय की गति प्रति मिनट ७० है; अतः प्रति घंटा ४२०० बार धक्के देता है और प्रति बार २½ (६½ तोले) औंस ख़ून फेंकता है। हिसाब से प्रति घंटा ५६ पौंड से कम ख़ून नहीं—और दिन-भर में ८ टन ख़ून हृदय में से गुज़रता है। प्रत्येक ३ मिनट में सारे शरीर का ख़ून हृदय से होकर साफ़ हो जाता है। सचमुच हमारे विचार प्रसन्नता और आनन्द के हों तो हृदय के इन कार्यों को बहुत सहायता मिले—शरीर में विचित्र पुरुषार्थ उत्पन्न हो, आनन्द के विचारों से सर्वत्र अणु-परमाणुओं में एकता, स्फूर्ति तथा विचित्र उत्साह उत्पन्न होता है। विचारों द्वारा ही सब चलते हैं। जैसा विचार होगा, वैसा ही उनका कार्य होगा। क्रोध-द्वेष आदि के विचारों से उनमें महाघोर युद्ध मच जाता है और सारे शरीर का रक्त दूषित और ज़हरीला हो जाता है। अस्तु, हिसाब लगाने से मालूम होगा कि ७० वर्ष के जीवन में २७,००,००,००० टन ख़ून हृदय में होकर गुज़रता है। हम प्रति घंटा औसतन १,२०० बार श्वास लेते हैं और ६०० गैलन वायु हमारे अन्दर जाती है। हमारे शरीर के ऊपर प्रति वर्गइंच पर वायु का दबाव १४ पौंड पड़ता है। सारे शरीर के चर्म का क्षेत्रफल औसतन २,००० वर्गइंच है। प्रत्येक वर्गइंच में कम से कम ३,५०० छिद्र है, अतः सारे शरीर में ७०,००,००० छिद्र हैं। हमारा शरीर अगणित अणु-परमाणुओं का बना हुआ है। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक कहता है कि हमारा शरीर २८ $\left\{ (१०,००,०००)^{२} \right\}^{२}$ (28 Trillion) विद्युत् वटों (Electric cells) का बना हुआ है। सारा शरीर अणुओं का बना हुआ है। अणु से अति छोटे परमाणु होते हैं। उनसे भी अति छोटे इलेक्ट्रन् और इलेक्ट्रन से भी छोटे प्रोटोन होते हैं। प्रत्येक में दो ध्रुव होते हैं—सबल और निर्बल। एक परमाणु का व्यास क़रीब $\frac{१}{२५,४०,००,०००}$ इंच होता है—इससे भी छोटे इलेक्ट्रन और प्रोटोन होते हैं। यदि एक परमाणु का रूप बढ़ाकर १ गज़ व्यास का कर दिया जाय और इसी अनुपात में इलेक्ट्रन का रूप भी बढ़ा दिया जाय, तो इलेक्ट्रन एक मामूली आलपीन के सिरे के बराबर होगा। अब प्रोटोन की कल्पना कीजिए और विचार कीजिए कि शरीर की रचना कितनी विचित्र तथा भयानक है। ईसाइयों के ग्रंथों में कहीं मनुष्य के विषय में लिखा हुआ है कि—Fearfully and wonderfully made. कोई परमाणु स्थिर नहीं रहता। ये चलते रहते हैं। इनकी गति का कुछ अन्दाज़ नहीं है। प्रत्येक परमाणु चुम्बक के समान है और प्रत्येक में सबल और निर्बल, आकर्षक और विकर्षक—दो ध्रुव होते हैं। ये सब "विचार" द्वारा संचालित होते हैं, रूप धारण करते हैं और विविध दिशाओं में चलने, भन्नाने, चक्कर खाते, मिलने-जुलते तथा अलग होते रहते हैं। पर सबकी गति भिन्न-भिन्न होती है—अन्दाज़न इतनी अधिक कि उनकी गति का औसत प्रतिघंटा १००० मील से भी अधिक होता है। एक परमाणु एक क्षण किसी पेड़ में—फिर पत्ते में—पानी में—धूल में—वनस्पति में—मनुष्य के श्वास में—विचार में—शरीर में आ सकता है और कहीं भी जा सकता है।

इस विस्तृत—इतने बड़े शरीर के प्रत्येक कोने में—अणु-अणु में मन का शासन है। मन मैनेजर है—डाइरेक्टर है—और अपना हुक्म विचार द्वारा चलाता है; उनको मिलाता और अलग करता है। एक क्षण प्रेम और आनन्द के विचारों से सबको जीवन देता और एकता कराता है; दूसरे क्षण ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध तथा निराशा के विचारों से सबमें महाघोर युद्ध मचा देता है—निर्बल कर देता है, तितर-बितर कर देता है। जिस प्रकार महायुद्ध में सैनिक मरते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी महाप्रलय मचा रहता है। शरीर का रूप-रंग बिगड़ जाता है और शक्ति कम हो जाती है, जिस प्रकार किसी साम्राज्य की शक्ति सैनिकों के मर जाने से घट जाती है। इसका अधिक वर्णन करना प्रसंग के बाहर की बात होगी।

शरीर की शक्ति की अपेक्षा मन की शक्ति बहुत ही अधिक है—इतनी अधिक कि मनुष्य स्वयं कल्पना नहीं कर सकता है। जब तक मन—विचार द्वारा—शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के किसी भी छोटे या बड़े अंग को प्रेरणा न करेगा, तब तक एक नस भी नहीं हिल सकती। इतना ही नहीं, अपने शरीर पर ही नहीं—अपितु दूसरे व्यक्तियों के मन पर भी एक मनुष्य का मन अधिकार कर सकता है। विचारों का प्रभाव आंतरिक और बाह्य दोनों परिस्थितियों पर होता है—अपने ऊपर के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों पर भी विचित्र असर होता है। कमज़ोर व्यक्ति बलवान् बनाया जा सकता है। बलवान् मन से जाकर विचार कमज़ोर मन पर असर करते हैं और कमज़ोर व्यक्ति वशीभूत हो जाता है। जैसा विचार भेजा जायगा, वैसा ही कार्य होगा। यदि विचार किसी बलवान् मन पर—उसकी इच्छा के विरुद्ध—प्रभाव करने के लिए भेजा गया है तो वैसा न होकर उलटा भेजनेवाले के पास वापस आकर ही प्रभाव करेगा। 'विचार' मनुष्य के अन्दर एक ऐसी विचित्र शक्ति है कि मनुष्य इससे चाहे अपना उत्थान कर ले चाहे पतन। मन दो प्रकार से कार्य करता है—एक प्रकट रूप में और दूसरे गुप्त रूप में। जागृत मन की अपेक्षा गुप्त मन में अथाह शक्ति है—इसको देवता कहना पड़ेगा।

अपने विचारों द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करके, जागृत अवस्था से गहरी नींद में लाकर गुप्त मन की शक्ति का कुछ नमूना देखा जा सकता है। गुप्त मन आज्ञाकारी है। जागृत मन जब वशीकृत हो जाता है तब गुप्त मन को जो आज्ञा दी जाय, वही करेगा। नमक खिलाया जाय और कहा जाय कि लो, मिश्री खाओ तो उसे मिश्री का ही स्वाद मिलेगा। इसी प्रकार मिट्टी खिलाकर उसे पेड़े का स्वाद मिल सकता है। इसी प्रकार विचारों द्वारा आज्ञा देकर शरीर का वज़न भी घटाया बढ़ाया जा सकता है। १०० पौंड से बढ़ाकर १२०-१२५ पौंड, और घटाकर ८० पौंड कर दिया जाय। दुश्चरित्र व्यक्ति का जीवन सुधारा जा सकता है। बीमारियाँ दूर हो सकती हैं और पुरानी भयानक असह्य बीमारियाँ—शारीरिक और मानसिक—भी दूर हो गयी हैं। (मैं आध्यात्मिक चिकित्सक—Spiritual Healer हूँ) सफ़ेद बाल काले हो सकते हैं। बुढ़ापा नहीं आ सकता। इतना ही नहीं प्रगाढ़ निद्रा में वह व्यक्ति बंद या खुली पुस्तक पढ़ सकता है, लिख सकता है, बोल सकता है, कार्य कर सकता है। ख़तरनाक काम भी अच्छी तरह और सफ़ाई से कर सकता है। वह दूरस्थ भूत और वर्तमान घटनाओं के अतिरिक्त भविष्य की बातें भी बतला सकता है। मन सर्वव्यापी है, उसे समय से कुछ मतलब नहीं। उसे सब वर्तमान ही प्रतीत होता है। शरीर पर मन का पूरा अधिकार होने से मन जो आज्ञा शरीर को देगा, शरीर वही करेगा। शरीर हलका और वज़नदार, नरम और कड़ा बनाया जा सकता है। लकड़ी-लोहे-पत्थर के समान शरीर कड़ा हो सकता है। उस शरीर पर ४-५ आदमी भी यदि चढ़ जायँ तो भी उसे कुछ हानि न होगी, कोई हड्डी न टूटेगी और न नस में गड़बड़ी होगी।

इतना ही नहीं, साधारण मनुष्य अधिक से अधिक १२ घंटे सोता है, परंतु वह व्यक्ति आज्ञा देने पर २४ घंटे तक सो सकता है—इससे भी अधिक २, ४, ८, १०, १२ दिन तक लगातार सो सकता है। बीच में उसके शरीर में कुछ गड़बड़ी न होगी। खाना-पीना करे या न करे, शौचादि करे या न करे, वह सर्वथा सुरक्षित रहेगा। वह एक प्रकार से समाधि में रहेगा। समय-चक्र के साथ उसके शरीर में कोई परिवर्तन नहीं होगा। वह काम भी कर सकता है, जैसे वह जागृत अवस्था में करता था। सब नित्य नियम कुशलतापूर्वक करेगा। कल्पना की जा सकती है कि वह इससे भी अधिक काल तक सो सकता है—१५ दिन, १ मास, ४ मास, १ वर्ष; और अपना कार्य भी बराबर करता रहे। यह है विचारशक्ति—यह है मनोयोग।

यह सिद्ध हो चुका कि शरीर पूर्णतः मन के अधीन है, अतः स्वास्थ्य, शक्ति, दीर्घजीवन प्राप्त करने में विचारों से बहुत सहायता मिल सकती है। शुद्ध प्रसन्नता और आनंद के विचारों से, योग की साधारण विविध क्रियाओं से नियमित कार्य, नियमित जीवन—नियमित सात्त्विक आहार से आनंदमय दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है, अर्थात् दीर्घकाल तक शरीर स्वस्थ और आनंद में रहकर जीवन व्यतीत किया जा सकता है।

अब हम मृत्यु के विषय को लेते हैं। जागृत अवस्था और निद्रावस्था में अन्तर है। जागृत अवस्था में शरीर और मन जागृत रहते हैं और भौतिक जगत् में कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते रहते हैं। सुप्तावस्था में शरीर के बाह्य अंग शिथिल पड़े रहते हैं—आराम करते हैं और आंतरिक व्यापार चलता रहता है एवं मन (जागृत मन) कहीं अन्यत्र रहता है। जागृत अवस्था में भी प्रायः ऐसा हुआ करता है कि हम घर में बैठे या कहीं भी बैठे अपना काम करते रहते हैं। और, जब हमारा मन ज़रा देर के लिए अन्यत्र भ्रमण करने लगता है, तब हमारा काम रुक जाता है; क्योंकि शारीरिक अंग-संचालन बंद हो जाता है—बंद इसलिए होता है कि मन शरीर के अवयवों को आज्ञा न देकर कहीं अन्यत्र कल्पना-जगत् में भ्रमण करने लगता है। हमारा भौतिक शरीर यहाँ होने पर भी हमारा मन वहाँ चला जाता है। जब तक हम अपना रूप "स्थूल" समझते हैं, तभी तक हमें मृत्यु का भय लगा रहता है। ज्यों ही हमें अपना असली स्वरूप (True self) मालूम हो जाता है, मृत्यु का भय नहीं रहता। हमें मालूम हो जाय कि हम न तो मन हैं और न शरीर, तो मौत से डरने की बात ही न रहे। मन और शरीर, भौतिक जगत् में जीवन-कार्य करने के लिए हमारे औज़ार हैं—घर हैं—शक्तियाँ हैं। फिर हमें मालूम हो जायगा कि "मौत" मौत नहीं, किन्तु केवल रूप-परिवर्तन है। जब हम सोते रहते हैं तब हमें भौतिक जगत् के व्यापारों से मतलब नहीं रहता। हम एक प्रकार से मर जाते हैं और किसी अन्य जगत् में रहते हैं। सोने के पश्चात् हम जाग उठते हैं—अर्थात् हम केवल अल्प काल के लिए मर जाते हैं, फिर भौतिक शरीर में आ जाते हैं; क्योंकि भौतिक शरीर से हमारा पूरा संबंध टूट नहीं जाता, केवल सीमित—अल्पकाल के लिए संबंधविच्छेद हो जाता है—वह भी पूर्णतः नहीं। हमें पुनः आने के लिए मार्ग खुला रहता है।

मौत और नींद में केवल इतना ही अंतर है कि मौत में सदैव के लिए भौतिक शरीर से संबंध छूट जाता है; क्योंकि शरीर अधिक उपयोगी नहीं ठहरता। कमज़ोर होने और बिगड़ जाने से पुनः उस मशीन से काम नहीं चल सकता, चाहे कितनी ही बिजली उसमें भरी जाय। नींद में केवल अल्प काल के लिए संबंध-विच्छेद होता है। अँगरेज़ी में पढ़े-लिखे लोग इसे यों समझ सकते हैं—

Death is, after all, only a long interval in the life of physical plane functioning; one has "gone abroad" for a longer period. The process of daily sleep and the process of occasional dying are identical, with the only difference that in sleep the current of energy along which the life-force streams is preserved intact, and constitutes the path of return to the body, but in death, this life-thread is broken or snapped for ever. When this has happened, the concious entity can not return to the dense physical body, and that body lacking the principle of coherence then disintegrates.

बिना कुछ क़ीमत दिये मुफ़्त में कुछ नहीं मिल सकता। यदि हमें किसी वस्तु की आवश्यकता है तो उसके बदले में कुछ अवश्य देना पड़ेगा जो क़ीमत में उसके बराबर हो। काम भी मुफ़्त में नहीं हो सकता। एक कारख़ाने में बहुत-से लोग काम करते हैं, अफ़सर भी काम की देख-भाल के लिए नियुक्त रहते हैं। ये अफ़सर अपने मातहतों पर हुक्म चलाते हैं और उनसे बराबर काम लेते हैं। मातहत ख़ुशी से हुक्म बजा लाते हैं। क्यों—इसलिए कि उनको अपने परिश्रम के बदले भोजनार्थ द्रव्य मिलता है। यदि यह न मिले, तो वे बड़े से बड़े अफ़सर के हुक्म को भी ठुकरा देंगे। अतः यहाँ पर केवल आज्ञा-शासन से ही काम न चलेगा, कुछ सामग्री अवश्य चाहिए। हमारा शरीर भी दो प्रकार की आवश्यकताएँ पूर्ण होने से जीवित रहता और कार्य करता है। वे आवश्यकताएँ ये हैं—Intelligence और Providence। प्राण के मुख्यतः ये ही दो कार्य हैं।—(१) शरीर के अंग-प्रत्यंग, अणु-परमाणु में जीवन-प्रवाह चलाते रहना और सबको साधना; (२) सबको शक्ति और बुद्धि द्वारा संचालित करना और कार्य लेना।

प्रथम कार्य करने का केन्द्र 'हृदय' है। यहाँ से सब अंगों को भोजन—शक्ति मिलती है। भोजन आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचता है, रक्त बनता है, शुद्ध होता और सारे शरीर में बाँटा जाता है; शरीर की वृद्धि के साथ शक्ति की वृद्धि होती है। दूसरा काम करने का केन्द्र 'मस्तिष्क' है शक्ति तो अन्धशक्ति (Blind force) है नहीं, अतः शक्ति को चलाने के लिए 'मन' है। यह सारे कारख़ाने का मैनेजर है। मस्तिष्क हेड आफ़िस है; नाड़ी-जाल उसके टेलीफ़ोन हैं और 'कंपनों' द्वारा प्रत्येक अंग को कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। मस्तिष्क से संचालन (Administration) होता है, और हृदय शक्ति-निलय (Power house) या भंडारा (Store house) है। अतः जब दोनों केन्द्र अपना काम बंद कर देते हैं तभी मौत होती है; क्योंकि शरीर को न तो शक्ति मिलती है, न आदेश। यों समझिए कि जब इन दोनों केन्द्रों से जीवन-प्रवाह या प्राण निकल जाता है, तब शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है। शरीर जीवन के बिना बेकाम है। *

नींद में केवल मस्तिष्क से ही जागृत चेतना निकल जाती है, इसी से मनुष्य बाह्य जगत् के व्यापारों से बेख़बर रहता है। हृदय केवल अपना कार्य करता रहता है, अतः श्वास आदि सब शारीरिक कार्य होता रहता है। शरीर पड़ा रहता है, कार्य नहीं करता, क्योंकि कार्य लेनेवाला—संचालक मन कहीं अन्यत्र रहता है। उस अवस्था की तुलना स्वप्न से कीजिए।

प्राण निकलने के दो मुख्य मार्ग हैं। (१) मस्तिष्क—जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में डूबे रहते हैं, अथवा जो लोग मानसिक कार्य अधिक करते हैं, उनका प्राण इस मार्ग से निकलता है। यह प्रथम श्रेणी संत-महात्मा ज्ञानी, अंतर्दर्शी (Initiates, Seers), कवि आदि लोगों की होती है जिन्हें भौतिक जगत् से मोह नहीं होता। इस प्रकार से बहुत कम लोग मरते हैं; क्योंकि सत्यशील और ज्ञानी लोग संसार में बहुत कम हैं। अक्सर सुना गया है कि बड़े बड़े विद्वानों की मृत्यु अचानक हो गयी। कारण बतलाया जाता है कि दिमाग़ पोल हो गया। कोई ऐसा भयानक दृश्य या विचित्र परिस्थिति आने पर ऐसा होता है। इससे मन पर अचानक आघात-सा होता है, वह अपना काम करने में सहसा चूक जाता है। फिर इसका प्रभाव सहसा सारे शरीर पर पड़ता है। सब व्यापार बंद हो जाता है और मृत्यु हो जाती है। यह मन की एक प्रकार की कमज़ोरी और असहनशीलता का लक्षण है।

(२) दूसरा मार्ग "सूर्य-चक्र" से है। इस मार्ग से उन लोगों का प्राण निकलता है जो जड़वादी, अज्ञानी, स्वार्थी और नीच लोग हैं, जिनका ध्येय "खाओ पिओ मज़े करो" रहता है, जो लोग विचारहीन होते हैं। इस क्रिया से बहुत लोगों की मृत्यु होती है; क्योंकि संसार में मूर्खों की संख्या अधिक है।

(३) इन दोनों के अतिरिक्त साधारण अवस्थावाले व्यक्तियों की मृत्यु का मार्ग "हृदय" से है। जो लोग साधारण जीवन बिताते हैं – न अधिक ज्ञानी हैं और न अति नीच, परंतु नियमपूर्वक जीवन बिताते हैं और सामर्थ्य के अनुसार प्रेम और परोपकार करते हैं तथा किसी को कष्ट नहीं देते, उनकी मृत्यु का यही मार्ग है। इसमें वे लोग भी सम्मिलित हैं जिनका प्रथम श्रेणी वाला के समान किसी विशेष परिस्थिति और विशेष अवसर पर Heart fail हो जाता है अर्थात् हृदय चूक जाता है।

यहाँ पर सर्वसाधारण के लिए कुछ उपयोगी नियम भी दे देना अच्छा होगा जिससे मृत्यु के समय भय, घबराहट या कठिनाई का विचार न हो।

१. चिंतन, जप, एकाग्रता और ध्यान द्वारा मन को उन्नत करना और उसकी शक्ति बढ़ाना।

२. सदैव आपस में प्रेमभाव रखना—हृदय से एक दूसरे की सेवा करना। स्वार्थ-भाव, कपट, पाखंड और दूसरों को कष्ट देने या उनसे बदला लेने का विचार

* Death, therefore is literally, the withdrawal, from the heart and from the head, of these two streams of life, producing consequently complete loss of conciousness. Death differs, now, from sleep, in that both streams are withdrawn; while in sleep, the one strem in heart continues to work, and the conciousness from brain only is withdrawn, hence man becomes unconscious—while the interior business of the body is going on.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर सहृदय, दयालु और प्रेमी बनना। यह भाव जमा लेना कि हम सब लोग वास्तव में एक हैं। सबका True Self एक है। केवल स्थूल शरीर में—रूप में—कार्य में—अवस्था में—जीवन में ही अंतर है, जो अस्थायी है; फिर इस भेद से अलग होने पर हम सब लोग एक हैं। हमारा ध्येय "प्रेम और सेवा" है—इसी ध्येय की पूर्ति के हेतु हम सब आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न देह धारण करते हैं—सारा विश्व स्वार्थ-रहित है और सर्वत्र प्रेम का अनन्त साम्राज्य है। प्रेम द्वारा ही अखिल विश्व—सूर्य, चन्द्र, तारे आदि—प्रत्येक अणु-परमाणु संचालित होते हैं और प्रत्येक वस्तु एक दूसरे की सेवा में हाज़िर है *।

इस प्रकार की भावनाओं से जब स्वार्थ का विचार न रहेगा और वासना आदि तथा जड़वाद के विचार न रहेंगे, तो सूर्यचक्र अशक्त न बनेगा। अतः वहाँ से मार्ग न खुलेगा। फिर इस प्रकार से मौत नहीं होगी; क्योंकि उपर्युक्त विचारों से जीवन नीच न कहलायेगा।

३. जब सोने के लिए जाओ तो शरीर के अंग-प्रत्यंग नस-नस ढीली कर दो। तनाव बिलकुल मत रहने दो और चेतना को मस्तिष्क में एकत्रित करो। शरीर का विचार छोड़ दो। तुम्हें यह बिलकुल न मालूम पड़े कि कौन-सा अंग कहाँ और कैसा है। शरीर बिलकुल ढीला कर दो—मरे-से हो जाओ। हाँ, तुम्हें केवल श्वास और हृदय की गति का अनुभव अवश्य होगा; क्योंकि यह कार्य बंद नहीं होगा। यह अभ्यास रोज़ करो। इसके आगे का कोई अभ्यास आरंभ मत करो, जब तक यह पूर्णतः सिद्ध न हो जाय। इसे कई वर्षों तक करो †।

*The universe is full of the purpose of "Love & Service" in co-operation. The purpose of Life is unselfish and Love is the Supreme cause which moves beautifully all.

†Learn, as you go to sleep, to withdraw and focuss the consciousness in the head. Relax the body, don't feel strain and don't undertake further steps until this is perfected. Do so for several years.

४. जो कुछ अनुभव होता जाय, सब नोट करते जाओ और ध्यान में रक्खो (Record and watch all the phenomena.)

इन चारों अभ्यासों से शरीर पर तुम्हारा अधिकार पूर्णतः हो जायगा; अतः मौत के समय दुःख का विचार, कठिनाई या घबराहट नहीं होगी। शरीर पर जिसको अधिकार प्राप्त हो गया है, वह उस मनुष्य से कहीं बढ़कर है जो अपने शरीर पर अधिकार करने का विचार भी नहीं करता, किंतु कुविचारों द्वारा जीवन का नाश कर रहा है और शरीर को भी स्वतंत्रता देकर नीच मौत बुला रहा है।

मरते हुए व्यक्ति के कमरे में शांति रक्खो। परंतु देखा जाता है कि ऐसा कभी होता ही नहीं। शांति का अर्थ केवल यह नहीं है कि हल्ला, रोना, पीटना आदि न हो। सबसे अधिक शांति की आवश्यकता है विचारों में। हल्ला, रोना, पीटना मत करो। भय, शंका घबराहट आदि के विचार भी मत लाओ; विचारों में पूर्ण शांति रक्खो। विचारों का प्रभाव केवल अपने ऊपर और अन्य व्यक्तियों पर ही नहीं, वातावरण पर भी पड़ता है। जैसा प्रभाव अपने शरीर पर या अन्य व्यक्ति पर पड़ता है, उसी प्रकार का चारों ओर वातावरण में भी पड़ता है। विचारों से वातावरण पवित्र अथवा दूषित, हितकर अथवा अहितकर हो जाता है और सब पर प्रभाव करता है। घबराहट, भय, क्रोध आदि के विचारों से वायु के अणु-परमाणु भी थर्राते-भन्नाते हैं, विकृत होते—निर्बल होते हैं। उनमें युद्ध मच जाता है। अतः सर्वथा शांति रक्खो। हो सकता है कि मरनेवाला उस समय अचेत हो। परंतु सचमुच वह अचेत नहीं रहता। ९० प्रतिशत मनुष्यों को मानसिक चेतना अवश्य रहती है—चाहे वे बोल न सकें, सुन न सकें, देख न सकें, अंग न हिला सकें। वे बोल, देख, सुन नहीं सकते और अंग-संचालन नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि शारीरिक कारबार प्रायः बंद-सा रहता है। नाड़ी आदि से पता नहीं चलता; इन्द्रियाँ बहुत कमज़ोर हो जाती हैं। मन में प्रेरणा तो होती है कि वह बोले, देखे, सुने; परंतु इस संबंध की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ अयोग्य और अशक्त रहती हैं। उनमें शक्ति न होने से वे कार्य नहीं कर सकतीं, चाहे हज़ारों आज्ञाएँ दी जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगी के कमरे में अन्य रंग का प्रकाश न रखकर नारंगी रंग (Orange) की रोशनी की जाय। जब बीमार के अच्छे होने की कोई आशा न हो, मौत ही दिखायी दे, तभी यह प्रबंध किया जाय। नारंगी रंग का प्रकाश रखने से उसे एकाग्रता में सहायता मिलती है, जैसे लाल रंग से सूर्यचक्र और इंद्रियाँ उत्तेजित होती हैं और हरे रंग से हृदय को स्फूर्ति मिलती है। *

संगीत-स्वर-संबंधी विशेष ज्ञान होने से स्वरों का उपयोग हो सकता है, परंतु कोई ख़ास स्वर ऐसा नहीं है जिससे सहायता मिले और शांतिपूर्वक प्राण-विसर्जन हो। फिर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के बाजों के भिन्न-भिन्न स्वरों का अलग-अलग प्रभाव होता है। परंतु अच्छा हो, स्वयं रोगी का ही बाजे के ऊपर का स्वर दिया जाय। शांतिदायक कुछ मंत्रों का भी उच्चारण उस समय धीमी आवाज़ से किया जा सकता है। रोगी का सिर पूर्व की ओर हो और पैर पश्चिम की ओर। दोनों हाथ, और दोनों पैर एक दूसरे पर रक्खे हों। *

कमरे में केवल चन्दन की लकड़ी जलायी जाय, अन्य पदार्थ नहीं। ॐ शांतिः।

---

* Orange aids focussing in the head, red stimulates the solar plexus and green has definite effect on the heart and life-streams.

* The top of the head should point towards the East, and feet and the hands should be crossed.

हमारी चुनी हुई पुस्तकें

साम्राज्यवाद

भूमिका-लेखक पं० जवाहरलाल नेहरू

इसमें वाणिज्य-व्यवसाय पर बैंकों का प्रभाव, पूर्णाधिकारों की स्थापना, पूँजीवादी राष्ट्रों का लूट-खसोट आदि अनेक बातों का वर्णन कर यह दिखलाया गया है कि ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, आदि देशों ने किस प्रकार अपना साम्राज्य फैलाने की चेष्टा की है। मू० ढाई रुपया।

हिन्दी शब्द-संग्रह

हिन्दी का नया कोष

इसमें प्राचीन कविता तथा आधुनिक गद्य-पद्य में आनेवाले प्रायः सभी प्रचलित शब्दों का संग्रह किया गया है। अर्थ स्पष्ट करने के लिये विख्यात लेखकों की रचनाओं से लगभग सात हज़ार उदाहरण भी दिये गये हैं, मूल्य अजिल्द का ४), सजिल्द का ४॥)

ग्रीस और रोम के महापुरुष

भूमिका-लेखक—डा० भगवानदासजी

इसमें सिकन्दर, सीज़र, पाम्पी आदि वीरों के जीवन-चरित्र दिये गये हैं, जिनके पढ़ने से मनोरंजन के साथ-साथ उपयोगी शिक्षा भी मिलती है। मूल्य पौने चार रुपया।

मीर क़ासिम

बंगाल के सुयोग्य नवाब मीरक़ासिम के समय में अंग्रेज़ों ने भारत के साथ कैसा व्यवहार किया, नवाब ने उनकी धमकियों की परवा न कर किस तरह दृढ़ता से काम लिया और प्रजा के हितार्थ अपने सुख एवं ऐश्वर्य की आहुति दे दी—इसका पूरा हाल इसमें पढ़िये। मूल्य पौने दो रुपया।

हिन्दू भारत का उत्कर्ष ३॥),

इब्नबतूता की भारत-यात्रा २।=), अंग्रेज़ जाति का इतिहास २॥), भारत का सरकारी ऋण =)

पता—ज्ञानमण्डल-पुस्तकभण्डार, बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी के प्रति

तुम जिस दिन से चले गये हो, उस दिन से सुकुमार !
कोई कभी नहीं उठती है प्राणों में झंकार !
अधरों पर मुसकान नहीं है,
ज्योति नहीं है आँखों में ;
प्राणों में उल्लास नहीं है,
ज़ोर नहीं है पाँखों में ;
स्वाद नहीं है जीवन में, जीवित हूँ किसी प्रकार !
तुम जिस दिन से चले गये हो, उस दिन से सुकुमार !

× × × ×

मुझे सुनायी देती है—तुम आते हो—आवाज़
तृण-गृह में नर्मदा किनारे, विन्ध्याचल से आज !
कन्द मूल फल जैसे-तैसे,
यहाँ-वहाँ से कुछ सञ्चित कर ;
गोधूली-वेला में सुन्दर,
एक दीप दरवाज़े पर धर ;
थाली में तैयार आरती का करता हूँ साज !
मुझे सुनायी देती है—तुम आते हो—आवाज़ !

× × × ×

अवधि बीत जाती है, कहाँ बिलम जाते हो, आह !
प्यारे ! मैं अनिमेष देखता रह जाता हूँ राह !
दबे पाँव आकर धीरे से,
कोई दीप बुझा जाता है ;
सच कहता हूँ, हर्ष हृदय का—
आँसू बनकर बह जाता है ;
क्यों, पूरी क्या कभी न होगी मधुर मिलन की चाह !
अवधि बीत जाती है, कहाँ बिलम जाते हो, आह !

× × × ×

तिमिर-ज्योति में, किसी दिशा से, आओ प्राण-पुनीत !
खिले और इस वर्तमान में वह स्वर्गीय अतीत !
उतर सरोवर के प्राङ्गण में,
नक्षत्रों के बिम्ब अहा !
लहरों के अनुराग-रङ्ग में,
देखो, कैसे रहे नहा ।
करें न क्यों फिर हम भी सुख से अपना समय व्यतीत !
तिमिरि-ज्योति में, किसी दिशा से, आओ प्राण-पुनीत !

[श्री० विनयकुमार]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टालसटॉय और ललित-कला

[पं० अवध उपाध्याय]

(१)

आजकल कला का बाज़ार गर्म है। जिसे देखो वही कला पर कुछ-न-कुछ लिख मारता है। जिसे देखो वही कला के नाम पर अत्याचार कर रहा है, और कभी-कभी अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर बैठता है। प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में लिखा रहता है—'इस कहानी में कला नहीं है'; 'कला की दृष्टि से यह पुस्तक अच्छी नहीं है'; 'पुस्तक अच्छी है, परंतु इसमें कला का अभाव है।' आदि-आदि।

इस संबंध में इस बात का उल्लेख करने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि कला का यह रोग पाश्चात्य देश से हमारे यहाँ आया है। इसमें भी लेशमात्र संदेह नहीं कि ललित-कला के संबंध में प्रत्येक देश में विचार किया गया है। पाश्चात्य देशों में भी कला पर अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं और कला की अच्छी विवेचना करने का प्रयत्न किया गया है। परंतु पाश्चात्य देश के दार्शनिकों के विचार इस संबंध में भिन्न-भिन्न हैं। इतना ही नहीं, इनके विचार परिपक्व भी नहीं मालूम होते। और, यह बात विश्वास के साथ तथा गंभीरतापूर्वक कही जा सकती है कि भारत में ललित-कला के संबंध में जो विवेचना की गयी है, उसके सामने पाश्चात्य देश के दार्शनिकों के विचार लड़कों के खेल के समान प्रतीत होते हैं। जो गंभीरता, जो पूर्णता और जो परिपक्वता भारतीय पुस्तकों में पायी जाती है, उसका पाश्चात्य देशों में अस्तित्व ही नहीं मिलता। इस कथन का समर्थन एक उदाहरण देकर करूँगा। ललित-कला के संबंध में रूस-देश के प्रसिद्ध और प्रकांड विद्वान् टालसटॉय ने भी विचार किया है। उसने इस संबंध में कई लेख लिखे हैं। कई स्थानों पर व्याख्यान भी दिये हैं और एक पुस्तक भी लिखा है। जिस समय टालसटॉय की ललित-कला-संबंधी पुस्तक का अनुवाद अँगरेज़ी में निकला, उस समय उनकी प्रशंसा से सारा पाश्चात्य जगत् गूँज उठा और सब स्थानों पर उसका प्रचार होने लगा। किसी समालोचक ने लिखा कि ललित-कला-संबंधी टालसटॉय के विचार उसके अन्य दार्शनिक विचारों से अधिक प्रौढ़ और गंभीर हैं, तो किसी ने लिखा कि उसने कला-संबंधी विषयों की बड़ी ही सुंदर तथा मार्मिक विवेचना की है। किसी-किसी ने तो यहाँ तक लिख डाला कि टालसटॉय ने कला के संबंध में अंतिम निर्णय कर दिया है और कई वाद-विवादों का अंत कर दिया है। टालसटॉय ने 'कला पर' (On art)-नामक एक छोटा-सा लेख लिखा है। उस लेख की भी पाश्चात्य देशों में बड़ी प्रशंसा है। इस लेख में मैं इस बात को सिद्ध करूँगा कि टालसटॉय का वह लेख बहुत भद्दा, अपूर्ण तथा भ्रामक है। यदि इसी बात को कोई यहाँ का विद्वान् लिखता तो उसकी धज्जियाँ उड़ायी जातीं, उसके विरुद्ध प्रचार किया जाता और गाली की बौछारों से उसका मस्तक भिगो दिया जाता। परंतु जब उसी बात को कोई दूसरे देश का आदमी लिखता है, तो हम लोग कभी-कभी विना विचार किये ही उसे ठीक मान लेते हैं और मीन-मेष निकालना अपराध समझा जाता है। हम लोगों के मस्तिष्क की यह दासता बहुत ही अधिक हानिकारक है।

सबसे पहले मैं टालसटॉय के 'कला पर' (On art) वाले लेख का सारांश दूँगा, तदनंतर उसकी आलोचना की जायगी।

टालसटॉय के कथन का सारांश यह है—

हम लोगों के जीवन में बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो निरर्थक तथा नीरस हैं, तथापि हम उन्हें गौरव की दृष्टि से देखते हैं। इनमें कुछ तो ऐसी हैं जिनका बहिष्कार करना चाहिए, परंतु कुछ लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। वास्तव में हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। फूलों, घोड़ों तथा प्राकृतिक दृश्यों का चित्र खींचना इसी श्रेणी के पदार्थ हैं। दुर्बल कहानियाँ तथा बुरी-बुरी कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी श्रेणी में आती हैं। यदि इन सब चीज़ों में कला का अस्तित्व भी पाया जाय, तो भी इन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनमें कला का अस्तित्व ही नहीं पाया जाता, तथापि वे कला के नाम पर ही चलती तथा बिकती हैं। अतएव सबसे पहले इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि किन-किन बातों को कला कहना चाहिए और किन-किन बातों को नहीं। प्रायः यह देखा जाता है कि हज़ारों लड़कों को हठात् संगीत सिखाया जाता है; सैकड़ों चित्र सीखते हैं और कुछ नृत्य सीखते हैं। कुछ लोग कविता करना भी साखते हैं। इस संबंध में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या ये कला सीख रहे हैं? क्या इनके संबंध में यह कहा जा सकता है कि ये संगीतकला, चित्रकला, नृत्यकला और काव्यकला सीख रहे हैं? यदि नहीं, तो क्यों? निरर्थक व्यापारों, अश्लील बातों तथा व्यापारिक कार्यों और कला की कृतियों में क्या भेद है।

(२)

इस संबंध में कुछ लोगों का कहना है कि कला में सबसे आवश्यक बात 'विषय' है। कला में जिन बातों का ध्यान रक्खा जाता है, उनमें विषय की महानता ही प्रथम है—अर्थात् जो विषय प्रसिद्ध हो, जिसमें संसार का कल्याण हो, जो नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ हो, उसी का वर्णन सच्ची कला में होना चाहिए। उन लोगों के अनुसार कलाविद् धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक सत्य का ही, कला के उपकरणों की सहायता से, वर्णन करता है।

कुछ दूसरे लोग हैं, जिनका यह सिद्धांत है, कि कला की जननी सुंदरता के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकती। ये ही लोग कहते हैं कि 'कला कला के लिए' है। कला के संबंध में ये और कुछ नहीं देखना चाहते। ये केवल कला में सुन्दरता ही सुन्दरता देखना चाहते हैं। इन लोगों का कथन है कि सुंदरता स्वाभाविक रूप से सुखद होती है, अतएव हमें कला में सुंदरता के सिवा और कुछ खोजना ही नहीं चाहिए।

तीसरे वर्ग के भी कुछ लोग हैं, जो कला में केवल सत्य देखना चाहते हैं। इनका विचार है कि सत्य का वास्तविक प्रकटीकरण ही कला है। इनका कथन है कि कला में जीवन-संबंधी बातों का उसी प्रकार वर्णन करना चाहिए जैसा वास्तविक जीवन में प्रायः पाया जाता है। कलाविद् जो कुछ देखता है, जो कुछ सुनता है, जो कुछ अनुभव करता है, उसको उसी प्रकार प्रकट करना सच्ची कला है।

इस प्रकार स्पष्ट ही है कि ये तीनों प्रकार के सिद्धांत एक दूसरे का खंडन करते हैं, इसलिए ये प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते। इतना ही नहीं, इन तीनों में से किसी की भी सहायता से हम कोई ऐसी रेखा नहीं खींच सकते, जो कला को दूसरे पदार्थों से पृथक् कर सके। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें उक्त सिद्धांतों में से किसी एक का अस्तित्व भी पाया जाय, तथापि उनसे जन-साधारण की हानि हो। अतएव इनमें कला का अस्तित्व स्वीकार करना उचित नहीं।

श्रेष्ठ विषयों का वर्णन भी इस प्रकार से किया जा सकता है जिससे समाज की हानि हो। इसी प्रकार सुंदरता से भी हानि की संभावना है और कुछ सामाजिक सत्य का उल्लेख भी हानिप्रद हो सकता है। अतएव उक्त तीनों वर्ग के सिद्धांतों में से कोई भी कला की रूप-रेखा निश्चयात्मक रूप से नहीं खींच सकता। कला के भीतर तो केवल वे ही बातें आ सकती हैं जिनसे मनुष्य-मात्र का कल्याण हो। ऊपर की तीनों परिभाषाएँ ऐसी हैं, जिनके भीतर हानिकारक पदार्थ भी आ सकते हैं। अतएव ये तीनों परिभाषाएँ ठीक नहीं।

(३)

स्थूल रूप से कला को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—सच्ची कला और झूठी कला। सच्ची कला समाज के लिए आवश्यक, प्रसिद्ध, आदरणीय और लाभप्रद है। झूठी कला समाज के लिए अनावश्यक, अप्रसिद्ध निंदनीय और हानिकारक है। अब इस संबंध में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सच्ची कला और झूठी कला में भेद क्या है? इनके मध्य कौन-सी रेखा खींची जा सकती है जो इन्हें पृथक्-पृथक् कर दे?

कला और विज्ञान दोनों के संबंध में यह बात कही जा सकती है कि दोनों में कुछ प्राचीन बातें रहती हैं और कुछ बिलकुल नवीन। जो प्राचीन बातें रहती हैं उन्हें हम लोग बड़ों से सीखते और छोटों को सिखाते हैं। वास्तव में प्राचीन विषय पठन-पाठन की वस्तु हैं। इन प्राचीन बातों को हम सच्ची कला नहीं कह सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्ची कला तो वह है जो बिलकुल नवीन है, जो प्राचीन नहीं है और जिसकी स्वयं कलाविद् सृष्टि करता है।

अध्यापक पूर्वार्जित ज्ञान अपने शिष्यों को सिखाता है, और इसमें संदेह नहीं कि शिष्य नयी बात सीखते भी हैं, तथापि वह ज्ञान बिलकुल नया नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अध्यापक भी उसे परंपरागत सिद्धांत के अनुसार प्राप्त करता है, वह उसकी सृष्टि नहीं करता। इसीलिए अध्यापक कलाविद् नहीं कहा जा सकता। कलाविद् तो केवल वही कहा जा सकता है, जो अपने हृदय तथा मस्तिष्क से बिलकुल नयी बात पैदा कर दे, नयी सृष्टि खड़ी कर दे।

कलागत सृष्टि और वैज्ञानिक सृष्टि में कोई विशेष अंतर नहीं है। दोनों प्रकार की सृष्टि में कलाविद् अपने उपकरणों की सहायता से हम लोगों को उन सब बातों का स्पष्ट और प्रत्यक्ष अनुभव तथा ज्ञान करा देता है, जो पहले अस्पष्ट तथा अप्रत्यक्ष रहती हैं।

सब कलाविद् एक ही प्रकार से सृष्टि करते हैं; क्योंकि सृष्टि करने के नियम सब मनुष्यों के लिए एक ही प्रकार के हैं। सब प्रकार के कलाविदों के सृष्टि करने का क्रम यों है—

पहलेपहल मनुष्य बिलकुल ही एक नयी चीज़ का अनुभव करता है। वह भली भाँति जानता है कि उसने उस बात को पहले किसी से सुना नहीं है और कहीं पुस्तक में पढ़ा भी नहीं है। इस नये अनुभव का उसके ऊपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है और साधारण बातचीत में वह अपने मित्रों से इस नये अनुभव के संबंध में बातचीत करता है। जब वह देखता है कि दूसरे लोग इस नये अनुभव के बारे में कुछ नहीं जानते तो उसे पहले तो बड़ा आश्चर्य होता है, परंतु धीरे-धीरे उसे विश्वास हो जाता है कि इस नये अनुभव को उसे प्रकट करना ही चाहिए। तब वह दूसरे प्रकार से इस नये अनुभव को प्रकट करता है। इस पर भी जब लोग इस नये अनुभव को नहीं समझते तथा उसका अनुभव नहीं करते, तो उसे बड़ा दुःख होता है और वह अपने मन में सोचने लगता है कि संभव है, मेरा अनुभव ग़लत हो—अथवा संभव है, यह मेरा भ्रम हो।

तदनन्तर वह अपनी सारी शक्ति उस प्रश्न के हल करने में लगा देता है और तब उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि जो कुछ उसने पहले समझा था वह सही है, जिसका उसने पहले अनुभव किया था, वह असत्य नहीं है; उसका आविष्कार बिलकुल सही है। अब वह पूर्ण रूप से अपने आविष्कार को दूसरों पर प्रकट करता है और शीघ्र ही दूसरे भी उसे समझने लगते हैं। एक प्रकार से कलाविद् के ज्ञान तथा अनुभव की परिधि बढ़ जाती है और उस नयी बात की सृष्टि वह करता है जिसे पहले किसी ने अनुभव नहीं किया था। यही सच्चे कलाविद् का काम है, यही उसकी सृष्टि है। कलाविद् कला-संबंधी सृष्टि की सहायता से अपने इस आविष्कार का प्रचार करता है और दूसरे लोग भी इसे ग्रहण करते हैं तथा अन्य लोगों के हृदय में भी वह उन्हीं भावों को उत्पन्न कर देता है जिनका स्वयं उसके हृदय ने अनुभव किया था। पहले लोग जिन भावों का अनुभव नहीं करते थे तथा जिन बातों को समझते भी नहीं थे, अब स्पष्ट रूप से समझने तथा अनुभव करने लगते हैं। जब ऐसा होने लगे, तभी कलाविद् की सृष्टि सफल समझी जाती है, तभी उसकी कृति कला के पद को प्राप्त करती है। जब कलाविद् और पाठक तथा अन्य ग्रहण करने-वाले मनुष्यों के हृदय में संपर्क हो जाय, जब कलाविद् के अनुभव को ग्रहण करनेवाला स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने लगे, तब यह बात कही जा सकती है कि वास्तव में कलाविद् कलाविद् है, अन्यथा नहीं। कला की यही एक भारी विशेषता है। इसी विशेषता से कला अन्य प्रकार की वस्तुओं से पृथक् की जा सकती है।

(४)

उक्त कथन के अनुसार जब कोई मनुष्य अपने नये अनुभव तथा ज्ञान को दूसरों के पास पहुँचाता है, तब वह कलाविद् कहलाता है और उसकी कृति कला की वस्तु कही जाती है। परन्तु अनुभव का केवल नया होना पर्याप्त नहीं है; क्योंकि बुराई भी नयी हो सकती है। कला को संसार में लोग बहुत गौरव की वस्तु समझते हैं, अतएव यह भी आवश्यक है कि उससे संसार की भलाई हो और मनुष्यों की उन्नति हो। इसलिए केवल नवीनता ही कला होने के लिए आवश्यक नहीं है। कला के लिए वास्तव में निम्नलिखित तीन बातें आवश्यक हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कृति का विषय नवीन हो और समाज के लिए आवश्यक हो।

(२) वह नवीन विषय इस प्रकार से व्यक्त किया गया हो कि सब लोग उसे समझ लें।

(३) कलाविद् ने अन्तःप्रेरणा से सृष्टि की हो, बाहरी लोभ की दृष्टि से नहीं।

कला की वस्तु होने के लिए उक्त तीनों बातों में से प्रत्येक का होना आवश्यक है। यदि उक्त तीन बातों में से कोई एक न हो, तो उसे हम लोग कला के भीतर नहीं मान सकते। यदि किसी कृति में नवीनता न हो तो उसे हम लोग कला नहीं कह सकते। इसी प्रकार यदि कोई ऐसी कृति हो जो अनावश्यक तथा गौरव-हीन हो तो उसे भी हम कला नहीं कह सकते, भले ही वह अन्तःप्रेरणा से लिखी गयी हो और भले ही उस का विषय भी भली भाँति व्यक्त किया गया हो। इसी प्रकार यदि कोई कृति इस तरह से व्यक्त की गयी हो कि तुरन्त समझ में न आवे तो उसे भी हम कला नहीं कह सकते, भले ही ग्रंथकर्ता ने उसे अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर लिखा हो। इसी प्रकार यदि ग्रंथकर्ता ने लाभ की दृष्टि से अथवा और किसी बाहरी उद्देश्य से लिखा हो तो उसे भी हम लोग कला की वस्तु नहीं कह सकते, चाहे उसका विषय कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो। इन सब कथनों का संक्षेप में यही अभिप्राय है कि हम लोग किसी कृति को तभी कला की पदवी दे सकते हैं, जब उसमें कोई नवीनता हो और नवीनता के साथ ही साथ निम्नलिखित तीन बातें हों—

(१) विषय (Content) (२) रूप-रेखा (Form) (३) अन्तःप्रेरणा (Sincerity)

कला की वस्तु होने के लिए यह आवश्यक है कि उसका विषय नया हो, परन्तु साथ ही साथ आवश्यक भी हो और वह वस्तु ऐसी हो जिसका प्रचार समाज में हितकर हो। दूसरी बात यह है कि वह इस प्रकार से व्यक्त की गयी हो कि सब लोग सुगमता से उसे समझ जायँ। तीसरी बात यह है कि उसकी उत्पत्ति, प्रेरणा के अन्तःकरण के किसी संदेह को दूर करने के प्रयत्न से हुई हो। यदि ये तीन बातें थोड़ी मात्रा में भी किसी कृति में पायी जायँ, तो उसे कला कहना चाहिए। यदि किसी कृति में इन तीनों में से किसी एक का अस्तित्व न पाया जाय, तो उसे कला की पदवी नहीं दी जा सकती।

पूर्णकला की वस्तु उसे कहेंगे, जिसमें विषय प्रसिद्ध हो और जो सारे समाज के लिए गौरव की वस्तु हो। वह वस्तु नैतिक दृष्टि से भी अच्छी होगी और व्यक्त भी ऐसे ढंग से की गयी होगी कि सबकी समझ में शीघ्रता से आ जाय, अतएव उसे सुन्दर भी कह सकते हैं। प्रणेता की अन्तःप्रेरणा से भी वह उत्पन्न हुई होगी, अतएव उसे सत्य भी कह सकते हैं। जिन कृतियों में ये सब बातें न पायी जाती हों, उन्हें अपूर्ण कला की वस्तु कह सकते हैं। इत्यादि-इत्यादि।"

अभी तक हम टाल्सटॉय के लेख का सारांश देने का प्रयत्न करते रहे हैं। इतना लिखने के बाद भी टाल्सटॉय आगे बहुत कुछ और लिखता चला गया है यदि उन सब बातों का सारांश यहाँ दिया जाय तो लेख का आकार बढ़ जायगा। यहाँ पर इतना नमूने के लिए दे दिया गया है।

टाल्सटॉय के लेख का विश्लेषण करने से पता चलता है कि कला के संबंध में उसकी धारणा तथा उसके विचार ठीक नहीं हैं। पहले तो वह बार-बार एक ही बात को दुहराता है और दुहराते समय पहली बात को वह भूल जाता है एवं कुछ और का और ही कह डालता है। टाल्सटॉय ने कला की परिभाषा देने का भगीरथ प्रयत्न किया है, परन्तु इस प्रयत्न में उसे बिलकुल सफलता नहीं मिली है। ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह भी पता चलता है कि उसने इसके संबंध में बिना अच्छी तरह विचार किये ही इस लेख को लिख डाला; क्योंकि उसके लेख में पाश्चात्य देशों के कुछ प्रसिद्ध दार्शनिकों की गंभीरता भी नहीं पायी जाती। टाल्सटॉय ने यहाँ वहाँ पढ़ लिया था कि कुछ लोग सुन्दरता, कुछ दार्शनिक सत्य और कुछ शिव (कल्याण) को कला के लिए आवश्यक समझते हैं। उसने किसी एक स्थल पर यह पढ़ा था कि कला में सुन्दरता का होना परमावश्यक है। दूसरी जगह उसने यह पढ़ा कि कुछ विचारवान् पुरुष सत्य को ही कला का आधार मानते हैं। तीसरी जगह उसने यह भी पढ़ा कि वही कला सर्वश्रेष्ठ है, जिससे मनुष्य-मात्र का कल्याण हो। अब टाल्सटॉय ने देखा कि दार्शनिक लोगों का कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संबंध में बड़ा मतभेद है। बस, उसने मिल के सिद्धान्त का उपयोग कर दिया। मिल का सिद्धान्त है कि अधिक से अधिक मनुष्यों का अधिक से अधिक कल्याण ही प्रत्येक मनुष्य का ध्येय होना चाहिए। टाल्सटॉय ने ज़रा भी इस संबंध में स्वतंत्रतापूर्वक विचार नहीं किया। उसने तनिक भी नहीं सोचा कि दार्शनिक दृष्टि से वह कितने गहरे गड्ढे में गिर रहा है। उसने सोचा कि यदि मैं इन तीन वर्ग के दार्शनिकों में से प्रत्येक का कुछ अंश ले लूँ, तो मेरा सिद्धान्त संसार के अधिक-से-अधिक दार्शनिकों से मिल जायगा और मेरे सिद्धान्त के खण्डन करनेवाले बहुत कम रह जायँगे। परन्तु उसने इस ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया कि ऐसा करना बिलकुल न्यायसंगत नहीं है। इस संबंध में मुझे अपने यहाँ के काव्य की परिभाषा के संबंध में एक बात स्मरण आती है इसमें संदेह नहीं कि वह काव्य की परिभाषा के संबंध में है, परन्तु है वह भी ऐसी ही ग़लत जैसी टाल्सटॉय की कला की परिभाषा। वह यह है—वामन, गुण और अलंकार सहित शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं और रीति को काव्य की आत्मा। काव्यप्रकाशकार दोषरहित और गुणसहित शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं और रस को काव्य की आत्मा। वाग्भट ने देखा कि इन दोनों सज्जनों में मतभेद है, अतएव उन्होंने दोनों की प्रत्येक बात ले ली और काव्य की परिभाषा यों लिख डाली—'गुण, अलंकार, रीति तथा रससहित और दोषरहित शब्द-अर्थ को काव्य कहते हैं'। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाग्भट ने भी वही ग़लती की थी, जो टाल्सटॉय ने की है। जिन दार्शनिकों ने सत्य, शिव और सुन्दर में से किसी एक को कला के लिए आवश्यक माना है, उन लोगों ने इन शब्दों का एक विशेष अर्थ में प्रयोग किया है। परन्तु टाल्सटॉय की परिभाषा में ये शब्द कुछ विचित्र अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। इसीलिए यह बात निःसंकोच रूप से कही जा सकती है कि टाल्सटॉय की परिभाषा कोई परिभाषा नहीं रह जाती है। कुछ वर्षों के बाद टाल्सटॉय भी इस बात को समझ गया और तब उसने कला की एक दूसरी ही परिभाषा दी। कहना नहीं होगा कि यह परिभाषा पहली परिभाषा से भी रही, निरर्थक तथा व्यर्थ है। इन सब परिभाषाओं का विवरण देना इस छोटे-से लेख में असंभव है। परन्तु यह बात भली भाँति कही जा सकती है कि इन दोनों परिभाषाओं में कुछ भी संबंध नहीं है। जिन लोगों ने टाल्सटॉय के उक्त लेख के सारांश को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा, उन्होंने देखा होगा कि एक स्थान पर वह कला और विज्ञान की नवीनता को एक ही समझता है। इससे भयंकर भूल और क्या हो सकती है! इस बात को सब लोग मुक्तकण्ठ से स्वीकार करने लगे हैं कि कला और विज्ञान में बहुत अन्तर है; दोनों दो पृथक् पदार्थ हैं और दोनों की नवीनता में बड़ा अन्तर है। इस भेद के न समझने के कारण से भी टाल्सटॉय ने कला की परिभाषा में भूल की है।

टाल्सटॉय के उक्त सारांश को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलेगा कि उसमें और भी बहुत असंगत बातें हैं। उससे यह भी पता चलता है कि टाल्सटॉय ने कला के मर्म को बिलकुल नहीं समझा और उसने पाश्चात्य देशों के दार्शनिक सिद्धान्तों का भी अच्छा अध्ययन नहीं किया था। इस संबंध में कैंट, एग्बर क्रोम्बी तथा क्रोसे आदि अनेक विद्वानों ने अच्छी विवेचना की है। परन्तु कला के संबंध में भारत में जो गवेषणापूर्ण विवेचना की गयी है, उसके सामने पाश्चात्य देश की विवेचना नहीं टिक सकती। भारतीय विवेचना के सामने पाश्चात्य देश की विवेचना लड़कों का खेल है।

१९३४ का नया पुरस्कार
हज़ारों पर परीक्षित
'सुज़ाक नाशक'

पेशाब के भयंकर दर्द को एक ही ख़ुराक से बन्द करता है। सुज़ाक की सख़्त जलन, पीब, घाव आदि को समूल नष्ट कर सदा के लिये स्वस्थ बनाता है। क़ीमत दवाई एक सप्ताह ३), डाकख़र्च ।=)

मैनेजर—भारत जीवन फार्मेसी;
रावलपिण्डी (पञ्जाब)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय

[श्रीमती उषादेवी मित्रा]

(१)

प्रशस्त प्रांगण बिजली की लड़ियों से जगमगा रहा था। लटकते हुए पुष्पहारों की सुगंध दूर-दूर तक फैल रही थी। क़ीमती असबाब और मूल्यवान् साड़ी ब्लाउज़ आदि, चाँदी के बर्तन, चाँदी के चा के सेट, बड़े से परात में रक्खे हीरे मोती नीलम के ज़ेवर, सोने का जड़ाऊ पंखा वग़ैरह वही पुराने दिनों की नानी-दादी की कही कहानी—पातालपुरी का सोने का महल, हीरे की खाट तथा सुंदरी-शिरोमणि राजकन्या—का ही स्मरण दिला रहे थे।

धनकुबेर ज़मींदार कमलाकांत की इकलौती कन्या के विवाह में दूर-दूर से लोग आये हुए थे। हीरे-मोती की वर्षा से ग़रीब घर के पिता के नेत्रों में अनोखी राजकन्या का वही स्वप्नभरा राजप्रासाद परिस्फुट हो उठा।

फूल और इतर की मीठी उन्मद ख़ुशबू ने असीमचंद्र को मतवाला बना दिया।

अधखुले अलसाये नेत्रों से उसने सामने बैठी वधू की ओर देखा। उसकी बचपन की सुनी कहानी क्या आज वास्तविक रूप में परिणत होनेवाली है? विवाह में उसे कलकत्ते का प्रासाद-तुल्य मकान व क़ीमती असबाब मिला है। श्वसुर उसे विलायत बैरिस्टरी पढ़ने भेजेंगे। श्वसुर का कहना है कि उनकी सारी सम्पत्ति की स्वामिनी लड़की ही बनेगी। सास नहीं थी, अतएव भविष्य में वही अतुल ऐश्वर्य का मालिक बनेगा।

कमलाकांत ने पुकारा—"दौलत, परीरानी को पंखा करो।"

परी—परीरानी!—कैसा मधुर नाम है।

अच्छा, असीम उसे क्या कहकर पुकारेगा—केवल परी या रानी?

मन-ही-मन कई बार नाम लेकर व्याकुल आग्रह से असीम वधू की ओर देखने लगा। किंतु सुनहले तारों की साड़ी के आँचल से ढका मुँह ज़रा-सा भी न दिखा।

सहसा उसकी दृष्टि परी के हाथ पर पड़ी। भय से वह सिहर उठा। सफ़ेद मोती की चूड़ी के बीच में वह क्या दिख रहा है? वधू का रंग—ऐसा काला!

विरक्ति और क्रोध से असीम का मुँह लाल हो गया। वह अपने आप हँस पड़ा। लड़की के सुन्दर हाथों में श्वसुर ने शायद काली चूड़ियाँ पहना दी होंगी। वह बेचारे कैसे जानते कि दामाद काली वस्तु से इतनी घृणा करता है। उसके पिता जान-बूझकर काली-कलूटी लड़की से शादी नहीं कर सकते। यह बात जैसी असम्भव है, वैसी ही हास्यप्रद भी है। पिता जानते हैं—वह काली किनारी की धोती तक नहीं पहनता। एक काली बिल्ली जिस दिन उसके घर से मछली ले भागी थी—उसके बाद कोई महीने-भर तक उसने मछली नहीं छुई। ग़रीब होने पर भी माता-पिता काली वस्तु उससे दूर ही रखते थे; गृहस्थी में अभाव होते हुए भी उसके लिए कभी किसी बात की कमी नहीं होने देते थे। उसे स्मरण आया, एम्० ए० की परीक्षा देते समय, बुख़ार की हालत में भी मा ने साबुन से चादर-गिलाफ़ धो दिया था। और...

उसकी चिन्ता में बाधा पड़ी, शुभ दृष्टि का समय निकट आ रहा था। आशा और आनन्द से असीम ने आँखें उठायीं, उसका काल्पनिक जगत् नष्ट हो गया। किसी तरह गिरते-गिरते रुककर फिर से परी की ओर देखा।—उज्ज्वल श्याम नहीं, श्याम नहीं; काली—कोयल-सी काली। उसने और भी देखा—आयत नयन की विस्मय-भरी दृष्टि उसी के मुँह पर निबद्ध किये नववधू खड़ी है। दारुण विरक्ति से असीम ने मुँह फेर लिया।

इतना बड़ा विस्मय परीरानी के जीवन में यह पहली बार था। यही श्रीमान्, बलवान्, सर्वांगसुन्दर पुरुष उसके पति हैं? इस पुरुष की पूर्ण अधिकारिणी आज से वही है! कुमारी-जीवन की श्रेष्ठ, निर्मल, चुनी हुई पुष्पराशि अर्घ्यस्वरूप पति के चरणों में परी ने निःशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अर्पित कर दी । स्वामी ! स्वामी ! ऐसे भले—इतने सुन्दर हो तुम !

अचानक परी को अनुभव हुआ, वह यौवन-रूप से भरा मुँह चाहे कैसा ही सुन्दर क्यों न हो, नेत्रों की वैसी दृष्टि उस मुख में शोभा नहीं देती । वह दृष्टि—वह दृष्टि कैसी थी ?—घृणा, हाँ वह घृणा से भरी विरक्त आशाहत दृष्टि थी । परी छोटी नहीं थी । कालेज में अबाध रूप से सभी के साथ मिलाजुला करती थी । श्वसुर की समझ में तो वधू निरक्षर थी; परंतु वह जो बी० ए० की परीक्षा दे चुकी थी, यह बात तो मिथ्या न थी । श्वसुर स्त्रीशिक्षा के पक्ष में नहीं हैं, इससे पिता उनके शिक्षा-संबंधी-प्रश्न को बचाते हुए कुछ और ही कह गये थे ।

एक पल में नारी के नेत्रों द्वारा पुरुष की वह दृष्टि पकड़ ली गयी । उसे समझने में देर न लगी कि उसका काला चेहरा ही पति को विरक्त एवं असंतुष्ट कर बैठा है । लज्जा और अपमान से परी ने सिर झुका लिया ।

वह काली है, कैसी शर्म की बात है ! किंतु वह काली है—यह क्या उसका अपराध है ? ईश्वर ने उसे रूप नहीं दिया, इसके लिए वह क्या करे । इसके सिवा सब कुछ जान-बूझकर तो उन्होंने विवाह किया है । फिर क्या श्वसुर ने अपने लड़के से छिपाया ?

शादी हो गयी, पति की गंभीरता से परीरानी मन ही मन दुःखी रहने लगी । स्त्रियाँ अपना मतामत प्रकाश करने लगीं—राजों-जैसा चेहरा होने ही से क्या ? जमाई जैसा घमंडी, वैसा ही गँवार भी तो है । ज़मींदार ने लड़की को बहा दिया ।

(२)

जिस दिन खरे गृहिणी गांधारी अपने इकतल्ले अँधियारे घर को छोड़कर समधी के दिये फलफूल के बगीचे-वाले दुमंज़िले घर में उठ आयी, उस दिन स्थूलदेहा गांधारी चार-पाँच घंटे बच्चों की तरह दौड़-धूप करके भी कमरों, दालानों की संख्या निश्चित नहीं कर सकी । जितने बार एक से दूसरे कमरे में गयी, उतने ही बार उसे अनुभव हुआ कि इन कमरों को शायद उसने नहीं गिना । कोई कमरा भी असबाब से ख़ाली नहीं था । गांधारी बड़े घर की लड़की थी, पढ़ी-लिखी भी थी । फिर भी ऐसी मूल्यवान् वस्तुएँ उसने पहलेपहल देखी थीं । दौड़-धूप करके वह हाँफकर बैठ गयी । पति पुकारने लगे—"कहाँ गयीं ? नौकरों से बातचीत कर लो ।'

"यहीं चले आओ, मुझसे अब उठा नहीं जाता ।" घर में घुसकर वह धीरे से बोले—"सारे दिन मिहनत करके भी तो नहीं थकती थीं, बड़े घर में आते ही अमीरी ने घेर लिया ?"

"वे केवल दो कमरे थे, एक ज़रा-सी दालान, वैसा ही नहाने का घर, बस इतना ही तो था । और यह है बेटे का राजप्रासाद, चलते-चलते थक गयी, काम की कौन कहे"—मुस्कराती हुई गांधारी बोली ।

"सबेरे से तुम बैठी ही हो ? रोटी नहीं बनायी !'—आश्चर्य के साथ उन्होंने पूछा ।

"कहाँ बनायी ! अभी तो मैंने सब कमरे भी नहीं देखे । अच्छा, उस अलमारी में आइना क्यों लगा है ?"

क्षुधा से विकल होते हुए भी वह पत्नी के प्रश्न पर हँस पड़े । अहा, अभागी नारी ! दरिद्र के घर कुछ भी न देख पायी थी । "उसमें कपड़े रहते हैं । आइने के सामने कपड़े पहनते हैं । फिर दूकान से क्या मिठाई मँगवा लें ?"

"हाँ । नहीं, रहने दो । मुझे तो उठना ही पड़ेगा । कल नौ बजे दफ़्तर जाओगे, सब ठीक कर रक्खूँ ।" वह उठ पड़ी ।

"क्या अब भी नौकरी करूँगा ?"—पत्नी को रोककर खरे महाशय ने कहा ।

"नहीं करोगे ?"

"नहीं, नौकरी छोड़ चुका । समधी ने एक गाँव असीम के नाम पर कर दिया है । नक़द रुपया शादी के दिन देंगे ; पीछे तो सभी कुछ दुलहिन का होगा ।"

"इतना देंगे ! किंतु क्यों ? असीम के ऐसे लड़के तो सैकड़ों पड़े हैं ।" गांधारी चकित हो रही थी ।

"तुम बुद्धू ही रहीं । उन्हें लड़का पसंद है । किसकी आँख में कौन अच्छा लगता है—भला यह भी कोई कह सकता है ? फिर लड़की भी वही एक ही है । रुपया सब उसी का है । ग़रीब का लड़का स्त्री को कभी कष्ट नहीं देगा । पति पर लड़की का ज़ोर भी रहेगा, यही सब सोच-विचार कर दिया होगा ।"

"यह कैसी बात ? फिर हमें बहू के सामने हाथ जोड़े रहना पड़ेगा, मैं वहाँ शादी न करूँगी । लड़का सुखी न होगा । असीम मूर्ख नहीं है, कुछ कर ही लेगा ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कल शादी है; आज कहीं बंद हो सकती है? जानतीं नहीं, कितने बी० ए० एम्० ए० बेकार बैठे हैं। अपनी आँखों से देख चुका हूँ। लड़की चंचल नहीं है।" गांधारी शांत हुई।

"बड़े घर की लड़की को तो धीर शांत होना ही चाहिए। कहाँ तक पढ़ी है?"

"बस, वही न पाओगी। जानती ही हो, अँगरेज़ी पढ़ना मैं पसंद नहीं करता, विशेषतः आजकल की शिक्षा को। समधी से मैं पहले ही पूछ चुका था।"

"सो मैं भली भाँति जानती हूँ। मुझे एक किताब तक छूने नहीं देते थे। पर लड़के की बात दूसरी है। उसका मतामत जानते हुए भी ऐसा क्यों किया? मूर्ख स्त्री वह पसंद नहीं करेगा। ऐसा क्यों किया?"

"क्यों बकती हो? बहुत सोच-समझकर काम किया है। पढ़ी हुई लड़की कहाँ ग़रीब पति को मानती?"

"पढ़ी-लिखी लड़की ख़राब नहीं होती। शिक्षा ही वास्तव में नारी को उज्ज्वल, सुंदर और उन्नत करती है। अँगरेज़ी पढ़ने से ही लड़कियाँ बह नहीं जातीं। तुम्हारे मत के विरुद्ध बात मैं कभी नहीं करती, किंतु वह थी व्यक्तिगत मेरी ही बात। लड़के की बात निराली है, उसकी इच्छा-अनिच्छा देखना भी ज़रूरी है। मैं फिर भी कहूँगी, तुमने यह ख़राब किया।"

"बस, यही तुममें ऐब है। दो किताबें पढ़कर पंडित बनना चाहती हो! केवल तर्क। इसी से तो पढ़ाना पसंद नहीं करता।"

"किंतु थोड़ा बहुत मैं भी पढ़ी थी, यह तो झूठ नहीं है। फिर कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध काम किया है, या मेरे कारण तुम्हें किसी तरह की दिक़्क़त पड़ी?"

विरक्त स्वर से खरे महाशय बोले—"तुमसे इस लड़की की तुलना नहीं हो सकती। ग़रीब की लड़की..." परंतु गांधारी के अश्रुपूर्ण नेत्रों की ओर दृष्टि पड़ते ही वह आगे और न बोल सके।

"कैसा मुश्किल है, रोती क्यों हो? बच्चे का अमंगल न चेतो। उठो, नौकरों को काम समझा दो। अभी सब सामान आ जायगा। तुम्हारी मौसी, कदम की बुआ, बिंद्रा की मा, सब आती ही होंगी। महाराज को रोटी बनाने को कह दो। और भी दो महाराज सवेरे आवेंगे।"

आँसू पोंछकर गांधारी उठ पड़ी।

(३)

स्त्रियों के मंगलाचार के लिए भीतर संगमर्मर के दालान पर वरवधू खड़े हुए।

गांधारी की मौसी भीड़ हटाती हुई ऊपर चढ़ी—"बेटी गांधारी, जल्दी चल, दुलहिन खड़ी है; द्वारचार कब करेगी?"

गांधारी नये गहने पहन रही थी, शीघ्रता से वह एक ही हाथ में बाज़ूबंद पहने उतर आयी। वधू की आरती करते समय उसके हाथ ऊपर ही रह गये। केवल दो ही दिन में आदमी इस तरह बदल सकता है! असीम का विवर्ण, उदास मुँह देखकर वह विचलित हुई। गांधारी वधू की ओर लौटी। व्यर्थ लोभ में पति यह क्या कर बैठे हैं। रुपये के लिए आदमी इकलौते पुत्र का ऐसा सर्वनाश कर सकता है। आँखों से ऐसा न देखती तो शायद ही विश्वास करती।

"क्या करती हो बहन। नियम दस्तूर पूरा करो। लड़के और बहू को घर में लो।"—एक बोली।

"ऐसी काली बहू को घर में न लेना ही ठीक है।"—दूसरी बोल उठी।

चारों ओर के कठोर मंतव्य परी के कानों में गरल उड़ेलने लगे। लज्जा और अपमान से लाल होकर वह सुन रही थी—"आग लगे उस रुपये में। अर्थ लोभ में हीरे के टुकड़े को गोबर में फेंक दिया!"

"रंग ही काला है, पर चेहरा अच्छा है। मुँह देखने से प्यार करने को तबियत चाहती है। काले क्या दुनिया में होते नहीं"।—एक ने कहा।

"अभी रस्म पूरी कर ले, गांधारी। रंज न कर। दिगंबर की लड़की परम सुंदरी है, दो-चार महीने में उससे असीम का ब्याह करा दूँगी।"—गृहिणी के आँसू पोंछकर मौसी ने कहा।

परी के साथ पुरानी नौकरानी पद्मा आयी थी। वह सब कुछ देख-सुन रही थी, अब वह अपने को न रोक सकी। मालिक की दुलारी बेटी के अदृष्ट में ऐसा निर्यातन! वह भभक पड़ी,—"लड़की गोरी हो या काली, फिर आप देख-सुनके तो ब्याह लायी हैं। जमाई के पिता तो घुसे रहा करते थे, तब क्या आँखें बंद करके देखते थे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दूर हो चुड़ैल, कमीनी कहीं की ! हिम्मत तो देखो, लड़ने चली है। गांधारी, इसे रोक ले, नहीं तो मार बैठूँगी"—मौसी चिल्ला उठीं।

"मारोगी क्या ? मालिक से तभी कहती थी, ग़रीब के घर लड़की मत दो। बाप रे बाप, ऐसे कमीनों के घर मेरी राजरानी पड़ी !"

"तब चखाऊँ मज़ा—"

जल्दी से मौसी का हाथ पकड़कर असीम ने पुकारा—"मा।"

गृहिणी दोनों को शांत करने लगीं।

वधू पसीने-पसीने हो गयी। वह काँप रही थी।

खरे महाशय अंदर आये। सब सुनकर वह पन्ना को शांत करने लगे। किसी तरह रीति-रस्मों का पालन कर असीम अपने कमरे में बिस्तर पर लेट रहा। इतनी देर के बाद उसे अपनी स्थिति को सोचने का अवसर मिला। इस काली-कलूटी के साथ ज़िंदगी बिताना है। छुटकारा नहीं। जब वह काले हाथों से मुझे छुएगी, तब ?—असीम घृणा से सिहर उठा।

"बेटा असीम, जो होना था सो तो हो गया। वह सठिया गये हैं। अब की सुंदरी बहू घर में लाऊँगी"—असीम को सांत्वना देती हुई मा बोली।

"छिः मा !"

"छिः नहीं, एक के पाप का दंड दूसरा क्यों भोगेगा। मैं जानती हूँ, तू उसे कभी छू तक न सकेगा। वह भी रही आवेगी। तुझे मैं सुखी देखना चाहती हूँ, तू मेरे एक ही लड़का है।"

"एक के पाप का दण्ड दूसरा नहीं भोग सकता—यह ठीक है मा, फिर बहू क्यों सज़ा भोगेगी ? वह तो निर्दोष है। जानबूझकर पिता उसे घर लाये हैं।"

कुछ देर चुप रहने के बाद गृहिणी ने कहा—"होने दो। नारी सब कुछ सहन कर सकता है, पति के सुख के लिए वह न कर सकें, ऐसे काम दुनिया में हैं ही नहीं।"

"वे दिन अब नहीं हैं, फिर यह संभव भी नहीं।"

"है, है, अभी वह दिन है।"

"गाँव की अपढ़ स्त्रियाँ शायद वैसा कर सकें। पर—वे तो कहते थे, दुलहिन पढ़ी-लिखी नहीं है।"

इस बीसवीं शताब्दी में भी ऐसा विस्मय हो सकता है ! असीम अवाक् रह गया।

शांत-स्वभाव गांधारी पागल-सी हो रही थी। आडम्बर किये विना ही उसने पति से पूछा—"मेरा ऐसा सर्वनाश क्यों किया ?"

"कैसा ?"

"काली बहू क्यों लाये ? लड़के को सुख ही न मिला तो रुपये लेकर क्या करोगे ?"

"बस, यही बात ? सुनो, पास आ जाओ, मेरी छाती पर हाथ धर कर देखो। तुमसे कहा नहीं, मुझे बड़ा कष्ट रहता है। डाक्टर को बतलाया था, ज़्यादा दिन नहीं जिऊँगा। आज यदि मैं मर जाता तो कल क्या करतीं ? भीख ही न माँगती फिरतीं। बहू काली है—इसका रंज मत करो। चेहरा तो अच्छा है। मैं कहता हूँ, उसी से तुम्हें सुख मिलेगा। जब कहीं कुछ न दिखा, तभी मैंने ऐसा किया है।"

गांधारी का क्रोध जाता रहा। वह विकल हो उठी—"कब से तुम्हें ऐसा होता है ? तभी तुम रात को सोते नहीं। मुझसे क्यों नहीं कहा ?"

"मुफ़्त में क्यों तुम्हें कष्ट दूँ। यह रोग अच्छा होने का नहीं।"

"सब अच्छा हो जायगा, डाक्टरों को बुलवाऊँगी।"

"रुपये कहाँ पाओगी ?"

"रुपये तो मिले हैं"—धीरे-धीरे गांधारी ने कहा।

"नहीं, नहीं, छिः ! अपनी चिकित्सा के लिए रुपये नहीं लाया, गांधारी। हाँ, सुनो, बहू का प्रबंध अच्छी तरह करना।"

(४)

असीम को विलायत गये प्रायः तीन साल हो गये। परी वही तभी पिता के घर आयी थी—बीच में कुछ दिनों के लिए श्वसुर की मृत्यु के समय गयी थी, उसके बाद फिर नहीं गयी। पन्ना ने वहाँ की कोई भी बात अपने क्रोधी मालिक से नहीं कही। पिता दुःखी होंगे, ऐसा सचोकर परीरानी भी मौन रही। इसके सिवा खरे दंपति ने पन्ना को समझा दिया था—'बाहर चाहे लोग कुछ भी कहें, हम तो पसंद करके ही वधू घर में लाये हैं।'

कालेज से लौटकर, खाने के टेबिल पर एक खुला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र हाथ में लिये परीरानी बैठी थी। मिठाई की तश्तरी वैसी ही पड़ी थी। वह अब एम्० ए० में पढ़ती थी। पैर की आहट से उसने पत्र छिपा लिया।

"परी, पत्र पढ़ चुकी ?"

परी ने सिर हिलाया, जैसे वह पढ़ चुकी हो।

"दो ही चार दिन में तुम्हें जाना पड़ेगा। अब तो तुम्हें नहीं रख सकता, बेटी! रखना भी नहीं चाहता। ईश्वर से प्रार्थना है कि तुम सुखी हो। असीम की मा ने लिखा है—जहाज़ से उतरकर असीम घर न जाकर यहाँ आवेगा। तुम्हारी सास बड़ी अच्छी हैं। पर मैं उसे ज़्यादा दिन यहाँ नहीं रक्खूँगा। तुम भी तैयार हो लो। मा बेचारी लड़के को देखने के लिए घबराती होंगी ?" सिर नीचा किये परी बैठी रह गयी। पिता चले गये। वह सोच रही थी—शादी से लेकर आज यह दीर्घ तीन साल के बाद स्मरण रखने लायक़ उसे कौन-सी क़ीमती वस्तु मिली है? कुछ भी तो नहीं। परंतु उसी ज़रा से समय में वह उन्हें चाह बैठी थी—गंभीर रूप से—जिस प्रेम की थाह शायद ही हो। घृणा—अवहेलना से जो उसे दूर हटाना चाहता है, उसी की वह भक्ति करती, उसी को प्यार करती और चाहती है; उसी की स्मृति से उसका छोटा-सा अंतःकरण भरा रहता है। अदृष्ट का यह कैसा परिहास है! श्वसुर की बीमारी के समय वहाँ रहकर सास से सदा पति की बातें सुना करती थी, जिससे पति का परिचय उसके निकट और भी स्पष्ट हो गया था। उस रूप के उपासक को अपनाना कैसा असंभव है, यह जानते हुए भी वह उसे भूल नहीं सकती थी। उसके अंतर की नारी—उसका आत्माभिमान शासन करते; आत्ममर्यादा हज़ार सिर पटकती, फिर भी 'परी' उसी की पूजा किया करती। श्वसुर पर पहले उसे क्रोध आता था—सब जानते हुए भी क्यों उन्होंने उसके नारी-जीवन को व्यर्थ कर दिया; किंतु वहाँ कुछ दिन रहकर उनकी स्थिति को भली भाँति समझने के बाद से उसका विमुख चित्त उस रुग्ण व्यक्ति पर प्रसन्नता और दया से भर उठा था।

खरे महाशय परम आदर से वधू का स्वागत करते, उसकी हाथ की बनी रसोई भोजन के लिए माँगते। परीरानी रोटी बनाना नहीं जानती थी, सास व रसोइये से पूछकर किसी तरह बना देती थी। परी को याद आया, उसी कच्ची-पक्की रसोई की वह कैसी प्रशंसा किया करते थे। और भी स्मरण आया, मृत्यु के दिन उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दे गये थे—वह सुखी होगी। कहा था—इस गृह व गृहस्वामी की वह अधिकारिणी है। यह बात कभी न भूले।

आँसू पोंछती हुई परी उठी।

पिता के कमरे में प्रवेश करके वह विस्मित हुई। 'बाबा, यह क्या करते हो? इतनी साड़ी-ब्लाउज़ों का क्या होगा ?'

"तेरे लिए, बेटी !"

आँसू रोकती हुई परी वहाँ से भागी—हाय यह साड़ी, और यह परिष्करण! वह यह सब किसके लिए करेगी ?

* * *

तीन साल के बाद परी का पति से संभाषण हुआ—"अच्छी थीं ?"

"हाँ"—उसने अपनी आवाज़ को काँपने से रोका।

स्वामी पढ़ने लगे। वह ग़लीचे पर सो रही।

सबेरे पिता के गले से लिपटकर उसने विदा ली। परी का हाथ असीम के हाथ में रखकर ज़मींदार दामाद से बोले—"परी को आज तुम्हारे हाथ सौंपा। उसे आदर से रखना। बड़ी अभिमानिनी है।" पति की सिहरन का अनुभव करके लज्जा और अपमान से परी ने हाथ खींच लिया। उसे एक धक्का-सा लगा, मानों वह चाहती थी कि चिल्लाकर कह दे—अरे निठुर! अविवेकी! कुत्सित होने पर भी—वैसी अनिच्छा और घृणा से भरे स्पर्श की भिखारिणी वह नहीं है—वह स्पर्श कैसा भी मधुर क्यों न हो—उसमें चाहे कैसी भी बिजली का असर क्यों न भरा हो।

स्त्रियों के डब्बे में परी को बिठाकर असीम मरदाने डब्बे में जा बैठा। रात को खाने का सामान निकाल कर जितना बना, उसने खाया, बाक़ी फेंक दिया। दूसरे दिन किसी स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होने पर सहयात्री ने मिठाई ख़रीदी।

"इतनी मिठाई खा लोगे, भाई ?"—असीम हँस रहा था।

"मैं अकेला कहीं इतना खा सकता हूँ! उस डब्बे में मेरी पत्नी भी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचानक असीम को याद आया, कल से परी ने कुछ खाया नहीं। वह उठा। साथी ने पूछा—"कहाँ जाते हो ?"

"बाहर"

होटल के ख़ानसामें की आवाज़ से परी ने सिर उठाया—"क्या है ?" खाने की सामान से भरी ट्रे बेंच पर रखकर उसने सलाम करते हुए कहा—"उस कमरे के साहब ने आपके लिए भेजा है"।

व्यथा से परी का हृदय टुकड़े-टुकड़े होने लगा। कल से वह उपास कर रही है, पति ने एक बार भी पूछा तक नहीं। सहयात्री रमणी का पति कई बार आकर अपनी पत्नी की ख़बर ले गया था, स्नेह-सोहाग से उसे मिठाई खिला गया था। और वह—वह केवल आहत हृदय से उनके क्षणिक मिलन की मीठी हँसी नयनों की उस मतवाली दृष्टि को देख-देखकर मन ही मन कुढ़ रही थी।

परी ख़ानसामा से बोली—"मैं न खाऊँगी, लेते जाओ।"

"साहब नाराज़ होंगे, हुज़ूर।"

"मैं मुसलमान का छुआ नहीं खाती।"

ट्रे लेकर वह आदमी चला गया।

"मुसलमान का छुआ नहीं खातीं—यह क्या तुम्हारे पति नहीं जानते हैं, बहन ?"—सहयात्री वधू ने पूछा।

"कौन जाने"—अवमानना के साथ परी ने उत्तर दिया।

"पति की बात उससे क्यों नहीं पूछी, आज भी क्या उन्हें बुख़ार है ?" कल से इससे झूठ बोल-बोलकर परी थक-सी गयी थी। झूठ बोलने में उसका अंतःकरण जितना संकुचित होता था, उतना ही वह क्रुद्ध भी हो रही थी। बाहरी दृष्टि में अपना सम्मान बचाते हुए उसने कहा था—पति बीमार हैं, इसी से वह स्टेशन पर उसकी खोज नहीं ले सके।

"पूछा क्यों नहीं, बहन ?"—सहयात्री वधू ने अपना प्रश्न दुहराया।

"आपको इन बातों से मतलब ? सब लोग यदि मेरे पीछे पड़ जायँ तब मुझे उतर जाना पड़ेगा"—परी रो पड़ी।

विस्मय-विमूढ़ा वधू देखती रह गयी।

पत्नी के विचार की बात सुनकर असीम विरक्त हुआ।

दूसरे स्टेशन पर कुछ मिठाई ख़रीदकर एवं उसी के हाथ परी को भेजकर उसने अपना कर्त्तव्य शेष किया।

मिठाई की टोकनी वैसी ही पड़ी रही। परी ने उसे छुआ तक नहीं।

(५)

परी ने नूतन जीवन आरंभ किया।

सास चाहती ज़रूर थीं, पर लड़के के असंतोष के कारण बहू पर कभी-कभी बिगड़ भी जाती थीं। सास के लिए परी को कष्ट होता—बेचारी एक ही बहू को लेकर सुखी न हुईं। कुछ ही दिन में उसने गृहस्थी का रूप बदल दिया। सब काम अपने हाथ से किया करती, घर के नौकरों की सुविधा-असुविधा देखती, केवल पति से वह दूर रहती।

गृहस्थी के काम सुचारु रूप से चलने लगे। अवसर मिलने पर ऊपर के कमरे में वह चित्र बनाया करती। विख्यात चित्रकार से उसने चित्र-विद्या सीखी थी।

असीम के दिन आनंद-प्रमोद से कट रहे थे, विशेषतः सन्ध्या-समय मित्रों व मित्र-पत्नियों की हँसी, गीत, गपशप से घर गूँज उठता था। निशिदिन परी अंदर से चा का बृहत् आयोजन कर दिया करती।

कचौड़ी-संदेश बनाकर दालान पर आते ही सास बोलीं—"चुड़ैल सरीखी मत रहो, नहाकर कपड़े पहनो।"

"जाती हूँ मा, आज मिठाई बनाने में देर लग गयी।"

"सुनो दुलहिन, वह गुलाबी रंग जो आजकल चला है न, कादम्बरी से दो शीशी तुम्हारे लिए मँगवाया है। हाथ-मुँह में लगा लेना।"

"हाँ, लगा ले, कुछ अच्छी दिखेगी, लड़का तो लौटकर भी नहीं देखता, सास तेरे भले ही के लिए कहती है"—गांधारी की मौसी ने कहा।

"लो दुलहिन"—शीशियाँ गांधारी ने परी की ओर बढ़ा दिया। परी खड़ी ही रह गयी।

"अरे लेना"—मौसी विरक्त हो रही थीं।

"मैं न लगाऊँगी"—परी का स्वर काँप रहा था। सास की ओर मुँह फेरकर उसने कहा—"काले चेहरे को सफ़ेद बनाने के लिए मैं यह न लगा सकूँगी मा! छिः।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परी ऊपर चढ़ गयी । दूसरे कमरे में बैठा असीम सब बातें सुन रहा था । परी की बात से आज पहली बार शायद उसे परी पर ज़रा-सा सम्भ्रम का अनुभव हुआ ।

शाम को चा के टेबिल पर मृगेन ने पूछा--"क्यों भई, तुम्हारी स्त्री पर्दे में रहती हैं क्या ? आज तक उनके दर्शन न हुए ।"

"वह सुंदरी और शिक्षिता हैं, धनवान् की पत्नी हैं, हमसे मिलते घृणा करती हैं मिस्टर चौहान "--मिसेज़ वर्मा ने कहा । असीम संकट में पड़ा । ऐसी शिक्षिता सुंदरियों के बीच में परी को लाकर अपनी स्त्री होने का परिचय देना उसके लिए एक असम्भव बात थी ।

"वह यहाँ नहीं हैं"—असीम बोला ।

जितेन्द्र मास्टर की आई० ए० भगिनी फूलमती पूछने लगी—"अच्छा, मिसेज़ खरे याने आपकी स्त्री क्या बहुत सुंदर है ?"

यह कैसा अद्‌भुत प्रश्न है ! मुग्ध दृष्टि से फूल का मुँह देखकर असीम ने कहा--"नहीं"

"पढ़ी-लिखी है ?"

"नहीं"

"यहाँ कब तक आवेंगी ?"

श्वसुर अमीर आदमी हैं, शायद जल्दी न भेजें ।

"उन्हें बुलवाइए मिस्टर खरे, मैं देखूँगी"—मचलती हुई बच्चों की नाईं फूल बोली ।

धीरे-धीरे सब लोग बिदा हुए, केवल फूलमती बैठी रही । इस तरह वह प्रति दिन रहा करती थी । दस बजे रात के क़रीब उसके भाई ट्यूशन से लौटते, तब दोनों असीम के श्वसुर के मोटर पर घर लौटते थे ।

महीने-भर के बाद पिता की मृत्यु का संवाद पाकर परी विकल हो उठी ।

(६)

सुबह की सफ़ेदी केवल पृथ्वी के सिरहाने झाँक रही थी, जगत् तब भी गंभीर सुषुप्ति में बेसुध पड़ा था । परीरानी उठ बैठी, उसे आराम से सोने का अवसर कहाँ ! आज बड़ा-सा भोज है । उसी को सब कुछ करना है ।

एक दिन वह था जब वह रसोई बनाने से डरती थी, परंतु आज उसके लिए यह एक सहज बात थी । मरते समय श्वसुर समझा गये थे—नारी का प्रधान सौंदर्य, उसका सन्तोष इसी रसोई ही में है । पति और परिजनों को हाथों से खिलाकर जो संतोष उसे मिलता है, वैसी तृप्ति वह शायद ही दूसरी बात में पाती हो । परी पलँग की ओर निहारने लगी । इस गृह एवं खाट पर पड़े सुंदर पुरुष की न्यायतः अधिकारिणी वही है । किंतु उस सत्य को आड़ देती हुई जो मिथ्या आज अटल रूप में खड़ी है, उसकी भी कहीं थाह है ! उसने दृष्टि फेर ली । ऐसे विचारों से उसे लाभ ही क्या । वह काम में जुट पड़ी ।

भोजन में तब भी देर थी । मृगेन ने कहा—"तुम्हारा मकान मैंने नहीं देखा, असीम ! चलो बग़ीचे में घूमें, आपका क्या कहना है, फूलदेवी ? और, दवे तुम ?"

मकान के अंदर से बग़ीचे में जाने के लिए रास्ता था । मृगेन दरवाज़े का परदा हटाता चल पड़ा । उसके पीछे दूसरे लोग भी चले । असीम को कुछ कहने-सुनने तक का अवसर न मिला । लाचारी दर्जे उसे भी जाना पड़ा ।

दालान में बैठी परी ने आश्चर्य के साथ उनकी ओर देखा । फिर उसने अपने काम पर ध्यान जमा लिया । वह संदेशों को साँचे से छाप रही थी । दालान में चढ़कर फूलमती हँस पड़ी ।

"आप हँसती क्यों हैं, फूलदेवी !"—मृगेन ने पूछा । इशारे से फूलमती ने परी को बतलाया ।

"मैं समझा नहीं"—मृगेन बोला ।

"काले हाथों में हीरे की चूड़ियाँ कैसी जगमगा रही हैं, देखिए ।" फूल ने अँगरेज़ी में कहा ।

असीम चुपचाप खड़ा रह गया ।

"छिः फूलदेवी ! यदि वह अँगरेज़ी समझती हों तो क्या कहेंगी ? काले रंग से क्या, चेहरे पर कैसा भोलापन झलक रहा है । मेरे ख़याल से यह हज़ारों रूपवती स्त्रियों में खड़ी होने लायक़ हैं ।"--मृगेन ने उत्तर दिया । "यह इँगलिश समझती हैं, मिस्टर खरे ?"--फूलमती अपनी बात पूरी करके हँसते-हँसते लोटपोट हो गयी ।

"नहीं ।"

"यह कौन हैं, मिस्टर खरे !" हँसी-भरे नेत्रों से फूल ने पूछा ।

कुछ सोचे विचारे बिना ही हठात् असीम के मुँह से निकल पड़ा—"नौकरानी ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

76327

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी बातें अँगरेज़ी में हो रही थीं। परी का चेहरा कठोर हुआ।

"आपके घर नौकरानी भी ऐसा हीरा-मोती पहनती है!"

"मेरे घर यही नियम है, फूलदेवी!"

मन ही मन फूलमती ख़ुश हुई—ऐसे धनवान् की वह मित्र है। गांधारी थोड़ी बहुत अँगरेज़ी जानती थी, वह बोली—"असीम नहीं जानता, यह लड़की हमारी आत्मीया है।"

"यहीं पर रहती है?"

"हाँ"

"सेंदुर लगाये हैं, इनके पति कहाँ हैं?"

"अब मुझे याद आया, इसके पति लापता हैं।"—जल्दी से असीम बोल उठा।

"आप भी कैसा भूलते हैं, मिस्टर खरे! भले घर की लड़की को नौकरानी बना दिया।"

इस अभागी नारी पर समवेदना से मृगेन का हृदय भर आया। उसने पूछा—"कैसा सफ़ेद संदेश बना है, आपने बनाया है?" मृगेन उससे परिचित होना चाहता था।

"हाँ"—परी अपने को सम्हाल चुकी थी।

"चलो भई, देर हो रही है"—असीम के स्वर में घबराहट थी।

"तुम जाओ, मैं इनसे बातें करूँगा।"

"चलिए, मिस्टर खरे"—असीम का हाथ थामे फूल बोली। असीम वैसा ही खड़ा रह गया।

"आप हमारे साथ क्यों नहीं चलतीं?"—मृगेन बोला।

"माफ़ कीजिए, अभी तो नहीं जा सकूँगी"—नम्रतापूर्वक परी ने कहा।

"सो क्यों?"

"काम पड़ा है।"

"अच्छा, क्या-क्या काम है, बतलाइए, मैं यहाँ से हटनेवाला नहीं हूँ"—मृगेन ज़मीन पर बैठ गया।

"महाराज को तरकारी बतलाना है। आप तब तक घूमिए।"

"लेकिन यह स्वार्थी का काम होगा। आप हमारे लिए मिहनत करें, और हम हवा खाते फिरें। भला यह भी कोई बात है।"

परी कुछ कहने को थी, पर दवे उसमें बाधा देता हुआ बोला—"आपसे परिचय न रहते हुए भी चा के टेबिल पर आपके हाथ की मिठाइयों से परिचित हो चुका था। यदि भाग्यवश आज वह अवसर मिला भी, तो क्या आप हमें भगा देंगी—ज़रा-सी कृतज्ञता-प्रकाश करने का समय तक न देंगी?"

"न जाने क्या कहते हैं आप। ...अरे, ज़मीन पर मत बैठिए, उस कुर्सी पर बैठ जाइए"—लजाती हुई मीठी हँसी के साथ वह बोली।

"हमें कोई तकलीफ़ नहीं। मेरा अन्दाज ठीक है न, वह मिठाइयाँ आप ही बनाती हैं? पर मुझे आश्चर्य इस बात का है कि एक दिन भी आप मेरे सामने नहीं आयीं। असीम तो पर्दे का विरोधी है। शायद आपके पति—"

उसे बात पूरी करने न देकर गांधारी बोली—"वैसा कुछ नहीं है, बेटा। लड़की ख़ुद ही शर्माती है। अब आया करेगी। चलो, रोटी तैयार है।"

एकांत में असीम ने परी को पुकारा—"सुन जाओ"

विस्मिता परी खड़ी हो गयी। आज यह कैसा असम्भव हो रहा है। उसे पति ने कभी पुकारा नहीं था।

"सामने बैठने का क्या प्रयोजन था?"

"मकान के अन्दर बैठने के लिए भी किसी से अनुमति लेनी पड़ेगी, यह पहले नहीं जानती थी"—परी उत्तर की प्रतीक्षा न करके कमरे के बाहर हो गयी।

"यह सब मैं पसन्द नहीं करता"—क्रोध के साथ असीम से कहा।

स्तम्भित असीम ने सुना—"इसके लिए मैं विवश हूँ।"

(७)

"कल से उनका पता तक नहीं। क्या बात है भई?" चा के टेबिल पर बैठे मृगेन ने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम"—उत्तर में असीम बोला।

"चलो दवे, उन्हें भीतर ढूँढें।"

"आप जाइए, मैं नहीं जाती; कल का दिन उन्हीं के लिए बर्बाद गया"—फूलमती ने विरक्ति से कहा।

तबियत ख़राब रहने के कारण दवे-पत्नी प्रमिला कल नहीं आ सकी थीं। पति से उस काली रमणी की बात सुनकर अस्वस्थ अवस्था में भी वह घर में न टिक सकी।

"चलिए"—प्रमिला सबके पहले उठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिच्छा रहते हुए भी असीम उनका साथी बना। नीचे कहीं परी का पता न लगा। धीरे-धीरे यह मंडली ऊपर चढ़ी। एक बन्द दरवाज़े के सामने वे सब रुके। "ज़रूर वह इसी में हैं।"

प्रमिला द्वार-रन्ध्र से झाँकने लगी। अंदर का पूरा हिस्सा न दिखने पर भी थोड़ा बहुत दिख पड़ा। सुन्दर-सुन्दर तैलचित्र दीवाल पर लटक रहे थे। प्रमिला ने दूसरों को बुलाया, उन्होंने भी देखा। वह असीम मनोयोग से एक चित्र पर तूलिका की रेखाएँ खींच रही है।

"यह मिस्टर खरे का फ़ोटो है"—असन्तोष के साथ फूल ने कहा।

"वाह-वाह! कैसे सुन्दर चित्र यह बनाती हैं।" यद्यपि सब नहीं दिखता है, देखो—काश्मीर के सीन कैसे भले मालूम पड़ते हैं, और असीम की फ़ोटो तो सजीव ही हो गयी है।"—आनन्दभरे स्वर से मृगेन ने कहा।

"और, परपुरुष के चित्र के सामने बैठे आँसू की यह धारा भी अनमोल है मृगेन बाबू!"—परिहास के साथ फूलमती बोली।

"यह क्या आप..."—दरवाज़ा खोलकर परी खड़ी हुई।

"छिपकर तुम्हारी साधना देख रही थी बहन! कैसा सुन्दर चित्र बनाती हो, तुम्हारी शिक्षा सार्थक है। कमरे में जा सकती हूँ?" प्रमिला के कंठ में स्नेह था।

"आज माफ़ कीजिए"—शर्माती हुई परी बोली।

"कल मैं फिर आऊँगी। कल निराश मत करना, बहन!"

"नीचे उतरते-उतरते फूल ने लौटकर देखा। असीम वहाँ नहीं था। वह ऊपर चढ़ी। असीम वहीं खड़ा कुछ सोच-विचार रहा था।"

"यहीं खड़े रहोगे?"—उसके शब्दों में अभिमान भरा था।

"चलो।"

"माफ़ करना। नाहक तुम्हें दिक़ किया, जाओ उसके आँसू पोंछ दो। परन्तु मिलन-अंक में हम सबका स्मरण रखना, असीम बाबू!"

तरुणी के नेत्र-बिन्दु से असीम अपने को भूल बैठा। आदर से फूल का हाथ थामे वह बोला—"भूल मत समझो फूल! मेरी दो बातें सुन लो।"

परन्तु फूलमती अभिमान से उसकी ओर देखती हुई चली ही गयी।

परी कमरे के अंदर थी। परन्तु पत्नी के गुण के परिचय से असीम के हृदय में अभी-अभी जो सम्भ्रम जाग उठा था, फूल के आँसुओं ने उसे बहाकर दूर फेंक दिया। सम्भ्रम के स्थान में केवल क्रोध की ज्वाला रह गयी। असीम सोचने लगा—फ़ोटो बनाने का उसे प्रयोजन ही क्या था?

फूल का अभिमानाहत मुख हृदय में प्रलय का काम करने लगा। आँसुओं ने केवल उत्तेजित ही नहीं, उसे पागल बना दिया। चित्र को पैर तले दबाकर उसने टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

उन्मादिनी की भाँति परी पति से लिपट गयी।

"मेरी—मेरी तस्वीर तुमने क्यों फाड़ी?"

"क्यों, किसके हुक्म से, कौन-से अधिकार से तुमने वह चित्र खींचा?"

परी शक्तिसंचय करने लगी।

"पिता की भूल के लिए संतान ज़िम्मेदार नहीं हो सकती। कुछ शादी ही सब अधिकारों का केंद्र नहीं है। आज चार-पाँच साल शादी के हुए—न तुम्हें छुआ और न कभी छू ही सकूँगा। सब जानते हुए भी फिर किस स्पर्द्धा, कौन-से अधिकार से तुम मेरा चित्र बनाकर सबके सामने मुझे परिहास का पात्र बना बैठीं?"

परिष्कृत स्वर से परी ने उत्तर दिया—"चाह ने मुझे तुम्हारा चित्र बनाने का अधिकार दिया है। मैं चाहती हूँ; पत्नी का अधिकार तो नहीं माँगती। तुम्हारे स्पर्श अथवा बातों के लिए मैं लालायित नहीं हूँ। तुमसे माँगने-जाँचने की ज़रूरत नहीं पड़ी। यह प्रेम—यह चाह मेरी निज की संपत्ति है। प्रतिदान के लिए किसी भी दिन भिखारिणी होकर तुम्हारे द्वार पर न जाऊँगी। यह मेरे व्यक्तिगत जीवन का एक अंश है, यहाँ की अधिकारिणी मैं हूँ। अपनी उस स्वाधीन सत्ता की मैं एकछत्र रानी हूँ। ऐसे प्रश्न करने का किसी को भी कुछ अधिकार नहीं है। किंतु तुमने क्यों और कौन-से अधिकार से मेरे हृदय के ख़ून से खींचे चित्र को फाड़ डाला? कहो, जवाब दो—मेरी, मेरी तसवीर क्यों तुमने फाड़ी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असीम के अंतर में एक अनोखा पुलक, मधुर सिहरन बहने लगी। उसके हृदय, मस्तिष्क, कानों में, नस-नस में उस छोटे-से शब्द की झंकार होने लगी—'चाह ने यह अधिकार दिया है, एक नारी अपने अंतर का श्रेष्ठ अर्घ्य नीरव-शांत भाव से दूर ही से उसी पर निछावर कर रही है, काली कुत्सित होने पर भी वह उसी की है, वह उसे चाहती है। फ़ोटो के टुकड़ों पर नज़र पड़ते ही परी कठोर कंठ से बोली—"जाओ, मेरे सामने से चले जाओ। कभी इधर न आना।"

रात को गांधारी के हज़ार सिर पीटने पर भी परी के दरवाज़े न खुले। द्वार के छेद से असीम ने देखा—परी फिर से उसका चित्र बना रही है।

रात की तरह दूसरा दिन भी वैसे ही कटा।

दो दिन से वधू उपवास कर रही है। विवश होकर दरवाज़ा तोड़ना पड़ा। कमरे के अंदर पैर रखते ही गांधारी चकित हो गयी। चारों ओर चित्रराशि—बीच में पति के चित्र के सामने बैठी—गौरी की नाईं—परी कठोर साधना में लीन हो रही थी। गृहिणी के नेत्रों से सावन की धारा बह चली।

"बहू, उठो बेटी, दो दिन से निर्जला हो!"

किंतु उत्तर कौन देता; परी बेसुध थी।

"तुम चली आओ मा, उसे मरने दो"—विरक्त भाव से असीम ने कहा।

तीसरे दिन असीम कमरे में घुसा तो विस्मय से अवाक् हो गया। रात-भर की मेहनत से परी ने चित्र में जीवन भर दिया है। परंतु अब उसकी उँगलियाँ अवश हो रही थीं। तूलिका कहीं की कहीं पड़ रही थी। असीम डरा—यदि वह मर जाय? धीरे से उसने उसकी तूलिका ले ली। एक बार अर्थहीन दृष्टि से परी पति की ओर देखकर ज़मीन पर लेट गयी। असीम उसे गोदी में उठाकर बाहर ले गया।

(८)

"आप ग़लत कहते हैं, मृगेन बाबू। मैं लव-मैरेज की पक्षपातिनी हूँ"—फूल ने कहा।

"और डायवोर्स?"

"उसकी भी।"

"आपसे मेरा मत कभी न मिलेगा।"

"क्या मालूम, लव-मैरेज वेरेज नहीं देख सकता। पिता शादी कर गये थे, हममें तो कभी झगड़ा नहीं हुआ।"

दवे पत्नी की ओर देखकर हँसने लगा।

असीम ने कहा—"हज़ारों में कहीं एक-आध ऐसे देख पड़ते हैं, ज़्यादातर ख़राब परिणाम निकलता है। ऐसा भी देखने में आया है कि पाँच-छः साल विवाह होने पर भी स्वामी ने स्त्री को ग्रहण नहीं किया।"

"यह दृष्टांत तुम ख़ुद ही हो भई"—दवे मुस्करा रहा था।

"इसी से कहती हूँ, डायवोर्स की प्रथा अच्छी है। पर हिंदुओं में नहीं है"—फूल ने कहा।

दवे के मुँह पर दबी हँसी झलकने लगी। मृगेन गंभीर हुआ।

प्रमिला बोली—"डायवोर्स (तलाक़) न रहने पर भी आजकल की उच्छृंखलता सीमा को लाँघ गयी है। स्त्री एक ओर पड़ी रहती है, नयी को लेकर आमोद चलता है—कहीं छिपे तौर पर कहीं ज़ाहिरा तौर पर। डायवोर्स प्रथा नहीं है, यह मैं ग़नीमत मानती हूँ; नहीं तो मर्द हर रोज़ एक-एक बदलते।"

"फिर इस अमनोनीता पत्नी के साथ ज़िंदगी बितानी पड़ेगी। यह ज़बरदस्ती नहीं, अत्याचार है, मिसेज़ दवे।"—फूल ने कहा।

"पिता-माता के दिये वर के साथ यदि स्त्रियाँ जीवन बिता सकें, तब पुरुष भी क्यों न बिता सकेंगे?"

"कारण, पुरुष का सौंदर्य-ज्ञान नारी से कहीं अधिक है; स्त्रियों की तरह उनकी जीवनी-शक्ति भी निर्जीव नहीं हो गयी है!"

फूल की बातों से मृगेन हँस पड़ा।

"आप हँसे क्यों?"

"बड़े मज़े की बात है—समझो दो शादी हुईं, फिर दोनों में जब पति-हिस्से के लिए झगड़ा चलेगा, वाह-वाह"—मृगेन अकेला ही हँसता-हँसता लोट-पोट हो गया।

"फिर वैसा प्रबंध भी करना पड़ेगा"—गंभीरता से असीम ने कहा।

"कहो भी तो भई, मैं भी सुन लूँ।"

"याने एक को उसके मायके में रखना पड़ेगा।"

"फिर भी शादी करना ज़रूरी है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम क्या कहना चाहते हो—मा-बाप के दिये हुए उस जंतु-विशेष के साथ जीवन काटना ही उचित है ?"—अपनी बात पूरी करके असीम ने फूल की ओर आँखें फेरीं। देखा—उसकी स्वप्नाभिभूत मुग्ध दृष्टि उसी के मुँह पर निबद्ध है। प्रमिला को ये बातें अच्छी न लगीं वह उठ पड़ी—"आपकी आत्मीया क्या कहीं चली गयी हैं ?"

"गयी तो कहीं नहीं, बीमार हैं।"

"अभी कहाँ मिलेंगी—ऊपर ?"

"अभी शायद बग़ीचे में हों।"

बेले का गजरा एक ओर रक्खा हुआ था। परी रानी बग़ीचे में एक साफ़ चट्टान पर बैठी रवींद्रनाथ की "चयनिका" पढ़ रही थी। पीछे से उसकी आँखें मूँद कर प्रमिला ने पूछा—"मैं कौन हूँ—जानो तो बहन !"

"आप वही हैं।"

"वही कौन ?" कौतुक के साथ प्रमिला ने प्रश्न दुहराया।

"मैं उनका नाम नहीं जानती।"

"तुम तो छोटी हो, मुझे प्रमिला दीदी कहना, समझीं !"

"प्रमिला दीदी !"

मुस्कराती हुई प्रमिला उसके बग़ल में बैठ गयी।

"वाह, कैसा सुंदर गजरा है"—माला उठाकर मृगेन ने गले में पहन लिया। परी का चेहरा विरक्ति से कठोर हो गया।

"कौन-सी किताब है ?"—मृगेन ने पूछा।

"चयनिका, बँगला का अनुवाद।"

"आप इसे समझ सकती हैं ?"

"कोशिश करती हूँ।" मृदु हँसी उसके होठों पर थिरकने लगी।

"मैं तो सुनता था, आप पढ़ी-लिखी नहीं हैं।"

परी ने उत्तर नहीं दिया।

"तसवीरें कब दिखलाओगी, बहन !"

"कल दिखलाऊँगी, दीदी !"

फूल व असीम भी आ गये। मृगेन के गले के उस बेले के हार ने असीम को पागल बना दिया।

उसने छिपकर देखा था—[illegible] गजरा लटकाकर परी बैठी रहा करती थी। आज परी ने अनायास ही उसी माला को मृगेन को पहना दिया। असीम अपने को सम्हालता हुआ सोचने लगा—चाहे वह कुछ भी करे, इससे उसे मतलब ?

फूल के साथ असीम बग़ीचे में घूमने लगा। दूसरे लोग बिदा हो गये। परी उठी; उसे फिर से हार बनाना था। पेड़ों से फूल तोड़ती हुई वह कोने की ओर चली। अचानक सामने के दृश्य ने उसकी गति अवरुद्ध कर दी ! आँचल के फूल बिखर गये। वह रुद्ध श्वास लेती हुई पीछे लौटी।

चंचल असीम फूलमती का हाथ कंधे से हटाकर उठ खड़ा हुआ।

(३)

बाजे के साथ फूल गा रही थी। सामने कुर्सी पर झुका असीम अपने में मस्त होकर सुन रहा था। दूसरे वाह-वाह की आवाज़ें कस रहे थे। गीत समाप्त हुआ। संगीत की भाषा असीम के हृदय पर स्वप्न का जाल बुनने लगी। परी को आदर से बिठाकर प्रमिला बोली—"अच्छी हो, बहन ?"

"साधना करने पर भी जिन देवी के दर्शन नहीं होते, आज बिना माँगे ही मुराद पूरी हुई। मामला क्या है, देवीजी ?"—मृगेन ने पूछा।

"दीदी आयी हैं।"

"फिर ऐसा कहिए कि दीदी ही आपकी सब कुछ हैं, हम तो घास-कूड़े में शामिल हैं।"

"सच ही तो, बहन की कहीं किसी के साथ तुलना हो सकती है, ठीक है न फूल ?"—प्रमिला फूल के ईर्षादीप्त नेत्रों को देखकर सिहर उठी।

"आज ज़्यादा देर न बैठूँगी परी। वह रहेंगे। मैं लौटते समय उन्हें लेती जाऊँगी, मा के घर जाती हूँ।"

प्रमिला के साथ परी को उठते देखकर मृगेन बोला,—"आप कहाँ चलीं। बैठिए। मुश्किल से तो दर्शन मिले।"

"कल बैठूँगी—" संकोच के साथ परी ने कहा। प्रमिला के जाने के बाद वह संकुचित हो रही थी।

"असीम बाबू, सिनेमा चलिए, देर हो रही है"—फूल बोली।

"चलो, तुम दोनों भी चलो दवे—।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परी को रोककर मृगेन ने कहा—"आप भी चलिए।"

"घर में काम है।"

"आपका काम तो वही चित्र खींचना है। मित्रों के लिए क्या एक दिन काम बंद नहीं रह सकता, चलिए देवीजी।"

"अरे भाई, देर हो रही है"—असीम अधीर हो रहा था।

"वाह, हम सब चले जायँगे और वह बेचारी अकेली रहेगी?"

"वह घर पर रहें, मा भी बाहर गयी हैं।"

"फिर आज का जाना रोक दो, या उन्हें लेते चलो।"

विरक्ति के साथ असीम ने कहा—"उसे लेकर तुम जा सकते हो, हम नहीं जायँगे।"

"चलिए।"

"आज रहने दीजिए, मृगेन बाबू। कल चलूँगी।"

"मित्र के लिहाज़ से क्या ज़रा-सा भी दावा आप पर नहीं कर सकता हूँ? आज ज़बरदस्ती ही ले जाऊँगा"—विनीत भाव से मृगेन ने कहा।

सहसा असीम के क्रुद्ध कंठ से लोग चौंक पड़े—"अंदर जाओ, किसने तुम्हें यहाँ बुलाया? दिन पर दिन तुम बढ़ रही हो।"

असीम के अभद्र रूढ़ आचरण से मृगेन व दवे स्तम्भित रह गये।

"चलिए"—दृढ़ता के साथ परी बोली।

सभ्य समाज में एवं उन सभ्य मित्रों के सामने असीम यह क्या कर बैठा! अपने आचरण से वह लज्जित तो ज़रूर हुआ, पर परी के ऊपर क्रोध आ जाने से वह कहीं आपे से बाहर हो गया। सब अनिष्ट की जड़ वही नारी है।

"मैं गृहस्वामी के अधिकार से कहता हूँ, तुम अंदर जाओ।"

दवे की ओर मुँह फेरती हुई उत्तर में परी बोली—"जो आदमी मिथ्या अभिमान करता है परंतु सच्चे अधिकार की मर्यादा जो नहीं रखता, उसकी आज्ञा न मानने से भी हानि न होगी। चलिए मृगेन बाबू, दवेजी आप भी।"

वह मोटर पर चढ़ बैठी। गृहस्वामी की इच्छा के विरुद्ध उसकी आत्मीया को ले जाना उचित है या नहीं, इस पर विचार करने का भी उन्हें अवसर न मिला। दवे व मृगेन गाड़ी पर सवार हो लिये।

रात को घर लौटने पर गांधारी बहू पर नाराज़ हुई। परी चुपचाप सो रही।

फूल के साथ थियेटर जाते समय डाकिया एक बंद लिफ़ाफ़ा देता गया था, उस पर परी का नाम देखकर असीम ने उसे पाकेट में रख लिया था।

"किसकी चिट्ठी है, खोला नहीं"?—फूल ने पूछा।

"देर हो जायगी, पीछे देख लूँगा।"

अकेले घर लौटते समय पत्र पढ़कर असीम अवाक् रह गया। इतना बड़ा विस्मय जीवन में कभी आया ही नहीं। यह जो नारी भोली-सी रहती है, विद्या में उससे कम नहीं है। पृथ्वी के सप्त आश्चर्य आज असीम के निकट अष्टम आश्चर्य की सृष्टि कर बैठे।

परी की सहेली ने लिखा था—

"परी, पति की बात हर चिट्ठियों में क्यों छोड़ जाती हो? वह कैसे हैं? तुझे चाहते हैं न? यदि सच पूछो तो तेरे लिए दुःख होता है। एम्० ए० पढ़कर भी तूने परीक्षा क्यों न दी, सो तू ही जाने। पति से कहती, तो क्या वह परीक्षा देने से रोक लेते? कभी नहीं। प्रीति, ईश, तू और मैं साथ ही कालेज गयी थीं, मैं बी० ए० फ़ेल होकर घर लौटी, केवल तू ही पास होकर एम्० ए० में गयी थी। तेरी मेधाशक्ति देखकर हम सब अवाक् रहती थीं। ख़ैर, जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। बड़ी चिट्ठी लिखना। प्यार।

तुम्हारी

सरस्वती"

पत्र पढ़कर असीम को संतोष न होता। दिन में कई बार वह उसे पढ़ा करता। वह पत्र परी के हाथों तक नहीं पहुँचा, उसके पाकेट ही में रहने लगा।

संध्या की सभा वैसे ही जमने लगी। मित्रों के हास-परिहास वैसे ही चलने लगे। परंतु परी का कहीं पता नहीं था। सिनेमा जाने के बाद से उसने अपने को छिपा रक्खा था।

"तुम्हारी आत्मीया क्या मुझ पर असंतुष्ट हैं, असीम?"—संकोच के साथ मृगेन ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो नहीं जानता।"

"सो क्यों?"—प्रमिला ने पूछा।

"कई दिनों से वह दिखती नहीं।"

"कल दोपहर को मैं उसे ले गयी थी। गाना सुना। बहुत अच्छा गाती है, क्यों न असीम बाबू?"

"मैंने नहीं सुना।"

दवे-दंपति मुँह फेरकर हँसे।

"वह गा भी सकती हैं? बुलवाइए न प्रमिलादेवी।"

"क्या वह यहाँ आ सकती हैं, असीम बाबू?" प्रमिला ने पूछा।

"मैं उन्हें कब रोकता हूँ, बुलवाइए न।" उस दिन के रूढ़ आचरण के लिए असीम शर्मा रहा था।

सबके अनुरोध से परी बाजे के सामने बैठी। आग्रह के साथ सब लोग सुनने लगे। परी मधुर कंठ से गाने लगी, मानों शुद्ध तान लय गमक गीटकीरी आदि से रागिनी वास्तव रूप से आँखों के सामने नाचने लगी। तंद्रालस कंठ से असीम बोला—"मैंने ऐसा कभी नहीं सुना।"

(१०)

दिन के आलोक को म्लान करती हुई सन्ध्या नवोढ़ा वधू की तरह कुंठित धीर पद से धीरे-धीरे ऊपर से उतरने लगी थी। असीम बिस्तर पर उठ बैठा, आज तीन दिन से उसे ज्वर था।

गांधारी आयी—"अकेले पड़े हो, बेटा! जब तक फूल न आवे, मैं ही तुझे कुछ पढ़कर सुनाऊँ?"

"क्या पढ़ोगी, मा?"

"कुछ भी दे।"

"ब्राउनिंग की किताब पढ़ सकोगी?"

"नहीं बेटा, कोई सहज किताब होती तो पढ़ भी लेती। फूल अभी आया ही चाहती है।"

"पागल हो मा, फूल भला ब्राउनिंग का लेख समझ सकती है! तब तक न हो, अपनी बहू को भेज दो।"

"दुलहिन पढ़ेगी! तू क्या कह रहा है?"

"ग़लती नहीं कहता, वह एम्० ए० तक पढ़ी है।"

"बहू, मेरी बहू, परीरानी!"

"हाँ, पर उसने हमें छकाया ज़रूर।"

ख़ुशी-ख़ुशी गांधारी ने परी को भेज दिया।

"मुझे बुलाया है?"

"यहाँ बैठकर यह पुस्तक पढ़ो"—असीम ने पलँग की ओर इशारा करके कहा।

"मैं पढ़ूँगी?"

"हाँ, तुम्हीं पढ़ोगी। देखो तो सही, यह पत्र किसका है?"

असीम हँस पड़ा।

परी कुर्सी पर बैठ गयी।

"यहाँ बैठने से कुछ नुक़सान था?"

"आख़िर यह भी तो बैठने के लिए ही है।"

परी का बर्ताव असहनीय होने पर भी असीम कुछ न बोला। परी पढ़ चली।

कुछ ही देर के बाद असीम के मित्रों ने आकर परी को घेर लिया।

"यह कौन-सी पुस्तक है?"—मृगेन ने पूछा।

"ब्राउनिंग।"

"ब्राउनिंग वह समझती हैं?"—फूलमती का स्वर विस्मय से भरा था। प्रमिला चिढ़ी—"यदि न समझतीं, तो पढ़तीं कैसे?"

"असीम बाबू उस दिन कहते थे न, कि वह पढ़ी-लिखी नहीं हैं।"

"शायद असीम बाबू तब नहीं जानते थे।"

"आपको तो उनके बदले वकालत करने को नहीं कहती हूँ, मिसेज़ दवे।"—फूल उत्तेजित हो रही थी।

हँसी रोकते हुए दवे खाँसने लगा। रविवार का दिन था, फूलमती का भाई भी आया था। वह बहन को शांत करने लगा—"फूलरानी, चुप रह बहन।"

फूल ने फिर पूछा—"कहाँ तक पढ़ी हैं?"

उत्तर दिया दवे ने—"एम्० ए० तक। और भी कुछ जानना चाहती हैं?"

मृगेन ख़ुश हुआ—"अरे, आप भी कैसी हैं, ऐसा भोली बनी रहती थीं, जैसे कुछ भी नहीं जानतीं। चलिए, आज वह कमरा देखें।"

सब लोग चल पड़े।

कमरे में घुसकर बच्चों की तरह मृगेन चिल्लाने लगा—"अरे बाप रे, यहाँ तो तसवीरों की खदान है! वाह-वाह, कैसे ख़ूबसूरत चित्र हैं! यह फ़ोटो—?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इनके पिता की है"—परी बोली।

"यह ?"

"मेरे पिता की।"

"मार्वलस (आश्चर्यजनक) !"

जिस समय परी चित्र का परिचय देने में लगी थी, उस समय फूल ने असीम का चित्र हाथ में उठा लिया—"इसे मैं लिये जाती हूँ, असीम बाबू !"

"मैं न दूँगी"—परी लौट पड़ी।

"ले चली, असीम बाबू।" फूलमती दरवाज़े की ओर बढ़ी। उन्मादिनी की तरह पति का हाथ पकड़कर परी बोली—"मेरी तसवीर दो।"

सबकी उपस्थिति भूलकर आदर से पत्नी को गले से लगाकर असीम ने पूछा—"क्या अभी फ़ोटो की ज़रूरत है, रानी ?"

उस चित्र को मैं नहीं दे सकती, ख़ून की लकीरों से वह बना है"—धीरे से उसने कहा।

कमरे में मृदु गुंजन होने लगा—"छिः, यह क्या है ?" केवल दवे-दंपति हँस रहे थे।

पति के बाहुबंधन से मुक्त हो परी ज़रा हटकर खड़ी हुई। "वह फ़ोटो परी नहीं दे सकती, फूलदेवी।"

आरक्त मुँह से फूल ने प्रश्न किया—"यह फ़ोटो रखने का उन्हें कुछ अधिकार भी है ?"

"है, क्योंकि इसी चित्र से परी ने अपने निरुद्देश्य पति को खोज निकाला है।"

"फिर परी, तुम्हारी—तुम्हारी—"

"हाँ, मेरी पत्नी हैं !"

असीम ने उस चित्र के नीचे सुनहले मोटे अक्षरों में लिखा—"परिचय"

मृग-मद-बिंदु

[श्री० हृदयनारायण पांडेय 'हृदयेश']

चिबुक का सुंदर-मृगमद-बिन्दु
रूप-वन में कर रहा शिकार,
बिन बिंधे लौटा हृदय न एक
वहाँ जो करने गया विहार।
छलकता छल-छल यौवन-जल,
चिबुक में स्थित शोभासर एक;
रूप-तृष्णा की दाहक प्यास
बुझाने पहुँचे हृदय अनेक।
वहाँ बैठा ठग मृग-मद-बिन्दु,
कराकर कुछ छवि-मदिरापान
रूप की देवी की बलि हेतु
चढ़ाता है उनका बलिदान।
मनुष्यों ने मृगमद के लिए
लिया था मृग-समूह का प्राण;
उसी का लेता है प्रतिशोध
बिन्दु पाकर अनंग-वरदान।

चिबुक-आसन पर हो आसीन,
मदन-धन्वा का कर संधान,
चलाता मोहन मारण बाण;
बेधता है मनुष्य के प्राण
चिबुक के सिंहासन पर बैठ
बिन्दु का धारण कर आकार,
दिखाने कवियों को निज झलक
रीझकर आया रस-शृंगार।
स्वर्ण रँग पर यह काला बिन्दु
क्यों न मोहे जन-मन अभिराम,
तड़ित लखते थे घन में, किन्तु
तड़ित में देखा लघु घनश्याम!
चिबुक-सर में डूबा है किसी
दग्ध प्रेमी का उर अभिराम;
वही उतराता है बन बिन्दु,
उसी की यह श्यामता ललाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण, और आकार में चरित्र का दर्शन

[प्रोफ़े० ईश्वरचंद्र शर्मा]

आकार से चरित्र का दर्शन बाण का आविष्कार है। बाण से पहले व्यवहार द्वारा चरित्र प्रकाशित होता था और आकृति शृंगार, करुण, वीरादि रसों का आलंबन बनकर चमकती थी। चरित जानने के लिए अत्यंत स्पष्ट चिह्न है वेष। वेष देखकर प्रायः सभी कुछ-न-कुछ चरित्र का अनुमान कर लेते हैं। किंतु आकार से मिला हुआ स्वभाव प्रत्येक की पहचान में नहीं आता।

रत्नों का अवांतर भेद-प्रभा के साथ झलमलाता रहता है। उसे पारखी की आँखें ही देख सकती हैं। तपस्या, सेवा, शौर्य आदि का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। यह शरीर के रूप से मिलने पर एकरंग होकर प्रकट होता है। चरित्र और आकार एकात्म हो जाते हैं। मुखमंडल पर चरित्र का प्रभाव लोकप्रसिद्ध है। आँखों में उसकी मूर्ति होती है। तपस्वी के तेजस्वी मुख पर दृष्टि डालते ही आनंदित हृदय अभिमानहीन होकर अपने-आप झुकने लगता है। क्रूर घातक की आँखों में हिंसा गरजती हुई दिखायी देती है। आनन-मंडल पर संक्रांत चरित्र प्राचीन कवियों की सूक्तियों से उज्ज्वल है। बाण ने भी इस पर अपनी शैली दिखायी है। पर अंग-अंग में चरित्र की आभा पहलेपहल बाण ने ही उन्मीलित की। मुख या आँख के समान इतर अंगों में, चरित्र के भेद से, कोई विशेषता नहीं आ जाती। अन्य अंगों को देखकर सज्जन और दुर्जन का पता नहीं चलता। पर पहले से चरित्र का ज्ञान होने पर मुख और आँखों में ही नहीं, अंग-अंग में चरित्र की छाप दिखायी देने लगती है। मन की इस प्रकृति को बाण ने आकार के साथ मिलाकर साकार बना दिया है।

इस प्रकार चरित्र की प्रतीति के लिए स्फुट-अस्फुट भाव की अपेक्षा से साधनों के तीन भेद हुए—वेष मुख और आँखों में संक्रांत प्रभाव और अंग-अंग पर चरित्र की छाप। वेष और मुखमंडल के प्रभाव का वर्णन प्रायः साथ-साथ रहता है। जटिल ब्रह्मचारी को देखिए। इस पर सहृदयकुल के वंदनीय कालिदास और बाण ने अपने-अपने ढंग से कहा है। जटाधारी ब्रह्मचारी के वेष में श्रीकालिदासजी महादेव को आँखों के सम्मुख इस प्रकार रखते हैं—

> अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्
> ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा।
> विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं
> शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ॥ ५-३० ॥
>
> (कुमारसम्भव)

अर्थात् मृगचर्म और पलाश का दंड धारण करनेवाले, भाषण में प्रगल्भ, ब्रह्मतेज से जलते-से किसी मुनि ने आश्रम में प्रवेश किया जो मानों सशरीर ब्रह्मचर्य-आश्रम था। यहाँ मृगचर्म, पलाशदंड और जटाएँ बिना कहे मुनि की सूचना दे रही हैं; ब्रह्मचर्य के प्रभाव से शरीर जलता-सा दिखायी देता है। इसी ब्रह्मचर्य-तेज के कारण वह साक्षात् ब्रह्मचर्य प्रतीत होता है।

अब बाण के हारीत को देखिए—'अत्यंत * तेजस्वी होने से उसकी ओर देखना कठिन था, मानों दूसरी आग थी। उदयकाल के सूर्यमंडल से मानों खोदकर बनाया गया था। बिजली से मानों उसके अंग बनाये गये थे। शरीर पर तपे सोने के पानी से मानों लेप किया हुआ था। कुछ पीली चमकीली देहकांति से दिन इस प्रकार का दिख रहा था मानों प्रातःकाल के सूर्य की धूप पड़ रही हो, और वन को इस प्रकार का कर रहा था मानो दावाग्नि लगी हो। अनेक तीर्थों में स्नान करने से पवित्र, तपे लोहे के समान लाल जटाएँ कंधे पर लटक रही थीं, जिनसे प्रतीत होता था, मानों खांडववन के जलाने की इच्छा से ज्वाला-पुंज को निश्चल करके विद्यार्थी के कपटवेष में भगवान् पावक हैं। दाहने कान में तपोवन के देवता के नुपूर के

* का०, पृ० ७०-७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान, स्फटिकमणि की कंकणाकार रुद्राक्षमाला लटकती हुई शोभा दे रही थी जो मानों धर्म का शासन करने के लिए मंडलाकार खड़ी हुई सेना थी। ललाट पर भस्म की तीन तिरछी रेखाएँ थीं जो मानों समग्र विषयों के भोग से निवृत्ति के लिए लिखी हुई तीन सच्ची प्रतिज्ञाएँ थीं। बायें हाथ में, ग्रीवा ऊपर उठाये स्फटिकमणि का बना, आकाश में उड़ने के लिए तैयार बगले-जैसे आकार का कमंडल था जो स्वर्ग का मार्ग-सा दिखा रहा था। कंधों के ऊपर से कृष्णसार मृग का श्याम और पांडु चर्म लटक रहा था, मानों तपस्या की इच्छा से पहले दिया हुआ धूम-पुंज अंदर से बाहर निकल रहा था। बायें कंधे पर लटकता हुआ मानों मृणाल के नवीन तंतुओं से बना, अत्यंत हलका होने के कारण वायु से चंचल यज्ञोपवीत पार्श्व की मांसहीन और बिरली-बिरली अस्थियों को गिन-सा रहा था। दायें हाथ में पलाश का दंड था जिसके अग्रभाग पर देव-पूजा के लिए वनलताओं के तोड़े हुए फूलों से भरा पत्तों का दोना रक्खा था। पीछे-पीछे नीवार की मुट्ठियों से पाला तपोवन का मृग आ रहा था जो परिचित होने के कारण सींगों पर स्नान के लिए खोदकर मिट्टी ला रहा था। कुशा, फूल और बेलों द्वारा व्याकुल किया जाने से उसकी दृष्टि चंचल हो रही थी।'

यहाँ जटाएँ, अक्षमाला, भस्म का तिलक, कमंडल, यज्ञोपवीत और पलाश का दंड हारीत को मुनिकुमार बताते हैं। पद्य में वेष की कुछ वस्तुएँ थीं, गद्य में उनकी संख्या बढ़ गयी। पद्य में ब्रह्मतेज से प्रज्वलित-सा कहकर आग के समान ब्रह्मचारी का तेज शरीर पर चमकता दिखाया गया है। गद्य में तेज यहाँ तक बढ़ा कि हारीत उदयकाल के सूर्यमंडल से खोदकर बनाया हुआ प्रतीत होता है। अंग बिजली के प्रतीत होते हैं और बाहर सोने का पानी-सा चढ़ा दिखायी देता है। शरीर से तेज का पुंज-सा उठता हुआ दृष्टिगोचर होता है। फिर शरीर ही प्रदीप्त नहीं, शरीर की कांति फैलकर दिन में दोपहर के समय प्रातःकाल की धूप प्रकाशित करती है। शरीर-कांति ने अपनी तीव्रता से दोपहर तक का रंग बदल डाला; वन में फैलकर आग-सी लगी दिखा दी। पद्य में महादेव जटिल वेष से शरीर में बँधे ब्रह्मचर्य प्रतीत होते हैं। गद्य में ब्रह्मचर्य से होनेवाले तेजस्वी आकार का ही प्रकाश है। उसके दूसरे प्रभावों का इकट्ठा सामान्य भाव से वर्णन नहीं है। वेश की शोभा दिखायी है और उसके अंदर से तपस्या के गुणों की मूर्ति अंकित कर दी है। जटाओं से केवल ब्रह्मचर्य-आश्रम की सूचना थी, पर हारीत तपे लोहे-से लाल कंधे पर लटकनेवाली जटाओं के कारण विद्यार्थी के कपटवेष में खांडववन का दाहक अग्निदेव दिखायी देता है। कान में अक्षवलय था, वह मानों धर्मशासन के लिए मंडलाकार सेना थी। इससे वेष के साथ धर्म में दृढ़ता का ज्ञान होता है। भस्म की ललाट पर लगी तीन तिरछी रेखाएँ मानों भोग के त्याग की सूचना देनेवाली सच्ची तीन बार की हुई प्रतिज्ञाएँ थीं। अब भस्म के त्रिपुंड्र से केवल ब्रह्मचारी होने की सूचना नहीं मिलती, भोग से पराङ्मुख होने की प्रतिज्ञा भी सुनायी देती है। कृष्ण मृगचर्म है तो उससे तप में पिया हुआ धूम बाहर निकलता दिखायी देता है। वेष की अन्य वस्तुएँ भी ब्रह्मचर्य आश्रम का प्रभाव प्रकट करती हैं। और जो वस्तुएँ केवल प्रथमाश्रम का चिह्न हैं, उनका भी आश्रमोचित सौंदर्य देखने ही योग्य है। हाथ में पलाश का दंड है; पर वही नहीं, उसके शिखर पर वनलताओं के फूलों से भरा पत्तों का दोना भी है। पीछे-पीछे आनेवाले हिरण को देखते आँखें नहीं थकतीं। खोदकर सींगों पर स्नान के लिए मिट्टी लाता हुआ बहुत ही प्रिय लगता है। कुशा, फूल और लताओं के आ पड़ने से व्याकुल चंचल आँखें देखकर कौतुक होता है, आनंद होता है और हँसी आती है। जी चाहता है, हिरन की आँखें व्याकुल होती रहें और देखते रहें।

यह हुई ब्रह्मतेज की तीव्रता; अब उसकी सौम्य मूर्ति के सामने आइए। महाकवि भारवि व्यास का चित्र अंकित करते हैं—

ततः शरच्चन्द्रकराभिरामै-
रुत्सर्पिभिः प्रांशुमिवांशुजालैः ।
बिभ्राणमानीलरुचं पिशङ्गी-
र्जटास्तडित्वन्तमिवाम्बुवाहम् ॥ ४-१ ॥
प्रसादलक्ष्मीं दधतं समग्रां
वपुःप्रकर्षेण जनातिगेन ।
प्रसह्य चेतःसु समासजन्त-
मसंस्तुतानामपि भावमार्द्रम् ॥ ४-२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुद्धताकारतया विविक्तां
तन्वन्तमन्तःकरणस्य वृत्तिम्।
माधुर्यविश्रम्भविशेषभाजा
कृतोपसंभाषमिवेक्षितेन ॥ ४-३ ॥
(किरातार्जुनीय)

अर्थात्—अर्जुन ने व्यास को देखा, जो शरचंद्र की किरणों के समान सुंदर फैलनेवाली किरणों से ऊँचा-सा प्रतीत होता था। पीली जटाएँ थीं; बिजली से अलंकृत श्याम मेघ के समान था। लोगों की अपेक्षा बढ़े-चढ़े उत्तम शरीर से प्रसाद की पूर्ण शोभा धारण करता था। अपरिचित लोगों के मन में भी बलात् स्नेह से आर्द्रभाव उत्पन्न कर रहा था। शांत आकार से अंतःकरण की वृत्ति को पवित्र कर रहा था। विशेष माधुर्य और विलास से भरी दृष्टि द्वारा मानों वार्तालाप कर रहा था।

शांत मुनि की शरीर-किरणें, शरत्चंद्र की किरणों के समान ही होनी चाहिए। पीली जटाओं से मुनि का सौम्य भाव, बिजलीवाले मेघ की उपमा से शांत और सुंदर प्रतीत होता है। तप के प्रभाव से शांत आकार अंतःकरण में पवित्रता ला रहा था और सरल दृष्टि द्वारा मानों मीठी-मीठी बातें कर रहा था। बाण ने बौद्ध परिव्राजक दिवाकर मित्र की तेजस्विता रत्न के समान शीतल बतायी है। वेष भिन्न है, पर प्रभाव समान है—'अरुणेन चीवरपटलेन मन्दीयसा सवीतं बहलबालातपानुलिप्तमिव पौरन्दरं दिग्भागं उल्लिखित-पद्मरागप्रभाप्रतिमया रक्तावदातया देहप्रभया पाटली-कृतानां काषायग्रहणमिव दिशामप्युपदिशन्तम्, अनौद्धत्यादधोमुखेन मन्दमुकुलितकुमुदाकारेण स्निग्धधवल-प्रसन्नेन चक्षुषा जनक्षुण्णक्षुद्रजन्तुजीवनार्थममृतमिव वर्षन्तम् (हर्षचरित पृ० २३७।) अर्थात्, लाल कोमल चीवर के पहनने से, प्रातःकाल की अरुण धूप से भरे पूर्वदिशा के भाग के समान था। अरुण उज्ज्वल वर्ण की छिली पद्मरागमणि के तुल्य, देहकांति दिशाओं को अरुण करके मानों गेरुवे वस्त्र पहना रही थी। उद्धत न होने से नीची, अधखिली, कुसुमकली के आकार की स्निग्ध श्वेत और प्रसन्न आँख द्वारा, लोगों के पैरों से पिसे क्षुद्र जंतुओं को जीवन देने के लिए मानों अमृत की वर्षा कर रहा था।

व्यास की देहप्रभा शरच्चन्द्र की किरणों के समान शीतल और श्वेत थी; दिवाकर मित्र की देहप्रभा छिले पद्मराग के समान शान्त और अरुण। वह पीली जटाओं से बिजलीवाले मेघ की उपमा रखता था और यह अरुण चीवर से उदयकाल के सूर्य की धूप से भरे पूर्व दिशा के भाग की। उसकी मधुर आँखों से वार्तालाप-सा होता था, तो इसकी नम्र आँख क्षुद्र जन्तुओं के जिलाने के लिए अमृत-सा बरसा रही है। कुमारसंभव के पद्यों के समान भारवि के पद्यगद्य के साथ वेषादि की समानता नहीं रखते हैं, इसलिए तुलना के बाहर हैं।

अङ्ग-अङ्ग पर चरित्र की छाप दिखाने का अवसर आ पहुँचा है। इसका उदाहरण भी तपस्वी की प्रतिमा में लीजिए। पुण्डरीक नामक नवयुवक मुनिकुमार के अङ्गों में तप का तेज है और नवयौवन का विकार भी। पुण्डरीक की प्रकृति तीनों साधनों से अभिव्यक्त हुई है—'वह मानों हर की नेत्राग्नि में ईंधन बने हुए कामदेव के शोक से व्याकुल वसन्त था जो तपस्या कर रहा था। महादेव के सिर का, सम्पूर्ण मण्डल की प्राप्ति के लिए, व्रत किये हुए चन्द्रमा था। महादेव को वश में करने के लिए मानों काम व्रत कर रहा था। अत्यन्त तेजस्वी होने से बिजली के चञ्चल पंजर के या ग्रीष्मकाल के सूर्यमण्डल के या आग के ज्वाला-पुञ्ज के मध्य में खड़ा-सा दिखायी दे रहा था। दीपक के प्रकाश के समान पीली देह-प्रभा अधिकाधिक निकल रही थी जिससे वन कपिलवर्ण का हो गया और वह सारा स्थान सुवर्णमय-सा होने लगा। गोरोचन के रस में भीगे सूत्र के समान कोमल और पीली जटाएँ थीं।... अत्यन्त विशाल होने से नेत्रों की माला-सी गुथी थी, मानों सम्पूर्ण हिरनों ने नेत्र की शोभा बाँट दी थी।......नवयौवन के राग ने हृदय में प्रवेश न प्राप्त करके मानों सारे प्रयत्न से होंठों को अरुण कर दिया था। कामदेव के धनुष की गोल की हुई प्रत्यञ्चा से या तपरूप सर की कमलिनी के मृणाल से यज्ञोपवीत द्वारा अलंकृत था।......अनेक विद्या-नदियों के संगम से उत्पन्न भँवर के समान नाभि शोभा दे रही थी। उदर पर अंजन की रेखा के समान श्याम और अत्यन्त सूक्ष्म रोमराजि थी, जो मानों ज्ञान द्वारा अन्दर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हटाये मोहरूप अन्धकार के जाने की पगडंडी थी। कटि के चारों ओर मूँज की मेखला थी जिसके कारण वह मानों अपने तेज से सूर्य को जीतकर छीना हुआ परिवेष-मण्डल-सा प्रतीत होता था। (का० पृ० २६३—६५)

पुण्डरीक सुन्दर और यौवन के विकारों से भरा था। तपस्वी वसन्त या कामदेव के समान उसका आकार ही कह देता है। यज्ञोपवीत में तपस्या भी दिखायी देती है, और काम के धनुष की गोल की हुई प्रत्यञ्चा भी न जाने कब खुलकर बाण फेंकने लगे। तेज से आग, बिजली और सूर्य की तरह चमकता दिखायी देता है। पीली जटा मुनिवेष है। नेत्रों की अद्भुत विशालता है, मानों माला है। अधर में अरुण वर्ण ही नहीं, नव-यौवन का राग भी मूर्तिमान् है। नाभि को देखकर नाना विद्याओं का पाण्डित्य ज्ञात हो जाता है। उदर की रोमराजि में ज्ञान का प्रभाव प्रत्यक्ष है। मूँज की मेखला से तपस्या के उग्र प्रभाव को जान लो। पुण्डरीक की सारी प्रकृति नेत्रों के सामने धर दी है। नाभि का गहरा मण्डल और अधर का अरुण वर्ण ही दिखायी दिया करता है, पर चमत्कार देखिए; विद्याओं के संगम और यौवन का चंचल राग दृष्टिगोचर है।

अङ्गों में राजभाव का प्रतिबिम्ब इस प्रकार है—'क्षौम-[1] पाण्डुरेण चरणनख-दीधितिप्रतानेन प्रसरवा महीं महा-देवीपदबन्धेनेव महिमानमारोपयन्तम्'—अर्थात् चरण-नखों की किरणों का क्षौमवस्त्र के समान श्वेतविस्तार हो रहा था, मानों महादेवी पद की सूचना देनेवाला भूषण पहनाकर पृथिवी की महिमा बढ़ा रहा था। राजा के अतिरिक्त पृथिवी को कौन महारानी बना सकता है ? हर्षवधन चरणनखों से पृथिवी के अधिपति प्रतीत होते हैं।

दाँत हैं तो वे राजलक्ष्मी को प्रकाश दिखा रहे हैं — 'अन्तरान्तरा[2] सुहृत्परिहासस्मितैः प्रकीर्यमाणविमल-दशनशिखाप्रतानैः प्रकृतिमूढायाः राजश्रियाः प्रज्ञा-लोकमिव दर्शयन्तम्'—अर्थात् बीच-बीच में मित्रों के परिहास से मुस्कराने पर दाँतों की निर्मल किरणें बिखर जाती थीं, मानों स्वभाव से मूढ़ राजलक्ष्मी को बुद्धि का प्रकाश दिखा रहा था।

• कुमारगुप्त और माधवगुप्त के अङ्गों में स्वामिभक्ति, विनय और पराक्रम का दर्शन होता है। 'कुमारगुप्त[1] अत्यन्त विस्तृत वक्ष से मानों स्वामी की अनन्त आशाओं को स्थान दे रहा था। लटकती भुजाओं के सुन्दर हिलने से मानों यौवन के अत्यन्त दुस्तर समुद्र में तैरता आ रहा था।...... निश्चल नीची आँख से मानों लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए उठे मुखवाले कमलों को विनय की शिक्षा दे रहा था। और, माधवगुप्त अत्यन्त धीर होने से हृदय में स्थित स्वामिभक्ति-सी निश्चल दृष्टि धारण कर रहा था। उसका अत्यन्त स्वच्छ चन्दनरस के लेप से शीतल, हार से अलंकृत वक्षःस्थल मानों अनेक सामन्तों के पास घूमने से थकी लक्ष्मी के लिए चन्द्रकान्तमणि की शिला से बनी शय्या थी जिसमें हार तकिया था।

व्यायामशील पुरुष की छाती फैल जाती है। कुमार-गुप्त की विस्तृत छाती जहाँ उसके बल की सूचना देती है, वहाँ महाराज हर्षवर्धन का अपने सेवक पर पूरा विश्वास भी दिखाती है। यौवन की चढ़ती नदी में लोग डूबने लगते हैं, पर यह यौवन के अपार समुद्र को पार करता जा रहा है। भुजाओं को देखिए, यही कह रही हैं। नीची आँख तो विनय का स्पष्ट चिह्न ही है।

माधवगुप्त की स्थिर दृष्टि मानों साक्षात् स्थिर स्वामिभक्ति है। नीची दृष्टि के समान स्थिर दृष्टि स्वामिभक्ति का प्रसिद्ध चिह्न नहीं है। पर यहाँ हृदय का अमूर्त भाव विनय के समान मूर्तिमान् हो रहा है। सामन्त शत्रुओं को जीतकर महाराज की लक्ष्मी बढ़ाते हैं। माधवगुप्त अकेला अनेक सामन्तों से बढ़कर है, तभी तो उसकी छाती लक्ष्मी के लिए विश्राम की शय्या है।

यहीं पर माधवगुप्त के सुन्दर अङ्गों में पराक्रम की झलक दिखायी गयी है—'चक्षुः[2] कुरङ्गकैः, घोणावंशं वराहैः, स्कन्धपीठं महिषैः, प्रकोष्ठबन्धं व्याघ्रैः, पराक्रमं केसरिभिः, गमनं मतङ्गजैः, मृगयाक्षपितशेषैर्भीतैरुत्कोच-मिव दत्तं दर्शयन्तम्'—अर्थात् आखेट में जो प्राणी मर गये उनके बाद बचे प्राणियों ने डरकर जो रिश्वत दी, उसे माधवगुप्त अपने अङ्गों से दिखा रहा था। हिरनों ने आँख, सुअरों ने नासिका, भैंसों ने कन्धा, बाघों ने प्रकोष्ठ, केसरियों ने पराक्रम और हाथियों ने गति दी थी।

१ ह० च०, पृ० ७२। २ ह० च०, पृ० ७३।

१ ह० च०, पृ० १३६। २ ह० च०, पृ० १४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमदेवसूरि ने कुछ-कुछ इसी ढंग पर अभयरुचि-नामक मुनिकुमार और अभयमति-नामक मुनिकुमारिका के अङ्गों का वर्णन किया है। पर उसमें सौन्दर्य के अतिरिक्त किसी मुनिजनोचित स्वभाव का दर्शन नहीं होता। 'किञ्च' नीलमणिसस्यानि कुन्तलेषु, शिशिरकर-परार्धतां भालयोः, तरङ्गरेखाशिवल्लीषु, रत्नसमुच्चयं लोचन-युगलयोः, कौस्तुभोत्पत्तिं कपोलेषु, अमृतधाराप्रवाहं नासयोः, गम्भीरत्वमालापेषु, प्रवालपल्लवोल्लासं रदन-च्छदयोः, सुधारसप्रभाः स्मितिषु, प्रचेतःपाशाश्रवण-विषये, कम्बुकान्तिं कण्ठयोः, वीचिविलासितानि बाहुसु, लक्ष्मीचिह्नानि करतलेषु, रमावेशमशोभामुरः-स्थलयोः, वेत्रवेल्लवानि वलिषु, आवर्तविभ्रमं नाभि-देशयोः, पृथुत्वं नितम्बदेशे, वृत्तिगणनिर्माणमूरुषु, मुक्ताफलप्रसूतिं चरणनखेषु लावण्यरसनिर्भरत्वं चास्य मिथुनस्य तनौ, अनेन सृजता प्रजापतिना नूनं सपरिवारः पारावर एव परं दारिद्र्यमानिन्ये'—अर्थात् इस युगल शरीर की रचना करके प्रजापति ने परिवार सहित समुद्र को अवश्य ही अत्यन्त दरिद्र बना दिया। केशों में नीलमणियाँ, मस्तकों में चन्द्रमा का सौंदर्य, भौंहों में लहरों की रेखाएँ, नेत्रों में रत्न, कपोलों में कौस्तुभ, नासिकाओं में अमृतधारा का प्रवाह, वार्तालाप में गम्भीरता, होठों में विद्रुम की कोंपलें, मुस्कान में अमृतरस की प्रभा, कानों में वरुण के पाश, कण्ठों में शङ्ख की कान्ति, भुजाओं में लहरों के विलास, हाथों में लक्ष्मी के चिह्न, छाती में लक्ष्मी के मन्दिर की शोभा, उदर की रेखाओं में बेंत का झूमना, नाभियों में भँवर का विलास, नितम्ब में विशा-लता, ऊरुओं में गोलतन्तुओं की रचना, चरणनखों में मोतियों की उत्पत्ति और शरीर में लाव-ण्यरस रख दिया।

समुद्र दरिद्र हो गया; पर मुनियों के लिए हुआ या किसी और के लिए, यह नहीं ज्ञात हुआ। अंगों को देखकर कोई मुनियों के अंग नहीं कह सकता।

दूसरे स्थान पर इसी युवक के अंगों में मुनियों का चिह्न प्रकट किया है। 'अरण्यप्रेम्णा प्रसन्नव्याजेन कम-लसर इव, भुजच्छद्मना लतारामभिवो, रुभिषेण कदली-काण्डकाननमिव, चलनलक्षेण शोकवनमिव च सहानयमा-नम्'—अर्थात् वह युगलवन के साथ प्रेम होने के कारण मुख से कमलसर, भुजाओं से लताओं का उद्यान, ऊरुओं से केले के तनों और चरणों से अशोक का वन मानो साथ ला रहा था।

मुख और भुजा आदि वन के निवास का परिचय देकर सौंदर्य प्रकाशित करते हैं। अंगों ने अपनी विशेषता से मुनिपन बतला दिया। पर एक कमी रह गयी। मुनि-युगल अपने वनप्रेम से कमल-लता आदि को ले आया। वन ने प्रसन्न होकर अपनी वस्तुएँ भेंट नहीं कीं; ये दोनों ले आये। पर संभव है, वन न देना चाहता हो। यदि वन इनके प्रेम से प्रसन्न होकर देता तो कुछ और ही शोभा होती। माधवगुप्त को भीत प्राणी रिश्वत देते हैं, जो वीरोचित है।

यशोऽर्घ नामक नरेश को उसके चरित्र की कीर्ति से प्रसन्न होकर मंदर आदि ने स्थैर्य आदि दिया, पर वह सब अंगों में स्पष्ट प्रत्यक्ष नहीं है। इस प्रकार यहाँ भी सोमदेव सूरि पूरा अनुकरण नहीं कर सके—'जिसको उत्तम चरित्र की कीर्ति-चंद्रिका से प्रसन्न होकर बहुतों ने मानों सर्वस्व दे दिया। मंदर पर्वत ने स्थैर्य, समुद्र ने गंभीरता, कामदेव ने सौंदर्य, बृहस्पति ने नीतिशास्त्र का रहस्य, पारिजात ने आश्रय होने की योग्यता, पृथिवी ने क्षमा, आकाश की लक्ष्मी ने महत्त्व—सरस्वती ने वाणी में, लक्ष्मी ने आज्ञा में, चिंतामणि ने मन में, कुलदेवी ने शरीर में, यम ने सब लोगों को अधीन रखने में सिद्धि दी। इसी प्रकार वरुण-कुबेर आदि ने भी अपने अंश दिये जो मानो कुल-धन थे।'

वचन प्रमाण मानकर देने का विश्वास हो सकता है, प्रत्यक्ष नहीं है। महाकवि धनपाल ने सोमदेव सूरि से बढ़कर इस रीति में अनुकरण किया—'इंदुकांततट-लावण्यं ललाटेन, शुक्तिसौंदर्यं श्रवणयुगलेन, मौक्तिका-कार दतकुड्मलैर्विद्रुमरागमोष्ठेन, कम्बुसौभाग्य कण्ठेन, पुलिनभागमुरसा, तरंगायामं भुजाभ्यामावर्तगाम्भीर्यं नाभिमण्डलेन, सततपाशोपमदं शीठितादर्शं दिवोपचारेण प्राप्तमुपदर्शयन्तम्' नाविकयुवानम्। (तिलकमंजरी, पृष्ठ १०८)

अर्थात्—तारक नाम का मल्लाह ललाट से चंद्रकांत का

१. यश०, पृ० १६१

२. यश०, पृ० १५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंदर्य, कानों से सीपियों का सौंदर्य, दांतरूप कलियों से मोतियों का आकार, ओष्ठ से विद्रुम का रंग, कण्ठ से शंख का सौभाग्य, छाती से पुलिन [तट का रेतीला भाग] का विस्तार, भुजाओं से लहरों की लंबाई और नाभि से भँवरों की गम्भीरता दिखा रहा था। निरंतर उसके जाल से पीड़ित समुद्र ने मानों यह सब भेंट में दिया था।

सोमदेव के यहाँ, समुद्र के दरिद्र होने पर भी, अंगों में सौंदर्य के अतिरिक्त कुछ नहीं था, पर धनपाल के तारक को देखिए तो झट प्रतीत होता है कि कोई समुद्र-यात्रा में निपुण नाविक है। फिर भी माधवगुप्त का जो प्रभाव वन के प्राणियों पर है, वह तारक का समुद्र पर नहीं। समुद्र चन्द्रकांत न देकर उसका सौंदर्य देता है। वस्तु का गुण देता है, वस्तु नहीं देता। पर डर के मारे प्राणी अपने अंग हा दे रहे हैं। जिसके पास जो उत्तम अंग था, उसने वहा दे डाला।

विस्तार हो गया, इसलिए एक ही उदाहरण देकर समाप्त करता हू। स्कन्दगुप्त महाराज हर्षवर्धन के गजाध्यक्ष थे। उनका अंग-अंग उन्हें हाथियों का अधिकारी बता रहा है—'स्वामी की कृपा से प्राप्त महान् अधिकार और स्वाभाविक प्रभाव से मानों समुद्रों को हाथियों के कानों के लिए असंख्य शंखों के इकट्ठा करने की आज्ञा दे रहा था, या पर्वतों को गेरू आदि सजावट के सामान का संग्रह करने के लिए आज्ञा दे रहा था, अथवा दिशाओं के ऊपर से दिग्गजों का अधिकार या इंद्र का ऐरावत छीन रहा था।...गति के कारण चंचल, घुटनों तक लंबी भुजाओं के हिलाने से मानों दोनों ओर हाथियों के बाँधने के लिए स्तम्भ गाड़ता जा रहा था। कुछ ऊँचे लंबे अधरबिंब के कारण मानों अमृत-रस के समान स्वादु, नयी कोंपल के समान कोमल ग्रास से लक्ष्मी की हथिनी को लुभा रहा था।'

छोटा मोटा अधिकार नहीं, समुद्रों और पर्वतों को आज्ञा देता है। अधर लक्ष्मी की हथिनी के लिए बहुत ही सुंदर ग्रास है, देखते ही दौड़ती आयगी।

चिड़चिड़ाते कमज़ोर
बच्चे
डोंगरे का
बालामृत
पीने से
तन्दुरुस्त, ताक़तवर, पुष्ट
व आनंदी बनते हैं।

नक़ली दवा से ख़बरदार रहो।
क़स्बे-क़स्बे में बिकता है।

• C. B. NO 31
मालिक—के० टी० डोंगरे कं० गिरगाँव, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुं० महाराजबहादुर 'वर्क़' देहलवी और उनका कलाम

[श्री० इक़बाल वर्मा 'सेहर']

सम्प्रति शृंगार से साधारणतः जो अर्थ लिया जाता है उस दृष्टि से तो हम यह कदापि नहीं कह सकते कि उर्दू-काव्य-जगत् से वह संपूर्णतः बहिष्कृत हो चुका है, परंतु इस ओर होनेवाले प्रयत्नों से कौन इनकार कर सकता है? विकास-वाद के सिद्धान्तानुसार हम यह कह सकते हैं कि शृंगार शनैः-शनैः अपनी प्रारम्भिक श्रेणियों से गुज़रता और आपेक्षिक कृत्रिमताओं को छोड़ता हुआ अपने उपासकों को उस ओर लिये जा रहा है जहाँ शृंगार का आदि-स्रोत है। प्रेमिका के सौंदर्य एवं प्रेमिक के हृद्‌गत भावों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रथम काव्यश्रेणी की विशेषता है जिसमें प्रायः उन सभी कवियों एवं महाकवियों को शामिल किया जा सकता है, जिन्हें उर्दू-काव्य एवं साहित्य का निर्माता कहना चाहिए। गत शताब्दी के लगभग मध्य से आज़ाद, हाली और अकबर ने इस श्रेणी में विस्तीर्णता लाने का प्रयास किया और अतिशयोक्ति से बचकर यथार्थवाद का आश्रय लेना अपना कर्त्तव्य एवं नवयुग का धर्म समझा। फलतः प्रकृति और तज्जन्य घटनाओं एवं परिस्थितियों से संपर्क रखनेवाली कविताओं का श्रीगणेश हुआ। यही द्वितीय श्रेणी है जिसमें इक़बाल, सुरूर, चकबस्त आदि सभी हाल के बड़े-बड़े उर्दू-कवि आ जाते हैं। तृतीय श्रेणी का संबंध रहस्यवाद या आदर्शवाद से है और इसके सिलसिले में असग़र गोंडवी, जिगर मुरादाबादी, फ़ानी जायसी आदि के नाम निःसंकोच लिये जा सकते हैं। इस दिशा में अभी काम थोड़ा ही हुआ है, पर जो कुछ हुआ है वह अच्छाई और सफ़ाई के साथ। इस काम में काव्य की सार्थकता भले ही हो, पर यह तो प्रकट ही है कि सामान्य काव्यप्रेमियों को अभी बहुत दिनों तक वही काव्य ग्राह्य एवं रुचिकर होगा, जिसे वे अपने मस्तिष्क-विकास के अनुसार आसानी से समझ

'वर्क़' देहलवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेंगे। रह गयी वैसे काव्य से आनंद प्राप्त करने की बात सो वह तो सामान्य एवं विशेष, उभय प्रकार के काव्यप्रेमियों पर समानतः लागू होती है। ऐसा ख़याल करते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस ज़माने में द्वितीय श्रेणी का काव्य ही बहुजनप्रियता की सनद हासिल कर सकता है। इसी श्रेणी के अंतर्गत वह काव्य भी बहुत कुछ आ जाता है, जिसका संबंध प्रथम श्रेणी से है। कारण, वह भी प्रकृति से बाहर की वस्तु नहीं। इसीलिए हम देखते हैं कि आज भी उसके लिखनेवाले पर्याप्त संख्या में मौजूद हैं—हाँ, लेखन-शैली तो अवश्य ही परिष्कृत हो गयी है। अनुमान होता है कि वह क्रमशः उन्नत होता हुआ यथासमय या तो द्वितीय श्रेणीवाले काव्य का रूप धारण कर लेगा, या फिर उस श्रेणी को केवल स्पर्श करता हुआ उसी तृतीय श्रेणी पर पहुँच जायगा जहाँ जीवात्मा परमात्मा को ही अपना प्रेम-पात्र समझ उसी को अपने वियोग की दर्दभरी दास्तान सुनायेगा और अंततः उसी पर अपने-आपको निछावर कर देगा। ख़ैर, भविष्य कुछ भी हो, पर वर्तमान में तो उपर्युक्त तीनों श्रेणियों के होते हुए भी द्वितीय श्रेणीवाली कविताओं की ओर ही अधिक प्रवृत्ति दिखायी देती है जिनमें धर्म, नीति, इतिहास, प्रेम, प्रकृति, सामाजिकता, राष्ट्रीयता सभी के दृश्य दृष्टिगत होते हैं। ऐसी कविताओं की रचना जिन ख्यातनामा उर्दू-कवियों द्वारा हो रही है, उन्हीं में मुं० महाराज-बहादुर 'वर्क़' देहलवी की भी गणना हो सकती है।

वर्क़ साहब सकसेना-कायस्थ और प्रकृत कवि हैं। उन्हें कवित्व तर्के में मिला है—पिता से भी और मातृ-कुल से भी। उनके पिता का नाम मुं० हरिनारायणदास और उपनाम 'हसरत' था, जो उनके उर्दू-काव्य में प्रयुक्त होता था। हमारे चरितनायक के नाना मुं० दौलतराम 'इबरत' बड़े पाये के उर्दू-कवि थे और महा-कवि उस्ताद ज़ौक़ के शिष्य थे। वह एक काव्य-संग्रह (दीवान) भी छोड़ गये हैं जो उनकी काव्य-सफलता का प्रमाण है। वर्क़ साहब की माता भी बहुत पढ़ी-लिखी तो न थीं, पर नन्हें कवि को रामायण अवश्य सुनाया करती थीं। उन्होंने उसे 'गुलबकावली' के भी कुछ पद याद करा दिये थे, जैसे—

हैं है मेरा फूल ले गया कौन, हैं है मुझे दाग़ दे गया कौन ;
शबनम के सिवा चुरानेवाला, ऊपर का था कौन आनेवाला।

इत्यादि। इसके अतिरिक्त प्रकृति की सबसे बड़ी देन यह थी कि उनका जन्म देहली-जैसे प्रसिद्ध नगर में हुआ था, जिसके वातावरण में अब भी उर्दू-कविता की गूँज है और जो अब भी वैसी कविता का केन्द्रस्थान माना जाता है। उसी एक नगर को यह गौरव प्राप्त है कि मीर, ग़ालिब, ज़ौक़, मोमिन प्रभृति अनेक उर्दू-महा-कवियों का संबंध उससे रहा, जिनकी जोड़ के कवि न संसार पैदा कर सका और न आगे पैदा कर सकेगा; क्योंकि अब तो कविता का रंग-ढंग ही और है। ऐसे स्थान में रहते हुए तो अरसिक में भी रसिकता आ सकती है; फिर उस व्यक्ति का क्या कहना जिसकी घुट्टी में ही काव्य-रस पड़ा हो और जिसे वहाँ रहते पीढ़ियाँ बीत गयी हों। वर्क़ साहब का असली वतन क़स्बा सकीट, ज़िला एटा है जहाँ से उनके पूर्वजों ने इस्लामी शासन-काल में देहली जाकर बड़े-बड़े सरकारी पदों को सुशोभित किया था, अतः वहीं रह भी गये थे।

वर्क़ साहब जुलाई सन् १८८४ ई० में पैदा हुए थे। कुछ बड़े होने पर बचपन से ही उनमें कवित्व का विकास दिखने लगा था। लिखने के पूर्व ही उन्हें कविताओं के सुनने में बड़ा मज़ा आता था। इस प्रकार उन्हें सैकड़ों पद याद भी हो गये थे जिन्हें वह अपनी बालोचित रीति पर मज़े ले-लेकर पढ़ा करते थे। पढ़ने-लिखने की उन्नति के साथ ही यह शौक़ भी बढ़ता गया और उनमें 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति चरि-तार्थ होती हुई दिखने लगी। गुणग्राही पिता को पुत्र के इस गुण-प्रदर्शन पर संतोष एवं गर्व था। वह कविताओं को सुनकर ख़ुश होते और कभी-कभी सुधार भी देते। पिता-पुत्र में स्नेह भी अधिक था। कारण, वर्क़ साहब अपने ५-६ भाइयों और १ बहन की मृत्यु के पश्चात् पिता की ढलती आयु में पैदा हुए थे। यह सब होते हुए भी वह इस ख़याल से विशेष प्रोत्साहन न देते थे कि कहीं उससे पुत्र की शिक्षा में बाधा न पड़े। उनकी यह शंका निर्मूल थी। न तो वर्क़ साहब की शिक्षा में कोई कमी हुई और न उनके काव्यप्रेम में, यहाँ तक कि वह सन् १९०३ ई० में इन्ट्रेंस पास हो गये और साथ ही उन्हें काव्यरचना में भी इतनी योग्यता प्राप्त हो गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह कवि-सम्मेलनों में शरीक होकर अपने कलाम की दाद लेने लगे। उनकी शुहरत भी बढ़ चली।

अभी तालीम का सिलसिला जारी ही था कि फ़रवरी सन् १६०५ में उनके पिता का देहांत हो गया। चलते हुए काम में रुकावट पैदा हो गयी और उन्हें लाचारी में पढ़ना छोड़कर उसी दफ़्तर में एक मामूली नौकरी कर लेनी पड़ी जिसमें अब वह एक पदाधिकारी हैं। इस प्रकार परिस्थितियों ने 'मनुष्य' की दशा में कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य उत्पन्न कर दिया, परन्तु 'कवि' की दशा में उनका अन्तरपरक प्रयत्न विफल होकर ही रहा। नौकरी की मजबूरियों में भी काव्यरचना का क्रम बना ही रहा। इस समय आप पोस्टल आडिट आफ़िस, देहली में सुपरिंटेंडेंट के बड़े और ज़िम्मेदारी के पद पर काम कर रहे हैं ; पर अब भी आप काफ़ी लिखते हैं और ख़ूब लिखते हैं। पहले सन् १६०४ ई० में आपने अपना कुछ कलाम महाकवि दाग़ देहलवी को दिखलाया, फिर उन्हीं की प्रेरणा से आप आग़ाशायर देहलवी के शिष्य हुए जो महाकवि दाग़ के शिष्य और स्वयं महाकवि कहलाने योग्य हैं। इस प्रकार वर्क़ साहब को चाहे दाग़ का शिष्य कहिए चाहे आग़ाशायर का, पर यह सब शिष्यत्व था नाम-मात्र का ही। कारण, शिष्य की रचना-शैली गुरुओं से सर्वथा भिन्न हो चली थी और वह स्वयं शिष्य की निम्न श्रेणी से शीघ्रतापूर्वक निकलकर गुरु का उच्च पद प्राप्त कर रहा था।

यहाँ यह भी बतला देना ज़रूरी है कि वर्क़ साहब की साधारण शिक्षा में जो परिस्थितिजन्य न्यूनता आ गयी थी, उसकी भी उन्होंने शनैः-शनैः अपने अदम्य उत्साह और अविरल प्रयत्न द्वारा पूर्ति कर ली। उन्होंने सन् १६१८ ई० में मुंशीफ़ाज़िल* की परीक्षा पास की; फिर सन् १६१६ ई० में एफ़० ए० पास किया और सन् १६२० ई० में पंजाब-युनिवर्सिटी से बी० ए० की डिगरी प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् सन् १६२२ ई० में अपने महकमे की Sub Account Service का परीक्षा पास की, जो आपकी पदोन्नति में सहायक हुई। परीक्षा-संबंधी सारा काम उन्होंने ऐसे समय में किया जब वह अपने कंधों पर दो-दो ज़िम्मेदारियों का भार लिये हुए थे—कविता का इच्छा से और नौकरी का परिस्थितिवश। दुनिया के बन्दे पहली ज़िम्मेदारी को कुछ भी न समझेंगे, परंतु कवि-हृदय तो एक बार खाना-पीना भूल कर भी पहली को दूसरी पर प्रमुखता देगा और इस दूसरी को अपने लिए अस्वाभाविक समझकर उतनी ही इच्छा से निभायेगा जिसे 'अनिच्छा' कह देना भी अनुचित न होगा। अस्तु, वर्क़ साहब ने जिस शीघ्रता से परीक्षाएँ पास कीं, वह उन्हीं जैसे कुशाग्र-बुद्धिवाले का काम था।

उनकी प्रकाशित कविताओं में सबसे पहली कविता "अमले ख़ैर[1]" थी जो जनवरी सन् १६०८ ई० में देहली की 'ज़बान' नामी मासिक पत्रिका में छपी थी, और यही वह कविता थी जिसने हमारे कवि को ग़ज़ल के कवि से प्रकृति का कवि बना दिया था। कविता होनहार कवि के अनुरूप ही थी जो बड़ी प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देखी गयी। वह इतनी सर्वप्रिय हुई कि अनेक बार पृथक् रीति पर छापी गयी। वस्तुतः कविता अत्यंत रोचक, मार्मिक और प्रभावजनक है। वह प्रायः प्रश्नात्मक है। प्रथम चरण में कवि पूछता है—

बता ए ख़ाक के पुतले कि दुनिया में किया क्या है?

यही पूछने का सिलसिला बहुत दूर तक चला जाता है और यों चलता है कि प्रश्नों के अंतर्गत अनेक उपदेशप्रद उत्तर आ जाते हैं—

शरीके-दर्दे-दिल होकर किसी का दुख बटाया है,
मुसीबत में किसी आफ़तज़दा[2] के काम आया है?
पराई आग में पड़कर कभी दिल भी जलाया है,
किसी बेकसे[3] की ख़ातिर जान पर सदमा उठाया है?
कभी आँसू बहाये हैं किसी की बदनसीबी पर,
कभी दिल तेरा भर आया है मुफ़लिस की ग़रीबी पर?
कभी इमदाद[4] दी तूने किसी बेकस बिचारे को,
सख़ी[5] बन कर दिया कुछ तूने मुफ़लिस के गुज़ारे को?
तसल्ली दी कभी तूने किसी आफ़त के मारे को,
कभी तूने सहारा भी दिया है बे-सहारे को?
कभी फ़रियादरस[6] बनकर ख़बर ली बेनवाओं[7] की,
लगी है चोट भी दिल पर सदा[8] सुनकर गदाओं[9] की?

* 'Honours in Persian'—जिसके पास कर लेने पर पंजाब-युनिवर्सिटी की अन्य परीक्षाएँ भी "प्राइवेट" पास की जा सकती हैं।

१. नेक काम ; २. आफ़त का मारा ; ३. असहाय ; ४. मदद ; ५. दाता ; ६. फ़रियाद पर ध्यान देनेवाला ; ७. दीन ; ८. आवाज़ ; ९. फ़क़ीरों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुत्फ़ तो यह है कि कवि एक ही बात को अनेक प्रकार से बयान करता है, परंतु इस सुंदर ढंग से कि काव्य की रोचकता में कहीं फ़र्क़ नहीं आता।

उपर्युक्त कविता के प्रकाशित होते ही कवि की कीर्ति में भी प्रकाश आ गया और उसकी कविताओं के लिए 'मख़ज़न', 'ज़माना', 'अदीब'-जैसे उर्दू के सुप्रसिद्ध मासिक पत्रों में स्थान की कमी न रह गयी। साथ ही स्वयं उसका स्थान भी उर्दू की कवि-समाजों में सुरक्षित होता गया, यहाँ तक कि आज उसका नाम उन थोड़े-से सुप्रसिद्ध कवियों के साथ लिया जा सकता है जो संप्रति संसार में अपना और उर्दू-साहित्य का गौरव बढ़ा रहे हैं। अब तो वर्क़ साहब का एक काव्य-संग्रह भी 'मतलये-अनवार' के नाम से प्रकाशित होकर पर्याप्त प्रशंसा एवं आदर का पात्र बन चुका है।

यद्यपि यह काव्य-संग्रह सर्वथा पठनीय है और धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक कविताओं से मालामाल है, तथापि हमें वे दो कविताएँ विशेष पसंद आयीं जिनका संबंध अछूतोद्धार से है। उनमें से एक ऐतिहासिक है जिसमें कुशल कवि ने मर्यादा-पुरुषोत्तम राम और शबरी के पारस्परिक व्यवहार के प्राचीन उदाहरण को हमारे समीप रखते हुए अपने पक्ष का समर्थन किया है। कविता के दो बंद नीचे दिये जाते हैं। महाराज रामचंद्रजी वनवास के समय पर्यटन करते हुए अछूत शबरी की झोपड़ी में पहुँचते हैं। शबरी प्रेम, प्रसन्नता, श्रद्धा और भक्ति से उनके सामने बेर लाकर रखती है तो कवि कहता है—

भगवान ने इख़्लासो-मुदारात[1] को देखा,
वारफ़्तये-दीदार[3] के जज़बात[4] को देखा।
कुछ ज़ात को देख न कुछ अवक़ात को देखा,
देखा तो फ़क़त प्रेम की सौग़ात[5] को देखा।
डूबे हुए ये बेर मुहब्बत के जो रस में,
खुद प्रेम के सागर भी हुए प्रेम के बस में।
है रस्म मुहब्बत की ज़माने से निराली,
भक्ती कभी तासीर से रहती नहीं खाली।
मंज़ूर किया राम ने यह तुहफ़ये-आ़ली[6],
बुनियाद जहाँ में पतितोद्धार की डाली।

ए काश अछूतों को गले हम भी लगायें,
इस प्रेम के अफ़साने को आदर्श बनायें।

अब दूसरी कविता के कुछ पद देखिए—

तफ़रीक़[2] जो है क़ायम यह ग़ैर-क़ुदरती है,
अम्फ़ल[4] भी आदमी है अफ़्ज़ल[5] भी आदमी है।
ज़ेबा[6] नहीं किसी से बेजा सलूक करना,
मुँह से अछूत कहना नफ़रत से नाम धरना।
तज़्लील दूसरों की तहक़ीर है ख़ुद अपनी,
अपनों को ग़ैर कहना तशहीर है ख़ुद अपनी।
इस ख़ाक के हैं पुतले भारत-सपूत हैं सब,
गर यह अछूत हैं तो हम भी अछूत हैं सब।

कविता कितनी स्पष्ट, सरल और युक्तियुक्त है। अछूतोद्धार के लिए इससे अधिक ज़ोरदार अपील नहीं हो सकती। अंतिम पद तो बड़े ही मार्के का और प्रभाव डालनेवाला है। निःसंदेह हम सभी भारत के रहनेवाले और भारत-माता की लाड़ली संतान हैं, अतः हम सबमें स्वाभावतः भ्रातृप्रेम ही होना चाहिए। पद का प्रभाव और भी बढ़ जाता है, जब हम यह देखते हैं कि प्रायः अयोग्य संतति माता की अधिक स्नेहपात्र हुआ करती है।

उपर्युक्त दोनों कविताओं में से पहली सन् १९२६ और दूसरी सन् १९२५ ई० में लिखी गयी थी। यह समय वर्तमान अछूतोद्धार-आंदोलन से बरसों पहले का है। पता चलता है कि कवि के विचार शुरू ही से कितने उदार तथा सामंजस्य एवं समानता पूर्ण हैं और वह होनेवाली बातों को किस दूरबीनी से देखता है।

इनके अतिरिक्त हमें उस कविता को पढ़ते भी असीम आनंद प्राप्त हुआ जिसे कवि ने मीराबाई पर लिखा है। कविता ऐतिहासिक एवं धार्मिक है; उसमें वही सादगी और प्रवाह है जो एक सच्ची भक्ति से भरे हुए सीधे-सादे दिल में हो सकता है। घटना तथा तद्विषयक भावों के अनुरूप ही कविता लिखना सचमुच बड़े कमाल का काम है; कवि को अपने अनुपम प्रयास में पूर्ण सफलता मिली है। भगवान् को

१. प्रेम; २. खातिरदारी; ३. दर्शनों-मस्त; ४. भावों; ५. भेंट; ६. उत्तम भेंट।

१. क़िस्सा; २. अंतर; ३. अस्वभाविक; ४. नीच; ५. उच्च; ६. उचित; ७-८. ज़िल्लत; ९. बदनामी; १०. अमर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिझाना सहल नहीं। वह अपने भक्त की एक बार नहीं, अनेक बार बड़ी कड़ी परीक्षा लेते हैं और जब वह संतुष्ट होकर एक बार रीझ जाते हैं तो फिर वह भक्तवत्सल बन अपने भक्त की सारी कठिनाइयों को दूर करते हुए उसे लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के आनंद से परिपूर्ण एवं परितृप्त कर देते हैं। अब कविता के कुछ पदों पर ध्यान दीजिए।

मीरा की उन्मादमयी भक्ति का बखान सुनकर स्वयं भारत-सम्राट् अकबर तानसेन-सहित उसके पास जाता है और उसकी कृष्णभक्ति पर मुग्ध हो यों कहता है—

ए देवी! कृष्ण मुरारी को हम भेंट चढ़ाने आये हैं;
तेरे रूहानी नग़मों से खिंचकर दीवाने आये हैं।
ले यह हीरों की माला है, यह अदना नज्रे हमारी है,
कर अरपन उसकी सेवा में, तू जिसकी प्रेम-भिखारी है।

सरल-स्वभाव मीरा सम्राट् से माला लेकर मूर्ति के गले में डाल देती है। राना को इस भेंट का हाल मालूम होता है और उसके मिज़ाज का पारा एकदम चढ़ जाता है। दंडस्वरूप वह मीरा को पीने के लिए विष का प्याला भेजता है। पतिपरायणा मीरा उसे प्रसन्नता से पी लेती है, पर उस पर विष का कोई प्रभाव नहीं होता। तब राना उसे राज्य छोड़ने की आज्ञा देता है। मीरा पतिगृह से बिदा होकर अपने स्वयंवरा-पति भगवान् कृष्ण के वृंदावन-धाम को जाती है और वहाँ अपना वही पुराना राग फिर छेड़ती है। फलतः—

बृन्दावन सारा गूँज उठा जोगिन की मस्त सदाओं से,
दर्शन को लोग उमड़ आये शहरों से गावों-गावों से।

धीरे-धीरे मीरा की भक्ति का इतना शुहरा होता है कि राना स्वयं प्रभावित हो भिक्षु-वेष धारण करता है और श्रद्धापूर्वक उसकी सेवा में उपस्थित हो यों कहता है--

राना ने कहा ए प्रेमलता! मैं तेरा अदना ख़ादिम हूँ,
सरज़द जो ख़ताएँ मुझसे हुईं, सौ दिल से उन पर नादिम हूँ।

यह सुनकर मीरा का मुलायम दिल पिघल जाता है। वह राना के अपराधों को तत्काल ही क्षमा कर देती है। उसका गला भावावेश से रुँध जाता है। बोल नहीं सकती, पर कवि के शब्दों में--

बेसाख़्तः दोनों हाथ अपने राना के गले में डाल दिये;
आदर्श दिखाया भक्ती का, सब शिकवे दिल से निकाल दिये।

बेशक भक्ति का आदर्श यही है कि हृदय में प्रेम के सिवा और किसी के लिए स्थान ही न हो। ऐसे आदर्शवादी को 'शिकवे' का ख़याल तो कभी हो नहीं सकता।

'जुगनू' पर डॉ० सर मुहम्मद इक़बाल की कविता बड़ी मशहूर और लाजवाब है, जिसमें कवि ने उपमाओं और रूपकों की अपूर्व छटा दिखाते हुए अन्त में एक दार्शनिक तत्त्व का प्रतिपादन बड़ी सफलता से किया है। वर्क़ साहब की 'जुगनू'-शीर्षक कविता में कोई वैसी बात नहीं, पर उसकी विशेषता नवीन उपमाओं की खोज है जो बहुसंख्यक हैं और जिन्होंने उसमें मौलिकता उत्पन्न कर बहुत कुछ आकर्षण पैदा कर दिया है। उसके तीन पद इस प्रकार हैं—

महे-परवाज़ यह लाले-चमनी है शायद,
उड़ती फिरती कोई हीरे की कनी है शायद;
किसी नाशाद की आहों का शरार तो नहीं,
आसमाँ से कोई टूटा हुआ तारा तो नहीं;
तेरे जल्वे से मुनौवर हुआ सहने-गुलशन,
तू है वह शमा कि है मौजे-हवा पर रौशन।

अंतिम पद बहुत ही बन पड़ा है। पुष्पवाटिका के विस्तृत क्षेत्र में हवा का बहाव स्वाभाविक है। साथ ही उसमें जुगनू की चमक से उजाला भी हो रहा है। ऐसी दशा में कवि जुगनू को हवा में जलनेवाला चिराग़ कहकर ठीक ही कह रहा है।

काव्य-संग्रह में एक कविता 'जोशे बहार'-शीर्षक है जिसमें प्रायः कवि ने ऐसे शब्दों को इस प्रकार चुन-चुनकर रक्खा है कि कविता में एक संगीतमय प्रवाह उत्पन्न हो गया है, जिसे कविता की जान समझना चाहिए। पढ़ते हुए ऐसा जान पड़ता है कि 'बहार' की लहर नस-नस में दौड़ रही है और उनमें वह ताज़गी भर रही है, जिससे 'बहार' के आते ही समस्त प्रकृति निहाल हो जाती है। कविता में विचित्र स्फूर्ति है। पहला बन्द देखिए—

१. आध्यात्मिक; २. रागों; ३. तुच्छ; ४. भेंट; ५. आवाज़ों (गानों); ६. सेवक; ७. हो जाना; ८. लज्जित।

१. सहसा; २. उलाहने; ३. उड़ने में संलग्न; ४. चमन-देश का लाल जो प्रसिद्ध है; ५. दुःखी; ६. चिनगारी; ७. छटा; ८. रौशन; ९. पुष्पवाटिका का सहन; १०. वायु-तरंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

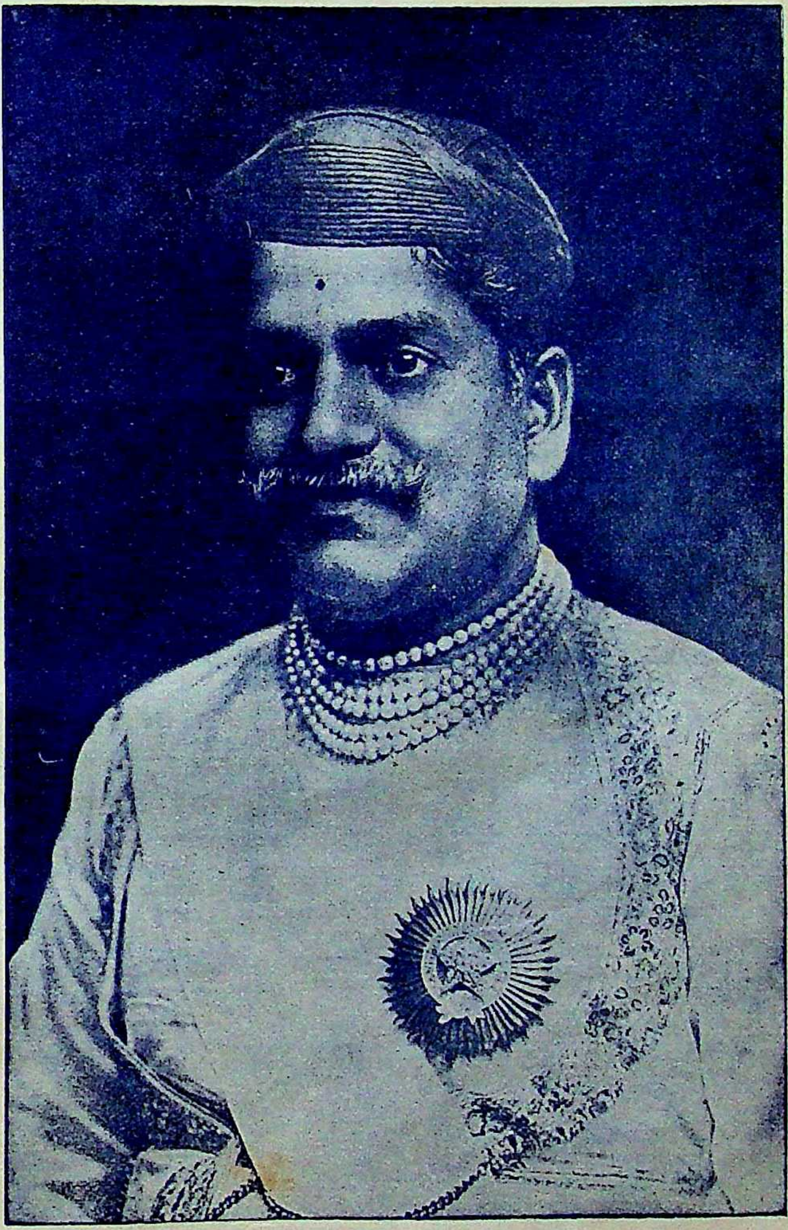

सर सयाजीराव गायकवाड़ बड़ौदा नरेश
(तेईसवें सम्मेलन (दिल्ली) के निर्वाचित सभापति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

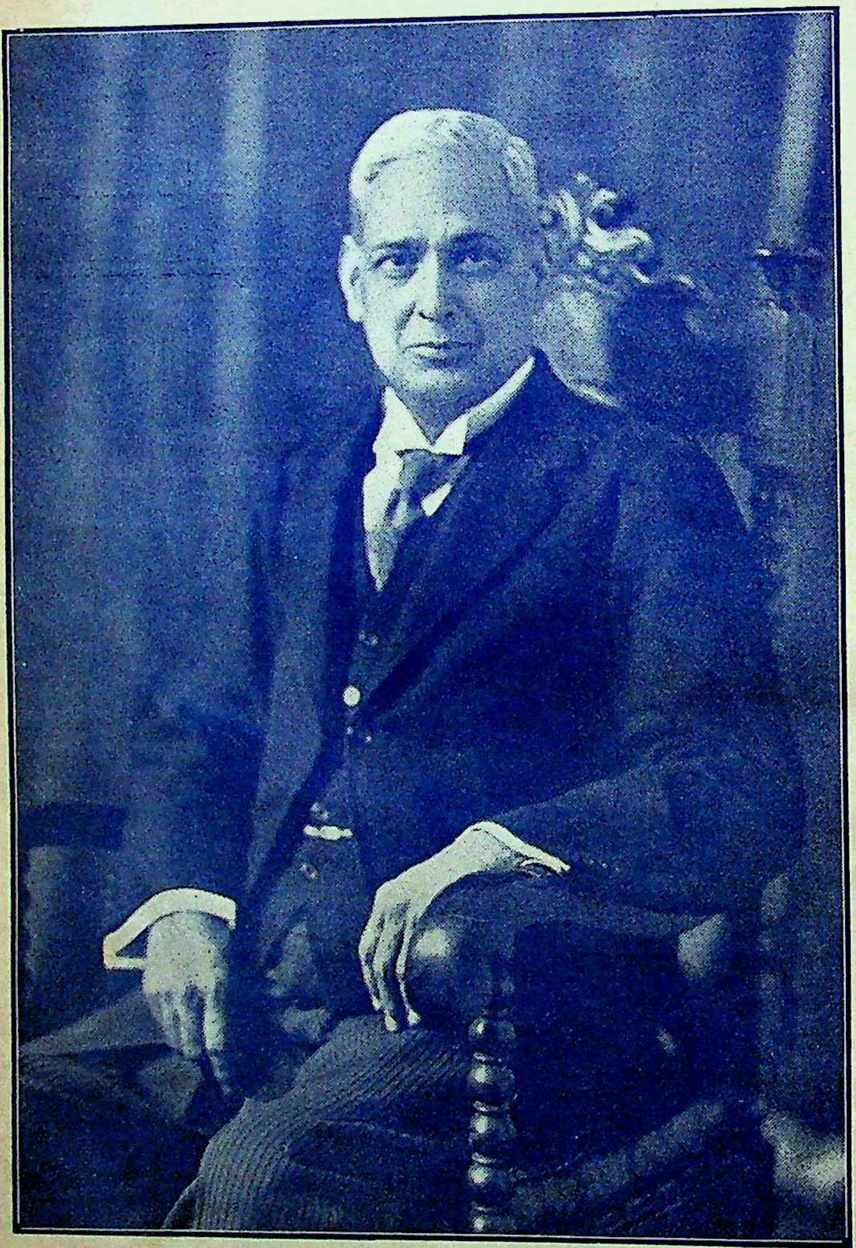

रावराजा रायबहादुर पं० श्यामविहारी मिश्र एम्. ए.
(बाईसवें सम्मेलन के सभापति)

N. K. PRESS, LUCKNOW.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी रोग को

आप छोटा न समझें

लिस्टरीन एंटीसेप्टिक आपकी सब रोगों से रक्षा करता है। इसमें रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति है। यह पंद्रह सेकिन्ड में ८००,०००,००० कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। लिस्टरीन एंटीसेप्टिक के कुल्ले करने से खाँसी और सर्दी दूर होती है। गले के जख्म और दूसरी भयानक बीमारियाँ जाती रहती हैं। मुँह की दुर्गंध नष्ट होती है। स्नान करने के बाद इसका इस्तेमाल करने से शरीर से बास नहीं आती। लू को यह फ़ौरन आराम करता है चोट, खरोच, जले की और कीड़े के काटने की यह अद्भुत दवा है।

इसमें किसी प्रकार का जहरीला पदार्थ नहीं मिला है। इसके इस्तेमाल में किसी तरह का डर नहीं। लिस्टरीन आपके बड़े काम की चीज है रोज इसके कुल्ले करने ही से आपको बड़ा फ़ायदा होगा।

LISTERINE
ANTISEPTIC

युनाइटेड स्टेट आफ़ अमेरिका में बना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल-लेखक,

एफ़० डब्ल्यू० बेन

श्रीयुत बेन महोदय ने अँगरेज़ी में १२ कहानियाँ लिखी हैं। सभी एक से एक बढ़कर हैं। अँगरेज़ी-साहित्य में उनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। क्योंकि इन कहानियों के सौंदर्य आकर्षण को वर्णन करना बहुत कठिन काम है। वे एक प्रकार से अवर्णनीय हैं। अँगरेज़ीसाहित्यमें कोई चीज़ इतनी सुकुमारता, इतनी भावुकता, इतनी सौम्यता और इतनी विद्वत्ता से नहीं लिखी गई। जीवन के इन सुंदर दृष्टांतों में पूर्व का प्रारब्धवाद और पश्चिम का जिज्ञासु शंका-वाद इस प्रकार मिश्रित किया है कि उसकी तुलना उनके सिवा किसी और चीज़से नहीं की जा सकती।

नागिन की डाह

An Essence of the Dusk का हिंदी अनुवाद है।

मूल्य ॥)

अनुवादक तथा संपादक—श्रीयुत कन्हैयालाल मुंशी एम्० ए०, एल्-एल्० बी० एडवोकेट.

मिलने का पता—**मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घिरा हुआ सरे-फ़लक[1] जो अब्रे-क़तरः[2] बार[3] है,
खिज़ाँ पर ओस पड़ गयी चमन-चमन[4] बहार है;
गुलों[5] के रूये[6] साफ़ पर कमाल का निखार है,
वरक़-वरक़ है खुशनुमा नज़र-नज़र[7] निसार[8] है;
जमी थी वर्ग बर्ग पर जो गर्द अब वह धुल गयी,
कली-कली निखर गयी गिरह दिलों की खुल गयी।

काव्य-संग्रह में प्राकृतिक दृश्यों पर अनेक सुन्दर कविताएँ हैं पर इस पाये की थोड़ी ही हैं।

एक और कविता "दुरंगिये-ज़माना" है जिसमें कवि ने अपनी रीति पर दुनिया की दुरंगी पर अच्छा प्रकाश डाला है। कविता का अन्त विशेषतः प्रभावपूर्ण हुआ है जिसमें प्रत्येक सांसारिक स्थिति की अस्थिरता दिखलाते हुए मनुष्यों में एक निश्चित समता के प्रदर्शन का प्रयास है। कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

दुरंगीय-दुनियाय-दूँ के[10] तमाशे,
दिखाती है गर्दिश यहाँ हर किसी को;
नज़ाकत से फूलों में तुलता है कोई,
मयस्सर है काँटों का बिस्तर किसी को;
कोई खाकउफ़्तादः[11] वो बेनवा है,
मयस्सर है औरंग[13] अफ़सर[14] किसी को;
मगर कोई सुल्ताँ[15] हो या बेनवा हो,
मुहिम[16] एक दरपेश है हर किसी को;
अजल[17] इस जहाँ से उठाकर रहेगी,
मुक़द्दम[18] किसी को मुवख्खर[19] किसी को।

तुलना की दृष्टि से तुलनात्मक बातों का चुनाव अच्छा हुआ है। ज़बान साफ़ और कहने का ढंग काव्योपम है। समूची कविता में एक-सा ही रंग है।

कवि ने अन्य भाषाओं की कविताओं का भी पद्य-बद्ध अनुवाद किया है जिसमें उसे प्रायः सफलता मिली है। कवि-सम्राट् टैगोर की संसारप्रसिद्ध पुस्तक 'गीता-ञ्जलि' के कुछ पदों का अनुवाद पाठकों के मनोरंजनार्थ नीचे दिया जाता है—

तू पाक हाथ जब अपने मुझे लगाता है,
खुशी से दिल मेरा फूला नहीं समाता है;
लबों[1] तक आता है वह राज़[2] जोशे-मस्ती में,
बरंगे-नग़मः[3] जो पिनहाँ[4] है साज़े-हस्ती[5] में।
जलवये-सुबह[6] से चमकेगा सितारा मेरा,
तीरगी[7] रात की जब नूर[8] से शरमायेगी।
तेरी आवाज़ भी फिर मिस्ले शुआये-खुरशेद[9],
सात परदों से ज़ियाँ[10] बन के निकल आयेगी।

उपर्युक्त पदों की सूक्ष्मता एवं सुन्दरता की व्याख्या व्यर्थ है, क्योंकि असली कविताएँ उस महाकवि की हैं जिसका सम्प्रति समस्त काव्य-जगत् अनुकरण कर रहा है। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वर्क़ साहब ने बड़ी ही सरलता से काम लेते हुए पद्यार्थ को सुस्पष्ट कर दिया है जिससे अनुवाद सर्वथा रोचक हो गया है और उसमें कुछ मौलिकता-सी आ गयी है। यही अनुवाद की सफलता है।

हमने यहाँ तक वर्क़ साहब के प्रायः सभी प्रकार के काव्यों के नमूने 'हाँडी के चावल' के रूप में सहृदय पाठकों के समीप रख दिये। कवि के कलाम में सामयिक राष्ट्रीयता का प्रायः अभाव ही है। वस्तुतः—

नैयर[11]-इक़बाल चमकेगा हमारा एक दिन,
औज[12] पर इस देश का होगा सितारा एक दिन।

लिखनेवाले के लिए हम यह तो कभी नहीं कह सकते कि उसके विचार एवं अनुभव में कमी है, परन्तु परिस्थितियों का प्रतिकूल होना बड़ी मजबूरी की बात है। हम वर्क़ साहब की ग़ज़लों पर तनिक दृष्टिपात करते हैं। 'ग़ज़ल' वह विशेष कविता है जिसमें प्रेमिक अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य की प्रशंसा और उसके प्रति विविध रीतियों पर अपना प्रेम-प्रदर्शन करता है तथा अपने हार्दिक भावों का प्रकटीकरण। यह काव्य-शैली अरबी, फ़ारसी और उर्दू को छोड़कर किसी भी अन्य भाषा में नहीं पायी जाती। उर्दू-कवि प्रारम्भ में प्रायः इसी शैली को अपनाकर काव्य-रचना सीखता है। दीर्घकालीन अभ्यास के वशवर्ती हो नये रंग का

---

१. आकाश पर; २. बादल; ३. बूँद बरसानेवाला; ४. फूलों की क्यारी; ५. फूलों; ६. चेहरा; ७. दृष्टि; ८. निछावर; ९. पत्ती-पत्ती; १०. नीच। ११. खाक में पड़ा हुआ; १२. मुहताज; १३. तख्त; १४. ताज; १५. बादशाह; १६. मुशकिल मरहला; १७. मौत; १८. पहले; १९. पीछे।

१. होठों; २. भेद; ३. राग की तरह; ४. गुप्त; ५. अस्तित्व रूपी बाजा; ६. सुबह का उजाला; ७. अँधेरा; ८. रौशनी; ९. सूर्यरश्मि १०. प्रकाश; ११. इक़बाल का सूरज; १२. बलन्दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि भी थोड़ी-बहुत ग़ज़लें ज़रूर लिखता है। हाँ, यह दूसरी बात है कि उसकी वैसी कविताओं में भी नये रंग की झलक हो। वर्क़ साहब की ग़ज़लों में भी कुछ यही बात दिखती है, परन्तु इस अन्तर से कि जहाँ उन्होंने प्राचीन काव्य-प्रणाली का अनुकरण किया है, वहाँ भी कुछ इस ढंग पर कि प्राचीनता में भी नवीनता की काफ़ी झलक आ गयी है। सारांश यह कि उनकी ग़ज़लें नवीनता और नवीनतामयी प्राचीनता के सम्मिश्रण का एक बढ़िया नमूना हैं। देखिए—

हम न कहते थे मरीज़े-ग़म[1] का हाल अच्छा नहीं;
देखते ही ग़श तुझे ए चारासाज़[2] आ ही गया।
इश्क़ जब सादिक़[3] हुआ तो बढ़ गया इज्ज़ो-नियाज़[4];
हुस्न जब कामिल हुआ तो किब्रोनाज़[5] आ ही गया।

कितने उत्तम पद हैं। प्रथम में रोगी को देखते ही चिकित्सक का बेहोश हो जाना, रोगी की अत्यंत शोचनीय दशा का परिचायक है। कवि के कहने का ढंग भी पद के आरंभ ही से कितना ज़ोरदार है कि अंततः चिकित्सक के ग़श आ जाने पर कोई आश्चर्य नहीं होता। द्वितीय पद में एक वास्तविकता का वर्णन है और है सर्वथा काव्योपम रीति पर।

काबा व बुतख़ाना[6] क्यों मसजूदं[7] होना चाहिये;
ला तग़य्युन[9] किस लिए महदूद होना चाहिये।
जोशे-हिम्मत का तक़ाज़ा है यह इक-इक गाम[10] पर;
सर्फ़े-राहे-मंज़िले-मक़सूद[11] होना चाहिये।

प्रथम पद में एक दार्शनिक सत्य को कविता के रूप में रक्खा गया है। वाक़ई जब ईश्वर हर जगह है तो हमें क्या हक़ है कि स्वार्थवश उसे परिमित कर दें ? द्वितीय पद में उस सच्चे साहस का उल्लेख है जो मनुष्य को अभीष्ट की ओर बराबर बढ़ाता ही जाता है, कभी पीछे पग नहीं धरने देता। पदों में पर्याप्त प्रवाह है।

मुझसे सहवन भी ख़ता हो तो लरज़ जाता हूँ;
ख़ूने-इंसाफ़ जो करते हैं वह क्या करते हैं ?
हुस्न और इश्क़ में क़ायम है मरातिब[12] का लिहाज़;
वह जफ़ा[13] करते हैं हम शुक्रे-जफ़ा करते हैं।

प्रथम पद में कवि कहता है कि मुझसे तो भूलकर भी कोई अपराध हो जाता है तो काँप जाता हूँ फिर पता नहीं कि जान-बूझकर न्याय की हत्या करनेवाले-जैसे बड़े अपराधियों की क्या दशा होती है या वे कैसे इतना बड़ा दुस्साहस करते हैं। द्वितीय पद काव्य-सौंदर्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रेमिका का काम ही ज़ुल्म करना और प्रेमिक का कर्त्तव्य ही उसे प्रसन्नतापूर्वक सहन कर धन्यवाद देना है वही होता है। अतः सौंदर्य और प्रेम को अपनी-अपनी स्थिति का काफ़ी ख़याल है।

दाग़े-उलफ़त[1] से उजाला ख़ानये-दिल[2] में रहे;
रौशनी इस शमअ की तारीक[3] मंज़िल में रहे।
वर्क़े हुस्ने-यार[4] इतनी किस लिए है बेक़रार;
यह मेरी आँखों में ठहरे, यह मेरे दिल में रहे।

द्वितीय पद बड़े मारके का है। विद्युत् की चंचलता प्रसिद्ध ही है जिसे मिटाने के लिए कवि उसे अपनी आँखों और दिल में आकर ठहर जाने का संदेश देता है। उसे स्वयं जलने का कोई भय नहीं। इसे प्रेम की पराकाष्ठा समझिए। दोनों पद ईश-प्रेम पर लागू हो सकते हैं।

दमज़दन[5] में हुआ है आलमे-फ़ानी[6] का सफ़र;
खुल गया राज़[7] कि हस्ती[8] से अदम[9] दूर नहीं।
उसके परतौ[10] से है जज़बात[11] की दुनिया आबाद;
आँख से दूर है वह दिल से मगर दूर नहीं।

प्रथम पद में कवि किस सुंदरता से संक्षेप में 'हस्ती' से 'अदम' का दूर न होना साबित करता है। सबूत में वह इतना ही कह देना काफ़ी समझता है कि इस लंबे-चौड़े नश्वर संसार का सफ़र (जिसमें अधिक समय लगना चाहिए था) क्षण-भर में ही तय हो गया। द्वितीय पद में कवि कहता है कि ईश्वर आँख से भले ही दूर हो, पर दिल से दूर नहीं; क्योंकि दिल की भावनाओं का संसार सिर्फ़ उसी के दम से आबाद है, अन्यथा वह उजाड़ ही होता। प्रमाण प्रत्यक्ष ही है। 'जज़बात की दुनिया आबाद' सर्वोत्तम योजना है, जिसमें आध्यात्मिकता की पुट है।

१. दुःख-पीड़ित; २. चिकित्सक; ३. सच्चा; ४. दीनता और भक्ति; ५. गर्व; ६. इसलामी तीर्थस्थान; ७. मंदिर; ८. वंदनीय; ९. असीम; १०. पग; ११. अभीष्ट के मार्ग पर पड़ना; १२. दर्जों; १३. ज़ुल्म।

१. प्रेम का दाग़; २. हृदय-गृह; ३. अँधेरी; ४. प्रेमिका की सौंदर्यरूपी विद्युत्; ५. क्षण-भर; ६. नश्वर संसार; ७. भेद; ८. अस्तित्व; ९. अनस्तित्व; १०. प्रकाश; ११. भाव [जज़बात की दुनिया=भाव-जगत]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यहाँ तक अपने सहृदय पाठकों को दिखला चुके कि वर्क़ साहब की कविताएँ कितनी उच्च कोटि की हैं। सर्वसाधारण के अतिरिक्त राज्य-दरबारों में भी उनका सम्मान हुआ है। सन् १९१२ ई० के दिल्ली-दरबार की कविता पर हमारे कवि को पदक और सर्टिफ़िकेट मिला था। सन् १९१६ ई० में नरसिंहगढ़-स्टेट के राजा साहब ने भी आपको इनाम-इकराम दिया था। इसी प्रकार आप पटियाला-दरबार से भी दो बार निमंत्रित और पुरस्कृत किये जा चुके हैं।

अब इस लेख की समाप्ति के पूर्व इतना और कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि हमने हिंदी-पाठकों की सुविधा की दृष्टि से बहुत सरल-सरल पदों को ही चुना है। वस्तुतः कवि के कलाम में कठिन शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। हम वर्क़-जैसे योग्य कवि से यह आशा करेंगे कि वह भाषा के वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखते हुए अपनी कविताओं में यथासाध्य ऐसे शब्दों को ही रक्खें जो ख़ालिस उर्दू के कहे जा सकें।

एक बात और। हम देखते हैं कि कवि के कलाम में अभी असर के लिए और गुंजाइश है—वह असर जो दिल में चुटकियाँ तो ज़रूर ले, पर चुटकियाँ हों माशूक़ की। वैसे असर का संबंध है दर्द—वेदना से, और वेदना आश्रित होती है करुण-रस से। यह रस स्वाभाविक भी होता है और परिस्थिति-जन्य भी। बहुधा दूसरी ही बात दिखती है। पर इसे ख़याल में रखते हुए हम यही कहेंगे कि वर्क़ साहब के कलाम में जो कुछ असर है, वही क्या कम है। यों तो उनका जीवन उन्हीं के कथनानुसार असुविधाओं से अलिप्त नहीं।

अफ़ग़ान स्नो की स्वच्छता और उत्तमता के संबंध में फ़्रांस-सरकार के विश्लेषक की सम्मति—

लेबोरेटरी ओ० टी० आई० एम० ए०
पैरिस, जून २६ सन् १९३३
लुइस बोरनान्ड, मैनेजर
२५ लौरीसियन, पैरिस
तफ़सील नं० ७०३२

मैं, लुइस बोरनान्ड कोर्ट आफ़ जस्टिस के निपुण रसायनज्ञ "अफ़ग़ान स्नो क्रीम" की विश्लेषण कर लेने के पश्चात् यह प्रमाणित करता हूँ कि इसमें चर्म को हानि पहुँचानेवाला कोई भी ज़हरीला पदार्थ नहीं है। इसलिए चर्म की सुंदरता बढ़ानेवाली वस्तुओं में इसकी निःसंकोच सिफ़ारिश की जा सकती है।

परिणाम—जाँच के परिणाम में इस क्रीम में शुद्ध वनस्पति का तरल पदार्थ, बोरेक्स, रक्तशोधक-वस्तु और जल का मिश्रण ही पाया गया है। ज़हरीली या चर्म को हानि पहुँचानेवाली कोई वस्तु नहीं है।

इसका चर्म पर प्रभाव

यह क्रीम अत्यन्त सरलता से मुँह और हाथों पर फैलकर रोमछिद्रों में ज़ज़्ब हो जाती है। इसके प्रतिदिन के व्यवहार से सब प्रकार की जलन, पीड़ा या दैवी विपत्ति से आप अवश्य बच सकते हैं।

(हस्ताक्षर) एल० बोरनान्ड,
L. BORNAND.

इसके आविष्कर्ता—ई० एस० पाटनवाला
शो रूम और आफ़िस—१८२, ८४ अब्दुलरहमान स्ट्रीट बंबई नं० ३
फ़ैक्टरी का पता—पाटनवाला बिल्डिंग, ... रोड, भायखला के पास, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ कवि !

[श्री० रामधारीसिंह 'दिनकर' बी० ए० (ऑनर्स)]

नवल उर में भर विपुल उमंग ;
विहँस कल्पना-कुमारी संग ;
मधुरिमा से कर निज शृंगार ;
स्वर्ग के आँगन में सुकुमार
मनाते नित उत्सव आनंद—
कौन तुम पुलकित राजकुमार ?

फैलता वन-वन आज वसंत ,
सुरभि से भरता अखिल दिगंत ,
प्रकृति आकुल यौवन के भार
सिहर उठता रह-रह संसार ।
विहग-कुल का यह मधुमय गान ;
बनो कवि ! फूलों की मुसकान ।

सरित सम पर देती है ताल ,
चंद्र बुनता किरणों का जाल ।
सरल शिशु-सा सोता है विश्व ,
ओढ़ सपनों का वसन विशाल ।
निशा का परम मधुर यह हास ;
बनो कवि ! रत्नखचित आकाश ।

विरह से व्याकुल तप्त शरीर ,
नयन से झरता झर-झर नीर ;
जलन से झुलस रहे सब गात ,
जुड़ी है आँखों की बरसात ;
सिसक-संयुत अति करुण उसास ;
बनो कवि ! सावन-भादों-मास ।

न उपवन का वह विभव-विलास ,
न कलियों का मृदु गंधोच्छ्वास ;
लता-तरुओं की शुष्क कतार
यही हैं उपवन के शृंगार ।
काल का अति निर्मम आघात ;
बनो कवि ! तरु का मर्मर पात ।

युवा के स्वर्ण-स्वप्न में भूल
और फँस वैभव के छवि-जाल ।
वासना-आसव का कर पान
मनुजता हुई बहुत बेहाल ।
अचिर अंतर्हित हों सब क्लेश ।
लिखो कवि ! अमर स्वर्ण-संदेश ।

न खिलता उपवन में सुकुमार
सुमन कोई अक्षय छविमान ;
क्षणिक निशि का हीरक शृंगार ,
उषा की क्षणभंगुर मुसकान ।
क्षणिक चंचल जीवन नादान ।
हँसो, कवि ! गाकर ऐसे गान ।

हिंदी होम्योपैथिक मेटीरिया-मेडिका

प्रसिद्ध होम्योपैथिक डाक्टर एस्० सी० मुकुर्जी द्वारा रचित

इस पुस्तक ने होम्योपैथिक जगत् में अपूर्व क्रांति उत्पन्न कर दी है। इसका कारण यह है कि इसमें होम्योपैथिक चिकित्सा-संबंधी प्रत्येक विषय की इतनी उत्तम व्याख्या की गई है, जिससे प्रत्येक होम्योपैथ के लिए इसका अध्ययन आवश्यक हो गया है। पृष्ठ-संख्या ६००, मूल्य १२) रु०

डाक्टर मुकुर्जी की नवीन पुस्तक **पोटेंसी का निर्णय** भी अभी प्रकाशित हुई है। पोटेंसी का सुनिर्वाचन इस पुस्तक के अध्ययन किये बिना अत्यंत कठिन है। मूल्य केवल ॥)

C. B. 21 प्रकाशक—N. Ando & Sons, Farrukhabad (U. P.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस के विप्लव का तत्कालीन अँगरेज़ी-कवियों पर प्रभाव

[श्री० केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' बी० ए०, विद्यालंकार]

अँगरेज़ी काव्य-साहित्य पर फ्रांस के विश्व-प्रसिद्ध विप्लव का जो प्रभाव पड़ा, वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। एक प्रकार से तत्कालीन अँगरेज़ी-काव्य-साहित्य में नवयुग की लहर-सी बह गयी। इसके पूर्व भी अँगरेज़ी-साहित्य में एक बार नवीन युग आया था। उस समय शेक्सपियर, मिल्टन आदि महाकवियों ने अपनी अमर अनमोल रचनाओं से संसार की आँखों में चकाचौंध पैदा कर दी थी। अँगरेज़ी-साहित्य में यह युग 'एलिज़ाबेथ के ज़माने' के नाम से प्रसिद्ध है। परंतु जिस युग की हम चर्चा करने जा रहे हैं, उसके प्रवेश-द्वार पर ही हमें वर्डस्वर्थ, बायरन, शेली और कीट्स-जैसे गौरवयुक्त विभूतिमान् एवं प्रियदर्शन कवियों की झाँकी प्राप्त होती है। इन महाकवियों के जीवन की घटनाएँ उतनी ही कौतुकपूर्ण हैं, जितनी उनकी कविताएँ। अँगरेज़ी-साहित्य का कौन ऐसा विद्यार्थी है जो बायरन, शेली और कीट्स के रोमांस और ट्रेजेडीज़ को नहीं जानता? क्या शेली की निम्नलिखित पंक्तियाँ उसके विषादमय जीवन की परिचायिका नहीं हैं--

Most wretched men
Are cradled into poesy by wrong.
They learn in suffering what they teach in song.

और—

Our sincerest laughter
with some pain is fraught,
Our sweetest songs are those
that tell of saddest thought.

क्या कीट्स की Ode to a Nightangle और Ode on a Grecian Urn में उसके नैराश्यपूर्ण जीवन का—वेदना-विह्वल प्राणों का मौन-रुदन प्रतिध्वनित नहीं है? परंतु हमें उनके वैयक्तिक जीवन से कोई प्रयोजन नहीं। इस लेख में तो हमें यही दिखलाना है कि फ्रेंच-विप्लव के अन्त का इन भावुक-कवियों पर कैसा प्रभाव पड़ा और रोमांटिसिज़्म का पुनरुत्थान कैसे हुआ।

उपर्युक्त दोनों नवीन युगों का शुभागमन प्रायः एक ही से समय में हुआ था। दोनों युगों की पद्य-रचनाएँ भाव-वैचित्र्य, शब्द-शक्ति और भाषा-प्रवाह की दृष्टि से प्रायः समान ही है। यदि एक युग में साम्प्रदायिक उपद्रवों की आग भीषण गति से सुलग रही थी, राष्ट्रीय आन्दोलनों का तूफ़ान भीम वेग से प्रवाहित हो रहा था, तो दूसरे युग में भी फ्रांस के भयंकर विप्लव का तूर्य-निनाद चारों दिशाओं को कम्पायमान् कर रहा था। विप्लव के प्रारंभ में जो लोग आशाओं के सुनहले स्वप्न देखा करते थे, विप्लव के अंत में वे ही नैराश्य की घोर यातना से प्रपीड़ित होने लगे। इस शून्य-परिवर्तन का प्रभाव वर्डस्वर्थ-युग के कवियों पर कैसा पड़ा, यह पाठकों को आगे चलकर मालूम हो जायगा। हाँ, यहाँ पर इतना कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि एलिज़बेथन युग और वर्डस्वर्थ-युग में किसी प्रकार से पूर्ण सादृश्य नहीं ठहराया जा सकता। एलिज़बेथन युग के भावों का रूप क्रियात्मक था; उनमें ओज था, नवीनता थी। परंतु वर्डस्वर्थ का युग अन्तर्दर्शन (Introspection) और आत्मबोध (Self-Consciousness) का युग था।

विषय-प्रवेश के पूर्व हम रोमांटिसिज़्म की परिभाषा बतला देना उचित समझते हैं। फ्रेंच-विप्लव के प्रभावस्वरूप जिस समय अँगरेज़ी-काव्य में रोमांटिसिज़्म का पुनरुत्थान (Revival) हुआ, उस समय रीतिवाद (Classicism) की रचनाओं का प्राबल्य था। रीतिवाद की रचनाओं के विशेष गुण हैं—भावगाम्भीर्य, उत्कृष्ट आनुरूप्य, निष्कलंक सौंदर्य एवं आकर्षक चमत्कार। परंतु रोमांटिसिज़्म इससे विभिन्न है। किसी अपार्थिव व्यतिरेक वस्तु की विस्मय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त विभूतिमय एवं संगीत-आप्लावित कल्पना को हम रोमांटिसिज़्म कह सकते हैं । दूसरे शब्दों में जिस प्रकार की रचना के द्वारा कल्पक दक्षता के कलापूर्ण प्रयोग से किसी लाक्षणिक या प्रतिरूपक रहस्य का सृजन हो तथा मनुष्य के विशालतर उच्चतर और श्रेष्ठतर गुणों का चित्रण हो, वह रोमांटिसिज़्म की रचना कही जायगी । जो विषय जितना ही उत्तम और आदर्श होगा, उसका चित्रण रोमांटिक कवि या लेखक के द्वारा उतना ही उत्कर्षपूर्ण होगा । कुशल रोमांटिक कवि या लेखक हमें वास्तविक संसार से अलग खींचकर एक सुदूर नीरव निर्जन सीमा पर ले जाता है और वहाँ वास्तविकता का दर्शन आदर्श रूप से कराता है । उज्ज्वल निर्मल झरनों का कलकल निनाद, निर्जन वन-प्रांतर के मध्य विकसित प्रसूनों की मादक मुस्कान, स्वर्णकरालंकृत प्रभात एवं रक्तवसना सन्ध्या का नव-रसमय सौंदर्य, चारुता-चर्चित चंद्रमा की कमनीय कांति, लोल-ललाम-लावण्य-लसित लहरों का ललित कल्लोल, कलित-कल्पनाओं के नयनाभिराम नृत्य, किसी अज्ञात रहस्य का गुप्त अनुभव, प्रकृति की वाणी में ईश्वर की वाणी का बोध—आदि-आदि रोमांटिक लेखकों के कतिपय विशेष प्रिय विषय हैं । अतएव रोमांटिसिज़्म को हम हिंदी में कौतुकवाद ही कहेंगे । *

* आधुनिक हिंदी-काव्य-साहित्य में प्रचलित छायावाद और रहस्यवाद शब्दों की अर्थ-विवेचना के हेतु पत्र-पत्रिकाओं में बहुत-से लेख निकल चुके हैं । कई लेखकों ने छायावाद को ही रोमांटिसिज़्म का पर्यायवाची शब्द माना है । रहस्यवाद के लिए तो मिस्टिसिज़्म शब्द है ही । परंतु छायावाद को रोमांटिसिज़्म का पर्यायवाची समझना, हमारे विचार से, युक्ति-संगत नहीं है । अँगरेज़ी में रोमांटिसिज़्म का अर्थ है—

The revolt from the severity, pedanticism and common placeness of a classical or pseudo-classical to a more picturesque, free and imaginative style in literature and art (marking the beginning of the 19th century.) Its essential characterstic is, in the words of Theodore Watts-Dunton "the renascence of the spirit of wonder in poetry and art."

हाल में हिंदी में जो कविताएँ निकलने लगी हैं, उनका वर्गीकरण भी इसी श्रेणी में किया जा सकता है ।

जिस समय अँगरेज़ी-साहित्य में विवेच्य नवयुग का आगमन हुआ, वह समय फ्रांस के लिए अत्यन्त विकट था । विप्लव की विकराल अग्नि चारों ओर धू-धू कर सुलग रही थी । वायुमंडल विध्वंसक विचारों से आन्दोलित हो रहा था । रूसो के स्वाधीनता, विश्व-बंधुत्व और साम्य के मत का लोग शोकजनक रूप में प्रयोग कर रहे थे । फ्रांस के जिस विप्लव ने राजनीति के बड़े-से-बड़े केंद्र को बात की बात में ध्वस्त कर दिया, उसी विप्लव ने अँगरेज़ी-काव्य-संसार में मतांतरावलम्बी दल (Dissenters) की सृष्टि की । इस दल की नवीनताओं ने जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । इन साहित्यिक क्रांतिकारियों ने प्राचीन काव्य की निस्तेजता और वैयक्तिकता (Conventionalism) के विरुद्ध आवाज़ उठायी ; वैयक्तिक कल्पना-स्वातंत्र्य का प्रचार किया और प्रकृति-प्रेम पर ज़ोर दिया । जनता में इस भाव को फैलाया कि शांति-प्राप्ति के हेतु प्रकृति की शरण में जाना ही पड़ेगा । फ्रांस का विप्लव अखिल मानव-जाति के कल्याण के लिए हो रहा है और यही आंदोलन लोगों को साम्य का अधिकार दिलावेगा—ऐसा इन क्रांतिकारी कवियों का विश्वास था । परंतु विधि का विधान !—विप्लव का परिणाम नितांत विपरीत हुआ । आशाएँ काफ़ूर हो गयीं और सारे स्वर्ग-स्वप्न मिट्टी में मिल गये । उपर्युक्त कवियों के भावों में भी घोर परिवर्तन हुए बिना न रहा । वर्ड्सवर्थ दार्शनिक बन गया और बायरन समाज का विद्रोही । शेली क्रांतिकारी आदर्शवादी हो गया और कीट्स रसिक अनात्मवादी । नवीनता और स्वाभाविकता काव्य और राजनीति के विषय हो गये । रीतिवाद की श्रृंखला से परित्राण पाकर अँगरेज़ी-काव्य-कला स्वच्छंद नृत्य करने लगी ।

A mould of common clay cannot finely hold a glowing precious metal—इसके ऊपर से लोगों का विश्वास उठ गया और यह धारणा हो गयी कि कविता के लिए आवश्यकता है सुंदर भाव की, न कि सुंदर भाषा की—कोमल भावना की, न कि उत्तम छन्द की ।

जब फ्रांस के विप्लव का प्रारंभ हो रहा था, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ड्स्वर्थ केंब्रिज में था। विप्लवी-दल जिन उदार विचारों का प्रचार कर रहा था, वर्ड्स्वर्थ उनसे अभिभूत हो गया। उस समय वर्ड्स्वर्थ को समस्त पृथ्वी-मंडल आशा-मय दिखलायी पड़ रहा था, जैसा कि उसने स्वयं कहा है

The whole earth
The beauty wore of promise ; that which sets
The budding rose above the rose full blown.

उसके हृदय में कौतुक, सहानुभूति और उमंग का जो अभूतपूर्व आविर्भाव हुआ, उसकी छाप अमिट रूप से उसकी रचनाओं पर पड़ी हुई है। अन्य अनेक लोगों की तरह वह भी प्रथम-प्रथम विप्लवी-दल के अत्याचारों से विक्षुब्ध नहीं हुआ, यहाँ तक कि जब बिशप ने शाही ख़ानदान के शहीदों के प्रति सहानुभूति दिखलायी तो उसने 'Apology for the French Revolution' नामक रचना प्रकाशित कराकर बिशप महोदय को ख़ूब आड़े हाथों लिया और कहा—Political virtues are developed at the expense of moral ones. गिलोटिन के बीभत्स दृश्य से भी वह विचलित नहीं हुआ। परंतु सेना का अनिर्बंध शासन देखकर उसकी कठोरता का भी हृदय हिल गया। उसके मूल सिद्धांतों में अथवा मनुष्य और मानव-क र्त्तव्य के विषय में उसके जो विचार थे, उनमें जो परिवर्तन हुआ, वह उल्लेखनीय नहीं है। परंतु उसके इन सिद्धांतों और विचारों के प्रयोग की रीति में जो परिवर्तन हुआ, वह अवश्य ही महत्वपूर्ण है। उसने राजनीतिक सुधार के लिए आंदोलन मचाना छोड़ दिया और कविताओं में ही अपनी राय प्रकट करना पसंद किया। The Prelude और The Excursion-नामक कविताओं में इसका अच्छा उदाहरण पाया जाता है। संक्षेप में—विप्लव के प्रारंभ में उसका हृदय आशाओं के जिस इंद्रजाल में आबद्ध हो गया था, उसको दूर फेंककर वर्ड्स्वर्थ अपने ही Solitary (एकांत-वासी) की तरह एकांतसेवी हो गया और प्रकृति की गोद में शांति, सांत्वना और शक्ति की खोज करने लगा। उसने देखा कि जिस कौतुकमय संसार को हम केवल आनंद का अभिसार समझते हैं वह वास्तव में वैसा नहीं है, प्रत्युत वह गंभीर शांति और आत्मिक समाधि का पवित्र स्थान है। एक-एक शब्द के द्वारा मनुष्य अमृत का अगाध सागर प्रवाहित कर सकता है। प्रकृति के तुच्छतम कणों से भी हमें शांति और शक्ति का वरदान मिल सकता है—

To me
The meanest flower that blow can give thought
That lies too deep for tears.

प्रकृति के निगूढ़ तत्वों का विश्लेषण एवं कर्त्तव्य की धार्मिकता और दार्शनिकता की कवित्वपूर्ण व्याख्या ही वर्ड्स्वर्थ के कवि-जीवन का लक्ष्य था। प्रकृति की दिव्य शक्ति का कितना मनोहारी वर्णन है। देखिए—उसकी एक कविता का सारांश कितना सुंदर है—

'मनुष्य का जीवन मिट्टी के समान है। परंतु आत्मा अविनश्वर है। जीवन के विगत दुःखों की अनुभूति प्रकृति का तादात्म्य पाकर मनुष्य के भविष्य जीवन में कैसा विचित्र परिवर्तन ला देती है। धन्य है प्रकृति की यह परिवर्तन-कारिणी शक्ति। कर्त्तव्य के प्रति निम्नलिखित उद्गार कितने सुंदर उतरे हैं।

To humbler functions, awful power
I call thee : I myself commend
Unto thy guidance from this hour ;
Oh, let my weakness have an end !
Give unto me, made lowly wise !
The spirit of self-sacrifice ;
The confidence of reason give
And in the light of truth thy Bondman
let me live. *

वर्ड्स्वर्थ चाहता है कि शक्तिशाली और शक्तिहीन—दोनों प्रकार के लोग अपने-अपने कर्त्तव्य को पहचानें। वह स्वयं अपने को कर्त्तव्य की वेदी पर समर्पित कर देता है और आत्मत्याग की शक्ति और सत्य के प्रकाश की याचना करता है। फ्रेंच-विप्लव के अंतिम स्वरूप ने वर्ड्स्वर्थ के जीवन में कैसा परिवर्तन ला दिया। उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञात हो जायगा कि विप्लवप्रसूत घोर नैराश्य की यंत्रणा से उसका हृदय कितना पीड़ित हो रहा था।

वर्ड्स्वर्थ के लिए प्रकृति भाव (Thought) थी, स्कॉट के लिए दृष्टिगोचर देश (Landscape) थी, बायरन के लिए आत्म-प्रतिबिम्ब थी, शेली के लिए

* Ode to duty—1805

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम की सजीव प्रतिमा थी और कीट्स के लिए मूर्तिमान् सौंदर्य थी। प्रकृति के इस प्रेम ने वर्डस्वर्थ के हृदय में मानव-प्रेम की पुण्य-धारा इस वेग से संचारित की कि वह प्रत्येक मनुष्य को कवि समझने लगा। कहावत प्रसिद्ध है कि कवि पैदायशी होते हैं, गढ़े नहीं जाते। परंतु वर्डस्वर्थ की परिभाषा के अनुसार तो वही कवि है, जो प्रकृति के नीरव और भावमय जीवन को समझ सके। वह ज्ञान-शक्ति स्वभाव से ही प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है, इसीलिए प्रत्येक मनुष्य कवि है। होमर, कालिदास, शेक्सपियर और मिल्टन होना एक बात है, और वर्डस्वर्थ होना दूसरी बात।

प्रकृति की नीरवता से भी वर्डस्वर्थ को आशा और शक्ति की शिक्षा मिलती थी। उसके लिए दृश्य स्वर था, और नीरवता वाणी। नीरव स्वर की कल्पना भी बहुतों के लिए असम्भव-सी प्रतीत होगी; परंतु कवि, अनागत-वक्ता और दार्शनिक के संबंध में ऐसी बात नहीं है। हिंदी की आधुनिक शैली के कवि भी यदि "नीरव संगीत" सुना करते हैं, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वर्तमान हिंदी-काव्य के लिए यह कौतुकवाद (Romanticism) का युग है। प्रसिद्ध कौतुकवादी कवि कीट्स ने कहा है—

A little noiseless among the leaves.

*　　　*　　　*

Born of the very sigh that silence heaves.

बायरन ने लिखा है—

Not a breath crept through the rosy air
And yet the forest leaves seemed stirred
in prayer.

वर्डस्वर्थ की रचनाओं में अटूट आकर्षण, विचार-सूक्ष्मता और गम्भीर दार्शनिकता कूट-कूटकर भरी हुई है। उसके विचार में मनुष्य आनंद की अनुक्रमणिका (Index) है और प्रकृति एक जीवित शक्ति, जिसका प्रभाव सुंदर पर्वत-प्रांत, नक्षत्र-विमंडित-व्योम-मंडल, सुमन-सुरभित-कानन-वन, नदी-नद, सरिता-सागर आदि-आदि तत्त्वों के द्वारा निरंतर विज्ञापित होता रहता है।

जैसा हम ऊपर कह आये हैं, इस साहित्यिक नवयुग के प्रवेश-द्वार पर वर्डस्वर्थ के बाद बायरन की झाँकी प्राप्त होती है। बायरन की समस्त काव्य-कृतियों की आलोचना करना हमारा मंतव्य नहीं है। वह किस कोटि का कवि था, यह इसी बात से प्रकट होगा कि प्रारंभ से ही बायरन की प्रकृति उग्र और उसका हृदय क्रांति की भावनाओं से ओतप्रोत था। प्रकृति का उग्र होने के कारण, प्रारम्भ से ही, उसके दिल में आत्मदूषण (Self-sophistication) का दुर्गुण आ गया। बायरन के पत्र-व्यवहार में स्वगुण-प्रकाशन का बाहुल्य देखकर घृणा-सी हो जाती है। उसकी सुंदर से सुंदर कृतियों में भी अहंकारपूर्ण उक्तियों की भरमार है। इन्हीं कारणों से बायरन को हम जितना प्यार करना चाहते हैं, उतना नहीं कर सकते। जिस निर्मल विशुद्ध आत्मा ने उसकी कविताओं में जीवनस्फुरण भरा, उसको व्यंग्यवाद और जनद्रोह की कलुषित कालिमा से आच्छादित करने में ही उसने अपने को सांसारिक दृष्टिकोण से बुद्धिमान् समझा। ऐसी दशा में यदि उसने अपने समकालीन समालोचकों का अपकर्ष तथा तात्कालिक शासन-विधान के प्रति घृणा-प्रचार करने की धारणा बना ली, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अपनी शैशवकालीन रचना (Hours of Idleness) की Edinburgh Review में प्रकाशित आलोचना को पढ़कर बायरन तिलमिला उठा और प्रतीकार की भावना से प्रेरित होकर 'English Bards and Scotch Reviewers' नामक व्यंग्य-बौछारों से भरी हुई रचना छपवायी। उग्र प्रकृति के कारण ही उसको यह कुकर्म करना पड़ा। उसको लंदन में चारों ओर अनादर मिला। तब वह ऊबकर ग्रीस चला गया। इस ग्रीस-यात्रा ने बायरन को महाकवि बना दिया। ग्रीस में उसने अपने अमर ग्रन्थ (Childe Harold) के कुछ अंश तैयार किये और जब वह लौटकर विलायत आया, तो अपने को प्रसिद्ध पाया। Childe Harold के प्रथम दो परिच्छेद Compbell के Pleasures of Hope के आधार पर लिखे गये-से जान पड़ते हैं। परंतु तीसरे और चौथे परिच्छेद में उसकी कवित्व-शक्ति पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। जीवन की निमर्म निदारुण यातनाओं से [illegible] कवि के व्यक्तिगत मनोराग और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्वेग की स्वच्छन्दता तथा अविरोधता दर्शनीय है, आकर्षणमय है। रोम को सम्बोधित करके लिखी गयी पंक्तियों में विश्व के अतीत वैभव का संगीत एवं अत्याचार-पीड़ितों की अवस्था का समवेदनापूर्ण वर्णन अत्यन्त मनोहारी और हृदय-द्रावक है। पर्वत प्रान्तों में, झरनों और नदियों के किनारे तथा गम्भीर एकांत जंगलों में घूमने से बायरन के विक्षिप्त हृदय को एक अनुपम सुख—एक विचित्र-सान्त्वना का अनुभव होता है। वह कहता है—

There is a pleasure in the pathless woods
There is a rapture on the lonely shore
There is a society, where none intrudes,
By the deep sea, and music in its roar.

इस दुःखमय संसार के कठोर यंत्रणा-चक्र में जिनका हृदय पिस चुका है एवं जिनका जीवन प्रेम, निराशा, कीर्ति और महत्त्वाकांक्षाओं की चिता बन चुका है वे ही—केवल वे ही बतला सकते हैं कि प्रकृति के शांतिमय एकांत को लोग क्योंकर इतना प्यार करते हैं।

Childe Harold's Pilgrimage में बायरन ने महासिंधु के प्रति जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं वे अत्यंत मनोरम, चमत्कारपूर्ण और सौंदर्यमय हैं। मनुष्य की सारी शक्तियाँ समुद्र के फेन-प्रक्षालित किनारों तक ही सीमित हैं; मनुष्य के अत्याचारों का एक छोटा-सा चिह्न भी पृथ्वीमंडल पर शेष नहीं रह जाता है। समय की महिमा अपार है। एक तुच्छ जलबूँद की तरह मनुष्य स्वयं भी समुद्र की अगाध लहरों में विलीन हो जाता है। बड़े-बड़े पाषाण-निर्मित नगर, जिनके हुंकारों से हज़ारों के हृदय दहल जाते हैं—बड़े-बड़े आकाश-चुंबी वृक्ष जो मस्तक ऊँचा किये संसार की ओर घृणा के नेत्रों से देखते हैं—महासिंधु की अजेयशक्ति के आगे "कुछ नहीं" के बराबर हैं। महासिंधु चाहे क्रुद्ध हो या शांत, तूफ़ानों से प्रताड़ित हो या मंद पवन से अलस-आंदोलित—उसकी असीम अकूल और अनंत तरंगों में उस सर्वशक्तिमान् का प्रतिबिंब सदैव प्रतिभासित होता रहता है। वह उस 'अदृश्य' का राज्यसिंहासन है।

सन् १८१२ से १८१६ तक का जो समय बायरन ने लंदन में बिताया, उससे उसका जनद्रोह-भावना बढ़ती ही गयी और उसे 'Don Juan' की सृष्टि के लिए पर्याप्त साधन प्राप्त हुआ। सन् १८१६ में लेडी बायरन के अकस्मात् वियोग के कारण कवि बायरन के हृदय को बड़ी भारी चोट पहुँची। उसके मानस-सितार के तार-तार झंकृत हो उठे और उससे जो करुण-रागिणी फूट निकली, वह अपूर्व ही हुई। Childe Harold के उपांतिक अंशों में उसकी कवित्व-शक्ति ने कमाल कर दिखलाया। इसके बाद बायरन जेनेवा गया और वहाँ शेली से उसकी मित्रता हुई। शेली स्वयं ही फ्रेंच विप्लव के अंतिम परिणाम से प्रभावित हुआ था, अतः शेली के इस महत्त्वपूर्ण मिलन का प्रभाव बायरन के कवित्व पर स्पष्ट रूप से पड़ा। इस अवसर के अनुभूत भावों का गुंफन बायरन ने Childe Harold के कतिपय छन्दों तथा 'Prometheus' नामक स्फुट रचना में बड़ी सफलता के साथ किया है। Prometheus में सन्वेष्टित भावनाएँ विप्लव-जनित वेदना-रस से आप्लावित हैं।

वर्डस्वर्थ के कठोर वैराग्यवाद (Monasticism) और शेली के अत्युत्कृष्ट आदर्शवाद (Transcendental Idealism) के साथ सुस्पष्ट विषमता रखते हुए भी बायरन कौतुकवाद (Romanticism) का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि-कवि कहलाने के सर्वथा योग्य है। जैसे-जैसे उसके हृदय के भावों में परिवर्तन होता है, वैसे वैसे उसकी कविताएँ भी रूप बदलती जाती हैं। जिस कुशलता के साथ बायरन ने ग्रीस की विभिन्न अवस्थाओं का, मनुष्य के स्वभाव का तथा प्रकृति के रहस्यमय तत्त्वों का कलापूर्ण चित्रण किया है, उसी कुशलता के साथ उसने अपनी रचनाओं में समाज के विरोध का भाव सन्वेष्टित किया है।

प्रो० डाउडन के शब्दों में—जिस समय अँगरेज़ी-साहित्य की सरिता फ्रांस के विप्लव-समुद्र में मिलने के लिए द्रुत वेग से जा रही थी, उस समय बायरन के काव्य की असित, क्रुद्ध एवं फूत्कारमय लहरों पर नृत्य-शील शेली की कविता सौंदर्य, शांति, आशा एवं अनुराग के विभूतिमय फेनिल धनुष की भाँति इठलाती हुई आती देख पड़ी। यह उच्छृंखल कवि उस विप्लवयुग का सच्चा प्रतिनिधि था। इसका हृदय घोर आशावाद से ओतप्रोत था; भविष्य के प्रगाढ़तम अंधकार में भी इसे विश्वास का इंद्र-धनुष सदैव दृष्टिगोचर होता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक क्या, अनेक विप्लव-आंदोलनों की असफलता भी इसके अदम्य उत्साहपूर्ण हृदय को निराश नहीं कर सकती थी। शेली के इसी Transcendental Nature के कारण बहुतों ने उसकी तीव्रातितीव्र आलोचना की। यदि कुछ लोगों ने उसे "शून्य में अपने उज्ज्वल पंखों को व्यर्थ फड़फड़ानेवाला दिव्य-दूत" * समझा, तो ऐसे भी अनेक हैं जिनके विचार में वह "एक पूर्ण गायक-देवता था" †। शेली की आवाज़ समुद्र की उत्थित लहरों की आवाज़ थी; उसकी कल्पना की उड़ान उत्क्रोष (Eagle) की उड़ान थी। मैथ्यू आरनाल्ड के अनुसार, शेली की कविता तथ्य-हीनता—निस्सारता के दोष से मुक्त है। उसकी रचना में जीवन की आलोचना का एकदम अभाव है। यह सही है, परंतु इन दोषों के रहते हुए भी शेली एक महाकवि माना जा सकता है। यदि जीवन सचमुच में तीव्र आलोचना का उपयुक्त विषय है, तो हमें इसकी आलोचना अन्य अनेक कवियों की रचनाओं में पढ़ने को मिल जायगी। परंतु उत्कृष्ट कल्पना-कल्लोल, आकर्षणमय भाव-सौकुमार्य, कौतुकमय प्रकृति-वर्णन, दिव्य-मनोहर प्रेम-परिदर्शन, वैभवयुक्त सौंदर्य-निरूपण, चमत्कारपूर्ण वाणी-विलास आदि-आदि कुछ ऐसी विशेषाएँ हैं जो शेली की ख़ास अपनी हैं और इन्हीं गुण-किरणों के कारण यह कवि अँगरेज़ी के अनंत साहित्य-गगन में अक्षय-रवि के समान अक्षुण्ण-प्रतिभा के साथ आज तक शोभायमान है। महाकवियों का निर्माण किसी युग-विशेष या देश-विशेष के लिए नहीं होता। सच्चा महाकवि अखिल विश्व का वैभव है और उसकी पूजा सब समयों में होती है।

शेली के विचार में राजनीतिक स्वतंत्रता से ही मनुष्य को सच्चा सुख मिल सकता था। स्वाधीनता पाने की यदि थोड़ी-सा भी आशा दिखलायी पड़ती, तो उसे सीमातात प्रसन्नता होती और उसकी क्रियाशीलता सौगुना बढ़ जाती। जब फ्रांस के विप्लव ने प्रतिक्रियात्मक (Reactionary) रूप धारण किया, तब शेली भी प्रभावित हुए बिना न रहा और अपने सिद्धांतों की

* An ineffectual Angel beating in the void his luminous wings in vain.

† A perfect singing god—a poet beloved beyond and above all others.

पवित्रता और उत्कृष्टता पर पूर्ण विश्वास कर विश्वो-कार-साधना के विचार से प्रेरित होकर काव्य-रच करने लगा। * 'अपने The Revolt of Islam नामक काव्य की भूमिका में शेली ने लिखा है—"मैं बचपन से ही पहाड़ों, झीलों, समुद्र और जंगलों एकांत के साथ मित्रता पैदा की है। ऊँचे-ऊँचे पहा की चोटियों के किनारे जो ख़तरे खेला करते हैं—वे मेरे क्रीड़ा-सहचर रहे हैं। मैंने आल्प्स (Alps) की सघन तुषारपुंजों की सैर की है और Mont Blanc के नीचे दिन बिताया है। सुदूर खेतों की धूल छा है। भीमकाय पर्वतों को काटकर बहनेवाले झरनों औ बड़ी-बड़ी नदियों की मैंने यात्रा की है, और ऐसे ब बड़े नगरों को देखा है जहाँ हज़ारों मानव-वृत्तियाँ उठ हैं, फैलती हैं, डूबती हैं और बदलती हैं। मैंने अत्याचा और युद्ध की तांडव-लीलाएँ देखी हैं। सुसज्जित नग और ग्रामों को ध्वंससात् होते और दीन जनता भूखों मरते देखा है। प्रतिभा-संपन्न तेजस्वी पुरु से मैंने बातें की हैं। ग्रीस, रोम, इटली और मेरे अप देश के काव्य-ग्रंथ मेरे लिए बाह्य प्रकृति के समा आनंददायक और उद्बोधक सिद्ध हुए हैं। यही मे साधन हैं और इन्हीं अनुभवों के बल पर मैंने वर्तमा रचना का सूत्रपात किया है। † शेली के इस स्वकी कथन से मालूम हो जाता है कि विप्लव-युग की घटना से उसके दिल पर कैसा प्रभाव पड़ा था।

शेली का प्रेम-निदर्शन भी अनोखा है। इस कवि क प्रेम मानव-प्रकृति के सभी शुद्धतम और उत्कृष्ट गुणों विमंडित है। सत्य शिव सुन्दर ही उसके प्रेम का मू तत्त्व है। उसके अनुसार प्रेम एक मदिरा है—Whose

* These characterstics breathe throughout his poetry. The struggle for human weal; the resolute firm to martyrdom; the impetuous pursuit, the glad triumph in good; the determination not to despair—such were the features which marked those of his works which he regarded with most complacency as sustained by a lofty subject & useful aim.

Preface by Mrs. Shelly to first collected Edition (of Shelley's works) 1839.

† Preface, by Shelley, to The Revolt of Islam, 1817.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

drunkenness is all we can desire—प्रेम की वेदना से विह्वल होकर रोने में जो सुख मिलता है, वह अकथनीय है—

O Helen, none can ever tell
The joy it was to weep once more.
(Rosalind and Helen. 1817)

Rosalind and Helen, Love's philosophy, और Lines written among the Euganean hills—शेली की प्रेम-रस की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। To a skylark में प्रेम की व्यथा-जनित निराशा का मार्मिक चित्रण है। स्थानाभाव के कारण इस लेख में शेली के प्रेम की पूरी विवेचना नहीं की जा सकती।

विगत १५ जनवरी को भारतवर्ष में जो भयंकर भूकंप हुआ, वह हृदय में स्मृति की अग्नि-चिता पर आमरण ताण्डव-नृत्य करता रहेगा। प्रकृति की इस प्रलयंकरी शक्ति ने चन्द मिनटों के अंदर ही कितने शहरों को ध्वंस में मिला दिया। आज इन शहरों में फैली हुई गम्भीर हृदय-द्रावक निस्तब्धता से क्या शिक्षा मिलती है? ज्ञात होता है, किसी ऐसे ही भूकंप द्वारा ध्वंससात् स्थान में बैठकर शेली ने कहा था—"क्या यही वह स्थान है जहाँ उस भूकंप-दैत्य ने अपने शिशु ध्वंस को शिक्षित किया था? क्या ये चीज़ें उसकी क्रीड़ा-सामग्री थीं? अथवा इस नीरव तुषारपुंज को एक बार भयंकर अग्नि-समुद्र ने आच्छादित कर लिया था? इस समय इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दे सकता। अब तो सब कुछ अनंत हो गया। परन्तु यह घोर शून्यारण्य अपने रहस्यमय स्वरों के द्वारा एक ऐसे दारुण संदेह—एक ऐसे नम्र, गम्भीर और पवित्र विश्वास की ओर संकेत करता है जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति पर ही संतोष करना पड़ता है।

अब कवि की कोमल ध्वंस-भावना देखिए—

...........Desolation is a delicate thing ;
It walks not on the earth, it floats not on the air,
But treads with lulling footstep and fans with silent wing
The tender hopes, which in their hearts the best and gentlest bear.
(From Prometheus Unbound)

सचमुच शेली की कल्पना आकाशीय (Ethereal) थी जिसने उसके हृदय की अगाध भावुकता की सहायता पाकर उसकी स्वर्ण-लेखनी के द्वारा ऐसी अनमोल, अपूर्व एवं अद्वितीय रचनाओं की सृष्टि करा दी। इस कल्पना-प्रियता और भावुकता के कारण बाह्य प्रकृति की साधारण से साधारण घटना से भी शेली का हृदय प्रभावित हो जाता था। जीवन के आवर्तन-विवर्तन-चक्र में पिसते हुए, नैराश्य के प्रचंड तूफ़ानों से प्रताड़ित होते हुए एवं मनस्ताप की भीषण अग्नि में जलते हुए शेली के हृदय में सरल भावुकता ने एक ऐसी व्यथा उत्पन्न कर दी थी जो उसको सदैव व्याकुल बनाये रहती थी। इसी निदारुण यंत्रणा से मुक्ति पाने के लिए शेली ने कविता देवी की शरण ली और कल्पना के चिरसंगीत-मय विजन कानन में विहार कर वह प्राणों को शांत करने लगा। जब तक आदर्शवाद जीवित है, जब तक विशुद्ध परिमार्जित भावनाओं की आकर्षण-ज्योति अक्षुण्ण है तब तक शेली अपनी अपूर्व ओजस्विता, आकाशीय कल्पना-शक्ति और सुकुमार भावुकता के लिए प्यार किया जायगा।

"अनेकता मिट जाती है और 'एक' का रूप स्थायी रह जाता है। मनुष्य अपने कलुषित उपकरणों से उस अनंत के दिव्य प्रकाश को कलंकित कर देता है और अंत में मृत्यु आकर इन मानवीय उपकरणों को चूर-चूर कर देती है।"—कैसा सुंदर दार्शनिक भाव है! कीट्स की मृत्यु पर शेली ने अपने व्यथापूर्ण कलेजे से हीरे के इन टुकड़ों को निकाला था। कीट्स की उगती हुई प्रतिभा को शेली हृदय से प्यार करता था। जिस उग्रता, कर्कशता और द्वेषपूर्ण कटुता के साथ Quarterly Review में कीट्स की Endymion की आलोचना की गयी थी, उससे कीट्स के कोमल हृदय पर भीषण आघात पहुँचा और उसकी मृत्यु हो गयी। एक होनहार महाकवि के ऐसे आकस्मिक निधन से शेली की आत्मा रो पड़ी। तत्कालीन अखिल अँगरेज़ी-साहित्य-संसार विक्षुब्ध-सा हो गया। कीट्स की मृत्यु से संसार का एक सर्वश्रेष्ठ कवि उठ गया—ऐसा श्रेष्ठ कवि, जिसकी दिव्य प्रतिभा के आगे शेक्स-पियर के अतिरिक्त दूसरा कोई कवि नहीं ठहर सकता। मृत्यु के पूर्व एक बार कीट्स ने नम्रता से कहा था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं समझता हूँ, मृत्यु के बाद मेरी गणना अँगरेज़ी-कवियों में होगी।" यह उसका संदिग्ध विचार था। परंतु वह आज सचमुच अँगरेज़ी-कवियों के बीच शेक्सपियर के साथ शोभायमान हो रहा है।

यदि वर्डस्वर्थ के लिए प्रकृति का तुच्छतम प्रसून भी ज्ञानोत्पादक है, तो कीट्स के लिए प्रकृति का कण-कण किसी सौंदर्य-विशेष का राशि-राशि भांडार है।

सौंदर्योपासना ही उसके जीवन का आधार है; सौंदर्य-भावना ही उसका विश्वास है, धर्म है; सौंदर्य और सत्य का समीकरण ही उसके सांसारिक जीवन का प्रधान लक्ष्य है। कीट्स का यह उत्कट सौंदर्यानुराग किसी विलासी एवं शृंगारी पुरुष या कवि का सौंदर्यानुराग नहीं है, प्रत्युत यह एक मानसिक तथा आत्मिक अनुराग है जो उसके चैतन्य की तरंगों में मिलकर तद्रूप हो गया है। कीट्स का यह सौंदर्यानुराग प्रत्येक वस्तु का सारसंग्रह है। एक बार कीट्स ने कहा था—"मैंने कोई ऐसी अमर रचना नहीं की है जिसका नाम, मेरी मृत्यु के बाद, मेरे मित्र-गण अभिमानपूर्वक ले सकें। परंतु हाँ, मैंने प्रत्येक वस्तु को सौंदर्यमय पाया और प्यार किया है। यदि समय मिलता, तो मैं अपने को याद किये जाने लायक़ बना देता।" कीट्स का विचार चाहे जैसा हो, परंतु यह तो निर्विवाद है कि वह अपने अभूतपूर्व सौंदर्यानुराग के कारण अमर हो गया है।

निस्संदेह कीट्स का सौंदर्यानुराग अत्यंत निराला है। किसी वस्तु के वास्तविक सौंदर्य को देखना क्या है, उसके तात्विक सत्य को ही देखना है। कल्पना जिसे सौंदर्य समझकर ग्रहण करती है, वह सत्य के सिवा और अन्य कुछ नहीं हो सकता।

कवि सौंदर्य और सत्य की एकरूपता तो स्थापित करता ही है; साथ ही यह भी बतलाता है कि अनंत सुख भी सौंदर्य में सम्वेष्टित है। कीट्स की काव्य-कल्पना और कला-ज्ञान परमोत्कृष्ट है। उसकी कवि[ता] में Celtic और Hellenic—अँगरेज़ी-साहित्य [के] दो विरोधी तत्त्वों का शांतिपूर्ण सम्मेलन हुआ है। कीट्स के Nightangle के गीतों से भी यही विश्वा[स] होता है कि मानव-जीवन की परिवर्तनशील परिस्थि[]तियों के बीच एक ऐसा अपरिवर्तनीय निर्विकार सौं[दर्य] प्रतिष्ठित है, जिसकी आकर्षणमयी अज्ञात शक्तियों [के] द्वारा हृदय में आशा और प्रेम का अमृत स्रोत निरं[तर] प्रवाहित होता रहता है।

उपसंहार

जिस फ्रेंच-विप्लव के प्रारंभ ने आशाओं [के] विस्तार को अनंत एवं स्वतंत्रता, बंधुता तथा सा[म्य] के भाव को प्रशस्त कर दिया था, उसी फ्रेंच-विप्ल[व] के अंतिम परिणाम ने तत्कालीन अँगरेज़ी-साहित्य [के] युगांतरकारी कौतुकवादी कवियों की विचार-धारा [को] किस प्रकार पलट दिया—यह स्पष्ट किया जा चु[का] है। विप्लव की असफलता का प्रभाव इन कवियों प[र] उनकी पृथक्-पृथक् मनोवृत्तियों के अनुसार पड़ा[।] वर्डस्वर्थ ने प्रकृति के कण-कण से शिक्षा ली [और] अपनी कविता में ज्ञानानुराग और तत्त्वविचार की धा[रा] बहायी; बायरन ने सामाजिक रूढ़िवाद का शत्रु बनक[र] ओजस्वी काव्य की रचना की; शेली की आदर्श आका[]शीय कल्पना उत्तेजित हो उठी जिसके स्वर्ण-पंखों प[र] उड़कर उसने विश्व के जीवन-प्रांगण में आनेवाले कल्याण[]मय सुख-सूर्य की प्रथम किरणों का दर्शन किया; [और] कीट्स ने प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में सौंदर्य और सत्य [की] एकरूपता स्थापित की। इन चारों महाकवियों ने ए[क] स्वर से नवीनता का स्वागत किया कल्पना को स्वच्छं[द] नृत्य करने की छूट दी और कविता-क्षेत्र से राजनीति[क] भावों का निर्वासन किया। कौतुकवादियों द्वारा प्रति[]ष्ठित इस नवयुग का स्वर्ण-इतिहास अँगरेज़ी-साहित्[य] को चिरकाल तक गौरवान्वित करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की चढ़ाई

[श्री० श्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी०]

बीसवीं शताब्दी उन्नति और विकास का युग है। विज्ञान की सहायता से संसार में चारों ओर प्रत्येक दिशा में उन्नति हो रही है। वैज्ञानिक नयी-नयी बातों को जानने, अज्ञात स्थानों का पता लगाने और ज्ञात स्थानों का पूरा विवरण मालूम करने के लिए प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं। महायुद्ध के बाद से इन प्रयत्नों का संचालन अधिक सुसंगठित और सुव्यवस्थित ढंग से किया जाने लगा है। कोई यात्री-दल उत्तरीय और दक्षिणी ध्रुव की यात्रा करने में लगा हुआ है और कोई पृथ्वी के सर्वोच्च शिखर हिमालय-पर्वत की यात्रा में। अभी हाल ही में एक वर्ष पूर्व अप्रैल १९३३ में कुछ वीर और साहसी उड़ाके वायुयानों की सहायता से पर्वतराज हिमालय के सर्वोच्च शिखर की चढ़ाई पर सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, पर इस सिद्धि से भी वैज्ञानिकों को सन्तोष नहीं हुआ। जिन दिनों ह्रूस्टन-दल अपने हवाई बेड़े की सहायता से हिमालय की परिक्रमा कर रहा था उन्हीं दिनों मि० डफ़ रटलज की अध्यक्षता में इँगलैंड से एक दूसरा दल रवाना हो चुका था—इस दूसरे दल ने हिमालय के सर्वोच्च शिखर तक पैदल चढ़कर पहुँचने का दृढ़ संकल्प किया था।

यद्यपि 'रटलज-दल' को पूर्ण विजय नहीं प्राप्त हुई, परंतु फिर भी विजय का सेहरा वास्तव में इन्हीं वीर पैदल यात्रियों के सिर बाँधा जाना चाहिए। इन लोगों को जितनी कठिनाइयाँ और यातनाएँ सहन करनी पड़ीं हैं, वायुयान द्वारा यात्रा करनेवालों को उनका शतांश भी तो न भुगतनी पड़ी होंगी। इसके अलावा हिमालय प्रदेश का जितना विस्तृत और सच्चा ज्ञान इन लोगों ने प्राप्त किया है, उसकी तुलना में वायुयान द्वारा विजय प्राप्त करनेवालों की उपलब्धियाँ नहीं के बराबर होंगी।

इस यात्रा के पूर्व १९२१, १९२२ और १९२४ में भी हिमालय पर पैदल चढ़ाई की गयी थी। परंतु वे दल सर्वोच्च शिखर तक न पहुँच सके। १९२१ का दल जार्ज ले मैलोरी की अध्यक्षता में रवाना हुआ था। जार्ज मैलोरी ने उत्तर-पूर्व की ओर से चढ़ाई करने का रास्ता ढूँढ़ निकाला था। चढ़ाई करने के लिए उपयुक्त मार्ग ढूँढ़ निकालने में उन्हें बड़ी अड़चनों का सामना करना पड़ा था। चढ़ाई का सबसे अच्छा मार्ग हिमालय के दक्षिण में नेपाल-राज्य में होकर जाता था। परंतु नेपाल-सरकार ने उस मार्ग के उपयोग की आज्ञा नहीं दी थी। लाचार होकर हिमालय के उत्तर—तिब्बत की ओर से चढ़ाई का मार्ग ढूँढ़ निकालना पड़ा था।

इसके एक वर्ष बाद १९२२ में ब्रिगेडियर जनरल सी० जी० ब्रूस की अध्यक्षता में एक और दल रवाना हुआ। वर्तमान दल के सदस्य मि० सी० जी० क्राफ़ोर्ड इस दल के भी सदस्य थे।

१९२२ में चढ़ाई के अवसर पर आक्सीजन गैस के उपयोग करने या न करने का मसला तय नहीं हुआ था। बहुत-से वैज्ञानिकों का यह दृढ़ विश्वास था कि जो दल आक्सीजन गैस को बिना साथ लिये हुए यात्रा करेगा, उसकी असफलता अवश्यंभावी है। परंतु धीरे-धीरे जैसे अनुभव और ज्ञान बढ़ता गया, यह बात बिलकुल समझ में आने लगी और लोग आक्सीजन की उपयोगिता में विश्वास करने लगे। १९२४ में ब्रिगेडियर जनरल ब्रूस की अध्यक्षता में जो दल रवाना हुआ, उसने आक्सीजन का प्रयोग किया और उस दल के प्रमुख सदस्य कर्नल नार्टन ने २८,१२६ फ़ुट की उँचाई तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की। इस दल के दो सदस्य मलैरी और इर्विन तो २८,२३० फ़ुट तक पहुँच गये थे। परंतु हिमालय प्रदेश की भीषण सर्दी के कारण वापस न आ सके और चिरकाल के लिए हिमालय ही की गोद में सो गये। मौसम बहुत ज़्यादा ख़राब हो जाने के कारण बाक़ी सदस्य नीचे उतर आये। इन अमर वीरों के बलिदान और आत्मोत्सर्ग पर संसार-भर में शोक मनाया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रूस-दल और हूस्टन-दल के अनुभवों से रटलज-दल को बहुत सहायता मिली। किनचिनचंगा और कामेर की सफल चढ़ाई से भी बहुत-सी कठिनाइयाँ सरल हो गयीं। उतनी ज़बरदस्त उँचाई पर भोजन तैयार करने, उसे गरम एवं खाने योग्य बनाये रखने की समस्या भी हल हो गयी। इतना ही नहीं, दल के प्रायः सभी सदस्य पार्वत्य प्रदेशों की चढ़ाई के विशेषज्ञ और अनुभवी थे। कई सदस्य तो स्वयं हिमालय पर्वत ही की चढ़ाई में भाग ले चुके थे। बेतार के तार तथा अन्य महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कारों ने इनका कार्य पिछले दलों की अपेक्षा बहुत कुछ सुगम बना दिया।

इस दल ने १२ मार्च को अपनी यात्रा आरम्भ की थी। शुरू-शुरू में एंगबक ग्लेशियर तक धीरे-धीरे चढ़ने का आयोजन किया गया था।

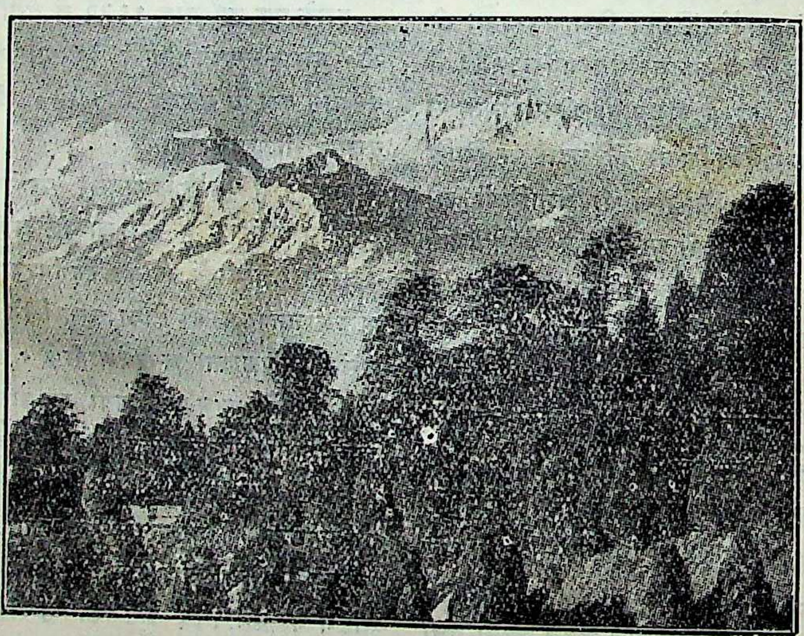

हिमालय का दार्जिलिंग से लिया हुआ चित्र

यह दल दार्जिलिंग से रवाना होकर २२ मई तक २५,६०० फ़ुट की उँचाई तक जा पहुँचा। इतनी उँचाई तक पहुँचने के लिए कुल मिलाकर पाँच पड़ाव डाले गये। पहला पड़ाव २१ अप्रैल को १८,००० फ़ुट की उँचाई पर, दूसरा २६ अप्रैल को १९,४०० फ़ुट की उँचाई पर, तीसरा १ मई को २१,००० फ़ुट की उँचाई पर, चौथा १५ मई को २२,९०० फ़ुट की उँचाई पर और पाँचवाँ २२ मई को २५,६००–७०० फ़ुट की उँचाई पर। सबसे ऊँची चोटी की उँचाई २९,१४१ फ़ुट है। २५ मई को मि० रटलज महोदय ने एवरेस्ट पर्वत से निम्न आशय का संवाद भेजा था—'यदि आज (गुरुवार को) हम ६ पड़ाव डालने में समर्थ हो गये तो स्माइथ और शिपटन कल तक चोटी पर पहुँचने की कोशिश करेंगे।'

मि० रटलज ने अपना उपर्युक्त संवाद २५,८०० फ़ुट की उँचाई से भेजा था। इसे वहाँ से टेलीफोन द्वारा तीसरे पड़ाव को भेजा गया; वहाँ से वह बेतार द्वारा पर्वत के नीचे 'बेस केम्प' (Base Camp) भेजा गया। बेस केम्प से दार्जिलिंग। मि० रटलज का कहना था कि मौसम बहुत ही अस्थायी और अनिश्चित है। यात्रियों के दल को तूफ़ान आदि के कारण बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

पाँचवें पड़ाव को स्थापित करने में तो बहुत-सी दिक़्क़तें उठानी पड़ीं। सर्दी और तेज़ हवा ने सबको परेशान कर दिया। पहला प्रयत्न बिलकुल निष्फल होगया, परन्तु २३ मई को इन लोगों को २५,६०० और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

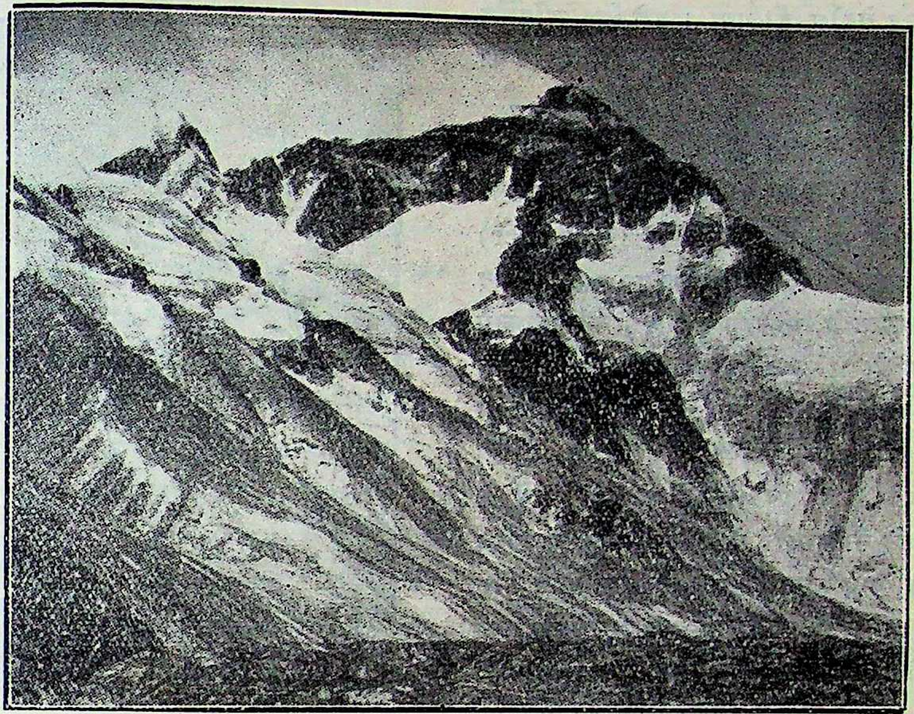

एवरेस्ट की उत्तर-पूर्वी श्रेणी

[यह एवरेस्ट का उत्तरीय भाग कहलानेवाली श्रेणी का पूर्वी मुख है]

२५,७०० फ़ुट की उँचाई के दर्मियान अपने कैम्प आदि गाड़ने के लिए अच्छा-सा मैदान मिल गया और ४ योरपियन यात्री एवं २० पोर्टर (कुली) वहाँ पहुँच गये। पिछली चढ़ाई की अपेक्षा यह पड़ाव ५०० फ़ुट अधिक ऊँचा था।

कुलियों में १९२२ के चढ़ाई-दल के सुप्रसिद्ध लाक पचेडी (Lhak Pachedi) भी थे। रास्ते में एक कुली बिलकुल अशक्त हो गया, परन्तु मि० बौस्टेड (Boustead) बराबर सबको उत्साहित करते रहे।

चौथे पड़ाव तक पहुँचने में इन लोगों को विशेष कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। चौथा पड़ाव १५ मई को स्थापित किया गया था। तब से बराबर ६-७ दिन तक बड़े ज़ोर का तूफ़ान और अन्धड़ चलता रहा। तीसरा पड़ाव भी इस तूफ़ान के आक्रमण से बच न सका। कैम्प आदि विशेष सावधानी से बनाये गये थे। वे उत्तरीय ध्रुव तक की सर्दी सकुशल बरदाश्त कर सकते थे। अस्तु, वे किसी तरह इस तूफ़ान का प्रकोप सहन करने में समर्थ हो गये। इधर पहले तूफ़ान का ज़ोर-शोर था, और उधर कलकत्ते से बेतार द्वारा इन लोगों को सूचित किया गया कि बंगाल की खाड़ी में मानसून अपना ज़ोर जमा रहा है।

२० मई को ह्विन, हेरिस, बर्नी, और बौस्टेड ने १० चुने हुए पोर्टरों को लेकर पाँचवाँ पड़ाव स्थापित करने की कोशिश की; परन्तु सर्दी और अन्धड़ के कारण उसमें सफल न हो सके। उसी दिन शाम को स्मिथ-विण्डहम और मि० रटलज़ तीसरे पड़ाव से चौथे पड़ाव तक टेलिफ़ोन ले गये। २१ तारीख़ को आगे का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए इन लोगों की एक कानफ़रेंस हुई। इस कानफ़रेंस में मि० रटलज भी शामिल हुए।

२२ मई को ह्विन, हेरिस, ग्रीन, बर्नी और बौस्टेड ने २० पोर्टरों को लेकर फिर ज़बरदस्त चढ़ाई की। इन पोर्टरों में १९२२ और १९२४ की चढ़ाई करनेवाले दलों में शामिल होनेवाले लाक पचेडी भी थे। लाकपचेडी सिंह के समान साहसी हैं। इन लोगों को २५,००० फ़ुट से ऊँचे पर एक मैदान-सा मिल गया। इसकी उँचाई २५,६५० फ़ुट के लगभग थी। इस पड़ाव तक पहुँचने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले एक पोर्टर बेहोश हो गया । उसे मि० लाँगलैंड नीचे लिवा ले गये । वहाँ से ग्रीन भी चौथे पड़ाव को वापस चले गये ।

चढ़ते समय रास्ते में ग्रीन को १९२२ के फ़िंची पड़ाव (Finche Camp) का पता लगा । इस पड़ाव पर आक्सीजन गैस से भरे हुए कुछ सिलेंडर (Cylinder) भी मिले । यह सिलेंडर ११ वर्ष तक पड़े रहने के बाद भी बिलकुल दुरुस्त थे, और इनकी आक्सीजन गैस काम में लाने योग्य थी । इनसे ग्रीन को बड़ी सहायता मिली । आक्सीजन के अलावा एक सिलेंडर और भी मिला, इसमें कोडक फ़िल्म भरी हुई थीं । इन पर चित्र उतारे जा चुके थे । इन फ़िल्मों को विशेषज्ञों के पास चित्र आदि तैयार करने के लिए भेजा जायगा ।

२२ मई के बाद लगातार कई दिन तक प्रयत्न करते रहने पर भी २९ मई के पूर्व छठा पड़ाव डालने में सफलता न मिली । २४ मई के दिन सभी यात्रियों को नीचे के पड़ाव को वापस लौटना पड़ा । २८ मई को फिर कुछ लोग ऊपर गये और २९ मई को विनहैरिस, वेगर और लाँगलैंड ८ पोर्टरों के साथ २७,४०० फ़ुट की उँचाई पर जा पहुँचे । छठा पड़ाव स्थापित कर दिया । इस पड़ाव के डालने में कुछ कम कठिनाइयाँ नहीं पड़ीं । १,७०० फ़ुट की उँचाई तय करने में पूरा एक सप्ताह लग गया । २२ मई को २५,७०० फ़ुट की उँचाई पर पाँचवाँ पड़ाव डाला गया था । उसके ठीक एक सप्ताह बाद २७,४०० फ़ुट की उँचाई पर छठा पड़ाव पड़ सका । इस पड़ाव की स्थापना में हैरिस, वेगर और लाँगलैंड के प्रयत्न विशेषतः उल्लेखनीय हैं । असबाब वग़ैरह ढोनेवाले कुलियों को तो बहुत ही ज़्यादा मेहनत पड़ी । हवा की तेज़ी और प्रतिकूलता के कारण परेशानी और भी ज़्यादा बढ़ गयी थी । लाँगलैंड और हेरिस बराबर कुलियों की सहायता करते रहते थे । सामान पहुँचाने के बाद कुछ पोर्टर आराम करने के लिए तीसरे पड़ाव को वापस कर दिये गये थे ।

अगले दिन हैरिस और वेगर ने फिर ऊपर चढ़ना शुरू किया । २ घंटे तक चढ़ते रहने के बाद उन्हें वहीं खुली हुई चट्टानों पर एक कुल्हाड़ी मिली । अनुमान किया जाता है कि यह कुल्हाड़ी १९२४ की चढ़ाई में काम आ जानेवाले मेलौरी अथवा इर्विन की होगी ।

मकालू-पर्वत की बर्फ़ से ढकी हुई चोटी

विनहेरिस और वेगर प्रातःकाल ५ बजकर ४० मिनट पर रवाना हुए । उस समय बड़ी भीषण सर्दी पड़ रही थी । एक मंज़िल तो आसानी से तय हो गयी, परन्तु दूसरी तय करने में बड़ी ज़बरदस्त दिक़्क़तें पड़ीं । बहुत ज़्यादा परेशान होने पर भी जब ये लोग उसे तय न कर सके, तो छठे पड़ाव को लौट चलने का निश्चय किया । उस समय तक स्माइथ और शिपटन पाँचवें पड़ाव से छठे पड़ाव तक आ गये थे । हेरिस और वेगर ने तय किया कि अगले दिन इन लोगों को ऊपर भेजा जाय । स्माइथ और शिपटन को अपने कार्य की रिपोर्ट देकर हेरिस और उनके साथी विश्राम करने के लिए पाँचवें पड़ाव को लौट गये ।

अगले दिन बहुत ज़बरदस्त हिम-वर्षा हुई । स्माइथ और शिपटन १ जून से पहले आगे न बढ़ सके । उन हिमाच्छादित शिलाओं पर पैर रखना जोखिम से ख़ाली न था । पहली मंज़िल तय करते ही शिपटन तो बिलकुल अशक्त हो गये और किसी तरह नीचे वापस आये । स्माइथ बराबर आगे बढ़ते रहे और १० बजे तक ठीक उसी जगह जा पहुँचे, जहाँ से हेरिस और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बग़ैर वापस लौटे थे। बहुत सम्भव था कि वे गौरीशंकर तक पहुँचने में सफल हो जाते, परन्तु हिमवर्षा ने पत्थरों पर खड़े होना भी मुश्किल कर दिया था। वे भी उसी जगह से छठे पड़ाव को वापस लौट आये और तीसरी रात वहाँ पर अकेले ही बितायी। दूसरे सब साथी पहले ही दिन नीचे जा चुके थे। वहाँ पर भी वे पूरे १३ घंटे तक सोये। परन्तु अगले दिन मौसम और ज़्यादा ख़राब हो गया और स्माइथ को मजबूरन छठा पड़ाव छोड़कर नार्थ काल के पासवाले पाँचवें पड़ाव को वापस आना पड़ा। उस समय तक मानसून भी अपना प्रभाव दिखाने लगा था। एक सप्ताह तक वर्षा के थमने और मौसम के सुधरने का इन्तज़ार किया गया; परन्तु कोई विशेष फल न निकला। ११ जून को तीसरी बार ऊपर चढ़ने की कोशिश की गयी। उस समय तक एवरेस्ट की चोटी

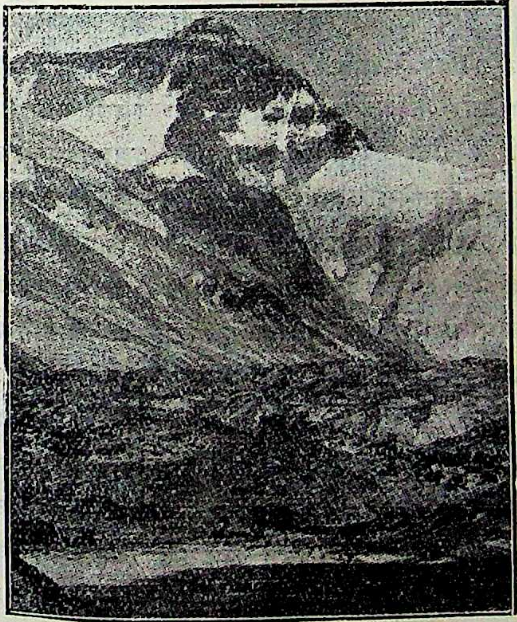

एवरेस्ट की चोटी का उत्तर-पश्चिमी दृश्य

पूर्णतः बर्फ़ से ढक गयी थी और बिलकुल बर्फ़ के ढेर की तरह मालूम होती थी। एवरेस्ट क्या, नार्थकाल-तक पहुँचना असम्भव था। यात्रियों की सुविधा के लिए जो मज़बूत रस्से वग़ैरह वहाँ पर डाले गये थे, उन सबके ऊपर दो फ़ुट ऊँची बर्फ़ जम गयी थी। हिमवर्षा नित्य ही होती थी। कई दिन तक यही हाल रहा। अन्त में इन लोगों ने वहाँ पर बेकार पड़े रहना ठीक न समझा। आपस में सलाह-मशविरा किया

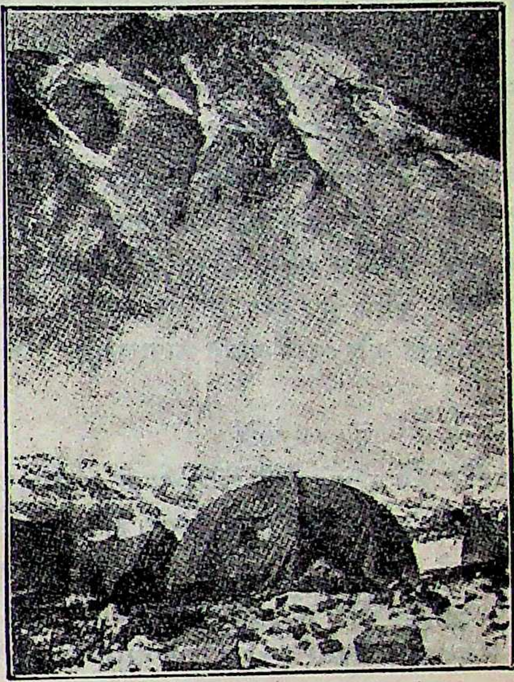

गौरीशंकर-शिखर

और कलकत्ते के हवाघर के विशेषज्ञों से मौसम के बारे में जाँच-पड़ताल की। कलकत्ते के विशेषज्ञों ने उन्हें लौट आने की सलाह दी। सितम्बर तक रास्ते के खुलने की कोई गुंजाइश ही न थी। तिब्बत की पछाहीं हवा के चलने पर आगे बढ़ने का मौक़ा मिल सकता था। उससे पहले नहीं। परन्तु सितम्बर के महीने में दिन छोटे हो जाते हैं और सर्दी बहुत ज़्यादा बढ़ जाती है। इन सब बातों का ख़याल करके मि० रटलज अपने साथियों सहित २ जुलाई १९३३ को वापस लौट पड़े।

एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव पर पहुँचते ही शीघ्र ही दोनों को टेलीफ़ोन द्वारा सम्बद्ध कर दिया जाता था जिससे संवाद आदि भेजने एवं ज़रूरत पड़ने पर सहायता का प्रबन्ध कराने में सुविधा हो। इस यात्रा के लिए बेतार का प्रबन्ध विशेष-रूप से किया गया था। दार्जिलिंग के पास काला पहाड़ पर सदर स्टेशन स्थापित किया गया था। वहाँ से नित्यप्रति यात्रियों को संवाद भेजे तथा प्राप्त किये जाते थे। लन्दन से भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीधे संवाद मँगाना और भेजने का समुचित प्रबन्ध किया गया था। बाहरी संवाद बेसकैम्प स्टेशन पर ग्रहण किये जाते थे और बेतार द्वारा तीसरे पड़ाव पर भेज दिये जाते थे। कलकत्ते के हवाघर (Observatory) से भी नित्यप्रति मौसम के समाचार भेजने का प्रबन्ध था। कभी-कभी तीसरे पड़ाव से चढ़ाई-दल के प्रमुख-प्रमुख सदस्य बेतार द्वारा जो मौखिक संवाद भेजे जाते थे उन्हें बेसकैंप पर लाउड-स्पीकर की सहायता से साफ़-साफ़ सुना जाता था। इस प्रकार जो सदस्य दल के साथ किसी कारण से ऊपर न जा पाते थे, वे भी दल की उन्नति और कार्य-प्रगति का पूरा-पूरा हाल पा लेते थे।

पोर्टर

यात्रा आरंभ करने से पहले दार्जिलिंग में ८४ शेरपा और भूटिया कुलियों का प्रबंध किया गया था। इनमें से ३० तो अपने-अपने काम के विशेषज्ञ थे। कुछ रसोइये, कुछ साईस, कुछ दुभाषिये और कुछ डाकिये और हरकारे के काम में दक्ष थे। बाक़ी ५०-५४ आदमी बोझा आदि ढोने के लिए रक्खे गये थे। कैप्टेन ई० सेंट जे० बर्नी इन कुलियों वग़ैरह के अध्यक्ष बनाये गये थे। पहाड़ की भीषण और दुर्गम चढ़ाई में सफलता प्राप्त करने में इन वीर और साहसी भूटिया लोगों ने बड़ी मदद की थी। ये लोग वास्तव में बहुत साहसी और स्वामिभक्त होते भी हैं। मुश्किलों से तो वे घबराते ही नहीं। तीसरे पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते इन पोर्टरों की संख्या घटकर केवल ४० ही रह गयी। वास्तव में बहुत ज़्यादा आदमियों को साथ लेकर ऊपर चढ़ने में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इनमें से कुछ तो बीमार और अशक्त हो जाने की वजह से आगे न बढ़ सके और कुछ चढ़ाई से हार मानकर लौट गये। बचे हुए ४० आदमी तीन हिस्सों में बाँटे गये। इन सबके लिए एक-एक सरदार नियुक्त किया गया। बाद में इन ४० में से केवल बीस ही रह गये। शेष को जवाब दे दिया गया। चौथे पड़ाव तक ३ व्यक्ति और शामिल हो गये। इनमें १९२४ का चढ़ाई के समय का लाखाछेदी नामक साहसी पोर्टर भी था। इस बार लाखाछेदी को भोजन बनाने का काम सौंपा गया था, पर वह अधिक समय तक वह काम न कर सका और चढ़ाई-दल में शामिल हो गया। छठे पड़ाव तक केवल ८ पोर्टर पहुँच सके। कुछ रास्ते में पड़नेवाले पड़ावों की देख-भाल और मदद वग़ैरह पहुँचाने के लिए रोक दिये गये। इन आठ पोर्टरों में से केवल 'अंग-तुरकिया' एक ऐसा व्यक्ति था जो बिलकुल ठीक हालत में वहाँ पहुँच-कर वापस आ सका। शेष सबको बड़ी यातनाएँ और तकलीफ़ें झेलनी पड़ीं। २२ मई को ६ठे कैंप के पास जो तूफ़ान आया था उसने तो बस हद ही कर दी। ५ पोर्टर बर्फ़ की मार न सह सकने के कारण बुरी तरह से सर्दी खा गये। पसांग और लाखाछेदी की क्रमशः एक और तीन उँगलियाँ नष्ट हो गयीं और दो अशक्त होकर गिर पड़े।

जिस दशा में ये लोग नीचे के पड़ाव को वापस भेजे गये थे, उसे देखकर अनुमान किया गया था कि अब और नवीन पोर्टरों का ऊपर आने के लिए तैयार होना मुमकिन न होगा। परंतु जिस समय दुबारा चढ़ाई करने के लिए १२ आदमियों की ज़रूरत पड़ी, तो ९ तो अपने-आप ही आगे बढ़ आये। बाद को ३ आदमियों को और शामिल कर लिया गया। इन लोगों ने चौथा पड़ाव २६ मई को दुबारा नार्थकाल के पास स्थापित किया, और केवल एक दिन आराम करने के बाद ५वें पड़ाव को फिर से ठीक किया। इन बारह में से केवल एक आदमी पाँचवें पड़ाव तक नहीं पहुँच पाया। पाँचवें पड़ाव में फिर ८ आदमी रोक लिये गये और तीन चौथे पड़ाव को लौटा दिये गये।

पाँचवें पड़ाव में रुकनेवाले प्रायः सभी पोर्टर आगे बढ़ने के लिए बहुत उत्सुक थे। इन लोगों में अंग-तुरकिया भी शामिल था। अंग-तुरकिया पाँचवें पड़ाव पर तीन रात और तीन दिन सकुशल बिता भी चुका था। १९२४ की चढ़ाई के मौक़े पर छठे पड़ाव तक चलने के लिए पोर्टरों को राज़ी करने में बहुत दिक़्क़त उठानी पड़ी थी। ब्रिगेडियर नार्टन के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर कुछ पोर्टर तैयार हुए थे। इस बार ये लोग अपने-आप आगे बढ़ते थे। इसका एकमात्र कारण पोर्टरों का अनुभवी होना और ऊँची चढ़ाई के ख़तरों के डर का मिट जाना था। १९२४ में छठे पड़ाव के लिए आगे बढ़ने के मौक़े पर ब्रिगेडियर नार्टन कई घंटे तक पोर्टरों को समझाते रहे थे। पर इस बार २९ मई को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोर्टर लोग आगे बढ़ने की आज्ञा पाने की प्रतीक्षा में प्रातःकाल ४॥ बजे ही से तैयार हो गये थे। छठे पड़ाव के लिए केवल ५-६ बंडल बोझा ही ले जाने का प्रबंध किया गया था। इनमें कोई भी बोझा ५-६ सेर से अधिक भारी न था। सब लोगों ने सामान आपस में बाँट लिया था। कोई भी ख़ाली हाथ न था। २७,४०० फ़ुट तक चढ़ने में कोई ख़ास दिक़्क़त नहीं पड़ी और छठा पड़ाव वहीं डाल दिया गया। यहाँ पर अंग-तुरकिया के पैर फट गये और किपा की हालत भी बहुत ख़राब हो गयी। कैप्टेन ई० जे० बर्नी का कहना है कि इस बार की चढ़ाई के पूर्ण सफल न होने में पोर्टरों का तनिक भी दोष न था। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि आज तक जितनी भी चढ़ाइयाँ हुई हैं, उन सबके मुक़ाबले इस बार के पोर्टर और दूसरे कार्यकर्त्ता बहुत ही योग्य, होशियार और साहसी थे।

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिये एक नई और आश्चर्यजनक ईजाद याने

(प्रमेह) सूज़ाक की हुक्मी दवा

'गोनोकिलर' [मुरगा छाप रजिस्टर्ड]

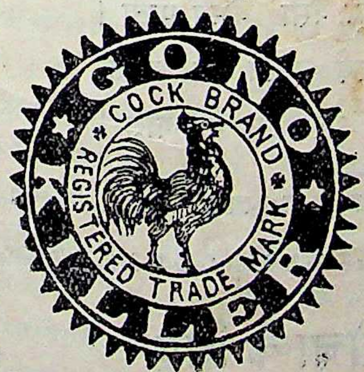

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
मुर्गा छाप देख लीजिये

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने और निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर ही एक ऐसी आश्चर्यजनक दवा है कि इसके इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता। डाक्टरों की दवाई और इंजेक्शन (टीका) लेकर आप परेशान हो गये हों, अँगरेज़ी और अमेरिका की पेटेंट दवाओं में फ़ज़ूल ही पैसा बरबाद करके बिलकुल नाउम्मेद हो गए हों, तब आख़िरी इलाज हमारा 'गोनोकिलर' इस्तेमाल बेखटके कीजिएगा।

चाहे जैसा पुराना व नया सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष और धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को 'गोनोकिलर' जड़ से नष्ट कर देता है और ख़राब हुई धातु को सुधारकर पुष्ट और गाढ़ा बना देता है। कई डाक्टरों द्वारा इसकी तारीफ़ की गई है। मूल्य ५० गोली की शीशी ३), डाक-व्यय अलग; तीन बोतल ६) रुपए में एक साथ लेनेवाले को डाक-व्यय माफ़।

हरएक दवाफ़रोशों के यहाँ बिकता है।

पता—डाक्टर डी० एन० जसानी, ६, गीरगाँव बैंक रोड बंबई नं० ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोमोह

अब उर में किसलिए वह घटा नहीं उमड़ती आती,
सरस-सरस करके जो बहुधा मोती बरसा पाती—
वे मोती जिनसे बनती थी गिरा कंठ की माला,
जिन्हें उक्ति मंजुल सीपी ने कान्त अंक में पाला।
अब मानस में नहीं बिलसते भाव-कंज वे फूले,
जिन पर रहते थे मिलिन्द सम मधुलोलुप जन भूले;
बार-बार लीलाएँ दिखला नहीं बिलस बल खातीं,
अब भावुकता कल्पलता-सी कभी नहीं लहराती।
मन नन्दनवन अहह अब कहाँ वह प्रसून है पाता,
जिसका सौरभ सुरतरु-सुमनों-सा था मुग्ध बनाता;
उदधि तरंगों-जैसी अब तो उठतीं नहीं तरंगें,
वैसी ही उल्लासमयी अब बनती नहीं उमंगें।
हो पुरुहूत चाप-आरंजित ज्यों है रंजन करता,
जैसे उसमें रंग कान्त कर से है दिनकर भरता;
वैसी ही रंजिनी किसलिए नहीं कल्पना होती,
क्यों अनुरंजन-बीज अब नहीं कृति अवनी में बोती।
सरस विचार वसंत क्यों नहीं बहु कमनीय बनाता,
हृदय-विपिन किसलिए नहीं अब वैसा वैभव पाता।
कैसे इस थोड़े जीवन में पड़े सुखों के लाले,
रसविहीन किसलिए बन गये मेरे रस के प्याले!

आचार्य हरिऔध

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें ⌐) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)
वैद्यराज—पं० महावीर पाठक, नं० ५, दरभंगा
C. B. 15.

परीक्षा के लिए

सिर्फ़ एक बार

'माधुरी' में विज्ञापन छपाइए।

रेट बहुत सस्ते मिलेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात्ताप

[श्री० नेभराज वर्मा 'मुनव्वर']

(१)

वसंत पञ्चमी का दिन था। हक़ीक़तराय की समाधि पर बड़ी भारी रौनक़ थी। स्त्री, पुरुष, बच्चे, युवक और वृद्ध प्रसन्नचित्त मेला देखने अथवा धर्मवीर हक़ीक़तराय को श्रद्धांजलि चढ़ाने के लिए समाधि पर इकट्ठे हो रहे थे। वसंती रंग की पगड़ियों और साड़ियों ने एक मनोहर दृश्य बना रक्खा था। टाँगे, टैक्सियाँ, मोटर और बाइसिकलें लाहौर की सड़कों पर बेतहाशा चल रही थीं।

रूपकौर सहन में बैठी, पता नहीं, किन ख़यालों में डूब रही थी। कभी-कभी उसके विचारों का प्रवाह रुक जाता और वह सामने खुले हुए दरवाज़े की ओर प्रतीक्षा-भरी निगाहों से देखकर फिर गहरे विचारों की तरंगों में डूब जाती। शायद वह सोच रही थी कि अरे, मैं कैसी अभागिन हूँ। मा-बाप के पवित्र प्रेम से वंचित, भाई-बहन के निःस्वार्थ स्नेह से कोरी और........अभी तक—अभी तक अपनी उठती जवानी की उमंगों को मन की कंदराओं में छिपाये हुए घर की चहारदीवारी में क़ैद हूँ। यह गुलाब का-सा मुख दिन-रात की सर्द आहों से मुरझा चुका है। श्यामा ने आज वसंत के मेले में चलने को कहा था। परंतु यह मेले और तमाशे वग़ैरह मन-बहलाव के सामान मुझे आजकल अच्छे नहीं लगते। लगें भी क्यों, जब कि मेरा मन निराशा के बादलों से हर वक़्त घिरा रहता है। इस संसार में मुझ अभागिन के लिए मन बहलाव का कोई सामान नहीं। इस निःस्वाद और नीरस जीवन से तो मृत्यु हज़ार दर्जे अच्छी है। जैसे सुनती हूँ कि बचपन में मेरी प्यारी माता मुझे निराश्रय छोड़कर चल बसी थी, जैसे पिता जी को—जब मैं केवल पाँच वर्ष की अबोध बालिका थी—डाकिनी प्लेग ने ग्रास बना लिया था, इसी प्रकार मुझे भी मृत्युदेवी की गोद में सुख की नींद सोने दिया जाता तो........। क्या ही अच्छा होता, यदि तायाजी ने मेरे लालन-पालन का भार अपने कंधों पर लेकर मुझे इस दुःखभरी दुनिया में जीवित रहने के लिए मजबूर न किया होता। मेरे शरीर का एक-एक रोयाँ तायाजी के एहसानों पर बिका हुआ है, मेरे लिए उन्होंने दूसरा विवाह करने का विचार छोड़कर भारी त्याग का परिचय दिया है। मेरे लालन-पालन और शिक्षा के लिए कोई कमी नहीं की। यह उन्हीं की कृपा का फल है कि मैं एफ़० ए० पास करके शहर की सभ्य सोसाइटी में आदर की दृष्टि से देखी जाती हूँ। मेरे आराम का उन्हें हर घड़ी ध्यान रहता है। सच तो यह है कि उनके प्रेम के कारण माता-पिता की स्मृति को मैं एक प्रकार से भूल-सी गयी हूँ। यह सब ठीक है सही, परंतु कई दिनों से मेरा दिल बेचैन क्यों रहता है? बहुत सोचती हूँ, पर इसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता। मेरी आयु बीस वर्ष की हो गयी, मेरा यौवनकाल बीत रहा है। ऐसा अनुमान करती हूँ, जैसे मैं जीवन के किसी साथी से बहुत दूर रहकर अपने दिन व्यतीत कर रही हूँ। मेरे मन में रह-रहकर एक तड़प पैदा होती है, और ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई मेरे दिल को निकाले लिये जा रहा है। आजकल तायाजी मेरे विवाह की चिंता में अवश्य हैं। कई दिनों से तो वह इसके लिए बहुत व्याकुल से दिखायी देते हैं। परंतु मैं नहीं समझती कि उनकी राह में कौन-सी रुकावट है, जो उन्हें अपने विचारों में सफल नहीं होने देती। उस दिन वह बैठक में बैठे किसी से इस विषय पर वार्तालाप कर रहे थे। यद्यपि मैं उनकी सारी बातचीत सुन तो नहीं सकी, तो भी मैं इतना समझ गयी हूँ कि वह मेरे विवाह को धन-संचय का साधन बनाना चाहते हैं। वह मुझे बेचकर मेरी चिंता पर अनुपम महल बनाना चाहते हैं—क्या सचमुच मेरे ताया अपनी धनलोलुपता पर मेरे आयु भर के सुखों का बलिदान कर देंगे........

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किस विचार में बैठी हो रूप !"—संतसिंह ने रूपकौर का ध्यान भंग करते हुए पूछा।

रूपकौर चौंक उठी और सम्हलकर नम्रता से बोली—"कुछ नहीं तायाजी ! मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रही हूँ। आप इतनी देर तक कहाँ रहे ? भोजन बड़ी देर से तैयार रक्खा है"—वह एक ही श्वास में यह सब कुछ कह गयी।

"मैं आज भोजन नहीं करूँगा।"

"क्यों"—रूपकौर ने आश्चर्य से पूछा।

संतसिंह ने उत्तर दिया—"आज मेरे एक पुराने मित्र दो वर्ष विलायत रहकर आये हैं। मैं उनसे मिलने गया था। वहीं से भोजन करके आया हूँ।"

रूपकौर चुप हो गयी।

संतसिंह ने अपना गरम कोट उतारकर खूँटी पर लटकाते हुए कहा—"तो क्या आज मेला देखने नहीं जाओगी ?"

रूपकौर ने बेपरवाही से उत्तर दिया—"नहीं तायाजी, मुझे मेला देखने का शौक़ नहीं।"

"क्यों, यह शौक़ कब से जाता रहा ? गत वर्ष तो तुमने वसंत के मेले में बड़े चाव से भाग लिया था। कई खेलों में तुम्हें पर्याप्त पारितोषिक भी मिला था। वह रेशमी वसंती साड़ी क्या ट्रंक में बंद रखने के लिए ख़रीदी गयी थी ? जाओ, श्यामा को साथ लेकर वसंत का मेला देख आओ।"

(२)

"मैं कहाँ हूँ ?"

"मेयो-अस्पताल में।"

"मुझे यहाँ कौन और किस लिए लाया है ?

"रायबहादुर अंबाप्रसाद तुम्हें यहाँ लाये हैं"—नर्स ने रूपकौर को आश्वासन देते हुए कहा—"डाक्टर साहब ने आज्ञा दी है कि आप बिना हिलेडुले चुपचाप लेटी रहें। आप टाँगे की चोट से बुरी तरह ज़ख़्मी हुई हैं। रायबहादुर अपनी मोटर में बिठाकर आपको यहाँ चिकित्सा के लिए छोड़ गये हैं। तीन घण्टे के पश्चात् पहली बार आप अब होश में आयी हैं। आपका अधिक बोलना अथवा हिलना-डुलना ज़ख़्म के लिए हानिकारक होगा।"

रूपकौर ने करवट बदलने का निष्फल यत्न किया। व्यथा और नकाहत के कारण वह हिल न सकी। उसने चित लेटकर फिर आँखें बंद कर लीं [illegible] हुई सब घटनाएँ एक एक करके उसके दिमाग़ में चक्कर काटने लगीं।

उसी समय रायबहादुर कमरे में दाख़िल हुए। वह अभी तक घबराये हुए थे।—"क्या अभी तक होश में नहीं आयी ?"—रायबहादुर ने आकुलतापूर्वक नर्स से पूछा।

"आयी तो हैं"—नर्स ने उत्तर दिया।

रायबहादुर ने शांति की साँस ली और रूपकौर के सिरहाने एक कुर्सी पर बैठ गये।

"अब तबियत कैसी है, देवी ?"

रूपकौर ने फिर आँखें खोलीं। अपने सिरहाने कुर्सी पर बैठे हुए रायबहादुर की पोशाक को देखकर समझ गयी कि उसे मृत्यु के मुख से बचानेवाले यही महानुभाव हैं। उसने कृतज्ञतापूर्ण नेत्रों से रायबहादुर की ओर देखते हुए कहा—

"अच्छी हूँ—आपकी कृपा के लिए धन्यवाद ..."

नकाहत के कारण वह बात पूरी न कर सकी।

रायबहादुर बोले—"चिंता न करो, देवी। बहुत शीघ्र अच्छी हो जाओगी। यद्यपि चोट सख़्त लगी है, फिर भी डाक्टर ने विश्वास दिलाया है कि चिकित्सा का यथासमय उचित प्रबंध हो जाने के कारण अब ख़तरे की कोई संभावना नहीं।"

रूपकौर ने टूटे-फूटे शब्दों में उत्तर दिया—

"निःसंदेह परमात्मा ने आपको वह अनुभवी अंतःकरण दिया है जो बहुत कम अमीरों को प्राप्त होता है... ...एक रईस मुझ-जैसी ग़रीब अबला के लिए इतना कष्ट उठाकर दया का इतना उच्च आदर्श पेश करे, ऐसे उदाहरण संसार में बहुत कम मिलते हैं ......मैं आपके इस परोपकार को जीवन-भर नहीं भूल सकूँगी ......"

रायबहादुर ने अपनी कुर्सी पलँग के तनिक निकट खिसकाकर धीरे से कहा—

"देवी ! इसमें इतनी कृतज्ञता की कोई बात नहीं। मैंने जो कुछ भी किया है, वह मानव-कर्त्तव्य से प्रेरित होकर किया है। मैं अपनी मोटर में सवार होकर धर्मवीर हक़ीक़तराय की समाधि की ओर जा रहा था। रास्ते में मैंने देखा कि एक टाँगेवाले की असावधानी के कारण तुम्हें टाँगे से धक्का लगा और तुम बेहोश होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिर गयीं। इस हृदयविदारक घटना को देखकर मेरी आँखों में आँसू भर आये। ताँगेवाले को पुलिस के सिपुर्द करके तुम्हें अपनी मोटर में लिटाकर अस्पताल में ले आया। परमात्मा की अपार कृपा से अब तुम बहुत शीघ्र ठीक हो जाओगी।—हाँ, तो क्या मैं तुम्हारे परिवार के संबंध में कुछ पूछ सकता हूँ, ताकि तुम्हारे निकट संबंधियों को इस दुर्घटना की सूचना देकर तुम्हारी तीमारदारी का भार उन पर डाल दिया जाय।"

रूपकौर ने रायबहादुर के मुख को करुणाजनक दृष्टि से देखते हुए उत्तर दिया—"मेरे ताया सरदार संतसिंहजी चंगर मुहल्ले में रहते हैं। आप कृपया उन्हें सूचना भेजकर बुलवा लीजिएगा। उनके अतिरिक्त यहाँ मेरा कोई संबंधी नहीं।

(३)

रायबहादुर अम्बाप्रसाद लाहौर के प्रसिद्ध रईस थे। आपकी जन्मभूमि तो दिल्ली बतायी जाती है, पर आपने चिरकाल से अपना निवासस्थान लाहौर को बना रक्खा था। ठंढी सड़क पर एक अँगरेज़ी फ़ैशन की अनुपम कोठी में रहते थे। लाहौर, दिल्ली और अमृतसर में आपके कई कारख़ाने चल रहे थे। लाखों का कारोबार था। आप अत्यंत मिलनसार, हँसमुख और नम्र स्वभाव के रईस थे। लाहौर की कोई धार्मिक अथवा सामाजिक संस्था ऐसी न थी जो आपके दान से वंचित हो। आप कई अनाथालयों, विधवा-आश्रमों और कन्या-पाठशालाओं को तो नियमित रूप से मासिक सहायता देते थे। स्त्री-जाति के सुधार के आन्दोलनों में आप विशेष रूप से अधिक भाग लिया करते थे।

आपकी आयु यद्यपि पचास वर्ष से कुछ अधिक ही थी, तो भी शारीरिक दशा ऐसी अच्छी थी कि देखनेवाला कभी अनुमान ही नहीं कर सकता था कि आप अपनी युवा-अवस्था समाप्त करके बुढ़ापे के काँटों से भरे रास्ते में पैर रख चुके हैं। आपकी धर्मपत्नी यशोदा अत्यंत सादगीपसंद, सुशील, और पातिव्रत-धर्म की मूर्ति थीं। रायबहादुर अपनी मित्र-मंडली में अभिमान से कहा करते थे कि मेरे जीवन को धार्मिक साँचे में ढालने में मेरी स्त्री का ही हाथ है। यद्यपि घर में दास-दासियों की कमी न थी, तथापि यशोदा जब तक अपने हाथों से भोजन बनाकर रायबहादुर को न खिला ले, उसके मन को शान्ति न होती थी। वह कहा करती थी कि जिस घर में स्त्री अपने हाथों से भोजन तैयार करके पतिदेव को खिलाती है, उस घर में देवता निवास करते हैं। घर में दास-दासियों के होने का यह मतलब नहीं होना चाहिए कि स्त्री आलस्य के वशीभूत होकर अपने कर्त्तव्य को ही भूल जाय।

रायबहादुर के दो पुत्र जगदीश मित्र और भोलानाथ सुयोग्य और विचारशील नवयुवक थे। जगदीश मित्र दिल्ली और भोलानाथ अमृतसर के कारख़ानों के अध्यक्ष थे। दोनों ने अपनी सर्वाङ्गपूर्ण योग्यता से अपने-अपने कार्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचा रक्खा था। रायबहादुर अपनी पत्नी के सद्व्यवहार और दोनों पुत्रों की योग्यता से सदा प्रसन्न थे। वस्तुतः उनका घर स्वर्ग का नमूना था, जो बहुत थोड़े रईसों को प्राप्त होता है।

किंतु रायबहादुर की आँखें जब से रोगशय्या पर लेटी हुई रूप और लावण्य की मूर्ति रूपकौर से चार हुईं, उनकी मानसिक स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। रूपकौर की मनमोहिनी मूर्ति उसकी आँखों में ऐसा समा चुकी थी कि अब वह भले-बुरे को समझने की शक्ति से शून्य थे। जब रूपकौर का कमल-सा निखरा हुआ मुख, उसकी नरगिस-सी आँखें, गुलाबी गाल, मोती-जैसे चमकते हुए दाँत, सुराहीदार पतली गर्दन और मुस्कराते हुए छोटे-छोटे होंठ उन्हें याद आते, तो वह अपने-आपको भूल जाते। वह मन में कहते—पचपन वर्ष की आयु में मैंने कितनी ही मनमोहिनी रमणियों को देखा होगा; परंतु दैव ने जो रूप तथा लावण्य रूपकौर को दिया है, वह अद्भुत ही है। लोग कहते हैं, दौलत के नशे में मस्त होकर मनुष्य प्रत्येक पाप-कर्म को पुण्य समझ लेता है; रईसों का जीवन तो वैसे भी प्रायः सुख और पाप से ही भरा रहता है। परंतु मुझे अभिमान था कि मैं इस लाञ्छन से बचा हुआ हूँ। जीवन-भर में मैंने कोई ऐसा कर्म नहीं किया, जिसे धार्मिक अथवा सामाजिक दृष्टि से पाप के नाम से पुकारा जाय। परंतु रूपकौर का यौवन और उसका अपूर्व रूप मुझे अपने उच्च आदर्श से शायद गिरा रहा है।

मनुष्य का मुख उसके मन का दर्पण होता है। रायबहादुर के उदास मुख से यशोदा ने भाँप लिया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह किसी भारी शोक और चिंता में रहते हैं। परंतु उसने उनकी उदासी का कारण सांसारिक व्यवहारों की उलझन ही समझा। उसे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि उसके पतिदेव इस वृद्धावस्था में किसी युवती के प्रेम-पुजारी बनकर अपने उच्च कुल को समूल नष्ट कर रहे हैं।

रात्रि को रायबहादुर पलँग पर लेटे करवटें बदल रहे थे। निद्रा उनसे कोसों दूर थी। वह चिंताओं तथा संशयात्मक विचारों के समुद्र में ग़ोते लगा रहे थे।

"यद्यपि उसकी आयु बीस वर्ष से कम नहीं दीखती, परंतु मैंने सुना है कि वह अभी तक क्वाँरी है। आज-कल वृद्ध-विवाह को बुरा समझा जाता है, सुधारक लोग वृद्ध-विवाह को रोकने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं, परंतु हिंदू-धर्म-शास्त्र इस विषय में कोई बाधा नहीं डालते। महाराज दशरथ ने भी तो तीन विवाह किये थे। पूर्व समय के सब राजे-महाराजे और रईस बहुविवाह विना रोक-टोक करते थे.........परंतु मेरे पास दूसरा विवाह—इस वृद्धावस्था में—करने के लिए कोई विशेष कारण भी तो नहीं, जिसकी आड़ में मैं लोगों का मुँह बंद कर सकूँ। मेरी देवी-समान स्त्री जीवित है। उसमें वह सब गुण भी हैं जो एक हिंदू-नारी में होने चाहिए। मेरी संतान सुयोग्य और सदाचारी है। यदि इस पर भी दूसरा विवाह करूँ, तो नगर-भर में मेरे विरुद्ध तूफ़ान खड़ा हो जायगा। मेरा मान सब मिट्टी में मिल जायगा। समाचार-पत्र मेरे विरुद्ध लंबे-चौड़े लेख लिखेंगे, व्याख्यानों में मुझे पानी पी-पीकर कोसा जायगा.........इन सबसे बढ़कर जब मेरी स्त्री को मेरे इस कुत्सित विचार का पता लगेगा, तो उस पर क्या बीतेगी—वह मुझे देवता के समान पूजती है; उसके मन में मेरे लिए जो सम्मान है, वह घृणा में बदल जायगा। मेरे सुयोग्य पुत्र मेरी मूर्खता पर हँसेंगे।.........तो फिर क्या मुझे इस विचार को तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए? हाँ, अवश्य यह विचार छोड़ देना होगा। मगर छोड़ कैसे दूँ! मन नहीं मानता—मन और आत्मा में अद्भुत युद्ध हो रहा है। अच्छा होता, यदि मैं परोपकार के भावों से प्रेरित होकर रूपकौर की सहायता के लिए आगे न बढ़ता। उसे ज़ख़्मी हुआ देखकर अपनी मोटर में उसे अस्पताल न ले गया होता, अथवा उसे देखने के लिए दिन में कई-कई बार अस्पताल न जाता, तो क्या करूँ। असमञ्जस में हूँ ....उसके साथ विवाह करना तो पाप नहीं। मुझे पता है कि बड़े-बड़े रईस धन के पर्दे में न-जाने क्या-क्या करते हैं और फिर लोगों की दृष्टि में 'धर्मावतार' भी बने रहते हैं। मैं भी धन-दौलत की झंकार से समाचार-पत्रों का मुँह बन्द कर सकता हूँ। लोकमत मेरे विरुद्ध कितना ही क्यों न हो, परंतु मेरी दौलत और ऐश्वर्य के तेज के सामने कोई मेरे अपवाद के लिए मुख नहीं खोल सकता। सामाजिक नियम सब ग़रीब और मध्य-अवस्था के लोगों के लिए होते हैं, धनी अपने धन और ऐश्वर्य के पर्दे में बड़े-से-बड़े पाप भली भाँति छिपा सकते हैं। अपने रास्ते से कई बाधाएँ मैंने पहले ही दूर कर दी हैं। मैंने सन्त-सिंह को एक सौ रु० मासिक वेतन पर लाहौर फ़्लोर-मिल का मैनेजर नियत करके अपनी मुट्ठी में कर लिया है। कोई दूसरा उसे स्यात २०) मासिक की नौकरी देने के लिए भी तैयार न होता। वह ऐसा मूर्ख तो नहीं होगा कि इस कार्य में बाधा डालकर अपने बने-बनाये रोज़गार पर लात मार दे।

इन्हीं विचारों में रायबहादुर को नींद आ गयी।

(४)

"रूपकौर! मैं चाहता हूँ कि अब हमारी आशापूर्ति में अधिक देर नहीं होनी चाहिए"—रायबहादुर ने ख़ुशामद से कहा।

रूपकौर ने मन्द मुस्कान से रायबहादुर की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"तो मैंने कुछ कहा है? यदि आपको मेरी सब शर्तें स्वीकार हों......"

रायबहादुर अपने भाग्य पर मन ही मन प्रसन्न हुए। वह जेब से काग़ज़ों का एक बण्डल निकालकर रूपकौर के सामने मेज़ पर रखते हुए बोले—"प्यारी रूप! तुम्हारे लिए यदि मुझे ऐश्वर्य के सब सामान छोड़कर और अपनी धन-सम्पत्ति को त्याग कर संन्यासी भी बन जाना पड़े, तो भी मेरे लिए सौभाग्य का कारण होगा। तुम्हारी इच्छानुसार मैंने यह इक़रारनामा तैयार किया है। लो, इसे सुन लो। मुझे निश्चय है कि यह इक़रारनामा तुम्हारे मन को सन्तोषजनक होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

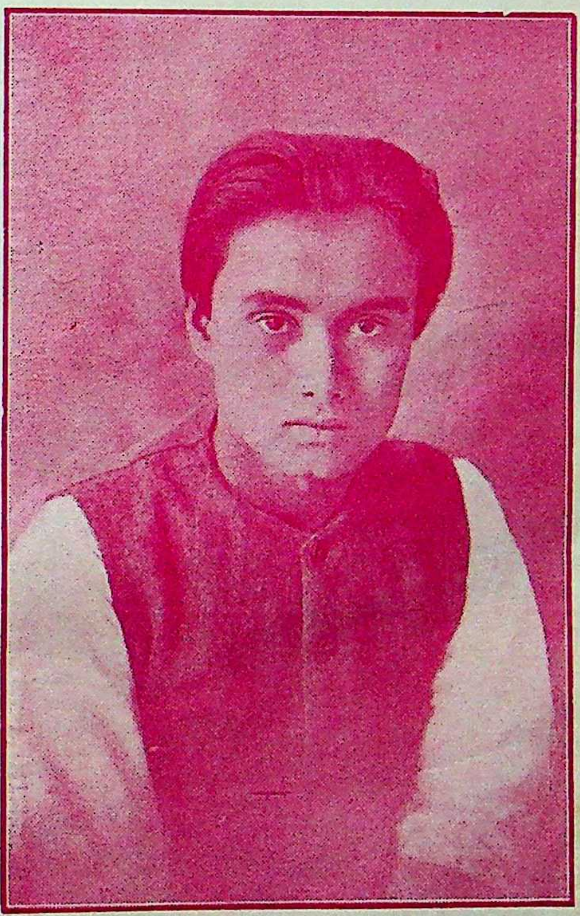

अंचल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

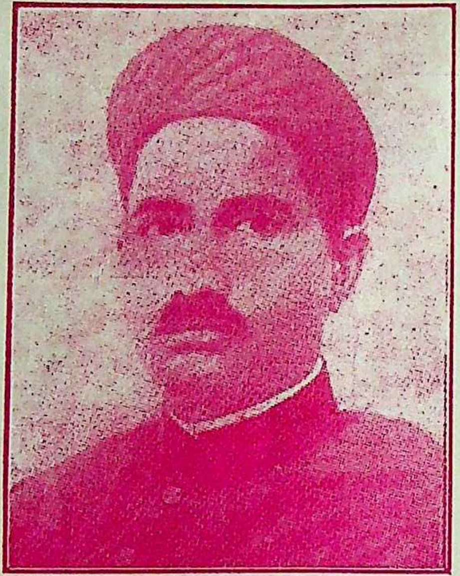

सेठ घनश्यामदास बिड़ला
(तेईसवें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, दिल्ली, के स्वागताध्यक्ष)

श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एम्० ए०
('स्त्रियों की स्थिति'-नामक पुस्तक पर पाँच सौ रुपये का सेकसरिया-पुरस्कार आपको प्राप्त हुआ है)

N. K. PRESS, LUCKNOW.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

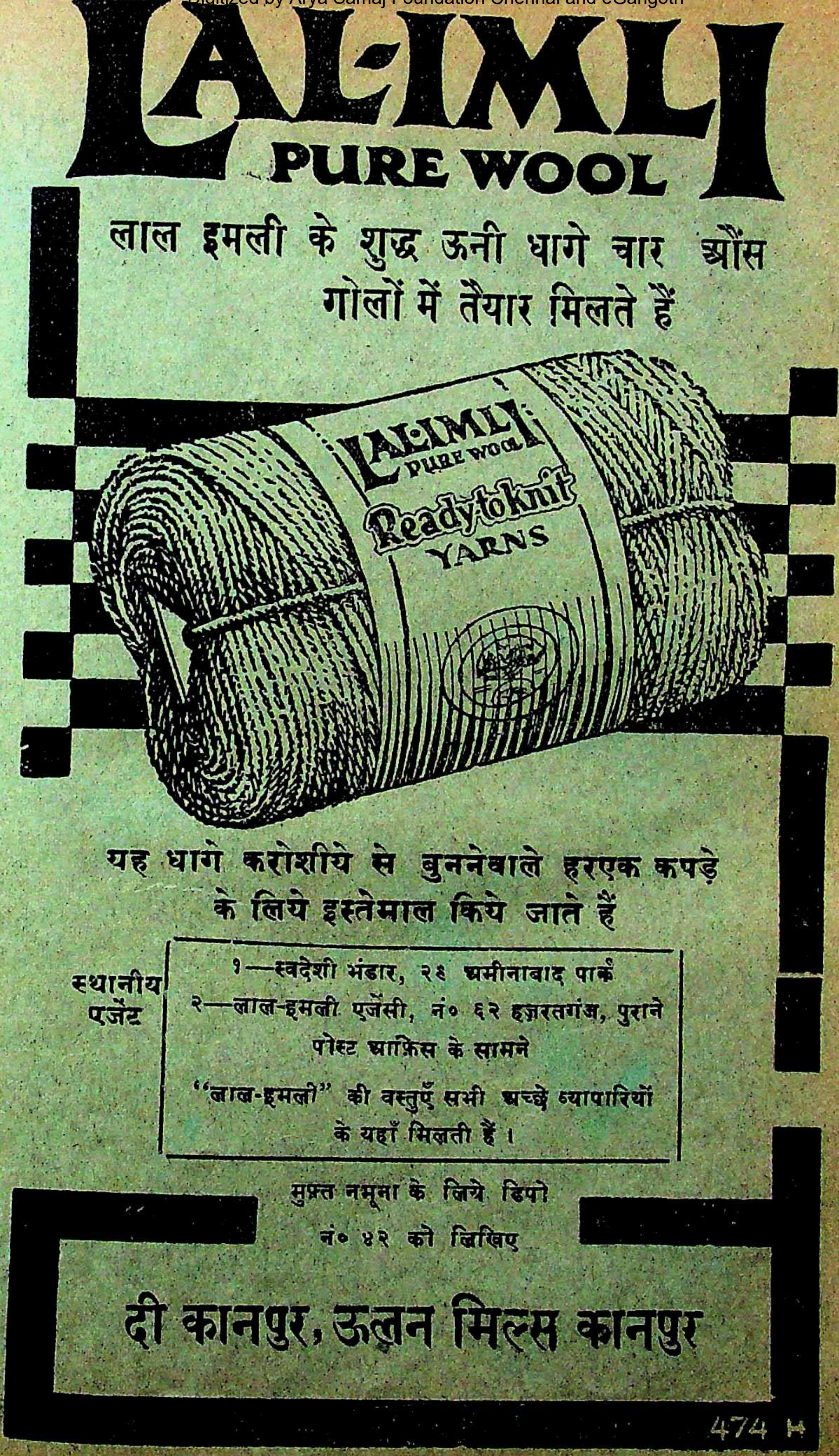

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंदर्य की वृद्धि तथा स्थिरता के लिए

चौधरी साबुनें
व्यवहार कीजिये।

वे त्वचा को कोमल, स्निग्ध, स्वच्छ, कांति-पूर्ण बना, समस्त चर्म-रोगों का नाश कर शरीर में विलक्षण स्फूर्ति उत्पन्न करेंगी।

मनोहर सुहावनी सुवास से परिपूर्ण।

डाक्टर
अपने ढंग की पहिली चीज़। समस्त चर्म-रोगों की एक ही महौषधि है।

सन्दल
सिर्फ़ यही एक ऐसा साबुन है जिसमें असली चन्दन के सब गुण विद्यमान हैं। खस, कपूर, चंपा, जुही, हिना, गुलाब, लेवेंडर, अगर इ०

सुन्दरी
यह बालसफ़ा साबुन बड़ी निराली चीज़ है।

शायनो लट्टे
क्यूब ७७० वस्त्रों को दुध जैसे श्वेत बनाने के लिये कम खर्च बालानशीन।

फैक्सो
रेशमी, ऊनी वस्त्र धोने के लिये अक्सीर
—:o:—

चर्बीरहित, शुद्ध स्वदेशी।
उत्तरी भारत की सबसे बड़ी मिल में बनते हैं।
• चौधरी सोप मिल्स, कानपुर

JOB-Press

लोकल डिस्ट्रीब्यूटर्स :—मेसर्स गिरराजधरन रस्तोगी एण्ड संस अमीनाबाद, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायबहादुर ने इक़रारनामा पढ़ना प्रारंभ किया। रूपकौर उसे सावधानी से सुनने लगी—

"मैं रायबहादुर अम्बाप्रसाद वल्द ला० जयप्रसाद सिकना दिल्ली हाल लाहौर इक़रार करता हूँ कि रूपकौर के साथ सिविल-मैरिज-ऐक्ट के नियमानुसार विवाह हो जाने के पश्चात् निम्नलिखित शर्तों का पालन करूँगा—

१. रूपकौर पूर्ववत् सिख-धर्म की अनुयायिनी रहेगी और मैं उसके धार्मिक विचारों तथा रीतियों में किसी प्रकार की बाधा न डालूँगा।

२. उसके गर्भ से उत्पन्न सन्तान मेरी लाहौर की सारी ग़ैरमनकूला जायदाद की मालिक होगी। इसके अतिरिक्त दिल्ली और अमृतसर की ग़ैरमनकूला और सारी मनकूला जायदाद की वह मेरी प्रथम स्त्री यशोदा की सन्तान के साथ समान रूप से हिस्सेदार होगी।

३. सरदार सन्तसिंह मेरी लाहौरवाली फ़्लोर-मिल का जीवन-पर्यन्त मैनेजर रहेगा। यदि वह कोई ऐसा काम न करे जो मेरे लिए हानिकारक हो, तो मैं उसे नौकरी से कभी पृथक् नहीं करूँगा। इसी प्रकार रूपकौर के अन्य संबंधियों के लिए भी अपने कारख़ानों में नौकर कराने का प्रयत्न करूँगा।

४. मैं रूपकौर को अपनी स्त्री के रूप में अपने साथ रक्खूँगा। यदि कभी किसी विशेष कारणवश वह मुझ से पृथक् रहे, तो उसके जीवन-निर्वाह के लिए उसे २००) रु० मासिक दिया करूँगा।

इक़रारनामा सुनाने के पश्चात् रायबहादुर साहब ने रूपकौर के मुख पर दृष्टि डाली और पूछा—"क्यों रूप! अब तो तुम्हारे सारे भ्रम दूर हो चुके होंगे। यदि इन शर्तों के अतिरिक्त कोई और शर्त भी मनवाना चाहती हो, तो वह भी लिखी जा सकती है।"

रूपकौर ने अपने मानसिक भावों को छिपाते हुए गंभीरता से उत्तर दिया—"मेरे प्राणदेव! यह इक़रारनामा तो केवल-मात्र 'रीति' की पूर्णता के लिए है। वास्तव में यदि आपकी प्रथम स्त्री जीवित न होतीं और दैवयोग से संतान भी न होती, तो इस इक़रारनामे की कोई आवश्यकता नहीं थी। परंतु आप जानते हैं, इस स्वार्थपूर्ण संसार में स्त्रीजाति को विवाह की जंज़ीरों में जकड़े जाने से पूर्व कितनी ही समस्याओं पर दृष्टि डाल लेनी चाहिए। इसी कारण से मैंने इस प्रकार के इक़रारनामे पर ज़ोर दिया था। अन्यथा जब मैं, मेरी आत्मा और मेरा सर्वस्व आपके समर्पण हो चुका, तो फिर किसी प्रकार की शर्त की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। निःसंदेह प्रेम के निर्मल पथ में 'शर्त' का शब्द कंटक के सदृश है।"

रूपकौर के इन प्रेमपूर्ण शब्दों को सुनकर रायबहादुर का हृदय गद्गद हो गया। उन्होंने उत्साह-भरे शब्दों में कहा—"रूप, आज मेरी आत्मा जिस प्रकार का आनंद अनुभव कर रही है, उसका वर्णन करना असंभव है। मेरा मन एक क्षण के लिए भी तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकता। क्या ही अच्छा हो यदि कल ही हमारे विवाह का कार्य मजिस्ट्रेट के समक्ष पूर्ण हो जाय और हम प्रेम और स्नेह की न टूटनेवाली श्रृंखलाओं में सदा के लिए बँधकर जीवन के नूतन पथ में अग्रसर हों।"

रूपकौर ने कहा—"आपके प्रेमछत्र की छाया में अलौकिक आनंद प्राप्त करने के लिए मैं तैयार हूँ, परंतु मैं चाहती हूँ कि इस विषय में अपने तायाजी से अवश्य सम्मति ले लूँ। आप शायद न जानते हों वह मेरे पिताजी से भी अधिक स्नेही तथा शुभचिंतक हैं, और उनकी सम्मति लिए बिना ऐसी ज़िम्मेदारी का काम कर डालना मेरे विचार से कृतघ्नता है। आशा है, आप भी मेरे इस विचार से सहमत होंगे।"

"नहीं, रूप"—रायबहादुर ने सिर हिलाते हुए कहा—"इसमें तायाजी अथवा किसी और की सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं। तुम बालिग़ और विचारशील हो, तुम्हें अपने भले-बुरे—लाभ-हानि सोचने का पूरा अधिकार है। तुम्हारे तायाजी को जिस काम के लिए लाहौर से बाहर भेजा गया है, उससे निवृत्त होकर शायद वह एक मास तक भी वापस न आ सकें। इधर यशोदा को मैंने कुछ दिनों के लिए बड़े लड़के जगदीश मित्र के पास दिल्ली भेज दिया है। अतः इस कार्य में विलंब करना संभवतः बने-बनाये खेल को बिगाड़ने का कारण हो जाय।"

रूपकौर ने मुस्कराते हुए कहा—"आपकी इच्छा के विरुद्ध आचरण भी तो मेरा धर्म नहीं। अतः जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात से आप प्रसन्न हों, वह मेरे लिए भी हर्ष का कारण है।"

दूसरे दिन मिस्टर विलसन् की अदालत में रायबहादुर अंबाप्रसाद और रूपकौर का विवाह "सिविल मैरिज ऐक्ट" के अनुसार रजिस्टर्ड हो गया। इक़रारनामे पर मजिस्ट्रेट के सामने दोनों ने हँसते हुए हस्ताक्षर किये।

(५)

हिंदूधर्मानुसार रायबहादुर और रूपकौर के इस प्रेम-संबंध को विवाह का नाम दिया जाय अथवा न दिया जाय, परंतु वर्तमान काल के प्रचलित क़ानून के अनुसार वह पति-पत्नी अवश्य थे। हिंदूधर्म में वेद के पवित्र मंत्रों से स्थापित, कभी न टूटनेवाले, प्रेम के संबंध को विवाह कहा गया है। रायबहादुर ने इस नाम-मात्र विवाह को गुप्त रखने का पूरा यत्न किया। विवाह सर्व-साधारण के समान धूमधाम से नहीं हुआ, न बरात निकालने की आवश्यकता समझी गयी। कोई उत्सव भी नहीं मनाया गया—संबंधी, नौकर-चाकर, मित्र-मंडली, यहाँ तक कि यशोदा, जगदीश मित्र और भोलानाथ भी इससे अनभिज्ञ रहे। यशोदा को केवल एक सप्ताह के लिए दिल्ली भेजा गया था। दो मास गुज़र गये, किसी ने उसे बुलाने का नाम न लिया। यशोदा ने कई पत्र लिखकर अपने पतिदेव से लाहौर वापस आने की आज्ञा माँगी, परंतु रायबहादुर ने हर बार बड़ी चतुरता से टाल-मटोल कर दी।

जब से रूपकौर रायबहादुर की विशाल कोठी में आयी, घर का नक़्शा ही बदल गया। जहाँ यशोदा प्राचीन हिंदूरीति के अनुसार घर में कोई ऐसा कार्य नहीं होने देती थी जो वैष्णवधर्म के पवित्र सिद्धांतों के विरुद्ध हो, वहीं अब मांस-मदिरा के बिना भोजन न होता था। रूपकौर ने रसोई की कभी शक्ल नहीं देखी थी; भोजन आदि का सारा प्रबंध नौकरों के सिपुर्द था। रूपकौर का सारा समय बनाव-शृंगार में ही बीतता था। रायबहादुर उसके रूप के इंद्रजाल में फँसे हुए थे। उसका राज्य न केवल रायबहादुर के मन पर था, वरन् उनके घर, कारोबार और जायदाद पर भी उसी का शासन था। संतसिंह ज़मीर-मिस्त्र का प्रबंधक ही नहीं था, वरन् अपने को उसका मालिक समझता था। रूपकौर की कृपा से उसके कई दूर और निकट के संबंधी वर्षों के पुराने नौकरों को निकालकर नौकर रख लिये गये थे।

विवाह के दो महीने बाद जब यशोदा लाहौर वापस आयी और सब भेद खुला, तो वह रायबहादुर की बुढ़भस और अपने दुर्भाग्य पर चार आँसू बहाने के सिवा कुछ न कर सकी। वह भली भाँति समझती थी कि यह विवाह, जिसकी नींव स्वार्थ और विलासिता पर रक्खी गयी है, कुल की मान-मर्यादा को नष्ट-भ्रष्ट करके छोड़ेगा। इधर रूपकौर के इशारों पर नाचते हुए रायबहादुर ने उसकी निःस्वार्थ-सेवा, उसके वास्तविक प्रेम और उसके शील-स्वभाव का तिरस्कार करके उससे आँखें फेर लीं। कोठी के एक कोने में, साधारण कमरे में, उसके रहने का प्रबंध किया गया। वह इस पर भी संतुष्ट थी। वह कहती थी, जीवन के कुछ दिन व्यतीत करने के लिए मुझे पाव-भर आटा और तन ढकने को खद्दर का टुकड़ा काफ़ी है। पर संतोष-रूपी धन के इतने बड़े कोष की मालिक होने पर भी वह सच्ची शांति और वास्तविक सुख से वंचित थी। जब वह देखती कि रायबहादुर रूपकौर के बनावटी प्रेम और क्षणभंगुर रूप-यौवन पर मुग्ध होकर उसके वशीभूत हो रहे हैं, उनकी वर्षों की पसीने की कमाई नष्ट हो रही है और सबसे बढ़कर उनका अमूल्य स्वास्थ्य भी प्रतिदिन बिगड़ रहा है, तो वह एक सर्द आह भरकर परमात्मा से अपनी भक्ति व पूजा की दुहाई देकर रायबहादुर को सन्मार्ग पर लाने की प्रार्थना करती। इसके अतिरिक्त वह और कर ही क्या सकती थी।

जब जगदीश मित्र और भोलानाथ ने अपनी माता के पत्र में रायबहादुर और रूपकौर की प्रेम-कहानी पढ़ी, तो वह आश्चर्य करने लगे। उन्हें स्वप्न में भी ख़याल नहीं था कि पिताजी-जैसे दूरदर्शी और अनुभवी सज्जन, जिनका धार्मिक और सामाजिक जीवन अनुकरणीय समझा जाता था, कभी ऐसी भूल कर सकते हैं। उन्होंने लाहौर आकर जब देखा कि सारे कारोबार में रूपकौर के संबंधियों का ही शासन है, संतसिंह जायदाद को निर्दयता से नष्ट-भ्रष्ट कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है और स्वयं रायबहादुर केवल रूपकौर के प्रेम-पुजारी बनकर अन्य सांसारिक व्यवहारों से उदासीन हैं, तो उन्होंने पिता को समझाने की चेष्टा की; सारे विषयों पर भली भाँति टिप्पणी करते हुए उनकी लापरवाही, संतसिंह, की दुष्टता और जायदाद के नष्ट होने के कारणों पर प्रकाश डाला। परंतु उनकी युक्तियों का रायबहादुर के मन पर कोई प्रभाव न पड़ा। उन्होंने अपने अनुभव, बुद्धिमत्ता और विचारशीलता का साभिमान वर्णन करते हुए क्रोध से उत्तर दिया—"मुझे तुम्हारे इस उपदेश की अभी आवश्यकता नहीं। मैं अपनी भलाई और बुराई को तुम छोकरों से अधिक समझ सकता हूँ।"

अफ़वाहें उड़ने लगीं कि रूपकौर का डाक्टर हरनामसिंह से अनुचित संबंध है। लोगों ने कई बार डाक्टर हरनामसिंह को रायबहादुर की अनुपस्थिति में उनकी कोठी में आते-जाते देखा। रूपकौर भी कई बार डाक्टर के चिकित्सालय में बढ़िया साड़ी पहने, सुनहला चश्मा लगाये, कुर्सी पर बैठे डाक्टर से स्वतंत्रतापूर्वक वार्तालाप करती देखी गयी। कई तो कहते कि संतसिंह ने चार हज़ार रुपया लेकर हरनामसिंह के साथ रूपकौर का विवाह करना निश्चित किया है; दो हज़ार रुपये डाक्टर ने दे भी दिये थे। परंतु रायबहादुर ने संतसिंह को कुछ दिनों के लिए लाहौर से बाहर भेजकर उसकी अनुपस्थिति में रूपकौर से विवाह कर लिया है। इसलिए डाक्टर हरनामसिंह संतसिंह पर अभियोग चलाना चाहता था। उसे कई प्रकार के सब्ज़ बाग़ दिखाकर कुछ समय के लिए शान्त रहने पर राज़ी कर लिया गया है। यह किंवदन्तियाँ रायबहादुर के कानों में भी पहुँचीं। परंतु उन्होंने इन पर विश्वास न किया। वह कहते—मुझे और रूपकौर को बदनाम करने के लिए ही यह सब बातें हैं, जिनमें कोई सार नहीं है।

× × ×

× × ×

× × ×

(६)

सर्दी का मौसम था। रात के बारह बज चुके थे। रायबहादुर की कोठी के आसपास रहनेवाले सब छोटे-बड़े दिन-भर की व्यथा मिटाने के लिए निद्रादेवी की गोद में आराम कर रहे थे। रायबहादुर अपने बिस्तरे से उठे। चारों दरवाज़ों को एक-एक करके देखा। दरवाज़े अच्छी तरह बंद थे। उन्होंने अपना पिस्तौल हाथ में लिया। उसे जाँच कर देखा। वह सीधे रूपकौर के पलँग की ओर बढ़े। उनका मन और साथ ही दोनों हाथ थर-थर काँप रहे थे। उन्होंने काँपते हुए हाथ से रूपकौर के मुँह से रज़ाई उलट दी—वह निर्द्वन्द्व होकर आराम से सो रही थी—उसके मुख से निर्दोषिता की आभा निकल रही थी। बिजली के प्रकाश से उसका मुखमंडल चमकने लगा। परंतु इस अद्भुत कान्ति में रायबहादुर के लिए अब आकर्षण नहीं था। उनका मन द्वेषाग्नि से जल रहा था। उन्होंने घृणापूर्ण हँसी हँसते हुए रज़ाई उतारकर दूर फेंक दी। रूपकौर भयभीत होकर उठ बैठी। उसके मुख से हलकी-सी चीख़ निकल गयी। उसने आँखें मलते हुए देखा, सामने रायबहादुर खड़े थे। उनके चेहरे से क्रोध और क्षोभ की अग्नि बरस रही थी। वह सहम गयी। रायबहादुर ने बिना कुछ कहे-सुने अपना पिस्तौल रूपकौर के सीने में तानकर घोड़ा दबा दिया। गोली उसके सीने से पार हो गयी और एक दर्दनाक चीख़ शान्त वायु-मंडल में गूँजती हुई रात्रि के अंधकार में मिल गयी। दूसरे ही क्षण गोली चलने की एक और भयानक आवाज़ आयी।

सुबह होते ही यह समाचार नगर में आग की तरह फैल गया कि गत रात्रि को रायबहादुर अम्बाप्रसाद ने अपनी पत्नी रूपकौर को गोली का निशाना बनाकर स्वयं भी आत्महत्या कर ली है। दस बजते-बजते रायबहादुर की कोठी पर मेला-सा लग गया। पुलीस ने कोठी को घेर रक्खा था। कमरे का पश्चिमी दरवाज़ा तोड़कर पुलीस-कप्तान दो सब-इंसपेक्टरों के साथ अन्दर गया। दोनों लाशें बाहर निकाली गयीं। पलँग के सिरहाने से एक चिट्ठी मिली। संभवतः रायबहादुर ने इस शोक-जनक घटना से कुछ क्षण पूर्व यह लिखी थी। चिट्ठी में लिखा था—

"मेरी और रूपकौर की अकाल मृत्यु से लाहौर-निवासी शोकातुर अवश्य होंगे। पुलीस को घटना का यथार्थ कारण की जाँच करने में भटकना न पड़े और पुलीस किसी निरपराधी को व्यर्थ कष्ट न दे—इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करते हुए मृत्यु से पूर्व में कुछ बातें लिख देना आवश्यक समझता हूँ। हम दोनों की मृत्यु, मुझ-जैसे धर्मपथ से भ्रष्ट लोगों के लिए, शिक्षा का काम देगी। मैंने रूपकौर जैसी दुष्टा और चुड़ैल स्त्री के साथ उसके बनावटी प्रेम, क्षणभंगुर रूप-यौवन और उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में फँसकर—प्रेम-संबंध जोड़कर कितनी मूर्खता की है, इसका ज्ञान मुझे उस समय हुआ जब कुछ दिन पूर्व मुझे बुखार आया। पहले ही दिन १०५ दर्जे तक बुख़ार पहुँच गया और मैं बेहोश हो गया। रूपकौर मुझे मृत्यु की गोद में देकर मेरी विस्तृत जायदाद और अपार संपत्ति पर न केवल स्वयं आप ऐश करना चाहती थी, वरन् डाक्टर हरनामसिंह—जिसके साथ अब मुझे विश्वास है, उसका दुष्ट सम्बन्ध था—सन्तसिंह और अन्य संबंधियों में लुटाकर उसे नष्ट भ्रष्ट करना चाहती थी। उसने यह अवसर अपनी इच्छापूर्ति के लिए उचित समझा और झट डाक्टर हरनामसिंह को मेरी चिकित्सा के लिए बुलवा भेजा। उस दुष्ट ने आते ही रूपकौर के सिवा सबको मेरे कमरे से बाहर भेज दिया और मेरे बाज़ू में किसी भयानक विष का इंजेक्शन कर दिया। उसके जाने के कुछ क्षण पश्चात् मेरे मित्र डाक्टर बिहारीलाल दैवयोग से किसी घरेलू विषय में मेरी सम्मति लेने आ गये। उन्हें टालने के लिए भरसक प्रयत्न किया गया। वह वापस जाने के लिए तैयार भी हो गये, परंतु जब मेरे नौकर कालू ने, जो उनसे भली भाँति परिचित था, उन्हें मेरी बीमारी का समाचार सुनाया तो वह सीधे मेरे कमरे में चले आये। मुझे देखते ही वह सारा भेद भाँप गये, परंतु उन्होंने बुद्धिमत्ता से यह भेद गुप्त ही रक्खा। उन्होंने रूपकौर को भी मेरे कमरे से बाहर भेज दिया और स्वयं विष के प्रभाव को दूर करने के लिए यत्न करते रहे। परमात्मा की कृपा से और बिहारीलाल की सहायता से मैं मृत्यु के मुख से बच गया। मैंने रूपकौर को यह जानने का अवसर नहीं दिया कि मैं उसके षड्यंत्र से परिचित हूँ। वह प्रसन्न थी कि उसके राक्षसी कुकर्म का पर्दा नहीं फटा। परंतु मैं रूपकौर के द्रोह, दुष्टता और कृतघ्नता से इतना दुःखी था कि अवसर पाकर उस कलंकिनी को पापकर्म का फल देने के हेतु सदा के लिए समाप्त कर दिया और स्वयं भी राज-दंड से बचने के लिए आत्महत्या करना निश्चय कर लिया।"

× × ×

जिसने भी इन दोनों की शोकजनक मृत्यु का समाचार सुना, उसके नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी।

गुप्त मंत्र १००) इनाम

जिस काम को आप लाखों रुपया खर्च करके भी नहीं कर सकते हैं उसे इस मंत्र को सिर्फ ७ बार जपकर ही कर सकते हैं, किसी कष्ट या साधना की आवश्यकता नहीं। यह मंत्र सिद्ध कर भेजा जाता है। आप जिसे चाहते हैं चाहे वह कैसी ही कठोरहृदय अभिमानिनी क्यों न हो, इसे जपने के साथ आपसे मिलने के लिये लालायित होगी, और सदा आपके साथ रहना पसंद करेगी। यह मंत्र वशीकरन है। इस मंत्र से भाग्योदय होता है, नौकरी जल्द मिलती है, जो नौकर हैं उन्हें तरक्की होती है। इस मंत्र से मोकदमे में जीत, व्यापार में लाभ व परीक्षा में पास होता है। न्योछावर २।≤) डाकखर्च माफ़। बे फायदा साबित करने पर १००) इनाम।

पता—सिद्ध मंत्र आश्रम नं० ४ पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधी, कनौजी और व्रजभाषा का सम्बन्धासम्बन्ध

[पं० शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' साहित्यरत्न]

प्रत्येक भाषा का प्रभाव उसके केंद्र तथा उसके सीमांत स्थानों में न्यूनाधिक पड़ता है। जैसे लहर ज्यों-ज्यों किनारे की ओर आती है, त्यों-त्यों उसकी शक्ति में शिथिलता आती जाती है और उसका अन्य लहरों के साथ मिश्रण भी होता जाता है, उसी भाँति भाषाओं का भी हाल है। वे अपने केंद्र-स्थान में तो अपनी प्रगाढ़ता दिखाती हैं, और व्यासार्ध सीमा तक पहुँचते पहुँचते उनके रूप विभिन्न विकारों को प्राप्त होते जाते हैं। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण एवं क्रिया के स्वरों में विकृति होने से भाषा-रूपी लहर में विभेदता दृष्टि आती है। उसी के साथ व्यंजनों में भी वैचित्र्य का समावेश होता है। जैसे—राम आयो, राम आया, राम आवा, राम आयल, राम अयिली। जहाँ व्यंजनों का रूपांतर विशेषरूप से होता है, वहाँ तो मूल शब्द का पता लगाना ही कठिन हो जाता है। जैसे—

संस्कृत	फ़ारसी	अँगरेज़ी
सप्त	हफ़्त	
सिंधु	हिंदु	
सव	हम	
मातृ	...	मदर
भ्रातृ	...	ब्रदर
त्रि	...	थ्री

दो भाषाएँ अपने अंचलांत में गंगा और यमुना की भाँति एक दूसरे से मिलती-जुलती हैं। वहाँ के मनुष्यों की भाषा में प्रधानता उसी बोली की रहती है, जिसके बोलनेवाले अधिक होते हैं। यह किम्बदन्ती तो सब कहीं प्रसिद्ध है कि प्रति योजन बोली कुछ न कुछ बदल जाती है। अतः एक भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ और प्रत्येक बोली के अंतर्गत अनेक बोलियाँ होती हैं। भिन्न उच्चारण से शब्दों का लहराव विभिन्न दीर्घ और लघु होता है और उससे स्वरों में भिन्नता पैदा हो जाती है, जो उनके और शुद्ध शब्दों के बीच विकार—विकृति लाती है।

यहाँ तक तो देखा गया है कि कुछ जातियाँ विभिन्न बोलियों से कुछ न कुछ सामग्री ले अपभ्रंशरूप में अपनी भिन्न बोलियों का निर्माण करती हैं। जैसे—पथरकटा रहते तो हैं अवध में, पर बोलते हैं वह बोली जो अवधी से नितांत पृथक् है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी एक भाषा का विस्तार सौ-पचास कोस के अंतर्गत ही होता है। प्रत्येक भाषा का रूप प्राकृतिक रूप से विकृतिमय है। अस्तु, कुछ दूर चलकर वह आगे बढ़ नहीं पाती, और दूसरी निकटस्थ भाषा उसे दबा बैठती है। ऐसा हाल उन भाषाओं का है जो मनुष्यों द्वारा बोली जाती हैं। हाँ, साहित्यिक भाषा का विस्तार अधिक तो होता है अवश्य, लेकिन उसमें भी शब्द और लिंगादि की विभेदता भिन्न स्थानों में पायी जाती है। विहार और बनारस के आसपास हाथी और दही आदि शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं। वहाँ के लोग अधिकतर पूछने पर कहते हैं—"मिज़ाज अच्छी है", "हाल अच्छी है।" उसी प्रकार "देख" को "दाख" लिखते हैं।

यह सब लिखने का प्रयोजन यह है कि डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन साहब ने अपने ग्रंथ में अवधी भाषा का विस्तार वहाँ तक बतलाया है, जहाँ अवधी बोली ही नहीं जाती। और, आश्चर्य तो यह है कि हिंदी के अन्य विद्वानों ने भी इस विषय पर विचार करने का कष्ट नहीं किया; अन्यथा बाबू श्यामसुंदरदास अपने "भाषा और साहित्य" ग्रंथ में अवधी का विस्तार बघेलखंड, आगरा, कन्नौज, छोटा-नागपुर और मध्य-प्रदेश के कुछ भाग में क्यों लिखते। अभी तक हम हिंदुस्तानियों का प्रवृत्ति वही ज्यों की त्यों बनी हुई है कि कोई योरपियन जो कुछ लिख दे उसी को, चाहे वह ग़लत ही क्यों न हो, हम ब्रह्माक्षर मान लेते हैं।

मि० ग्रियर्सन और बाबू श्यामसुंदरदास ने अवधी के दो रूप—पूर्वी और पश्चिमी—वर्णित किये हैं। पर ऐसे बाँट-चीट से वास्तविकता की पुष्टि नहीं होती; क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध अवधी का रूप कल्पित पश्चिमी अवधी में नहीं पाया जाता। तब उसे अवधी कह कैसे सकते हैं। यदि गाय की अनुहार नीलगाय है, तो क्या वह वास्तव में गौ है? वस्तुत: दोनों भिन्न जाति के पशु हैं।

शुद्ध अवधी का विस्तार नीचे लिखे स्थानों में है, और वही उसका क्षेत्र है—

सम्पूर्ण फ़ैज़ाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़-ज़िले में, गोंडे के पूर्वी भाग में, जौनपुर की पश्चिमी दिशा में, इलाहाबाद के उत्तर और पूर्व के कोने में, रायबरेली और फ़तेहपुर-ज़िले के पूर्व भागों में। इस मंडल के दक्षिण में बघेलखंडी, पूर्व में अर्धमागधी, पश्चिम में बैसवाड़ी एवं कनौजी और उत्तर तथा पश्चिम के कोने में गाँजरि-भाषाएँ बोली जाती हैं। किंतु मि० ग्रियर्सन अवधी को लखनऊ और कानपुर घुमाते हुए कन्नौज तक ले गये हैं। फिर उसी को बाबू श्यामसुंदरदास ने भी ऐसी ही सैर करायी है। जिसे देखो, वही अवधी को व्रजभाषा की सखी बना रहा है। पर अवधी को व्रजभाषा के साथ रहने का अवसर नहीं मिला। उसे तो अर्धमागधी, बघेलखंडी, कनौजी और गाँजरी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त है। व्रजभाषा को पूर्ववासिनी सखी है कनौजी, और इन दोनों का अभिन्न साथ है, यहाँ तक कि कोई कवि इन दोनों को अलग नहीं कर पाया। उसी के साथ इन्होंने गंगा-यमुना की भाँति परस्पर मिलकर एक दूसरे की उन्नति की।

ख़ास कनौजी का प्रचार कन्नौज, मैनपुरी, इटावा और कानपुर के पश्चिमी और जालौन के उत्तरीय भागों में है। कनौजी के अंतर्गत दो बोलियाँ हैं—बैसवाड़ी और गाँजरी। बैसवाड़ी बोली का प्रचार उन्नाव के सम्पूर्ण ज़िले में, रायबरेली-ज़िले के दक्षिण और पश्चिम-भाग में, लखनऊ के दक्षिण और पश्चिमी कोण में, कानपुर के पूर्व और फ़तहपुर के पश्चिमी भागों में है। गाँजरी बोली सीतापुर, खीरी, बहराइच ज़िले में, हरदोई के उत्तर, बाराबंकी के उत्तर और पश्चिम में तथा गोंडे के पश्चिम और उत्तर-दिशा में बोली जाती है।

अवधी आदि भाषाओं की विभिन्नता नीचे लिखी शब्द-सूची से प्रकट है—

व्रजभाषा	कनौजी	बैसवाड़ी	अवधी
बाँटु	बाँटु	बाँटु	बाट
मालु	मालु	मालु	माल
सबु	सबु	सबु	सब
कंगालु	कंगालु	कंगाल	कँगाल
फिरि	फिरि	फिरि	फिर, फु
औरु	औरु	औरु	और
दूरि	दूर	दूरि	दूर
नौकरु	नौकरु	नौकरु	नोकर
जाबु	जाबु	जाबु	जाब
एकु	एकु	एकु	एक

व्रजभाषा, कनौजी और बैसवाड़ी भाषाओं में उपर्यु शब्दों के अंत में उकार का प्रयोग किया जाता है औ अवधी में अकार का।

उत्तमपुरुष में प्रयोग

व्रजभाषा	कनौजी	बैसवाड़ी	अवधी
हम कहतु हैं	हम कहियत हैं,	हम कहित	ह
	= कहत हैं,	हन	कहत अ

अवधी में "है" के स्थान में "अहीं" शब्द का प्रयो होता है। बैसवाड़ी में क्रिया व्यंजनांत पूर्व इकार आता है, कनौजी में व्यंजनांत के पूर्व "य" व्यंजन आदेश होता है और उसके पूर्व इकारांत आता है व्रजभाषा की क्रिया में उकारांत का प्रयोग होता है।

अवधी में उत्तमपुरुष की भविष्यकालिक क्रिया अंत में 'बौं' कारांत का प्रयोग किया जाता है, कनौजी तथा बैसवाड़ी में 'बै' कारांत होता है।

जैसे अवधी में—"कौन उत्तर देबौं"

कनौजी-बैसवाड़ी में—"कौन उत्तर देबै"

कनौजी और बैसवाड़ी में प्रथमपुरुष की भूतकालि क्रिया के अंत में पुलिंग और स्त्रीलिंग का प्रयोग सम होता है—जैसे "रामदत्त ऐसा कहिसि", "जसोदा ऐ कहिसि"। किंतु अवधी में स्त्रीलिंग और पुलिंग क्रियांत भिन्न होते हैं। जैसे—"रामदत्त ऐसा कहे" "जसोदा ऐसा कहिन"। पर बैसवाड़ी बोली में प्र पुरुष वर्तमानकालिक क्रिया के अंत में भी "इ "इनि" का प्रयोग होता है—जैसे "आजु गंगा बिरवा लगाइसि—लगाइनि है"। नीचे लिखे सर्व में अवधी और कनौजी भिन्न रूपों में देख पड़ती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधी—केइ, के, कौन—केऊ न जाई, के अस कान
बैसवाड़ी—को, कोऊ, कीन्ह—कोऊ न जाई, को अस कीह
कनौजी—कोउ, को, कौन, कियो—कौन अस कियो, कोऊ न जाइ है

अवधी के मध्यमपुरुष में बेयांत होता है—जैसे "तू कहाँ जाबेया।" और कनौजी और बैसवाड़ी में "इहौं" अंत में आता है—जैसे "तुम कहाँ जइहौं—जाइहौं। अतः अवधी से कनौजी नितांत भिन्न भाषा है और उसे अवधी के अन्तर्गत कहना भ्रमपूर्ण है; क्योंकि क्रिया-कारकादिकों के स्वरांत तो भिन्न हैं ही, अवधी के कुछ शब्द भी ऐसे हैं जिन्हें बैसवाड़ी और कनौजी बोलनेवाले समझ ही नहीं सकते। जैसे-लजुरी (रस्सी), गोदी (लाठी), खिकौली, कुरुई (डलिया), रमतोरइया (भिण्डी), लौउवा (लौकी), कन्ना (शकरकंद)। क्या इतने पर भी अवधी का प्रसार कन्नौज तक माना जा सकता है? यदि यह कहा जाय कि अवधी का पश्चिमी रूप उसके पूर्वी रूप से भिन्न है, तो निवेदन है कि किसी भाषा के भिन्न रूप तब माने जा सकते हैं जब उसके मौलिक रूप में परिवर्तन न हो। किसी एक वृक्ष की विभिन्न दिशाओं में फैली शाखाएँ उसी की तब मानी जा सकती हैं, जब उनका उसके तने से संबंध हो। यदि ऐसे संबंध का प्रमाण न हो तो सिद्ध है कि अन्य वृक्ष की शाखा उस वृक्ष की शाखाओं के साथ सटी हुई है। मि० ग्रियर्सन तो ठहरे विदेशी, यदि उन्हें सूक्ष्म भेद नहीं दिखायी पड़ा तो कोई बात नहीं; पर देशी विद्वानों को तो इस ओर विचार करना ही चाहिए था। शुद्ध अवधी का प्रामाणिक ग्रंथ "पद्मावत" माना जाता है। उसी से कुछ शब्द उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे अवधी और कनौजी के बीच भेद स्वतः दिखायी पड़ेगा—

कनौजी / बैसवाड़ी	अवधी	उद्धरण
बिरवा	बिरिछ—	बिरिछ बेधि चंदन भइ बासा।
औढ़कि	औउँघि—	औउँघि सभापति बैठे सभा।
कछु, कुछ	किछु—	कतहूँ कथा कहै किछु कोई।
तेज	तुखार—	अस तुखार देखे जतु मनके रथवाह।
विकसा / कमल	बिगसा / कँवल—	सभा कँवल अस विगसइ माथे बढ़ परताप।
वहि	ओहिं—	सब रानी ओहिं करहिं जुहारा।

कनौजी / बैसवाड़ी	अवधी	उद्धरण
कोहु, कोहू	केहु—	जो निसरी दढ़ आसन कित गवने केहु पास।
को	केइ—	केइ अवलीन्ह जोग केइ राखे।
हरा	हरियर—	हरियर सब दिखाइ संसारा।
मरी	मुई—	सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम लाग।
प्यार, पियरो	पियर—	तन अस पियर पात भा भोरा।
नगीच	नियर—	जेहि आँखी के नियर होइ कहै विरह कै बात।
त्योहार	तिउहार—	सीख मानै तिउहार सब, गाइ दिवारी खेलि।
छूल, ढाँख	परास—	तेहि दुख भये परास निपाते।

अतः सिद्ध है कि अवधी और कनौजी एक भाषा नहीं, प्रत्युत दो हैं। चूँकि कनौजी और व्रजभाषा एक दूसरे से मिलती-जुलती हैं और व्रजभाषा में कविता करनेवाले कवियों का बड़ा भाग मथुरा के पूर्व और दक्षिण भागों ही का निवासी था, इससे उन्होंने कनौजी का प्रयोग कविता में व्रजभाषा के साथ-साथ किया है; क्योंकि कनौजी तो उनकी मातृभाषा ही थी। साहित्यिक भाषा व्रजभाषा अवश्य थी, परंतु लोकप्रियता और भाव प्रदर्शन का पुट कनौजी ही को दिया जाता था; क्योंकि दूसरी ओर व्रजभाषा पर राजपूताने की भाषाओं का भी प्रभाव कम न था।

मेम्वायर्स आफ़ मथुरा (Memoirs of Muttra) में लिखा है—

Ká Kí however are not the only signs of the genetive case in use for in the Marwari dialect their place is occupied by rá rí; of this form, too, there are abundant examples, as might have been anticipated, for some centuries ago, migrations from Rajputana into Muttura were very frequent and in a less degree continue to the present day.

अर्थात्—का और की केवल सम्बन्धवाचक कारक ही के रूप (जो प्रयोग में आते हैं) नहीं हैं; क्योंकि माड़वारी भाषा में उनका स्थान रा और री लिये हुए है और इस रूप के उदाहरण, जिसका पहले ही से अनुमान किया जा सकता है, बहुत से हैं। शताब्दियों से राजपूताने से लोग अधिक रूप में मथुरा में आकर बसते हैं और यह क्रम अभी तक कुछ कमी के साथ जारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारी-सतसई के नीचे लिखे दोहों से भी इस यथार्थता की पुष्टि होती है—

गोपिन सँग निसि सरद की, रमत रसिक रस रास।
लहाछेह अति गतिन की, सबन लखे सब पास।
दुरै न निघर घटौ दिये, पे रावरो कुचाल।
विष सी लागति है बुरी, हँसी खिसी को लाल।
चाले की बातें चलीं, सुनति सखिन के टोल।
गोयेहू लोयन हँसति, विहँसति जात कपोल।
नहिं अन्हाय नहिं जाय घर, चित चिहुँट्यों तकि तीर।
परसि फुरहरी लै फिरति, विहँसति धसति न नीर।
तू मत माने मुकतई, किये कपटवत कोटि।
जो गुनही तौ राखिये, आँखिन माहिं अगोटि।

व्रज के पश्चिमी तथा उत्तरीय सीमांत में राजपूतानी भाषा और उर्दू का प्रचार था, किंतु ये दोनों व्रजभाषा से मिलकर अपने को ऐक्यरूप में नहीं दिखा पाती थीं। जहाँ कहीं इनके शब्द व्रजभाषा में आ गये हैं, वहाँ वे विकरा के पिण्डा की भाँति अपने को अलग ही दिखाते हैं। फिर भी कुछ न कुछ तो उनका प्रभाव पड़ ही गया है। पर व्रजभाषा के पोषक कवियों का बड़ा भाग कनौजी-भाषाभाषी होने से, कनौजी व्रजभाषा ही के रूप में मानी जाने लगी थी। मतिराम, भूषण, चिंतामणि, बीरबल, देव, पद्माकर, गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा सूरदास, श्रीपति, नरहरि, शुकदेव, बेनी, बेनीप्रवीन आदि सभी कनौजी बोली बोलनेवाले थे। इनमें से ऐसा कोई नहीं है जिसकी कविता में कनौजी के शब्द न आये हों, यहाँ तक कि महाकवि बिहारी-लाल ने भी कनौजी शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पायो, अजहुँ न टेव गई
सुत सनेह तिय सकल कुटुँब मिल निसिदिन होत खई
दधि ओदन दोना भरि देहौं, अरु माइन में थपिहौं
जेंवत स्याम नंद की कनियाँ।

सूरदास

कह हरिदास पिंजरा के जनावर लौं।
उरज तजी कंचुकि चुरकुट भई कटि-तट ग्रंथि हटी

सूरदास मदनमोहन

काँटन माँझ फिरै बिन पनहीं
चहला परि निकसै नहीं मनो दूबरी गाय
राति बिराति ठतारि कँवरिया

ललितकिशोरी

यहि बिरिया नहिं और की तू करिया उहि सोध।
बोझनि सौतिन के हिये आवत रूँधि उसास।
ऐंचनि सी चितवनि चितै भई ओर अरसाय।
पूँछे क्यों रूखी परति सगबग रही सनेह।—बिहारी

मोहनलाल को सुन्यो चलनि बिदेस भयो,
बाल मोहिनी को चित निपट उचाट में।
परी तालाबेली तन में छबीली राखे,
छिति पर छिनक छिनक पाँव खाट में।
प्रीतम पत्यानी निज बल उर राखिये।—मतिराम

घोंघन के जाल जामें नरई सेवार ब्याल,
ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै।—श्रीपति

कनौजी और व्रजभाषा दोनों का एक दूसरे पर बहुत कुछ प्रभाव है, फिर भी इन दोनों में भी भेद है। कनौजी के कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके इकार, उकार व्रजभाषा में एकार और ओकार में परिणत हो जाते हैं। किसी शब्द का व व्रजभाषा में म हो जाता है। ऐसे कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं—

कनौजी	व्रजभाषा
चही	चहियत
बहिन	बेहन
बहुत	बोहोत, बहोत
गाँव	गाम
जिस	जा—जा गाम में
थे	हते
को	कूँ, कौ
कहत	कैहत
तुमको	तोकों
वहिकी, उसकी	वाकी
से	सूं
कल, कालिह	कालि
राह	पेंडो
पाँव	पाम
वहु	वाने
यह	जो, जो तू पूँछकर कहा करै
सपन	सुपन
ऐसा ही	ऐसोई

अंत में अवधी के सम्बन्ध में निवेदन है कि अर्धमागधी और कनौजी के अंचलों पर बसे हुए लोगों के मुख से अवधी के कुछ शब्द अवश्य सुने जाते हैं। पर बैसवाड़ा तथा कन्नौज-प्रांत में तो उसका कुछ भी प्रभाव नहीं है। विद्वानों को चाहिए कि इस विषय पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने की कृपा करें; अवधी को केवल उसके मंडलान्तर्गत ही रक्खें और कनौजी-मंडल से अलग किया करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष अध्ययन की विचित्र विधि

[पं० कामताप्रसाद गुरु एम्० आर० ए० एस्०]

आजकल महाविद्यालयों में हिंदी की एम्० ए० परीक्षा पास करने के लिए परीक्षार्थियों को किसी एक आधुनिक (बहुधा जीवित) कवि की कविता का विशेष अध्ययन करना पड़ता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए कई एक हिंदी-विद्वानों का यह मत है कि मानव-चरित का अध्ययन करने तथा कवि के जीवन से शिक्षा प्राप्त करने के लिए उस कवि के पास कुछ दिन रहना चाहिए। इस नवीन विचार-धारा से प्रवाहित होकर एक सज्जन, जो हिंदी में एम्० ए० के परीक्षार्थी थे, इस विषय में मेरी सम्मति लेने के लिए आये। उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने ...... को अपने विशेष अध्ययन का विषय चुना है, और इसके लिए मैं उनके यहाँ कम-से-कम एक महीने रहना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि उनसे आपका परिचय है, इसलिए यदि आप मुझे उनके नाम से एक परिचय-पत्र दे दें तो मैं स्वयं जाकर उनसे मिलूँ और उनकी स्वीकृति से उनके साथ कुछ समय तक रहूँ।

परीक्षार्थी महाशय के भावार्थ में कुछ विचित्रता देख कर मैंने उनसे पूछा कि आप कविजी की कविता का अध्ययन करना चाहते हैं अथवा स्वयं कवि महाशय का। इस पर परीक्षार्थी सज्जन ने गम्भीरता से उत्तर दिया कि कवि का अध्ययन उसकी कविता का अध्ययन है और कविता का अध्ययन उसके कवि का अध्ययन है।

परीक्षार्थीजी की इस गूढ़ोक्ति से मेरी स्थूल बुद्धि का समाधान न हुआ, इसलिए मैंने उनसे कहा कि ...... के सम्पूर्ण ग्रंथ शारदा-पुस्तकालय में उपलब्ध हैं; आप उन सबको पढ़कर कवि की कविता का यथेष्ट अध्ययन यहीं कर सकते हैं। साथ ही उनके संबंध में जो आलोचनात्मक निबंध लिखे गये हैं, उन्हें पढ़कर आप कवि-स्वभाव का परिचय भी प्राप्त कर सकते हैं। यह सुनकर परीक्षार्थी सज्जन बोले कि मैं कवि का यथेष्ट नहीं, किंतु विशिष्ट अध्ययन करना चाहता हूँ, इसलिए मैं कुछ दिन तक उनके पास रहने का इच्छुक हूँ। आप देखते हैं, लोग आजकल ऐसा ही अध्ययन कर रहे हैं। मैं भी इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर यह चाहता हूँ कि ...... के साथ कम-से-कम एक महीने रहूँ और एक लेख लिखूँ, जिसमें कवि-स्वभाव और कविता की अभूतपूर्व समीक्षा की जाय।

परीक्षार्थीजी की बात फिर भी मेरी समझ में ठीक-ठीक नहीं आयी। मैंने उनसे पूछा कि आप कविजी के साथ रहकर सब प्रकार के कवि-स्वभाव और मानव-चरित का अध्ययन कैसे कर सकते हैं? वहाँ तो केवल एक ही पहलू से अध्ययन हो सकता है। इस पर उन्होंने कहा कि यह मनोविज्ञान का विषय है, जिसमें बहुत वाद-विवाद के बाद भी थोड़ा तात्पर्य निकलता है; इसलिए वाद को छोड़कर व्यवहार की चर्चा करना ठीक होगा। मैंने भी चतुर्थावस्था में द्वितीयावस्था के नवयुवकों से सिर-पच्ची करना हानिकारक समझकर उनकी बात मान ली। तब उन्होंने कहा कि मेरा विस्तृत विचार यह है कि मैं ...... के साथ रहकर उनके स्वभाव, आचरण, रहन-सहन, खान-पान, वार्तालाप आदि का सूक्ष्म अवलोकन करूँ और उनके गुणों का मिलान उनकी कविता से करके कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धांत निकालूँ। इस पर मैंने कहा कि आपका विचार तो अच्छा है; पर इससे कवि को अपनी कल्पना की पहुँच से भी अधिक अड़चन का सामना करना पड़ेगा। वह बोले—महापुरुषों की जाँच ऐसी ही अड़चनों से होती है; प्रसिद्धि रास्ते में पड़ी हुई थोड़े मिलती है। मैं चुप रहा।

इसके पश्चात् उन्होंने फिर परिचय-पत्र की बात निकाली। तब मैंने सोचा कि यह तो बड़ी विषम समस्या है। यदि मैं परिचय-पत्र देता हूँ, तो परीक्षार्थी महाशय कविजी के पास जाकर अवलोकन और अध्ययन की आड़ में पूरी सुविधा और स्वतंत्रता चाहेंगे; उधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविजी मन में कम से कम इतना अवश्य कहेंगे कि इन्होंने मेरे पीछे एक अच्छा जासूस लगा दिया। यदि परिचयपत्र नहीं देता हूँ तो परीक्षार्थी महोदय संभवतः स्वगत अथवा प्रकट रूप से मुझे अभिमानी, स्वार्थी, वंचक आदि विशेषणों का पात्र समझकर कदाचित् यह कहेंगे कि इन्होंने आलोचनात्मक बुद्धि से बढ़ी हुई और महत्त्वाकांक्षा के फल-भार से झुकी हुई मेरी रुचि-लता को अपनी शुष्कता के कुठार से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस उभय-संकट में पड़कर मैंने परीक्षार्थीजी से पूछा कि आप उनके पास रहकर क्या कार्य-क्रम निश्चित करेंगे और एक महीने तक उसे किस तरह चलाते रहेंगे ?

इस पर मानों परीक्षार्थी महोदयजी की कली खिल गयी। उन्होंने कहा कि मैं छाया की भाँति उनका अनुसरण करूँगा। उनके बैठने पर बैठूँगा, उनके उठने पर उठूँगा, उनके चलने पर चलूँगा और उनके भोजन करने पर भोजन करूँगा। विद्यार्थी की नाईं मैं उनके गुरुकुल में निवास करूँगा और अपने खान-पान आदि का सब भार उन्हीं पर रक्खूँगा। सारांश यह कि मैं उनसे तादात्म्य प्राप्त करूँगा। मैं भिन्न-भिन्न भावों और अनुभावों के वशीभूत होने पर उनकी मुख-मुद्रा निहारूँगा और इन्हीं अवस्थाओं का वर्णन उनके ग्रंथों में पढ़कर यह निश्चित करूँगा कि कवि के वचनों और कर्मों में कहाँ तक सामंजस्य रहता है। उनके पास रहकर मैं अपना छायावाद-संबंधी ज्ञान भी पुष्ट करूँगा क्योंकि मुझे औरों की अपेक्षा उनके छायावाद में अधिक प्रकाश दिखायी देता है। इस प्रकार मैं एक महीने तक कवि और कविता का अध्ययन कर काव्य-संबंधी प्रायः सभी समस्याएँ हल करूँगा, जिसमें आगे इस विषय में कोई मत-भेद उपस्थित न हो और कवि लोग दलबन्दी करके एक-दूसरे पर वाक्-प्रहार न करें। मैं इस बात की भी मीमांसा करूँगा कि जिस विषय को लेखक गद्य में भली भाँति प्रकट कर सकते हैं, उसे पद्य में क्यों लिखा करते हैं। सारांश यह कि मैं काव्य-जगत् में युगान्तर और क्रान्ति उपस्थित कर दूँगा।

क्रान्ति और युगान्तर का नाम सुनकर मैं सहम गया; क्योंकि आजकल ये शब्द बहुधा बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं के द्योतक होते हैं। मुझे इस बात का भय हुआ कि काव्य-क्रान्ति में कवि और उनके टीकाकार कहीं एक-दूसरे पर लाठी-चार्ज न करने लगें। सोचा, क्रान्ति और युगान्तर! और वह भी दूसरे के घर में! तब मैंने परीक्षार्थी महाशय को समझाया कि आप कवि का अध्ययन करने क्या जा रहे हैं, कवि के साथ नादिरशाही मचाने की ठान रहे हैं। आप कदाचित् यह समझ रहे हैं कि आपके अध्ययन के लिए कोई कवि दिनरात आपके सामने मूर्त्ति-सा बैठा रहेगा और आप केमरा लेकर मिनट-मिनट पर उसका चित्र उतारते रहेंगे। फिर तुर्रा यह है कि तहसील के चपरासी के समान आप अपने ख़ान-पान आदि का ख़र्चा भी कवि के मत्थे मढ़ेंगे! .... सरीखे समर्थ कवि तो एक महीने क्या, एक बरस तक आपका सब भार उठा सकते हैं; पर जो कवि दूसरों के घर पड़े-पड़े अपने दिन बिताया करते हैं, वे भला आपकी विचित्र अध्ययन-प्रणाली का कैसे स्वागत करेंगे? वे तो आपके आक्रमण के डर से अपना नाम ही बदल देंगे अथवा उस कोटि की कविता करना ही छोड़ देंगे। तब हिन्दी-साहित्य की क्या दशा होगी? यदि आप सरीखे दो-चार और समालोचक उत्पन्न हो जायँगे, तो आज सत्काव्य का निर्माण ही रुक जायगा और अन्त में चौबोलों की ही रचना रह जायगी।

मेरी इस शुष्कोक्ति से परीक्षार्थी महोदय कुछ खिन्न हो गये। उन्होंने कहा—मेरा यह अभिप्राय कभी नहीं है कि मैं किसी कवि पर नादिरशाही करूँ अथवा अपने विशेष अध्ययन के लिए उसे दारु योषित की नाईं नचाऊँ। मेरा विचार केवल यह है कि कवि और टीकाकार स्वतंत्रता-पूर्वक अपने-अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य का पालन करें और दोनों का सहानुभूति तथा सहयोग से काव्य की उन्नति हो। हाँ, यह अवश्य है कि कवि और टीकाकार एक-दूसरे को अपनी अपनी आँखों से देखें—उनमें पूर्व-धारणा का कोई आवरण न रहे; तभी वे दोनों "गिरा-अर्थ, जल-बीचि" सम अभिन्न बने रहेंगे। इसके लिए उन दोनों का सहवास और समागम नितान्त आवश्यक है। रही भोजनादि की बात, सो बिना सहभोज्यता के सच्ची सहानुभूति उत्पन्न नहीं हो सकती, और बिना सच्ची सहानुभूति के सहभोज्यता भी नहीं होती; दोनों का अन्योन्य संबंध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि आतिथेय भोजन देकर अतिथि के प्रति दया दिखलाता है, तो अतिथि भी उसका भोजन ग्रहण कर आतिथेय के साथ उच्च कोटि के शिष्टाचार का पालन करता है। आप जानते ही हैं, जहाँ कई सज्जन दूसरों के यहाँ भोजन करने के लिए पाँव धोये बैठे रहते हैं, वहाँ कई एक कुल-कमल-दिवाकर महानुभाव ऐसे भी होते हैं जो नम्रातिनम्र निमंत्रण पाने पर भी किसी के यहाँ भोजन करना अपना अपमान समझते हैं। इतना होने पर भी मैं कविजी के यहाँ बहुत दिनों तक भोजन करने का बदला उन्हें अपनी टीका के पुरस्कार में साझे के द्वारा दे सकता हूँ।

परीक्षार्थीजी की युक्तियों और उक्तियों से मेरे मन को कुछ सन्तोष हुआ। मैंने उनसे कहा कि यदि आप इस प्रकार के सद्विवेक और सद्विचारों से प्रेरित हुए हैं, तो इस दशा में एक नयी ही योजना काम में लायी जा सकती है। कविजी के यहाँ स्वयं जाने के बदले आप कई परीक्षार्थी मिलकर उन्हीं को यहाँ निमंत्रित कीजिए और एक महीने तक उन्हें यहाँ रखिए। इसके लिए आपको धन की आवश्यकता अवश्य होगी; पर इसे आप लोग आपस में चन्दा करके और नगर के धनी साहित्य-प्रेमियों से आर्थिक सहायता लेकर प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ के प्रतिष्ठित महाजन भी इस काम में आप लोगों का हाथ बँटा सकते हैं। कवि को इतने समय तक अपने यहाँ रखकर आप और आपके साथी तथा दूसरे लोग भी, विना किसी को कष्ट दिये, सब प्रकार से उनका अवलोकन कर सकते हैं और साथ ही कवि का आदर भी कर सकते हैं। इस प्रकार की योजना से उन कवियों की रक्षा हो जायगी, जो आर्थिक संकट अथवा पर-घर-वास के कारण अध्ययन करने-कराने का आक्रमण सहने में असमर्थ हैं। कवि की बिदा के समय यदि आप लोग उन्हें कम से कम पाँच सौ रुपये की थैली अर्पित कर सकेंगे, तो सोने में सुगंध आ जायगी। इस प्रकार आप लोग अपनों का आदर करना सीखेंगे। इस योजना से कवि को जितना संतोष और साहित्य की जितनी उन्नति होगी, उतना संतोष और उतनी उन्नति आपकी 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' वाली योजना से न होगी। यह योजना अंत में एक प्रकार के साहित्य-सम्मेलन का रूप धारण कर लेगी और 'एक पन्थ दो काज वाली' कहावत को पूर्णतः चरितार्थ करेगी।

मेरी बातें सुनकर परीक्षार्थीजी को संतोष हुआ और उन्होंने कहा कि आपकी योजना कार्य में परिणत करने के योग्य है। सन्तोष के कारण उन्होंने परिचय-पत्र की बात नहीं निकाली। इसके पश्चात् वह यह कहकर चले गये कि मैं इस विषय में गंभीरतापूर्वक विचार करूँगा और अपने साथियों की भी सम्मति लूँगा। उनके इस कथन से मैंने अपने को धन्य माना।

इस वार्तालाप के लगभग तीन महीने पीछे परीक्षार्थी (अब परीक्षोत्तीर्ण) महोदय मुझसे फिर मिले। इस समय उनके मुख-मंडल पर पूर्ण संतोष विराज रहा था, यद्यपि उसका कारण कुछ और ही था। बोले—मैं विना विशेष अध्ययन के ही द्वितीय श्रेणी में परीक्षोत्तीर्ण हो गया हूँ और मुझे स्वर्ण-पदक भी प्राप्त हुआ है। यह सुनकर मैंने उनका अभिनन्दन किया और कहा कि जब आपने विशेष अध्ययन की केवल चर्चा करके इतनी सफलता प्राप्त की है, तब आप विशेष अध्ययन का कार्य करके कितने अधिक सफल न होते! मैं समझता हूँ, उस समय आपको प्रथम श्रेणी और अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती।

जहँ अस दसा बचन की बरनी।
को कहि सकै कर्म की करनी॥

मेरी बात सुनकर परीक्षोत्तीर्ण सज्जन ने केवल "अवश्य" कह दिया और फिर आज तक कभी उस विषय की चर्चा नहीं की।

पञ्जाब के सुयोग्य वैद्यों तथा महिलाओं से प्रशंसित

नारी-जीवन (Regd.) NARI JIWAN

सम्पूर्ण स्त्री-रोगों की अमृत दवा है। जो अनियमित ऋतु, ऋतुकष्ट, अत्यन्त रक्तस्राव, सिर, कमर, पेड़ू के दर्द, सफ़ेद, लाल इत्यादि पानी के स्राव, तथा गर्भाशय रोगों को शीघ्र ठीक कर स्वस्थ बनाता है। मूल्य फ़ी शीशी २), १) डाकख़र्च अलग। C.B. 14

मैनेजर भारत जीवन फार्मेसी, रावलपिंडी (पंजाब)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

....??

[श्री० छैलबिहारी दीक्षित "कण्टक"]

(१)

तेरी आँखों के कोने में—
तारों की नव नीरवता का
उषा-लोक की सुन्दरता का—
पुट दे, पकड़े पुण्य-पताका
सांध्य-गगन में कविता भूली आत्म-भाव खोने में !

(२)

व्याकुल की अति आकुल आशा
प्रथम प्रणय की प्रिय परिभाषा
पागल की अनेक अभिलाषा—
लेकर करुणा करती क्रीड़ा, बेसुध किस टोने में !

(३)

पड़ जाते प्राणों के लाले
विना पिये करते मतवाले
छलक रहे मदिरा के प्याले
शुष्क आँसुओं की दो बूँदों-भरे पलक के दोने में

(४)

स्वयं सह रहे हैं—सहने दे
करुण-कथा कहते—कहने दे
छेड़ न और पड़ा रहने दे
मज़ा मिल रहा मूक वेदना से पीड़ित होने में

(५)

भाव-भरा प्राणों से प्यारा
सरस-सुधा से सिञ्चित सारा
वह सूना-संसार हमारा
गला रहीं आहें ओले-सा रिस-रिस बहता रोने में

परिभाषा

तेरो मेरो जो जुरे, ता सम और न आन;
तोहि जगत को ज्ञान है, मोहि तिहारो ज्ञान।
दृगन फारि पुनि पुनि लखे, कछुहु न बुद्धि बस्याय;
लेखि अलेखो मन गुने, कै नहिं साफ़ लखाय।
सरस संदेसे सजनजी, दूतिन दिये अनेक;
वलि निज हाथन दीजिये, कोरो कागद एक।
तनु-रंग पीरो पर्यो लखि, हिलकि झिझकि हँसि बाल;
विरहिनि देखे ज्यों बधू, अंगराग के ख्याल।
अपबस करि सरबस सु हरि, फाँसि बरबसै गाँसि;
रसिया कसक न समझिये, अस कस कसमस हाँसि।

[श्रीरघुवीरशरण जौहरी]

CC0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र परिचय

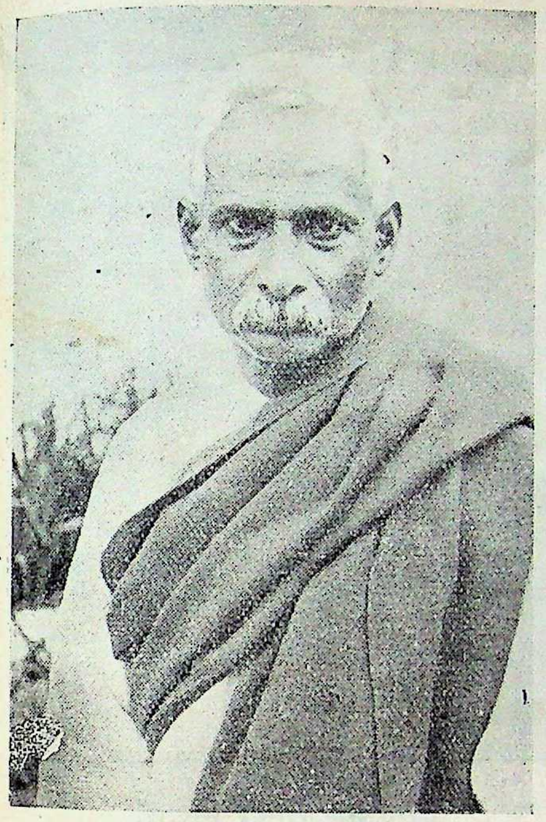

पं० माधवराव सप्रे
(पंद्रहवें सम्मेलन के सभापति)

पं० श्रीधर पाठक
(पाँचवें सम्मेलन के सभापति)

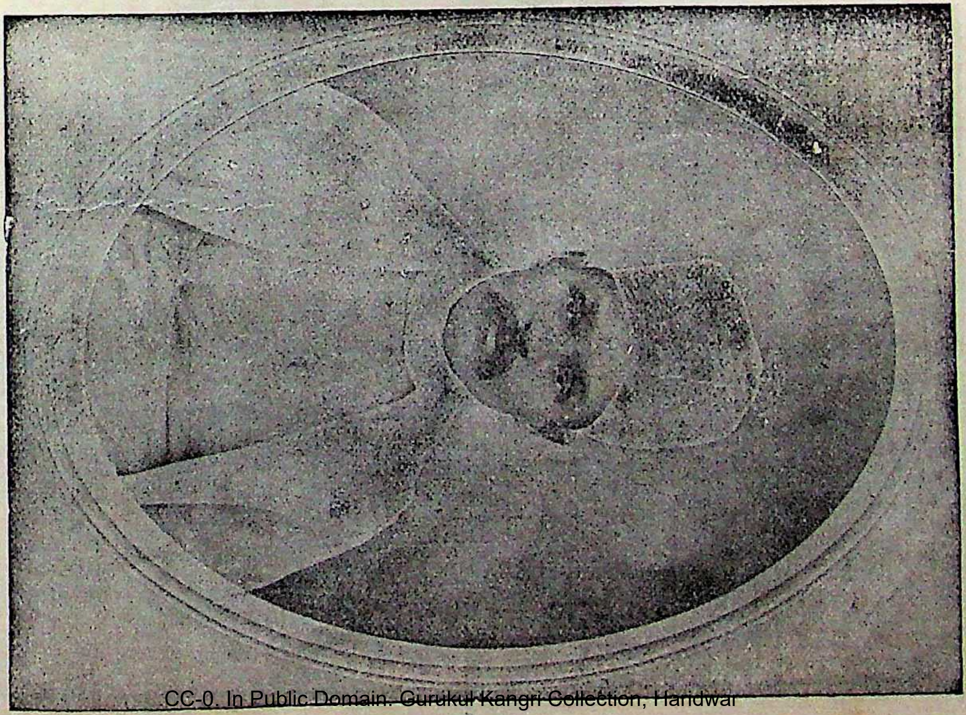

महर्षि पं० मदनमोहन मालवीय
(प्रथम और नवें सम्मेलन के सभापति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा मोहनदास-कर्मचंद गांधी
(आठवें सम्मेलन के सभापति)

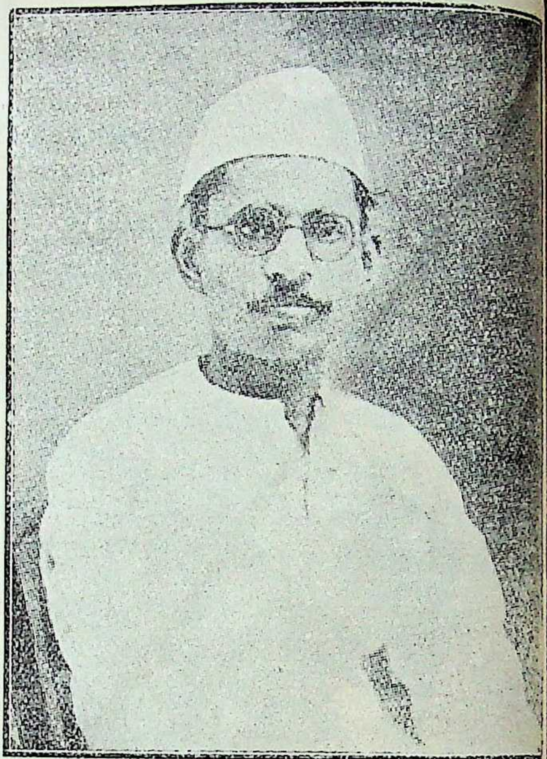

श्री० गणेशशंकर विद्यार्थी
(उन्नीसवें सम्मेलन के सभापति)

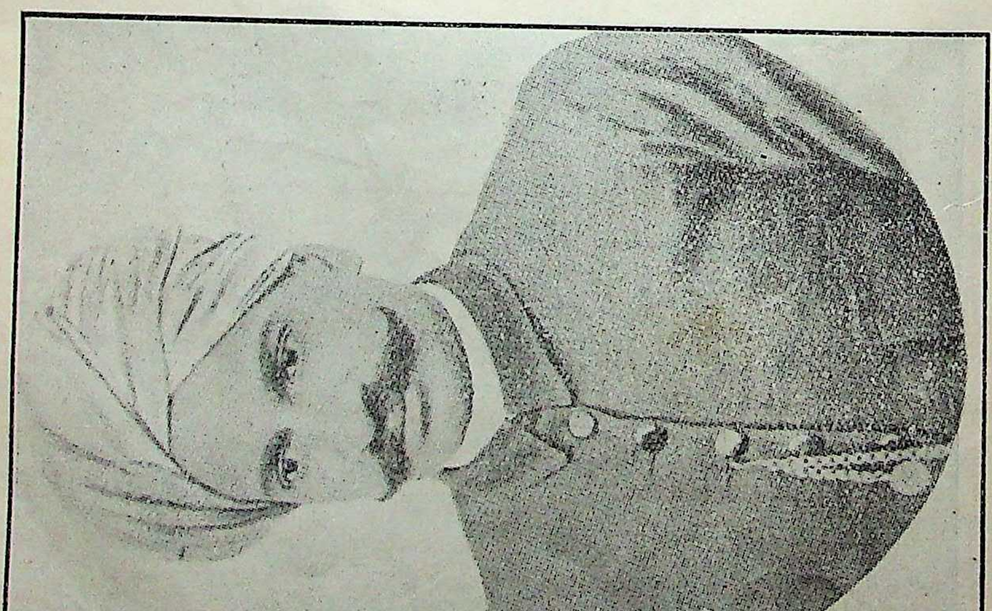

पं० किशोरीलाल गोस्वामी
(इक्कीसवें सम्मेलन के सभापति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी
(बारहवें सम्मेलन के सभापति)

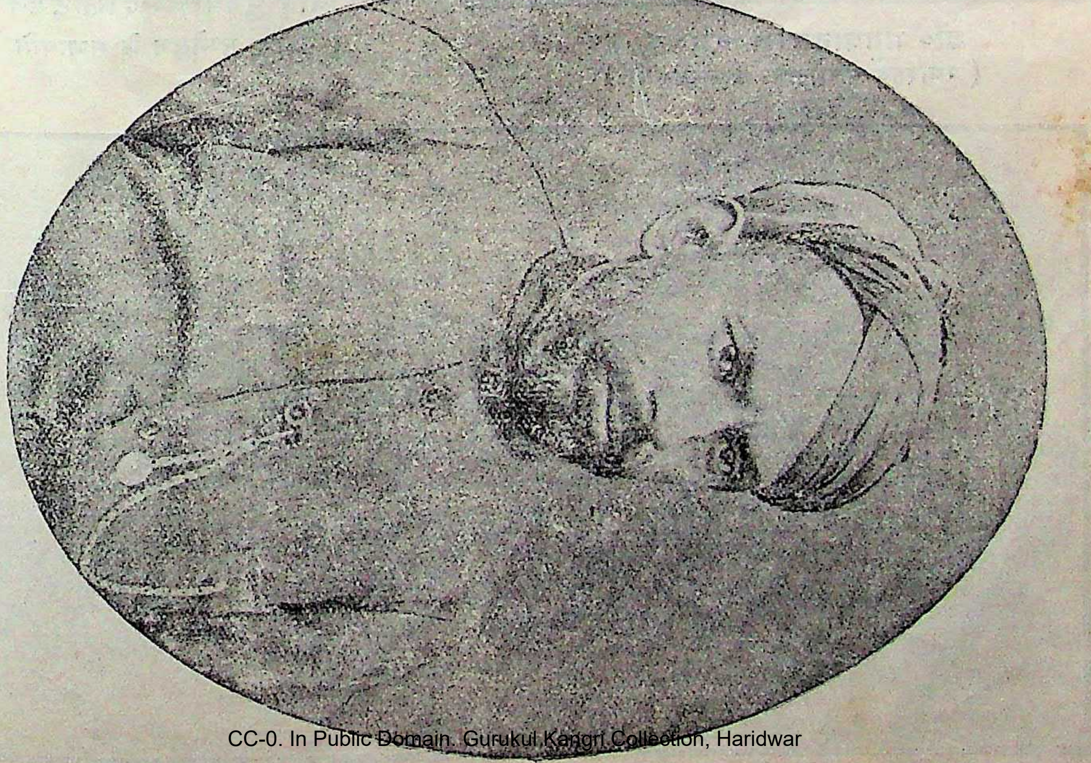

महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा
(सत्रहवें सम्मेलन के सभापति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० भगवानदास एम्० ए०
(ग्यारहवें सम्मेलन के सभापति)

बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन
(तेरहवें सम्मेलन के सभापति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कान्यकुब्ज-कालेज का होस्टल (लखनऊ)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

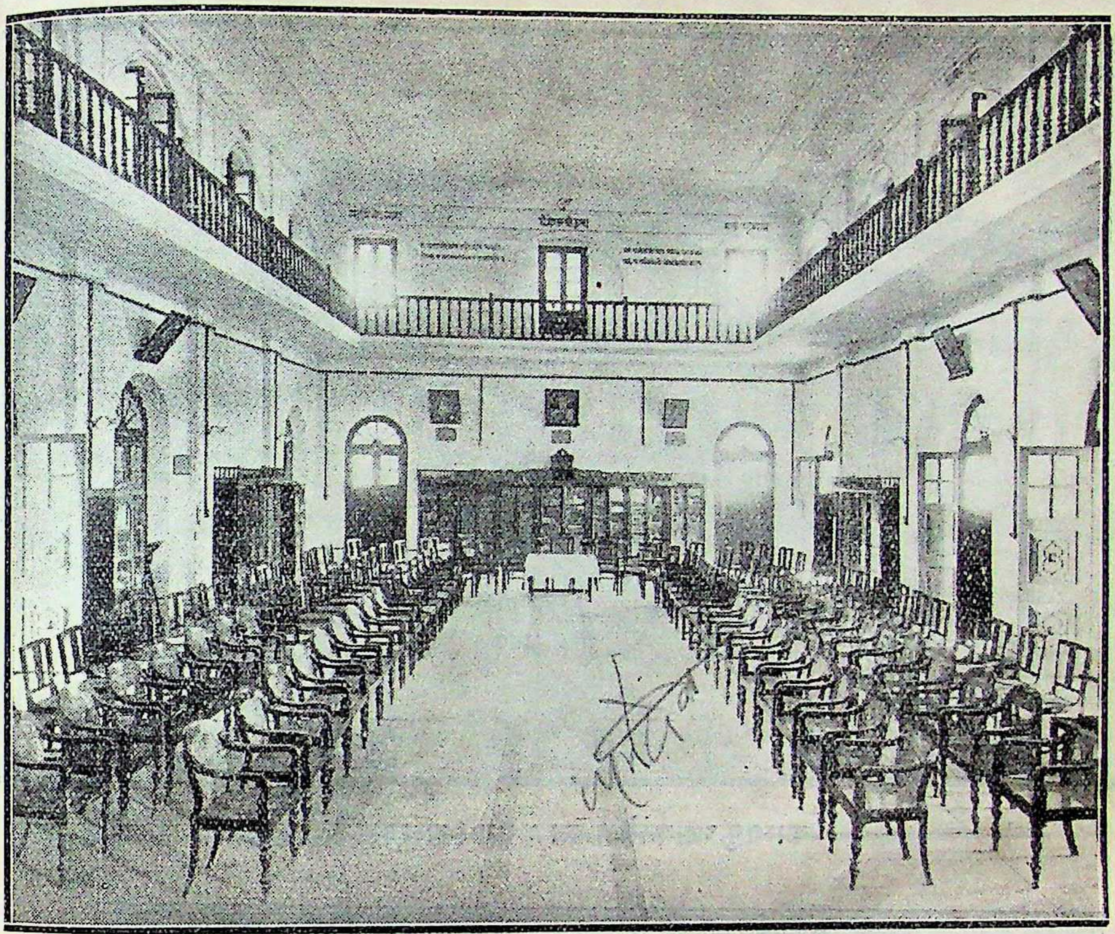

कान्यकुब्ज-कालेज का हाल (लखनऊ)

पं० पद्मसिंह शर्मा
(अठारहवें सम्मेलन के सभापति)

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
१४वें, और २३वें सम्मेलन के (स्थानापन्न) सभापति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्यकुब्ज-कालेज का भवन (लखनऊ)

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
(बीसवें सम्मेलन के सभापति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

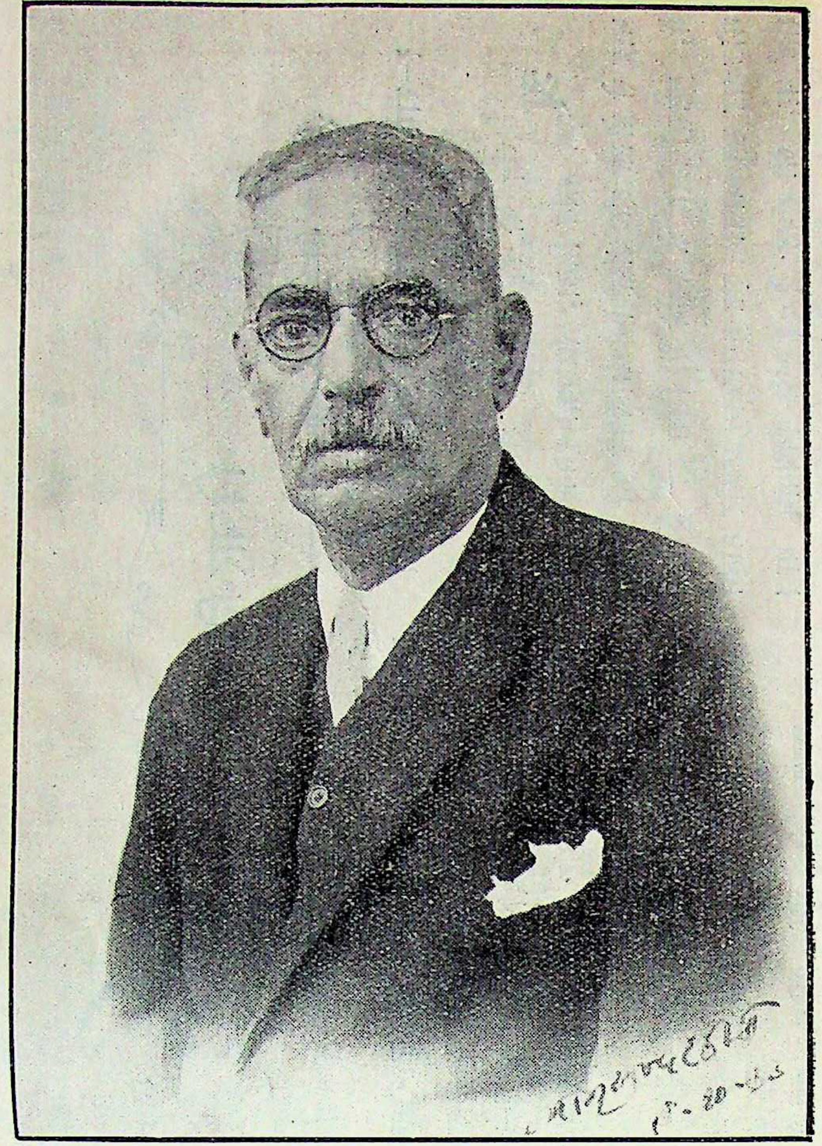

बाबू श्यामसुंदरदास
(छठे सम्मेलन के सभापति)

सौभाग्यवती श्रीकमलाबाई किबे
(२३वें सम्मेलन के अवसर पर गल्पसम्मेलन की सभानेत्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-विनिमय

१–रामचरित-मानस की रचना का स्थान और समय

अयोध्या के इतिहास की खोज में हमको एक गीत मिला, जिसकी हमने स्थानाभाव से केवल दो पंक्तियाँ 'श्रीअवध की झाँकी' में, तुलसीचौरा के वर्णन में, लिख दी हैं। इस गीत का रचनेवाला एक मुसलमान फ़क़ीर मोहन साईं था, जो संवत् १८१२ में विद्यमान था। श्रीअवध की महिमा ऐसी है कि यहाँ अनेक रामभक्त फ़क़ीर हो गये है। 'गीत' फ़ारसी मिली हुई हिन्दी में है। अर्थ स्पष्ट है। तो भी फ़ारसी शब्दों का अर्थ नोट में लिख दिया गया है। अयोध्याजी में जहाँ अब तुलसीचौरा बना हुआ है, एक वट-वृक्ष था जिसके नीचे रहकर गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस की रचना की थी। इसी गीत से यह भी विदित होगा कि रामचरित की रचना से पहले इस स्थान पर एक योगिराज रहते थे। उनके गुरु ने उन्हें यह आज्ञा दी थी कि जब गोस्वामीजी यहाँ आ जायँ, तो तुम अपना शरीर अग्निसात् करके हमारे पास चले आना। (देखो, श्रीअवध की झाँकी, पृष्ठ ६४)

इस गीत के अनुसार रामचरित-मानस की रचना का आरंभ संवत् १६३१ (?) की रामनवमी के दिन किया गया और सं० १६३३ में रामविवाह के दिन (अगहन-सुदी ५ को) यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। इस चौरे पर राजामानसिंह ने ज़मुर्रद का फ़र्श बनवा दिया था।

मोहनसाईं-कृत

(ख़्याल बहरे शिकस्त)

अवध की भूमी पवित्र सब है
पवित्रतम उसमें तुलसी-चौरा।
तवाफ़[1] करते हैं रोज़ जिसका
बिरंचि नारद महेश गौरा ॥ १ ॥
वह घड़ी अजब थी कि जिस घड़ी
वह दरख़्त बट का उगा यहाँ।
उसी शब[2] में बढ़के बुलन्द शुद[3]
उसे कैसे कोइ करैं बयाँ।
हैराँ हुए सब देख कर
क़ुदरत इलाही[4] दर जहाँ।
न खुला मुअम्माँ[5] किसी से भी
पोशीद[6] इसरारे[7] निहाँ[8]।
सुना न देखा किसी ने पहले
बना दिया इसने सबको बौरा ॥ २ ॥
अवध की भूमी...

जमाया आसन उसी के नीचे,
प्रसिद्ध मुनि योगिराजजी ने।

१ परिक्रमा। २ रात। ३ हुआ। ४ ईश्वर। ५ पहेली। ६ गुप्त। ७ भेद। ८ छिपा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

176327

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व' जानते मर्म भीतरी थे
बता दिया था उन्हें किसी ने।
यहाँ पै काशी से जब गुशाईं
पधारे श्रीरामरस में भीने।
सुना के आदेश अपने गुर का
उन्हें ही सौंपा सब उस यती ने।
जलाके तन योग-अग्नि में तब
सिधारा गुर पाद पद्म भौंरा॥ ३॥
अवध की भूमी...

लगी जब इकतीसी रामनौमी,
गुशाईंजी ने क़लम उठाई।
उछाह से राम ब्याह तेतिस
समाप्ति तिथि मानसी सुहाई।
हुई जो पूजा की धूम सुरगन—
ने रामगाथा य' थी बढ़ाई।
सुदिव्य मनि तीन शुचि अलौकिक
सुवरता जिनकी कही न जाई।
खींचत था उनमें समेत परिकर—
के रामजी का शबीह औरा॥ ४॥
अवध की भूमी...

थी एक पर विष्णुजी की झाँकी
व दूसरे पर थी राम-सी की।
व तीसरे पर अनुज हनूयुत
बिराजती मूर्ति सीय-पी की।
उन्हीं की पूजा वहाँ पै होनी
चलाई मानों गुसाईंजी की।
बना दिया मिरज़ा मानसिंह ने
फ़रश ज़मुर्रद व छत्रि डी की॥
बहुत दिनों तक चहल पहल थी
पलट गया फिर समय का दौरा॥ ५॥
अवध की भूमी...

चढ़ा * था शैतान सूबा के सिर
कि ताजपोशी की की तयारी।
उपाट कर फ़र्श तख़्त साजा
दुखा के दिल औ रुला के छाड़ी।
वह तख़्त पर बैठने न पाया।
पहुँच के नौरँग ने जान मारी।
मुग़ल के घर रत्न फ़र्श छत्री
गुनाह बेलज़्ज़त उसने चक्खा।
किये का फल हाथोंहाथ धारी।
मुग़ल के घर रत्न फ़र्श छत्री
पहुँच गये दिल्लियाँ पिथौरा॥ ६॥
अवध की भूमी...

रहा सहा वृक्ष वेदिका युत
जो था ही ज़िन्दा गवाह सबका।
बचा न वह भी बचै तो कैसे
कि हिल गये जब कि सातों तबक़ा।
वह कैसा संबत् था बेवफ़ा का
कि नाम बारह ख़वास रब का।
व जन्म त्रेता का कैसे माने
कि छयकरी तिथि हमन को जँचका।
अब ईंट की वेदिका बची है
उसी पै सिर हम पटकते धौरा॥ ७॥
अवध की भूमी...

ए पाक बट मैं तो ख़ाके तन हूँ
बहुत ही नापाक नजसे † दामन।
मगर तुम्हारे ही साये में तो
हुआ है मेरा हमेशः पालन।
इसी से छूने का हक़ है हासिल,
छिमा करो पितृदेव भगवन्।
कपीस के कुंड में सिवारूँ
तुम्हारा तन की बनै न ईंधन।
तुम्हारी आसक्ति घेरती है
हृदय हमारा मचाके हौरा॥ ८॥
अवध की भूमी...

* इसके पूर्व प्रसंग का पद्य 'श्रीअवध की झाँकी' के पृष्ठ ५५ पर दिया हुआ है।

† नजिस=अशुद्ध।

बिलकुल मुफ़्त !
जीवन को सुखमय बनाने का सरल रास्ता बतानेवाली वैद्य विद्या नामक पुस्तक विना डाक महसूल मुफ्त भेजी जाती है मंगावें।
मदनमंजरी फ़ार्मेसी
जामनगर (काठियावाड़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हीं तो त्रेता के सोमबट हो,
तुम्हीं हो द्वापर के बंशीवट भी
तुम्हीं बने कलि में बोधि बिरवा,
व मानसी बट यहाँ प्रकट भी।
तुम्हीं अक्षयबट तुम्हीं अचलबट
तुम्हीं हो कैलास तरु मुकट भी।
तुम्हीं हो नटराज बट बपुष में,
तुम्हीं हो मेकलसुता के तट भी।
तुम्हारा गुन गावे साईं मोहन
बने का जब तक अजल * का कौरा ॥ ६ ॥

अवध की भूमी...

श्रीअवधवासी सीताराम (बी. ए.)

× × ×

२—'शिशुपालवध' का रचयिता माघ—ब्राह्मण या वैश्य ?

संस्कृत-काव्यों में "किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषध" ये तीनों काव्य "बृहत्त्रयी" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें भी "शिशुपालवध" श्रेष्ठ माना जाता है। प्रायः सभी संस्कृत विद्वान् "माघ" को ही 'शिशुपालवध' काव्य का कर्त्ता मानते हैं। स्थूल दृष्टि से बात है भी यही; क्योंकि इस काव्य के अन्त में ग्रन्थकर्त्ता के नाम से जो ५ श्लोक हैं, उनमें लिखा है—

"श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्य-
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्र चारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥"

अर्थात्—दत्तक के पुत्र माघकवि ने इस 'शिशुपालवध' काव्य को बनाया है। ऐसा स्पष्ट लिखा है। इस स्पष्टोल्लेख में सन्देह उत्पन्न होने का कारण यह है कि काव्यप्रकाश की—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ २ ॥"

इस द्वितीय कारिका की वृत्ति में स्वयं मम्मटजी ने लिखा है कि—

"श्रीहर्षादेर्धावकादीनां धनम्"

इस वृत्ति की 'सुधासागर' व्याख्या में दीक्षित भीमसेनजी ने लिखा है—

"आदिपदात् भोजप्रबन्धकारिभिर्भोजात्—माघ
(शिशुपालवध)
"कारिभिर्माघाख्यवैश्याद्बहुतरं धनं प्राप्तमित्यादूह्यमिति।

इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी अज्ञातनामा ब्राह्मण कवि ने धनप्राप्ति के लिए यह 'शिशुपालवध' काव्य माघ-नामक वैश्य के नाम से बनाया है। इस काव्य का वास्तविक कर्त्ता 'माघ' नहीं है। भोजप्रबन्ध में लिखा है—

माघः पत्नीं प्राह—

"अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे।
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किंनु विलम्बितेन ॥ १ ॥
"दारिद्र्यानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥ २ ॥ इत्यादि

भोजप्रबन्ध के कर्त्ता बल्लाल पण्डित ने ये श्लोक किसी अन्य ग्रन्थ से लेकर माघ के नाम से लिखे हैं। इनमें "दारिद्र्यानल" श्लोक तो "सुभाषितावलि" में भट्ट प्रद्युम्न के नाम से उद्धृत किया है। पण्डित दुर्गाप्रसादजी ने माघकाव्य के उपोद्घात में लिखा है—

"शिशुपालवधादन्यः कोपि ग्रन्थोऽस्य कवेर्नोपलब्धः।
किन्तु सुभाषितावलौ—
"शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना
मा श्रौषं जगति श्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम् ॥
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु पततामर्थोऽस्तु मे सर्वदा।
येनैकेन विना गुणास्तृणबुसं प्रायाः समस्ता अपि ॥ १ ॥
"नारी नितम्बे प्रतिबध्यमाना
हंसीव हेमरशना मधुरं ररास।
तन्मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा-
श्चक्रन्दुरार्त्तमुखरं चरणावलग्नाः ॥ २ ॥ तथा-
औचित्यविचारचर्चायां च—
"बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय निष्फला कलाः ॥ ३ ॥
एतत्पद्यं माघनाम्ना समुद्धृतमस्तीत्यस्ति कश्चि-
दन्योपि ग्रन्थो माघकृत इत्यनुमीयते ॥ इति ॥

* मृत्यु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे तो यह प्रमाणित होता है कि माघ स्वयं महाविद्वान् था और उनका बनाया हुआ कोई अन्य ग्रन्थ भा है जिसमें "शीलं... नारीनितम्बं"......तथा बुभुक्षितैः... ये तीनों श्लोक होंगे। और, यदि यह बात सत्य है कि माघ स्वयं महाविद्वान् था और उनका बनाया हुआ अन्य कोई ग्रन्थ है, तब तो दीक्षित भीमसेन का वह वाक्य—

'माघकारिभिर्माघाख्यवैश्याद्बहुतरं धनं प्राप्तम्'

हलाहल असत्य सिद्ध होता है। इनमें से किसका कथन सत्य है, इसका निर्णय करना विद्वानों का काम है। मैं तो मानता हूँ कि दीक्षितजी का कथन ही सत्य है; क्योंकि माघ जाति से वैश्य था। वैश्य होकर ऐसा महावैयाकरण और महाकवि हो, यह कुछ असंभव-सी बात है। पुनः यदि माघ ही काव्यकर्त्ता होता तो दीक्षित भीमसेनजी ऐसे महावैयाकरण और महाकवि पर ऐसा भयङ्कर दोषारोप न करते कि यह "शिशुपालवध" काव्य माघ-कृत नहीं है; और जो उपर्युक्त तीन श्लोक माघ के नाम से लिखे हैं, वे शायद प्राचीन किसी माघ-काव्य की पुस्तक में होंगे। अथवा, भ्रम से वे श्लोक माघकृत लिख दिये गये हैं। 'शिशुपालवध' काव्य के अन्त में कविवंशवर्णन के जो ५ श्लोक हैं, उनसे भी पाया जाता है कि माघ के वंश में कोई (पिता-पितामह) विद्वान् नहीं था। यदि उसके वश में संस्कृत विद्या का प्रचार होता तथा प्रशस्तिकर्त्ता स्वयं माघ होता, तो अवश्यमेव कुछ-न-कुछ लिखता। "श्रीशब्दरम्य"...इस पाँचवें श्लोक में लिखा है—"तस्यात्मजः"—अर्थात् दत्तक के पुत्र ने यह काव्य बनाया। इस प्रकार की उक्ति से यही आभास होता है कि यह कहनेवाला कोई अन्य ही है, स्वयं माघ नहीं है। यदि स्वयं माघ ही लिखता, तो शायद ऐसा लिखता कि दत्तक के पुत्र मैंने यह काव्य बनाया—अर्थात् "व्यधत्त" इस प्रथमपुरुष की क्रिया के स्थान में उत्तमपुरुष की क्रिया लिखता। यह एक तर्क है। किसी पुस्तक के इस पाँचवें श्लोक में "माघ" का नाम नहीं लिखी, और किसी में—

"लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारुमाघः"

ऐसा पाठ है। इसमें "सुकविकीर्तिदुराशयादः" इस पद की टीका में वल्लभदेव ने लिखा है—

सुकवीनां श्रेष्ठविदुषां वररुचि० ×× मयूरादीनां या कीर्त्तिः ख्यातिर्यशस्तत्र या दुराशा दुरभिलाषस्तया महाकविकीर्तिलिप्सयेत्यर्थः। दुष्टत्वं त्वाशायाः स्वल्पबुद्धित्वेन सुकविकीर्त्तेरप्राप्यत्वात्॥ इति॥

इससे यही ज्ञात होता है कि टीकाकार वल्लभदेव तो इस काव्य को माघकृत ही मानते थे। यदि उन्हें यह ज्ञात होता कि यह काव्य किसी अज्ञात कवि ने 'माघ' वैश्य के नाम से बनाया है, तो उक्त पद का उपर्युक्त प्रकार से अर्थ न लिखते। किंबहुना। "भोजप्रबंध", "प्रभावकचरित" और "प्रबंधचिंतामणि" आदि विक्रम की तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के सभी ग्रंथों के कर्त्ता इस काव्य को माघकृत ही मानते हैं। किसी ने भी यह नहीं लिखा कि माघ वैश्य के लिए यह काव्य किसी अज्ञात कवि ने रचा है। इस समय भी सभी विद्वान् वैसा ही मानते हैं। इस काव्य के विषय में कुछ वर्ष पूर्व १-२ लेख पत्रिकाओं में छपे हैं। पर इस प्रकार की शंका लेख में नहीं है।

अब दूसरी शंका यह है कि "माघ" जाति से ब्राह्मण थे या "वैश्य"। भोजप्रबंध और प्रबंधचिंतामणिकार तो माघ को ब्राह्मण लिखते हैं। यथा—

×× ततो राजा माघपण्डितं विपन्नं विदित्वा निजनगराद् ब्राह्मणशतावृतो मौनी पद्भ्यामेव तत्रागात् इत्यादि।

सैकड़ों ब्राह्मणों के साथ राजा वहाँ गया। इससे ज्ञात होता है कि माघ ब्राह्मण था। 'पंडित' शब्द से भी यही बोध होता है। प्रबंधचिंतामणि में भा "माघ पंडितः" ऐसा ही शब्द लिखा है तथा उसके पिता के लिए स्पष्ट "श्रेष्ठी" शब्द नहीं लिखा। प्रभावकचरित का कर्त्ता माघ को वैश्य लिखता है—

"तथा शुभङ्करः श्रेष्ठी विश्वविश्वप्रियङ्करः।
यस्य दानाद्गुतैर्गीतैर्हर्षश्रवो हर्षभूरभूत्॥ १५॥

यह शुभंकर माघ के पितृव्य (चचा) थे। इसमें "श्रेष्ठी" शब्द स्पष्ट कहता है कि यह वैश्य थे। अजमेर के रायबहादुर गौरीशंकर-हीराचंद ओझाजी ने "राजपूताने का इतिहास" नामक ग्रंथ के पहले खंड पृष्ठ १७ पर लिखा है—

"ब्राह्मणों के समान क्षत्रिय वैश्य कायस्थ आदि जातियों में भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् यहाँ (राज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूताने में) हुए हैं, जिनके थोड़े-से उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं।

'ब्राह्मस्फुटसिद्धांत'-नामक ज्योतिष के ग्रंथ का रचयिता प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त—जिसने शकसंवत् ५५० (वि० ६८५, ई० ६२८) में अपने ग्रंथ की रचना की। भीनमाल (जोधपुर-राज्य) का निवासी था। शिशुपाल-वध-महाकाव्य का कर्त्ता माघकवि भी उसी नगर का रहनेवाला था। "हरकेलिनाटक" का प्रणेता विग्रहराज (बीसलदेव चौथा) अजमेर का चौहान राजा था......इत्यादि।"

मैं भी माघ को वैश्य ही मानता हूँ; क्योंकि माघ के वंशवर्णन में ऐसा एक भी पद नहीं है जिससे इसका ब्राह्मण होना पाया जाय। परंतु प्रायः सभी विद्वान् माघ को श्रीमाली-ब्राह्मण मानते हैं। बहुत से इतिहासकारों ने भी इसको श्रीमाली ब्राह्मण ही माना है। अत्यंत आश्चर्य की बात तो यह है कि अजमेर के उन ओझाजी ने भी अपने एक पत्र में (यह पत्र महुवा—काठियावाड़ के मासिकपत्र 'श्रीमाली-अभ्युदय' में छपा है) माघ को श्रीमाली-ब्राह्मण माना है। वह पत्र नीचे उद्धृत है।

"अजमेर
नं० २३८ ता० २०-८-१९२७

श्रीमान् पण्डितजी श्रीफानुलालजी बी० ए० की सेवा में गौरीशंकर-हीराचंद ओझा का सादर नमस्कार। अपरंच आपका कृपापत्र ता० ३—७—२७ का मिला। उत्तर में निवेदन है कि प्रसिद्ध कवि माघ श्रीमाली-ब्राह्मण था, और आर्यस्फुट-सिद्धांत का कर्त्ता आर्यभट्ट प्रसिद्ध ज्योतिषी भी श्रीमाली ब्राह्मण था। आर्यभट्ट को "भिल्लमाचार्य" कहते हैं, जिसका आशय यही है कि—"भिल्लमाल (भीनमाल श्रीमाल) नगर का रहनेवाला आचार्य! भिल्लमाल (भीनमाल) श्रीमालनगर का पुराना नाम है। ××× मैंने 'माघ कवि का समय' नाम का लेख "नागरी-प्रचारिणी पत्रिका" में प्रकाशित किया था। शायद वह आपने देखा होगा।

भवदीय—गौरीशंकर हीराचंद ओझा।"

कारण ज्ञात नहीं होता कि इतिहास के दिग्गज विद्वान् ने यह दो बातें कैसे लिख दीं। क्या श्रीमाली ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के लिए, यह व्यावहारिक पत्र लिख दिया, या अपने "राजपूताने का इतिहास" ग्रंथ में लिखे निज विचार भ्रांत ज्ञात हुए, अतः यह शुद्ध विचार तदनन्तर प्रकट किये हैं? क्या बात है? क्या ओझाजी महाराज इसका स्पष्टीकरण करने की कृपा करेंगे?

यह माघ धर्मनाग (वर्मलात) राजा के सुप्रभदेव मंत्री का पोता और दत्तक का पुत्र था, जैसा कि कवि-वंश-वर्णन में लिखा है। यदि कवि का वंश ब्राह्मणवर्णीय होता, तो उसमें ब्राह्मणवर्ण-संसूचक १-२ विशेषण अवश्यमेव होते। पर है नहीं, अतः यही सिद्ध होता है कि माघ वैश्य ही थे, जैसा कि दीक्षित भीमसेनजी ने लिखा है। और, यह "शिशुपाल-वध" काव्य समृद्धिशाली, धनकुबेर राजमन्त्रि-पौत्र माघ ने धनप्रदान द्वारा किसी अज्ञात कवि से बनवाया है। अथवा, कवि ने स्वेच्छा से यह काव्य रच लिया होगा और पीछे से उस कवि को धन देकर काव्य के अन्त में माघ ने अपना नाम लिखवा लिया होगा। यह काव्य विक्रम की सातवीं शताब्दी के लगभग बना है। प्रबंधचिंतामणि (जिसे जैनाचार्य मेरुतुङ्गाचार्य ने वि० सं० १३६१ में रचा) तथा प्रभावकचरित (जिसे जैनप्रभाचन्द्र ने वि० सं० १३३४ में रचा) और भोजप्रबंध (जो लगभग इसी समय में बना—इन तीनों ग्रंथों में जो माघचरित लिखा है, वह विश्वसनीय नहीं हैं। भोजप्रबंध तथा प्रबंध-चिंतामणि में माघ के पिता व दादा का नाम तक नहीं है; शायद दोनों ग्रंथकारों ने काव्य की पुस्तक आँखों से नहीं देखी। प्रभावकचरित में माघ के पिता-दादा का नाम—जैसा कि कविवंश-वर्णन में है—लिखा है; पर साथ में यह भी लिखा है कि माघ के शुभंकर-नामक पितृव्य और 'सिद्ध' नाम का उनका पुत्र था (जिसने वि० सं० ९६२ में "उपमिति भवप्रपंच" ग्रंथ बनाया था)। यदि ऐसा होता तो वंश-वर्णन में पितृव्य तथा पुत्र का नाम अवश्यमेव होता। पर ऐसा है नहीं। शायद सिद्ध ने जैनधर्मदीक्षा ग्रहण कर ली थी, अतः धर्मच्युति के कारण वंशवर्णन में उसका नाम न लिखा हो। पर यह संभव नहीं। पुनः माघ व सिद्धार्षि के समय में भी लगभग १५० वर्ष का अंतर है।

माधुरी के विद्वान् पाठकों से नम्र निवेदन है कि इस जटिल विषय पर विशेषरूप से निर्णयात्मक प्रकाश डालने की कृपा करें।

परमानन्द श्रीमाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीर

१—बड़ौदा-ओरियंटल कानफ़रेंस का हिंदी-विभाग

प्रायः सुनने में आया करता है कि हिंदी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा के समुन्नत पद पर आसीन कर दी गयी है। ये शब्द बहुतों के हृदय में आनंद का स्रोत बहा देते हैं, किंतु कुछ लोगों के हृदय में विषाद भी उत्पन्न कर देते हैं। यही नैसर्गिक नियम भी है। जहाँ हर्ष है, वहाँ विषाद भी रहता है। परंतु यह प्रश्न बहुत कम हृदयों में उठता होगा कि हिंदी को यह सम्मान कैसे मिला, कहाँ से मिला और सचमुच मिला भी है या नहीं? यदि यह भी मान लें कि हाँ, मिल ही गया है तो किन अंशों तक मिला है? ये छोटे-छोटे प्रश्न प्रायः नहीं उठते-से जान पड़ते; क्योंकि यदि ये प्रश्न उठ चुके होते तथा इन पर लोगों ने भरपूर विचार कर लिया होता, तो यह संभव न होता कि हिंदी की विद्वन्मंडली आज तक उसकी वास्तविक दशा से इतना अनभिज्ञ होती। किसी के भी मान या अपमान की परख घर बैठे नहीं होती, और न आत्मनिर्मित कल्पनाजगत् के स्वप्नों में होती है। उसकी जाँच तो संसार के खुले मैदान में, जहाँ उसके अन्य प्रतिद्वंद्वी भी उपस्थित हों, होती है।

अतः इस प्रकार की जाँच के लिए ओरियंटल कानफ़रेंस जैसी सम्मानित सभाएँ ही सर्वोत्तम क्षेत्र हो सकती हैं। अब तक ऐसी कुल सात सभाएँ हो चुकी हैं, जिनमें से पहली दो या तीन में तो हिंदी को कोई स्थान ही नहीं मिला था। उसके पश्चात् चार सभाओं में हिंदी-विभाग की भी आवश्यकता समझी गयी। बहुतों के लिए तो यही हिंदी के सम्मान के लिए पर्याप्त हो सकता है, किंतु हिंदी के एक सच्चे सेवक के लिए यह किसी अंश में भी संतोषप्रद नहीं हो सकता। हममें से जिन लोगों को इन कानफ़रेंसों में सम्मिलित होने का अवसर मिला होगा, उनसे यह बात कदापि छिपी न रह सकी होगी कि प्रायः हिंदी की दशा इन कानफ़रेंसों में उस मेहमान की-सी रहा करती है जो शायद बिना बुलाये ही आ जाता है, अथवा जिसके किसी सम्मान की आवश्यकता नहीं समझी जाती; या फिर उस मेहमान की-सी होती है, जिसे विवशता के कारण निमंत्रण तो दे दिया जाता है, किंतु उसके सम्मिलन की अपेक्षा नहीं की जाती, और यदि वह सम्मिलित ही हो जाता है तो तिरस्कार और उपेक्षा का भागी होता है। यह दशा सचमुच सम्मानप्रद कभी नहीं कही जा सकती और न इस पर हिंदी का कोई सेवक कभी गर्व ही कर सकता है।

पिछली चार कानफ़रेंसों में से तीन में सम्मिलित होने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हो चुका है और प्रत्येक बार यही अनुभव हुआ कि इस विभाग की कार्यवाही की ओर कभी गंभीरतापूर्वक विचार ही नहीं किया गया। आदि से अंत तक इसकी कार्यवाही एक खिलवाड़ की भाँति निपटा दी गयी। यदि अन्य आवश्यक कार्यों से समय बचा तो इसे भी दे दिया गया; लेखमाला में यदि थोड़ा बहुत स्थान बचा तो इसके विभाग में पठित लेखों को भी छाप दिया गया। अन्यथा इस विभाग की कार्यवाही के संक्षिप्तातिसंक्षिप्त विवरण से ही काम चल जाता है। अन्य बातों का तो ज़िक्र ही क्या, इस विभाग के सभा-पति या मंत्री के चुनाव तक में भी इसी अवहेलना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण नीति से काम लिया जाता है । इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती कि उचित-अनुचित का विचार करके उसकी निर्धारणा की जाय । जो हिंदी बोल सकता है अथवा उसे समझ सकता है, वह चाहे अन्य किसी विषय का ज्ञाता अथवा विद्वान् हो या न हो, हिंदी-भाषा तथा साहित्य का पूर्ण ज्ञाता एवं विद्वान् कहलाने का अधिकारी तो हो ही जाता है ; और इस नाते हिंदी-विषयक किसी भी बड़े से बड़े कार्य के संपादन की क्षमता उसमें आ ही जाती है । जहाँ 'विद्वत्ता' का मूल्य इतना सस्ता आँका जाता हो तथा उसकी परख उनके द्वारा होती हो, जो उसके वास्तविक ज्ञान से नितांत शून्य हों, वहाँ यदि ऐसा अंधेर मचा रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या !

ओरियंटल कानफ़्रेंस ही के क्या, किसी भी सम्मानित विद्वन्मंडली के किसी भी विभाग में कदाचित् कभी संभव नहीं हो सका और न शायद हो सके कि कोई व्यक्ति, जिसका उस विभाग-विशेष से अटूट एवं घनिष्ठ संबंध न रहा हो, उसका सभापति निर्वाचित कर लिया गया हो अथवा कोई भी निबंध, जिसका इस विभाग-विशेष से पूर्ण संबंध न हो, कभी उसमें पढ़ा गया हो। परंतु जहाँ तक हिंदी-विभाग का संबंध है, आज तक शायद यह भी निर्धारित करना आवश्यक नहीं समझा गया कि उसका उद्देश्य क्या है ? ओरियंटल कानफ़्रेंस के हिंदी-विभाग का अर्थ 'हिंदी-साहित्य' के विभाग से है अथवा हिंदी 'भाषातत्त्व' के विभाग से है ; या कोई भी उलटी सीधी वस्तु—जो किसी भी भाषा की और किसी भी विषय की हो, किंतु लिखी देवनागरी अक्षरों में हो—सर्वथा हिंदी-विभाग के ही लिए है जिसकी बैठक के लिए प्रायः कम-से-कम समय की आवश्यकता होती है ।

इसकी बानगी पिछली ओरियंटल कानफ़्रेंस की विषय-सूची में भला भाँति देखी जा सकती है । कुल लगभग ९ निबंध थे—

१—पहला निबंध हिंदी के प्रसिद्ध कवि 'ठाकुर जगमोहनसिंहजी की जीवनी' के विषय में था । किंतु जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस लेख के पढ़ने का समय ही नहीं मिल सका ।

२—'माधवानल कामकंदला'—इसके लेखक सेवकजी को कदाचित् चार मिनट का समय दिया गया था कि वह इसे पढ़कर सुना दें ; चाहे कोई समझ सके या न समझ सके !

३—'मंडपदुर्ग और आमात्य पेथड़' ।

४—'वेदना काल-निर्णय विषे मतभेद होवाथी कालना निश्चित पणानो उल्लेख' ।

पता नहीं, इन दोनों लेखों का हिंदी-साहित्य अथवा हिंदी-भाषा-तत्त्व से कौन-सा संबंध था ! हाँ, हिंदी-अक्षरों में लिखे अवश्य रहे होंगे ।

५—आयुर्वेद की महत्ता—इस लेख पाठ के लिए बारह मिनट का समय दिया गया था ।

६-७—ये दोनों निबंध 'टिबेटन क्रानोलॉजी' तथा 'बुधीज़्म इन टिबेट' (Tibetan Chronology and Budhism in Tibet) स्वयं सभापतिजी के थे, जो लगभग ६० या ७० पन्नों में एकेडेमी की 'हिंदुस्तानी' में अनुवाद-रूप से छप चुके हैं । हिंदी-साहित्य के लिए ये दोनों निबंध तो इतने अधिक आवश्यक समझे गये कि प्रकाशित हो जाने के पश्चात् भी उनका बारंबार हर जगह पर प्रत्येक सभा में सुनाया जाना अत्यंत आवश्यक हो गया था । कदाचित् किसी अन्य विभाग में यदि कोई अपने अन्यत्र प्रकाशित निबंध को, जिसका उस विभाग से कोई विशेष संबंध भी न होता, पढ़ना चाहता तो अनुमति कठिनाई से ही मिल सकती । इन निबंधों में लगभग ४२ मिनट का समय लगा ; किंतु यह तो समय का सद्व्यय ही था !

इन उच्चकोटि के निबंधों के अतिरिक्त 'वर्तमान हिंदी कविता की प्रगति' तथा 'तुलसीदासजी का मानव-धर्म निरूपण' एवं 'कृष्णावतार-विषयक सूरदासजी की भावना' आदि कुछ और 'अनावश्यक' निबंध भी थे जिनका हिंदी-साहित्य से कोई विशेष संबंध नहीं समझा गया ! इसीलिए एकआध को छोड़कर (जिसे शायद ६ मिनट का समय दिया गया था) शेष के वहाँ पढ़े जाने की आवश्यकता भी नहीं समझी गयी ; अन्यथा लगभग तीन घंटे के थोड़े-से समय में अन्य आवश्यक निबंधों का पाठ, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, कैसे हो सकता !

आशा है, इतनी थोड़ी-सी बानगी पर्याप्त होगी यह दिखाने के लिए कि हिंदीभाषा तथा उसके साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कितना सम्मान किया जाता है। इस लेख से कोई यह न समझे कि इसमें किसी पर अनावश्यक व्यक्तिगत आक्षेप किया गया है अथवा किसी की विद्वत्ता की अवहेलना की गयी है। इस लेख का मुख्य तात्पर्य यह है कि हिंदी की वास्तविक दशा का दिग्दर्शन करा दिया जाय। इसका उत्तरदायित्व मुख्यतः हिंदी के विद्वानों पर ही है। वे प्रायः इतने असंगठित एवं एक दूसरे से इतने अपरिचित-से रहते हैं कि इन कानफ़रेंसों में सम्मिलित होना भी उनके लिए अनावश्यक-सा होता है। उपस्थिति अथवा लेखों द्वारा उनमें योग देना भी वे निरर्थक एवं व्यर्थ ही समझते हैं। उनकी इस तटस्थता का ही परिणाम होता है कि हिंदीविभाग अपनी उचित गंभीरता एवं सम्मान से वंचित रह जाता है। यदि मातृभाषा को सचमुच सम्मानित करना तथा उसके यथार्थ गौरव को स्थापित करना है, तो यह आवश्यक है कि हिंदी के विद्वान् अपनी निद्रा भंग कर उचित संगठन करें तथा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दें कि उसकी विद्वत्ता ऐसी सस्ती न समझ ली जाय एवं उसका सम्मान इतना तुच्छ एवं नगण्य न समझ लिया जाय।

ललिताप्रसाद सुकुल (एम्० ए०)
(कलकत्ता-विश्वविद्यालय)

× × ×

२—समीक्षा

नल नरेश—चार-पाँच महीने की बात होगी, पंडित प्रतापनारायणजी पुरोहित ने अपने नव-प्रकाशित 'नल नरेश' महाकाव्य की एक प्रति हमारे पास भेजने की कृपा की और इस ग्रंथ के गुण-दोष पर विचार करने के लिए हमसे अनुरोध भी किया। उनकी आज्ञा को हमने शिरोधार्य तो कर लिया, पर समय के अभाव से उसका पालन ज़रा देर से कर सके। इस विलंब के लिए हम पुरोहितजी से क्षमा-प्रार्थी हैं।

आलोचनीय पुस्तक यदि छोटी-मोटी होती, तो कदाचित् हमें इतनी देर न लगती। परंतु 'नल नरेश' महाकाव्य तो है ही, महाकायिक भी है। क़रीब साढ़े तीन सौ पृष्ठों का यह काव्य-ग्रन्थ उन्नीस सर्गों में विभक्त है। आधारभूत कथा-भाग बिलकुल छोटा है, परंतु पुरोहितजी की पद-रचना-निष्णात लेखनी थिरक-थिरक कर बड़ी आनबान के साथ मंदाक्रांता की चाल से, अथ से इति तक, चलती आयी है। यदि ऐसा न होता तो नल-चरित पर इतना बड़ा काव्यग्रन्थ लिखा ही न जा सकता। इसमें संदेह नहीं कि इस पुस्तक की रचना में जल्दबाज़ी की बू-बास भी नहीं है और पुरोहितजी ने अपने चरित्र-नायक की चर्चा बड़े चाव से की है। यथार्थ में लगन हो तो ऐसी हो।

इस पुस्तक की भूमिका हिंदी के ख्यातनामा काव्यकार हरिऔधजी ने लिखी है। यह एक ऐसी बात है जो आलोच्य ग्रंथ के संबंध में कुछ अस्पष्ट—परंतु अच्छे भाव पाठकों के मन में पहले ही उत्पन्न कर देती है। भूमिका काफ़ी सावधानी से लिखी गयी है, और उचित प्रशंसा के साथ-साथ ग्रंथ-गत दोषों की ओर भी युक्तिपूर्वक संकेत किया गया है। भूमिका-लेखक की हैसियत से हरिऔधजी इतना ही कर सकते थे; इससे अधिक कुछ भी नहीं।

परंतु समालोचक का कर्त्तव्य इससे भिन्न होता है। उस बेचारे का मार्ग बड़ा दुर्गम होता है। जहाँ वह दोष देखता है, वहाँ उस पर इस बात की ज़िम्मेदारी भी आ जाती है कि आलोचित ग्रंथ के गुणों की ओर दुर्लक्ष्य बिलकुल न होने पावे, अन्यथा स्वयं आलोचक के आलोचक उसे छिद्रान्वेषी ठहराने में हरगिज़ न चूकेंगे। ठीक इसके विपरीत जहाँ गुणों की प्रशंसा होती है, वहाँ दोष-दर्शी दृष्टि को बिलकुल बंद कर लेने से आलोचना का साहित्यिक उद्देश्य विफल हो जाता है। ऐसी हालत में गुण और दोष दोनों का सम्यक् और सहानुभूतिमूलक विश्लेषण करना ही समालोचक का एकनिष्ठ कर्त्तव्य होना चाहिए। ऐसी नेक और न्याय-रत समालोचना के संबंध में पुरोहितजी की ही सम्मति सुनने योग्य है। वह प्रथम सर्ग में लिखते हैं—

मिथ्या गान करें न गुणों का,
हो न सत्यता से संताप।
क्योंकि सत्य-सा पुण्य नहीं है,
और झूठ-सा कहीं न पाप॥

बिलकुल सच है। इससे बढ़कर उदात्त दृष्टि-कोण एक साहित्य-समालोचक के लिए और क्या हो सकता है? समालोचना की इसी उदार भावना से प्रेरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर हमने इस ग्रंथ की ओर देखा है। मालूम नहीं, इस प्रयत्न में हम कहाँ तक कृतकार्य होंगे। इसका निर्णय औरों के हाथ में है। हमारा विशेष संबंध तो अपनी ही अंतरात्मा से है। उसी के संतोष में हमारा संतोष है। हमसे बुद्धि की ग़लती भले ही हो, पर हम विशेष प्रयत्नवान् इस बात के लिए रहेंगे कि हृदय में कहीं विषमता न आने पावे; क्योंकि पहली का प्रायश्चित्त तो भूल-स्वीकार से हो सकता है, पर दूसरी से त्राण पाना उतना सहज नहीं है।

नल की पात्रता

राजा नल की कथा हिंदू जन-समाज में बहुत प्रसिद्ध है। उनके ऊपर जो आपत्तियाँ आयीं, वे लोकोक्ति के रूप में प्रकट हो चुकी हैं। लोग कहा करते हैं—

"राजा नल को विपत परी—
भूँजी मछरी दह में परी।"

वाह, आपत्ति भी ऐसी आती है कि भूँजी हुई मछली कूदकर जल में फिर समा जाती है! जिस मनुष्य का लालन-पालन राजमहल के आमोदमय वातावरण में हुआ हो और जिसके जीवन-पथ में विषाद की ज़रा-सी छाया भी न पड़ी हो, उसका राज-पाट खोकर मार्ग का भिखारी हो जाना और निर्जन वन में आश्रय-हीन होकर भटकते फिरना एवं इसी अवस्था में आपत्तिकाल की एकमात्र अनुगामिनी अर्धांगिनी से वियुक्त हो जाना एक ऐसी बात है, जो जीवन की बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना से बढ़कर है। ऐसी दुरवस्था में मृत्यु कदाचित् आशीर्वाद होकर आती है। परंतु दुर्भाग्य-दलित प्राणी को वह भी सुलभ नहीं होती।

राजा नल की यंत्रणाओं के प्रति संसार को सहानुभूति हो सकती है और है भी; परंतु जन-समाज को यह भी कहने का अधिकार है कि राजा नल की आपत्तियाँ स्वयं उन्हीं की मोल ली हुई थीं। छोटे-बड़े रूप में आये दिन भी संसार में ऐसे लोग देखने में आते हैं जो आज करोड़पति हैं, पर कल जुए में अपना सर्वस्व खोकर राह के भिखारी हो जाते हैं। अपने ही दुष्कर्मों के कारण प्रत्यक्ष रूप से बिगड़नेवाले लोगों की संख्या संसार में कुछ कम नहीं है। राजा नल की भी ठीक यही हालत हुई थी।

नल निषध-देश के राजा थे। निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि वह बड़े द्यूत-प्रेमी थे। दाँव लगाने और हारने-जीतने का उन्हें काफ़ी अभ्यास था। ऐसा यदि न होता, तो वह अपना सारा राज्य दाँव पर लगा देने का दुस्साहस सहसा न करते। नया खिलाड़ी ऐसी हिम्मत न करेगा। किसी भी दिशा में सर्वस्व-समर्पण के लिए कुछ अभ्यास ही चाहिए।

पुष्कर से उन्होंने बाज़ी लगा दी और अपनी पैतृक संपत्ति से हाथ धो बैठे। राजमहल छोड़कर जंगल के राहगीर हो गये। शरीर ढकने के लिए एक कपड़ा भी न रह गया। इसी अस्तव्यस्त दयनीय दशा में दमयंती, जो छाया के समान अनुगामिनी होकर अपने स्वामी के साथ चल रही थी, दुर्गम मार्ग पर चलते-चलते थककर सो गयी। ऐसी प्रसुप्तावस्था में उसे छोड़कर 'नल नरेश' नौ-दो ग्यारह हो गये। नींद खुलने पर दमयंती ने अपने को सब प्रकार से निस्सहाय पाया। रोती भटकती, नल के पौरुष का गुणगान करती और अनेक आपत्तियों का सामना करती वह साध्वी चेदि-नरेश की पुत्री सुनंदा की सखी बनकर किसी प्रकार अपने दुर्दिन की घड़ियाँ काटने लगी।

अंत में उसने स्वयंवर के बहाने राजा नल का साक्षात्कार प्राप्त किया और इस तरह नल-दमयंती के सुदिन फिर लौटे। नल-चरित्र का इतना ही कथाभाग है। इस चरित्र के मुख्यतः दो विभाग होते हैं—पहले में दमयंती के प्रणय-पाश में आबद्ध नल का प्रेम और विवाह-वर्णन है; दूसरे में उनके गृहस्थ-जीवन और सांसारिक आपत्तियों की चर्चा है। बस, उनके ज्ञात जीवन के यही दो पहलू हैं। इसमें संदेह नहीं कि राजा नल को जन-समाज में बहुत ख्याति मिल चुकी है। परंतु उनके संबंध में जन-साधारण की जो प्रचलित धारणा है, वह किस प्रकार की है—इस बात पर जरा गवेषणापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। हम जहाँ तक समझते हैं, नल के प्रति लोगों की सहानुभूति अवश्य है। राजमहल में जन्म लेकर वैभव की गोद में पला हुआ मनुष्य यदि राह का भिखारी हो जाय, उसके पास तन ढकने को यदि एक चिथड़ा भी न रहे—तो कौन ऐसा पाषाणहृदय प्राणी होगा जिसके मन में दया और सहानुभूति के भाव जागृत न होंगे! अतएव कहना होगा कि राजा नल अपनी यंत्रणाओं के कारण संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रसिद्ध हैं। उनकी आपत्तियाँ उन पर क्यों और कैसे आयीं और उनका सामना उन्होंने किस प्रकार किया—यह एक दूसरा प्रश्न है। जब हम इस दृष्टि से नल-चरित्र पर विचार करते हैं, तो हमें निषधराज के पक्ष में कहने योग्य कोई बात नज़र नहीं आती। जो मनुष्य द्यूत-प्रियता के वशवर्ती होकर अपना राज्यसिंहासन खो देता है, उसके प्रति हृदय में सहानुभूति भले ही जागृत हो, परंतु श्रद्धा नहीं आ सकती। ऐसे मनुष्य को जन-समाज आदर की दृष्टि से हरगिज़ नहीं देख सकता। नल के श्रद्धालु चाहे कुछ भी कहें, पर नीतिशास्त्र तो यही निर्णय देगा कि राजा नल ने अपने दुर्गुण के कारण राजसत्ता खो दी। कलि-प्रवेश की बात हमारे विवेक को बिलकुल बनावटी मालूम होती है। बुरा काम करने के पहले कलि-प्रवेश तो प्रत्येक साधारण मनुष्य के हृदय में होता है। इसमें असाधारणता कौन-सी है? फिर भी आचरण-शास्त्र तो मनुष्य को ही दोषी ठहराता है, कुछ कलि-प्रवेश को नहीं। कलि तो तभी प्रवेश कर सकता है, जब मनुष्य अपने हृदय के दरवाज़े और खिड़कियों को खोलकर रखता है। मुक्त-द्वार मन में ही उसका संचार हो सकता है, अन्यत्र नहीं। इस असा-वधानी का दोष तो इच्छा-स्वातंत्र्य-भोगी मनुष्य के ही मत्थे मढ़ा जायगा—अन्यथा इसका जवाबदेह कौन हो सकता है? अपराधी मनुष्य—चाहे उसका पहला ही अपराध क्यों न हो—यह कहकर अपनी जवाबदेही से बरी नहीं हो सकता कि 'क्या करूँ, मेरे हृदय में कलि प्रवेश कर गया था।' यह एक उपहासास्पद बात होगी।

यदि राजा नल में एकमात्र द्यूत-प्रियता का ही दुर्गुण होता, तो भी हम बरदाश्त कर जाते। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि आगे चलकर नल ने एक ऐसा व्यवहार प्रकट किया, जिसके कारण उनका चरित्र और भी निंदनीय प्रतीत होता है। अपनी सती-सरला धर्मपत्नी को ऐसी निस्सहाय अवस्था में जब कि वह निर्जन वन में क्लान्त होकर सो गयी हो, छोड़कर चले जाना एक ऐसी बात है जिसे हम चाहे और कुछ भी कहें, पर पुरुषोचित नहीं कह सकते। जिस मनःस्थिति में नल ने दमयन्ती को निर्जन वन में छोड़ा, उसमें कर्त्तव्य-मूढ़ता कूट-कूट कर भरी हुई थी। [illegible] कारण उद्भ्रान्त था और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार करने की शक्ति सर्वथा नष्ट हो चुकी थी। पुरुषोचित धैर्य की इस आचरण में बू-बास भी नहीं थी। कोई चिन्ता नहीं, जो राजसत्ता हाथ से निकल चुकी थी। पर क्या एक पुरुष की मानवीय सत्ता भी नल खो बैठे थे?—हाँ, खो बैठे थे।

पुरोहितजी ने नल का जो प्रासङ्गिक हृदयचित्र खींचा है, उसे देखिए। दमयन्ती को निद्रावस्था में देखकर निद्रागुण-गान-पूर्वक वह कहते हैं—

"इसी दशा में पड़ी हुई है प्रिया हमारी।
कई दिनों से भूख प्यास से मारी मारी॥
ऐसी सच्ची सती स्वपति को वन में तजकर—
जा सकती है नहीं कभी भी और कहीं पर॥
इससे मैं ही छोड़कर जाता हूँ इसको अभी।
हे देवो! अब आप ही रक्षक हैं इसके सभी॥
पतिव्रता अपमान स्वपति का नहीं करेगी।
होकर के वह सती सतीपन नहीं हरेगी॥
ऐसा मनमें मान तुझे मैं छोड़ रहा हूँ।
बरबस मन को मोड़ वचन को तोड़ रहा हूँ॥
प्रिये, मिलेंगे फिर कभी हरि ने जो मिलने दिया।
या होगा परलोक में शीतल यह अपना हिया॥
करना मुझको क्षमा क्योंकि मैं दीन क्षीण हूँ।
मेरा क्या अपराध, आज मैं बुद्धिहीन हूँ॥
जाता हूँ प्रियतमे! सुखी तुम रहना मन में।
सबके रक्षक राम सदन में, रण में, वन में॥
कहकर नल ये वचन फिर साड़ी आधी फाड़कर।
निर्जन वन में चल दिये, निज नयनों में नीर भर॥

राजा नल की कर्त्तव्यमूढ़ता का यही नग्नचित्र है। इन वाक्यों से कहीं भी किसी प्रकार इस बात का पता नहीं लगता कि आख़िर उन्होंने दमयन्ती को ऐसे भयङ्कर निर्जन वन में निस्सहाय क्यों छोड़ा? पुरुष-पुंगव निषधराज की विचार-सरणि विचित्र है। सच्ची सती स्वपति को वन में तजकर नहीं जा सकती है, इससे मैं ही इसको अभी छोड़कर जाता हूँ! स्वपति को न छोड़नेवाली स्त्री तो सच्ची सती ज़रूर है, पर सच्ची सती को छोड़नेवाला पति किस अधम योनि का प्राणी है? मेरा क्या अपराध, आज मैं बुद्धिहीन हूँ—कहकर नल अपनी पुरुषोचित ज़िम्मेदारी से छूटना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु धर्मशास्त्र का निर्णय ऐसा नहीं हो सकता। जो मनुष्य इतना समझ सकता है कि प्रसङ्गविशेष में मैं बुद्धिहीनता का काम कर रहा हूँ, वह अपने व्यवहार के अनौचित्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकता। हमारी सम्मति में निषधराज बुद्धिहीन तो नहीं थे—उनमें हीनता थी पुरुषोचित आचरण-बल की। यही उनके दुर्दैव की जननी थी। परिणय-बंधन की पवित्र मर्यादा का जैसा अनादर और तिरस्कार नल ने किया, शायद ही किसी उच्च-कुल-प्रसूत पुरुष ने किया हो। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपत काल परखिये चारी॥

इस प्रसङ्ग में परख की कसौटी पर नारी तो खरी उतरी; परन्तु धीरज, धर्म और नर खोटे निकले। कठिन सतीधर्म का निर्वाह करनेवाली दमयन्ती! तू धन्य है; न जाने तूने नल के किन गुणों पर मुग्ध होकर उसका पाणिग्रहण किया था! निर्मोही निषधराज तुझे ठीक आपत्तिकाल में छोड़कर चलता बना, पर ऐसे मूढ़ स्वामी के प्रति तेरी श्रद्धा ज़रा भी विचलित न हुई।

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
'रहिमन' मछरी नीर को, तऊ न छाँड़ति छोह॥

जाल के पड़ने पर निष्ठुर जल तो मछली का प्रेम-बन्धन तोड़कर बह निकलता है, परन्तु मछली जल के लिए तड़प-तड़पकर प्राण दे देती है। जल-प्राण सफरी! धन्य है तेरी देव-दुर्लभ प्रेमपरायणता! ठीक इसी प्रकार आपत्तियों के जाल में घिर जाने पर हृदय-हीन नीर बहकर निकल गया, परन्तु सती सफरी तड़पती रह गयी। उस निराश्रिता अबला की विरह-वेदना अंतरिक्ष को चीरकर उस पार निकल गयी होगी, और उसने परमात्मा के दरबार में प्रश्न किया होगा कि क्या इन्हीं गुणों की बदौलत समाज में पुरुषों की प्रधानता है! दमयन्ती की परिष्कृत मेधा तो उससे कह रही थी—

वही देवता कहलाता है जो करता स्त्री का सम्मान।
देवधाम है वहीं जहाँ पर है महिला का मान महान॥

परन्तु राजा नल दैवी गुणों से शून्य थे और उनके हृदय पर आसुरी संपत्ति की तमिस्रा छायी हुई थी। ऐसी उदात्त भावना उनके मन में क्योंकर जाग्रत होती।

राजा नल के जन्मगत संस्कार चाहे जैसे हों, परन्तु उनका इतिहास-प्रसिद्ध चरित्र सर्वथा निंदनीय है। अतएव जनसमाज के सामने वह उन्नत-मस्तक होकर खड़े नहीं रह सकते। द्यूत-प्रेम के वशीभूत होकर सिंहासन खो देना और आपत्ति मोल लेकर उसी संकट-काल में अकारण एक पतिपरायणा सती-साध्वी को छोड़ देना एक ऐसा व्यवहार है, जिसके कारण पुरुष-जाति का गौरव हमेशा के लिए खंडित हो चुका है। परन्तु फिर भी नल-चरित्र पढ़ने और सुनने योग्य है—इसलिए नहीं कि राजा नल आदर्श पुरुष थे, बल्कि यह दिखाने के लिए कि पुरुष इतना गिर सकता है और ऐसे पतित पति को भी एक आर्यललना अनन्यमनसा प्यार कर सकती है। कहने का आशय यह कि नल-चरित्र की नायिका दमयन्ती है। उसके सतीत्व के प्रखर प्रकाश को संसार के सामने प्रकट करने के लिए राजा नल का चरित्र एक असित पृष्ठभाग है। दमयन्ती पूर्णचन्द्र है और नल उसके सौन्दर्य को बढ़ानेवाला काला मेघ है। दमयन्ती समाज-सरोवर की खिली हुई पद्मिनी है, और नल पास का पङ्कमिश्रित जल है। दमयन्ती देवी है, और नल मानवीय कमज़ोरियों का मारा हुआ दयनीय प्राणी है। यदि दमयन्ती के समान सती सहगामिनी न होती, तो नल-चरित्र पुराणों के पृष्ठों पर अंकित ही न होता, न जाने कितने राजा नल संसार में आज तक अपनी वासनाओं के शिकार हो चुके; संसार को उनके स्मारक की आवश्यकता नहीं है। पर दमयन्ती एक ही हुई; इसीलिए वह पंच महाकन्याओं में अमर हो चुकी है। इस अलौकिक सती की बदौलत नल भी तर गये। नल-चरित्र को पढ़नेवाले एक सहृदय प्राणी के हृदय से सहसा दो उद्गार निकलेंगे—धन्य, दमयन्ती! हाय, राजा नल। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों उद्गारों के अर्थ बिलकुल भिन्न हैं।

फिर भी इस दम्पति के चरित्र में राजा नल की प्रधानता क्यों? पुरोहितजी ने प्रस्तुत महाकाव्य को 'नल नरेश' का नाम क्यों दिया? श्रीहर्ष ने अपने ग्रंथ को 'नैषध-चरित' क्यों कहा? इन ग्रंथों का ऐसा नाम-निर्देश क्यों हुआ, जिसमें नल की प्रधानता व्यंजित होती हो? इसका एक कारण है। कारण है हिंदू-संस्कार का एक विकृत दृष्टिकोण। स्त्री-पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंध में हिंदू-समाज की दृष्टि कुछ काल से ज़रा विकृत हो गयी है। हम यह नहीं कहना चाहते कि हिंदू-सभ्यता में स्त्रियों के लिए आदर का स्थान है ही नहीं; है सही, परंतु हर हालत में पुरुष से ज़रा घटकर है। स्वयं हिंदूस्त्रियाँ ही पुरुषों को अपने से उच्च स्थान देना अपना कर्त्तव्य समझती हैं। सारा सामाजिक वातावरण इसी भावना से ओतप्रोत है। पुरुष निकम्मा है, समाज हँसकर टाल देता है; परंतु स्त्री के गुण-दोष की परीक्षा वह ज़रा गंभीर होकर कुछ कड़ाई के साथ करता है। ऐसे जन-समाज में पला हुआ समझदार आदमी भी यदि स्त्री-पुरुष-संबंधी भेद-मूलक दृष्टि को न छोड़ सके, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। इसके लिए न तो हम श्रीहर्ष को और न पुरोहितजी को ही दोषी ठहराने की इच्छा कर सकते हैं; दोष है प्रचलित संस्कार का।

पुरुष का चरित्र यदि बुरा भी हो, तो उसकी मान-रक्षा के लिए पुरुष-समाज कुछ बहाने ढूँढ़ निकालता है। राजा नल का चरित्र पुरुषोचित आदर्श से गिरा हुआ है, परंतु फिर भी आरंभ में उसकी प्रशंसा करके जन-समाज के हृदय में यह अंकित करने का प्रयत्न किया जाता है कि नल बड़ा धर्मात्मा पुरुष था; क्या करे बेचारा, कलि की प्रेरणा से भ्रष्ट हो गया। पर जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, कलि की प्रेरणा से सभी पतित हो जाते हैं। यदि नल भी कलि के शिकार हो गये तो वह परीक्षा में खोटे तो उतरे ही। ऐसा साधारण मनुष्य, जिसका चरित्र अनुकरणीय न हो, किसी काव्य का नायक नहीं हो सकता। साहित्य-दर्पणकार के मतानुसार राजा नल न तो धीर हैं, न उदात्त ही। ऐसी हालत में किसी महाकाव्य का नायक-पद उन्हें नहीं मिलना चाहिए। महाकाव्य के निर्धारित लक्षणों के आधार पर ही नल सर्वथा अयोग्य सिद्ध हो जाते हैं। साहित्यदर्पणकार की कसौटी पर दमयन्ती ही खरी उतरती है। अतएव हमारी नम्र सम्मति में काव्य का नाम 'सती दमयन्ती' होना उचित था।

'नल नरेश' के नाम-निर्देश में हमें स्त्री-पुरुष-संबंधी प्रचलित विकृत भावना की पुनरावृत्ति ही दिखायी देती है। यदि ऐसा न होता तो अच्छा होता। दृष्टिकोण में मौलिकता भी सहज ही आ जाती और नल-चरित्र में सती दमयंती को उचित आदर का स्थान भी प्राप्त हो जाता। एक कुशल कलाकार की न्याय-परायणता और सौंदर्यप्रियता सिद्ध हो जाती।

कोई ऐसा न कहे कि ग्रंथ के नाम से क्या? आख़िर दमयंती का चरित्र तो अच्छी तरह अंकित किया ही गया है। परंतु नहीं, ग्रंथों के नाम में सार्थकता रहती है; रहनी भी चाहिए। उससे वर्णित विषय की ओर देखने के लिए एक दृष्टिकोण मिलता है।

हमें विश्वास है, यदि दमयंती-चरित्र को अपने काव्य का केन्द्र-बिंदु मानकर पुरोहितजी ने सारी रचना की होती तो ग्रंथ का अंतःस्वरूप बहुत कुछ बदल जाता और सती का चरित्र कुछ अधिक परिष्कृत एवं प्रधान रूप से पाठकों को हृदयंगम होता। फिर भी दमयंती का जैसा चरित्र-चित्रण हुआ है, वह संतोषप्रद है।

गुण-दोष

पुरोहितजी ने अपने ग्रंथ को महाकाव्य के बाह्य लक्षणों से युक्त बनाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी है। हाँ, यदि इसमें किसी बात की कमी रह गयी है, तो वह काव्यनायक राजा नल की लोकोत्तरता ही है। कविवर हरिऔधजी ने अपनी भूमिका में महाकाव्य के बाह्याभ्यंतरस्वरूप की व्याख्या करते हुए ग्रंथ-गत कवि-प्रतिभा को ही विशेष महत्त्व दिया है। उनके मतानुसार प्रस्तुत पुस्तक में महाकाव्य के अनेक लक्षण विद्यमान हैं। इसके सिवा नल नरेश की काव्योचित योग्यता के संबंध में उन्होंने लिखा है कि 'ग्रंथ-कर्त्ता की जितनी शब्द-विन्यास की ओर दृष्टि रही है, उतनी व्यंजना की ओर नहीं; फिर भी स्थान-स्थान पर सुंदर व्यंजनाएँ दृष्टिगत हो जाती हैं।' आपकी इस सम्मति से सहमत न होने के लिए हमें कोई कारण नहीं दिखायी देता।

फिर भी न्याय की रक्षा तो तभी हो सकती है, जब हम इस बात को हृदय से स्वीकार करें कि पुरोहितजी में कवि-प्रतिभा पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। उपमा तथा अलंकारों से यह काव्य ओत-प्रोत है। शायद ही ऐसा कोई पृष्ठ हो जहाँ कवि-सुलभ कला की प्रदर्शिनी दृष्टि-गोचर न होती हो। कई रचनाएँ इसमें ऐसी हैं जिनमें कोमल-कांत-पदावली और अर्थ-गौरव दोनों का प्रेमालिंगन स्पष्ट दिखायी देता है। इन सबका अवतरण तो हम यहाँ पर दे ही नहीं सकते, पर यदि प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-लक्षण के एक-दो उदाहरण भी यहाँ देना चाहें तो पत्र-संपादक की कठिनाई हमारी ओर घूरकर देखती है। अतएव स्थानाभाव का तक़ाज़ा हमें ऐसा करने से रोकता है। फिर भी दो-चार उदाहरण दिये बिना न तो हमें ही संतोष होगा और न पाठकों को। ज़रा देखिए, इस विरह-वर्णन में कुछ विशेषता है—

पावक में रह स्वर्णशलाका हो जाती जैसे निर्मल।
उसी तरह विरहानल द्वारा बनती थी भैमी उज्ज्वल॥
सान चढ़ी मरकत-मणि-जैसी आभा वह दिखलाती थी।
और तापसी तन की कृशता उसके तन पर पाती थी॥

विरह की अवस्था में नायिका की जैसी अवस्था हो जाती है उसका वर्णन अनेक प्रकार से अनेक लोगों ने किया है, परंतु अधिकांश वर्णन ऐसे होते हैं जिनमें विरहिणी की कायिक मलिनता व्यंजित होती है। दूर कहाँ जाइएगा, स्वयं पुरोहितजी का ही एक वाक्य देखिए—

"ग्रस्त-चंद्रिका के ही सम थी वह अति अनुपम सुषमाहीन।"

यहाँ विरह-ग्रस्त दमयंती कवि को ग्रस्तचंद्रिका के समान मलिन और सुषमाहीन दिखायी देती है। उपमा और वर्णन दोनों बहुत साधारण कोटि के हैं। इसमें कोई विशेषता तो है ही नहीं, पर हमें एक सती साध्वी का ऐसा विरह-वर्णन कुछ अनुचित भी प्रतीत होता है। वियोग की अवस्था में सती सुन्दरी की काया कृश भले ही हो जाय, पर उसकी सुषमा नहीं जा सकती। अतएव ग्रस्त-चंद्रिका की मलिनता द्योतक उपमा भली नहीं मालूम होती।

पर पावक में पड़ी हुई स्वर्ण-शलाका और शान पर चढ़ी हुई मरकत-मणि निराली चीज़ें हैं। इनमें मलिनता तो आती ही नहीं, बल्कि इनकी आभा और भी प्रखर हो जाती है। सती नारी की विरह-वेदना तपस्या से क्या कम होती है? अतएव तापसी तन की सुषमायुक्त कृशता बड़ी सुहावनी, समुचित और सात्विक उपमा है। एक और लीजिए—

महागहन शैवाल-जाल में फँसी हुई वह हंसी थी।
व्रज में गतरव पड़ी हुई वह कृष्ण-विरहरत वंशी थी॥

इसमें कोमल-कांत पदावली और समुचित उत्प्रेक्षा दोनों का सुन्दर मेल है।

चंद्रमा की कालिमा के संबंध में कई कवियों ने कई प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। पुरोहितजी की भी कल्पना ज़रा सुनने योग्य है। वह लिखते हैं—

हो इंद्रियों ने शिथिल जब शीतांशु इसको कर दिया।
तो फिर तरुणता प्राप्त करने काम यह इसने किया॥
शिति भाल से नीचे उतर भर लोचनों में लालिमा।
यह खा गया स्मर भस्म को, है यह उसी की कालिमा॥

चंद्रमा बेचारा जन्म से ही शीतांशु था। इंद्रियाँ उसकी ठंडी थीं। कदाचित् इस हीनता का उसे मन ही मन बड़ा संताप था। एक दिन उसे एक बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ लगा। जब शिवजी ने तृतीय नेत्र खोलकर कामदेव को भस्म कर दिया तो उस समय चन्द्रदेव ने शिव-भाल पर बैठे-बैठे सोचा कि लोग स्मर को जागृत करने के लिए नाना प्रकार की धातुओं की भस्म खाया करते हैं। अरे, मुझे तो आज साक्षात् स्मर की ही भस्म अनायास मिल रही है। बस, विचार करने की देर थी, चन्द्रदेव झट नीचे उतरे और एक ख़ूराक स्मरभस्म खा ही गये। पर जो जन्म ही से शीतांशु है, उसे स्मर-भस्म से भी क्या हो सकता है? चन्द्रदेव ज्यों-के त्यों रह गये, स्मर-भस्म वह हज़म न कर सके। एक धुँधला दाग़ उनके वक्षःस्थल पर रह गया। अपने इस विचार-शून्य व्यवहार के कारण वह हमेशा के लिए दागी हो गये। यही इस कल्पना का सारांश है। कुछ विनोद व्यंजित भी है।

'नल नरेश' में कई प्रसंगों पर अर्थ-गौरव-पूर्ण विचार भी प्रकट किये गये हैं। उदाहरण तो कई देते, पर हम पाठकों को एक ही नमूना दिखाते हैं—

जो करना चाह जब उसको, नहीं मनुज करने पाता।
तब उसका जागृत जीवन भी, स्वप्न तुल्य ही हो जाता॥
इससे जागृति और स्वप्न में, उन जीवों के भेद नहीं।
जो केवल कहते ही रहते, कार्य-पूर्ति करते न कहीं॥
शुद्ध विचार प्रथम हों अपने, हो उनका ही स्पष्ट बखान।
मुख से जो कह दिया उसी की पूर्ति-मात्र का हो फिर ध्यान॥
जो मन में है, हो वह मुख में, और वही हो कार्याधार।
सच्ची जागृति यही, स्वप्न वह, है जिसमें न हमें अधिकार॥

सच है, शुद्ध सतोगुणी जीवन ही जागृति है जिसमें हम अपनी सात्विक उमंग तथा विचारों को कार्यरूप में परिणत करने की क्षमता रखते हैं। अकसर स्वप्न में मनुष्य दौड़ने का प्रयत्न करता है, पर दौड़ नहीं सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलने की इच्छा है, पर गूँ-गूँ करता है ; बोल नहीं सकता। कार्यकारिणी शक्ति की ऐसी ही हीनता यदि जागृत अवस्था में भी रही, तो वह जागृति नहीं स्वप्न की सहोदरा है। केवल इच्छा रखनेवाले अकर्मण्य मनुष्य संसार में जागते नहीं—यथार्थ में सोते रहते हैं। कोई उन्हें दो धक्के भी लगा सकता है।

पुरोहितजी अलंकारों के बड़े प्रेमी प्रतीत होते हैं। यमक के तो वह इतने प्रेमी हैं कि 'अमल कमल में कमल खिला है'—लिखना भी उन्हें पसंद है। मुहाविरों और लोकोक्तियों की ख़ासी लूट है। हमारी धारणा है कि काव्यकार ने अपनी कविता को सुकवि-सुलभ अलंकारों से इतना सजाया है कि उनकी कर्ण-प्रिय सुहावनी झनकार कानों को भी कुछ-कुछ सुनायी देती है। यदि ये पृष्ठों में न चिपककर झड़ सकते, तो ग्रंथ को लेकर झाड़ने से नाना प्रकार के अलंकारों का सामने ढेर लग जाता। ऐसा करने का केवल यही उद्देश्य हो सकता था कि हम सरीखे अनभिज्ञ लोगों को भी काव्यगत अलंकारों का स्थूल रूप से अंदाज़ा हो जाय। भाषा समय-समय पर सरल और सामासिक दोनों है। उसकी आकृति बहुत कम बिगड़ने पायी है। प्रसादगुण-युक्त रचना भी काफ़ी है। रूप, ऋतु और नखशिख-वर्णन कवि ने बड़ी तल्लीनतापूर्वक किया है। नये शब्दों का समावेश करके भाषा में सामयिकता लाने का प्रयत्न भी किया गया है। एक जगह यह प्रयत्न अपनी मर्यादा का उल्लंघन भी कर गया है। पाठक देखें—

पर प्रियतम ऐसा मत करना, देखा करूँ सदा ही बाट।
तुझे ढूँढ़ता फिरूँ सरों में घाट-घाट पर पाऊँ नाट॥

'नाट' का अर्थ फ़ुटनोट में 'नहीं' दिया गया है। क्या यह अँगरेज़ी का Not है ? यदि ऐसा है तो बड़ा ग़ज़ब है! पुरोहितजी ने तो अकबर इलाहाबादी के भी दोनों कान साफ़ काट लिये।

अंतिम निवेदन

संसार में गुण-दोष का सम्मिश्रण कहाँ नहीं है। केवल छिद्रान्वेषी दृष्टि रखकर दोष ढूँढ़नेवाले को कई स्थानों पर कई दोष मिल सकते हैं ; प्रस्तुत ग्रंथ में भी मिलेंगे। पर गुणों का समुच्चय भी इसमें पर्याप्त है। हमारी राय में काव्य-ग्रंथ के प्रेमी पाठक आलोचक से कहीं ज़्यादा नफ़े में रहते हैं। वे—'जैसे मिसरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस'—के समान दोषों को भी चबा जाते हैं। परंतु मालूम नहीं, इसे आलोचक का दुर्भाग्य कहें या क्या, उस बेचारे को दोष देखने का भी काम सौंप दिया गया है। प्रतीत तो ऐसा होता है कि साहित्य-संसार की मलिनता दूर करनेवाला गोया वह एक 'हरिजन' है। ख़ैर, उसकी भी ज़रूरत है।

पर आलोचना करने की मानसिक प्रवृत्ति बड़ी ख़तरनाक होती है। वह ज़रा भी मर्यादा से बाहर गयी कि मनुष्य के स्वभाव में कई बुराइयाँ पैदा कर देती है ; सहृदयता की जड़ भी काट देती है। सहानुभूति-शील हृदय के आधार पर ही सच्ची समालोचना हो सकती है। आसपास की गुण-दोषमयी सृष्टि को ऐसी ही दृष्टि से देखने की क्षमता ईश्वर हम सबको प्रदान करे।

प्रस्तुत ग्रंथ को हमने इसी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है ; अतएव हम निःसंकोच होकर कह सकते हैं कि 'नल नरेश' एक सुपाठ्य काव्य-ग्रंथ है और उसकी रचना में कवि-प्रतिभा का प्रकाश भी यत्र-तत्र फैला हुआ है। प्राचीन परिपाटी का आधार और वर्तमान देशकाल का आभास दोनों इसमें विद्यमान हैं। दोनों परस्पर संबद्ध भी हैं।

रामदयाल तिवारी (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

ठंडे छींटे—लेखक, श्रीवियोगीहरि ; प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस-सिटी ; आकार डबल-क्राउन १६ पेजी ; पृष्ठ-संख्या ८२ ; मूल्य ।|) ; छपाई-सफ़ाई उत्तम।

समालोच्य पुस्तक की सच्ची समालोचना तो वास्तव में पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी प्रस्तावना, पृष्ठ-संख्या ७ से १० तक, में कर दी है—"मुझे श्रीहरि के ये वेदना-चित्र केवल कल्पना-चित्र नहीं मालूम होते......... × × ×।"

प्रस्तुत पुस्तक में रचयिता ने अछूतों के सम्बन्ध में अपने उदार विचार प्रकट किये हैं। इसको पढ़ने से गद्य-काव्य का-सा आनन्द आता है। पुस्तक इस ढङ्ग से लिखी गयी है कि आस्तिक-नास्तिक तथा सभी धर्म एवं मत-मतान्तर के अनुयायी इसका स्वागत कर सकते हैं। यह "दंडितों, दलितों और पतितों की प्यारी याद में—" लिखी गयी है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच पूछिए तो यह पुस्तक उन 'पंडिता' को समर्पित होनी चाहिए जो अछूतों के मंदिर-प्रवेश के मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। पुस्तक की प्रथमावृत्ति में यत्र-तत्र त्रुटियाँ भी रह गयी हैं। आशा है, दूसरे संस्करण के अवसर पर उन पर विचार कर लिया जायगा।

"विह्वल"

× × ×

सरदार बा—लेखक, श्रीरामेश्वरप्रसाद गुरु 'कुमार-हृदय'; प्रकाशक, तरुणभारत-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग; मूल्य ।।)

पं० रामेश्वरप्रसाद गुरु (कुमारहृदय) की यह प्रथम रचना है, फिर भी यह उच्च कोटि की हुई है। भारत में दुःखान्तनाटक अधिक नहीं हैं; क्योंकि यहाँ की प्राचीन प्रणाली दुःखान्त को भी सुखान्त रूप में प्रदर्शित करने की है। परन्तु सच्ची और स्थायी सहानुभूति वेदनापूर्ण, करुण-रस से ओतप्रोत शोकान्त नाटकों में ही पायी जाती है। इसी लिए योरपीय नाटकों में दुःखपूर्ण घटनाओं का बाहुल्य रहता है, और अंत भी उसी के साथ होता है। संस्कृत में उत्तररामचरित-नाटक ही दुःखान्त नाटक है जो अपनी कोटि का अकेला ही है। सरदार बा को अपने भाई मूलराज के विश्वासघात से बहुत दुःख हुआ। जब खेमराज की राजधानी पर मुसलमानों का अधिकार हो गया, तो सरदार बा किसी प्रकार क़िले से छिपकर निकल भागी। अन्त में वैरीसिंह से भेंट हुई और उसकी सहायता से अपने बाप का राज्य फिर प्राप्त कर लिया। कुछ दिन सुख-भोग के पश्चात् फिर उसका पति युद्ध में मारा गया। सरदार बा भी गिरफ़्तार हो गयी। अन्त में ख़ुसरूख़ाँ सिपहसालार को मारकर स्वयं भी आत्मघात कर लिया। इसमें घटनाओं का उतार-चढ़ाव बहुत अच्छा दिखाया गया है। छपाई-सफ़ाई भी अच्छी है। यह नाटक स्टेज पर खेलने के लिए अत्युत्तम है। इससे शिक्षा भी अच्छी मिलती है। भारतीय स्त्री-हृदय का अत्यन्त सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है।

भगीरथप्रसाद दीक्षित (साहित्यरत्न)

× × ×

नैषधीयचरितम्—अनुवादक पं० सुन्दरलाल शुक्ल आयुर्वेद-मार्तण्ड, आयुर्वेद-होमियोपैथी-औषधालय, जबलपुर; प्रकाशक, उक्त औषधालय के व्यवस्थापक; साइज़ २०×३०, १।१६; मूल्य २)

इस अनुवाद के प्रकाशन में अनुवादक को कुछ कठि-नाइयों का भी सामना करना पड़ा है, पर किसी भी कार्य का आरम्भ करके उसे आद्यन्त निबाहना उत्तम पुरुषों का ही कार्य है। फलतः इसी सिद्धान्त का अनु-सरण करते हुए अनुवादक ने यह आशा दिलायी है कि "पाठकों की अभिरुचि को देखकर आगे के सर्गों का अनुवाद भी, जो अधिकांश लिखा जा चुका है, सेवा में सविनय उपस्थित किया जायगा।"

कविता-कामिनी-कांत श्रीहर्षजी का यह अनूठा काव्य २२ सर्गों का है, जिसके ४ सर्गों का यह भावानुवाद है। इसमें वस्तुसंदर्भ और मूलभाव पर ही विशेष ध्यान रक्खा गया है। यदि कहीं विद्यार्थी-जगत् के स्वार्थ को दृष्टि में रखते हुए वस्तूपपादन हुआ होता, तो निस्सन्देह अनुवाद ने एक भारी आवश्यकता की पूर्ति की होती। परन्तु तो भी लक्ष्यैकचक्षु काव्य-रसिकों के लिए इसकी उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं।

अनुवाद में यथासम्भव मूलभाव का अच्छा निर्वाह हुआ है। भावसन्दर्भ तथा काव्यमर्मज्ञान में पाद-टिप्प-णियों से पर्याप्त सहायता मिलती है। भाषा सरल और प्रवाहमय है। पर यत्र-तत्र शब्दविन्यास कुछ ग्राम्य-से जान पड़ते हैं। जैसे—"शंकित दोष के खंडनार्थ (४।३१), मदनवेदना से देदीप्यमान (४।३४), प्रियवचनामृत के कूपस्वरूप अपने कण्ठ से (२।५०)।" कहीं-कहीं भाववैषम्य और शिथिलता भी दिखलायी पड़ती है। जैसे—स० १ श्लो० १ में "जिस प्रकार द्विज...भगवान् विष्णु से मुक्ति (?) पाकर"। यहाँ ब्राह्मणपक्ष में मुक्ति (छूट जाना) शब्द का अर्थ, हंस की तरह अपादानकारक से करने पर अनर्थ हो गया है। ब्राह्मणपक्ष में मुक्ति-शब्द ज्ञान का उपलक्षक है, अर्थात् मुक्तिविधायक ज्ञान पाकर।

इसी तरह स० २ श्लो० ४ में 'कोटि' शब्द का अर्थ करोड़ों बार किया गया है, जो असंगत है। प्रसंगोपात्त यहाँ 'कोटि' शब्द का अर्थ 'अग्रभाग' होना चाहिए। ऐसे ही स० ३ श्लो० २८ का भाव कुछ विचित्र ढंग से व्यक्त किया गया है। जैसे—"इन्द्र अपनी कान्ता शची के साथ जब उनके उदारभाव को सुनता है, तब उसकी नेत्रपंक्ति आनंदाश्रु से व्याप्त हो जाती है। ऐसा होने से इन्द्राणी को बड़ा लाभ होता है; क्योंकि नल के अनुपम औदार्य के श्रवण से उत्पन्न हुए रस के आवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Desire

कारण ही कामविकार के उदय से जन्य उसका सात्विक रोमाञ्च छिपा रहता है ।" इसमें 'पुण्येन नालोकत लोकपालः' इस मूल का आशय ही लापता है । सवाल तो यह है कि यदि इन्द्राणी का पुण्य सहायक न होता, तो उसका जीवन ही अंधकारमय हो जाता ; क्योंकि ('हृष्यन्मुहुर्लोम पुलोमजायाः') बार-बार रोमाञ्च का होना सहस्राक्ष इन्द्र से कब तक छिप सकता है । इन्द्राणी की रक्षा होने में प्रधान हेतु तो 'पुण्य' ही है । इसके बाद प्रसंग का उपपादन करते हुए लिखते हैं—"अन्यथा शक्र को उसका वह रोमाञ्च देख शृंगार-रस के प्रादुर्भाव की शंका होती ।" यहाँ शृंगार का प्रादुर्भाव तो विकास के प्रथमांकुर का बोधक है। भावों का जब तक परिपाक नहीं होता, प्रकाशरूप में वे कभी आ ही नहीं सकते । क्या इन्द्राणी में शृंगार का प्रागभाव है, जो 'प्रादुर्भाव' की शंका होती ? तात्पर्य तो इससे है कि अन्य पुरुष के गुण सुनकर अत्यंत शृंगाराविष्ट होना असतीत्व का संदेह कराता है।

पृ० ३६ की टिप्पणी में, 'पुत्रीभूत संध्या में ब्रह्मा आसक्त हो गये',—यह चिन्त्य है। पुराण तो सरस्वती में आसक्त होना बतलाते हैं—जैसे "वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः। अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम्" (श्रीमद्भा० स्कं० ३, अ० १२, श्लो० २८)—फिर यह कैसे ?

भगवतीप्रसाद पाण्डेय 'अनुज'

× × ×

क़ुरान और धार्मिक मतभेद—अनुवादक और प्रकाशक, श्री० जहरुल हुसेन हाशिमी, बैतुल अमन, पोस्ट कालगंज (भागलपुर), बिहार ; मूल्य २)

यह पुस्तक मौलाना अबुलकलाम आज़ाद की पुस्तक 'तर्जुमानुलक़ुरआन' के एक अध्याय का अनुवाद है। पुस्तक सुंदर और पठनीय है। छपाई-सफ़ाई पर भी ध्यान दिया गया है । लेकिन मूल्य कुछ विशेष मालूम होता है।

× × ×

सुलभ वास्तुशास्त्र—लेखक, वास्तु-वाचस्पति रघुनाथ-श्रीपाद देशपांडे ; अनुवादक, श्रीकृष्णरामकांत गोखले ; प्रकाशक, रघुनाथ-श्रीपाद देशपांडे, इंजीनियर, पी. डब्ल्यू. डी० संगमनेर, जिला अहमदनगर, बांबे प्रेसीडेंसी; मूल्य ३)

वास्तुशास्त्र पर हिंदी में पुस्तकों का अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक के गुजराती-संस्करण के अतिरिक्त मराठी-संस्करण का भी बहुत अधिक प्रचार है । इसमें भवन-निर्माण-कला पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है । पुस्तक बहुत ही उपयोगी है । आशा है, हिंदी में भी इसका यथेष्ट आदर होगा ।

× × ×

ग्रामसुधार—लेखक, पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इंद्र' विद्यावाचस्पति ; प्रकाशक, श्रीमध्यभारत-हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर ; मूल्य १)

पुस्तक होलकर-हिंदी-ग्रंथमाला का ४१वाँ पुष्प है। इसमें ग्राम-शिक्षा, उद्योग-धंधे, पशुपालन, नशेबाज़ी, खाद आदि उपयोगी विषयों पर प्रकाश डाला गया है और साथ ही ग्रामों की वर्तमान त्रुटियों के सुधार की योजना बतलायी गयी है । इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्र का कल्याण ग्रामीणों के ही ऊपर अवलंबित है और जब तक इनके सुधार का प्रयत्न नहीं होगा, राष्ट्र उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता । पुस्तक अच्छी है, और मूल्य भी अधिक नहीं है ।

× × ×

गांधी-विचार-दोहन—लेखक, श्रीकिशोरलाल घ० मशरूवाला; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर; मूल्य ॥)

पुस्तक में महात्मा गांधी के विचारों का संकलन है । पुस्तक बहुत अच्छी है ; हिंदी-प्रेमियों को इसका आदर करना चाहिए ।

× × ×

इंडियन इनकमटैक्स—अनुवादक महावीरप्रसाद-शिवदत्तराय दाधीच ; प्रकाशक, एन्० एम्० त्रिपाठी एंड को० बुकसेलर, कालबादेवी-रोड, बंबई ; मूल्य १)

पुस्तक उपयोगी है, परंतु मूल्य बहुत अधिक है । विषय नाम ही से प्रकट है ।

× × ×

त्रेता के दो वीर—(खंडकाव्य) लेखक, श्रीश्याम-नारायण पांडेय ; प्रकाशक, राम-कार्यालय, काशी ; मूल्य ≡)

पुस्तक में १४० पद्य हैं, जिनमें अधिकांश लक्ष्मण-संबंधी हैं । कवि ने वीर और करुणरस के अंकित करने का प्रयत्न किया है, परंतु उसे वीर में तो कुछ भी सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। हाँ, करुण का अच्छा प्रस्फुटन मिलता है । पुस्तक केवल करुण-रस से संबंध रखती तो बहुत सुंदर होती । कवि की प्रतिभा करुण में अधिक सफल मालूम होती है ।

श्रीश्यामापति पांडेय (एम्० ए०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिधारा

(संस्कृति, समाज, सभ्यता)

१--पितृयज्ञ

हम हिंदू* लोग माता-पिता, पुत्र-कलत्र आदि के श्राद्ध में पिंडदान करते हैं और यह शुभ कार्य वर्ष-भर में केवल एक बार करते हैं। 'श्राद्ध' शब्द स्मृति-पुराण के मतानुसार नाना स्थानों पर व्यवहार में आया है। इस शब्द का प्रकृत अर्थ क्या है, इसका निर्णय करने की चेष्टा मैं आगे करूँगा। साथ ही, उस निर्णय के अनुसार हमारे अनुष्ठित श्राद्ध-पिंडदान-कर्म शास्त्र-सम्मत है या नहीं, यह भी समझाने की चेष्टा करूँगा।

भगवान् मनुजी ने अपने धर्मशास्त्र में पंच-महायज्ञ का उल्लेख किया है तथा व्यवस्था दी है कि ये पंचयज्ञ प्रत्येक गृहस्थ को नित्य करना चाहिए। इन पंचयज्ञों के नाम ऋषियज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, नृयज्ञ हैं। ऋषियज्ञ का अर्थ है—स्वाध्याय याने ऋषि-प्रणीत शास्त्रादि पढ़ना और मनन करना। भूत-यज्ञ का अर्थ है—बलिवैश्वदेवकर्म याने विश्व के सारे जीवों के हेतु अपने आहार में से नैवेद्य प्रदान करना। पितृयज्ञ का अर्थ है—तर्पण अथवा "श्राद्ध" करना। देवयज्ञ का अर्थ है—यथाविध होम करना। नृ-यज्ञ का अर्थ है—अतिथि को अन्नदान करना (मनु० ३।७०-८१)

अतः श्राद्ध-स्वरूप पितृयज्ञ आर्यों का नित्य कर्त्तव्य है। श्राद्ध का अर्थ जो कुछ है, उस पर फिर विचार किया जायगा; परंतु भगवान् मनु के मत से वह नित्य का कर्त्तव्यकर्म है। इस बात को दूसरे ढंग से यों कहा जा सकता है कि नित्य कर्त्तव्य-रूपी किसी एक अनुष्ठान का नाम ही श्राद्ध है।

परंतु हम मृत माता-पिता का श्राद्ध वर्ष-भर में केवल एक ही दिन करते हैं, नित्य नहीं। और, जैसे हम श्राद्ध करते हैं, ठीक वैसे ही श्राद्ध करके प्राचीन काल के साधु-कर्मियों ने अत्यंत निंदनीय काम किया है, यह सोचकर उन्हें विशेष अनुतप्त होना पड़ता था। इसके प्रमाण मिल सकते हैं। मृत व्यक्ति के शोक-मोह से अभिभूत हो अकस्मात् उसका श्राद्ध करके उन सज्जनों ने बड़ा अन्याय किया है। यही सोचकर पुरातन काल के ऋषियों को दुःख हुआ था। परंतु हम मृत व्यक्ति का श्राद्ध करके तृप्ति लाभ करते हैं—उसे निंदनीय काम समझकर लज्जित नहीं होते। मृत व्यक्ति के श्राद्ध के अनुष्ठान की उत्पत्ति कैसे हुई है, यह बात महाभारत के अनुशासन-पर्व में वर्णित है। महाराज युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में भीष्मदेव ने कहा है कि सर्वप्रथम महाराज निमि ने पुत्र-शोक से व्याकुल होकर अमावस्या-तिथि को मृत पुत्र की सद्गति के लिए ब्राह्मण-भोजन करवाया और पुत्र के नाम-गोत्रादि का उल्लेख कर पिंडदान किया था। परंतु उसके बाद शोक कम होने पर अनुताप करके उन्होंने कहा कि पुराकाल में ऋषि-मुनियों ने जिस काम को नहीं किया था, वह काम मेरे द्वारा क्यों

* आगे 'हिंदू'-शब्द की जगह 'आर्य'-शब्द व्यवहृत किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ ? अर्थात् वह इस भय से घबराये कि प्राचीन रीति के विरुद्ध कार्य करके मैं धर्म से च्युत हो गया हूँ । साथ ही उन्हें यह भी शंका हुई थी कि कहीं ब्राह्मण-गण अभिशाप न दे डालें । महाभारत के अनुशासन-पर्व में देखने में आता है कि—

अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् ।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ।।

नमि राजा की इस उक्ति से स्पष्टतः प्रकट होता है कि मृतक का श्राद्ध कर वह अनुतप्त एवं ब्रह्मशाप के भय से भीत हुए थे । पुराकाल में मृत व्यक्ति को उद्देश्य करके श्राद्ध अथवा पिंडदान नहीं किया जाता था । पहले मोह के वश श्राद्ध करके पीछे उसके विषय में खुद उन्होंने आक्षेप किया था ; क्योंकि वह समझ गये थे कि शोक के प्रभाव से ही वह ऐसे अनार्यसेवित स्वर्ग-प्राप्ति के लिए विघ्नकर (रुकावट पैदा करनेवाला) दुष्कर्म कर बैठे । बुद्धिमान् होकर भी वह शोक तथा मोह से अज्ञानवत् मृत पुत्र का श्राद्ध तथा पिंडदान कर ऐसा काम कर बैठे हैं, जिसे देवगण तथा ऋषि-मुनियों ने भी कभी नहीं किया था । इसी कारण वह कठिन शापग्रस्त होने का ख़याल कर भयभीत हुए थे ।

शोकस्य तु प्रभावेण एतत् कर्म कृतं मया ।
अनार्य-जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरणं द्विजः ।।
नष्टबुद्धिस्मृतिसत्वो ह्यज्ञानेन विमोहिता ।
न च श्रुतं मया पूर्वं न देवैः ऋषिभिः कृतम् ।।
भयं तीव्रं हि पश्यामि मुनिशापात् सुदारुणम् ।

अर्थात् शोक के प्रभाव के कारण मैंने ऐसा काम किया है । यह कार्य अनार्यजुष्ट, अस्वर्ग्य तथा अकीर्त्तिकर है । मैं नष्टबुद्धि हो गया था । अज्ञान के मोह से मुझे कुछ भी स्मरण नहीं रहा । ऐसा काम मैंने इससे पहले किसी को न करते देखा और न सुना । देवता तथा ऋषियों ने भी ऐसा काम कभी नहीं किया । अतः मुनि लोग सन्तप्त होकर कठिन शाप देंगे । इसी का मुझे भय हो रहा है ।

जो लोग मृतक का श्राद्ध करते हैं, वे सब विश्वास रखते हैं कि श्राद्ध न करने से मृतक की आत्मा नरक में चली जाती है, और श्राद्ध करने से आत्मा स्वर्ग में पहुँच जाती है । किंतु आर्यों के सभी शास्त्रों में स्व-कृत कर्म के फल-भोग का उल्लेख बारंबार मिलता है । जीव जैसे कर्म करता है, वैसे ही फल-भोग के लिए भी वह जन्म-जन्मांतर भर नाना योनियों में भ्रमण करता है; इस बात का भी आर्य-शास्त्र में उल्लेख है । ऐसी दशा में विचार्य प्रश्न यह है कि पुत्र-पौत्रगण द्वारा मृत पितरों का श्राद्ध न किये जाने से यदि वे पितर नरक में चले जाते हैं, तो वह मृत व्यक्ति जब जीवित था तब नाना प्रकार के सत्कर्म करने पर भी स्वीय (अपना) कर्म-फल का भोग क्यों न कर सका और अब दूसरे के (पुत्र-पौत्रादि के) अकर्म के कारण नरक की यन्त्रणा क्यों भोगनी पड़ती है ? पक्षांतर में मृत व्यक्ति, जीवित काल में दुष्कर्म करने पर भी, श्राद्ध-पिंड-दान के कर्म-फल से स्वर्ग-सुख का अधिकारी बनता है । यह बात भी सर्व-शास्त्र के विरुद्ध प्रतीत होती है । इससे कर्म-फलवाद सम्पूर्ण रूप से व्यर्थ हो जाता है । अतः मृतक के लिए श्राद्ध तथा पिंडदान करने या न करने से उस मृतक की स्वर्ग अथवा नरक की प्राप्ति नितांत असंगत बात हो जाती है । मृत व्यक्ति यदि स्वर्ग लाभ करे भी, तो अपने कर्म-फल से ही करेगा । दूसरे किसी के प्रयत्न करने या न करने से उसे स्वर्ग या नरक की प्राप्ति नहीं हो सकती । यह सर्वजन-परिचित बात स्मरण रखने पर 'श्राद्ध' शब्द का प्रकृत अर्थ समझना कठिन नहीं रह जाता ।

इस प्रसंग पर पुनर्जन्मवाद का भी स्मरण रखना होगा । आर्य-शास्त्रों में पुनर्जन्म की बात सभी जगह स्वीकृत हुई है । जीव का केवल यह जन्म ही पहला या अंतिम जन्म नहीं है । मृत व्यक्ति स्वीय (अपना) सदसत् कर्म-फल के लिए भोग-देह धारण कर पुनः पुनः जन्म ग्रहण करता है । इस मत का भी आर्य-शास्त्रों में सर्वत्र उल्लेख मिलता है । मृत व्यक्ति ने यदि कैवल्य (मुक्ति) प्राप्त कर लिया है, तो उसके नाम पर श्राद्ध तथा पिंडदान करना सर्वथा निष्फल हो जाता है । परंतु दोषगुण से या पाप-पुण्य से युक्त गृहस्थ को कैवल्य—मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है ; अतः उसे तो पुनर्जन्म ग्रहण करना ही पड़ेगा । ऐसी दशा में विचारणीय प्रश्न यह है कि मृत व्यक्ति के पुत्र-पौत्र द्वारा श्राद्धादि किये जाने का क्या फल हो सकता है ? पुत्र जिस नाम से श्राद्ध कर रहे हैं, वह उन्हें कैसे पहुँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है ? मान लीजिए कि पिता का नाम त्रिभुवननाथ था, किंतु मृत्यु के बाद पुनः जन्म ग्रहण करने पर उसका नाम हुआ प्यारेकिशन—अर्थात् जो व्यक्ति स्थूल देह धारण कर त्रिभुवननाथ के नाम से परिचित था, वही आत्मा त्रिभुवननाथ के स्थूल देह त्याग करने के बाद दूसरी स्थूल देह धारण करने पर प्यारेकिशन के नाम से परिचित हुई है। तब त्रिभुवननाथ के नाम की वस्तु प्यारेकिशन को कैसे मिल सकती है ? श्रीमद्भगवद्गीता के "वासांसि जीर्णानि" आदि श्लोक का भी अर्थ यही है। त्रिभुवननाथ के पुत्र द्वारा पितृश्राद्ध करने या पिता के नाम से पिंडदान करने से वह किसे प्राप्त होगा ? क्या प्यारेकिशन को?—कदापि नहीं। श्राद्ध तो स्थूल देह का नहीं—आत्मा का किया जाता है। त्रिभुवननाथ की आत्मा—जो प्यारेकिशन की देह में प्रविष्ट होकर इस जन्म में श्राद्ध के दिन निषिद्ध भोजन कर रही है—उस समय क्या अपने पुत्र का दिया हुआ सात्त्विक पिण्डलाभ करेगी ? कदापि नहीं। क्योंकि वह तो यह भी नहीं जानता है कि पूर्व-जन्म में वह त्रिभुवननाथ था और उसका त्रिभुवननाथ की अवस्था के समय का पुत्र आज उसके नाम पर श्राद्ध कर रहा है ! तब उस श्राद्धपिण्ड से उसकी तृप्ति कैसे हो सकती है ?

किसी-किसी पुराण में यह बात दृष्टिगोचर होती है कि मृतक का श्राद्ध करना आवश्यक है ; क्योंकि वर्णाश्रमधर्म की चर्चा करते समय प्रसंगवश तथा किसी-किसी स्थान पर प्रसंगांतर में भी मृतक के श्राद्ध की बात का उल्लेख मिलता है। परंतु देवी-भागवत और विष्णु-भागवत * तथा शिवपुराण, वामनपुराण एवं और भी अनेक पुराणों में श्राद्ध का नाम भी नहीं है। उन सब पुराणों में भी वर्णाश्रमधर्म की चर्चा विस्तार के साथ की गयी है। परंतु मृतक के श्राद्ध या पिंडदान की व्यवस्था कहीं भी नहीं है। एतद्देशीय वैष्णवगण मृतक को उद्दिष्ट करके दिये हुए दान को श्राद्ध नहीं कहते हैं, वरन् श्राद्धवासर को "दिवसी" के नाम से सम्बोधन करते हैं।

मनुसंहिता के "पितॄण: श्राद्धैः" या "पितृयज्ञस्य तर्पणम्" निर्देश से ज्ञात होता है कि श्राद्ध-तर्पण से पितृगण को तृप्त करना चाहिए, और उसी नित्य अनुष्ठान को पंचयज्ञों में अन्यतम याने पितृयज्ञ माना है।

परंतु 'पितृ' कौन है ? 'पितृ' कहने से क्या अपने पिता, पितामह, प्रपितामह को समझना चाहिए ? 'पितृ'-शब्द का अर्थ क्या यही है ? कोई भी शास्त्रज्ञ सज्जन 'पितृ'-शब्द का ऐसा अर्थ कदापि नहीं करेंगे।

मनुसंहिता में आया है—

मनोहैरण्यगर्भस्य ये मरिच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥
विराट् सुताः सोमसदः साध्यानां पितृः स्मृताः ।
अग्निशात्वाश्च देवानां मारिचा लोकविश्रुताः ॥
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सुपर्णकिन्नराश्चैव स्मृताः बर्हिषदो त्रिजाः ॥
सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ।
वैश्या नामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥

दी इण्डियन टेलरिंग कालेज

होशियारपुर (पंजाब). याद रक्खो धनी पुरुष धनी नहीं हुनरमन्द पुरुष धनी है।

१२० लिबास सीखकर अपनी सूटिंग शाप खोल लें। इस हुनर की दुनिया में हर जगह ज़रूरत है। नियम आज ही मँगाइए।

गवर्नमेंट बिहार-उड़ीसा

ने पहली चार पुस्तकें अपनी पाठशालाओं में बतौर कोर्स स्वीकार की हैं।

सचमुच अद्वितीय पुस्तकें हिंदी, उर्दू, पंजाबी—

१२ कमीज़, २५८ प्रश्न कपड़ा लगाने पर ५६ चित्र १). ५ कोट १७२ प्रश्न ४८ चित्र १). ८ पाजामे ॥). फ्राक पिनीकोर ॥). अंगी, जम्पर, बलाउस पेटीकोट ।॥). ८ पतलून १). वास्कट ॥). छत्री १६२ प्रश्न ।॥). यह ८ पुस्तकें ५) दौलत दर्जियाँ इल्म कटाई पर लासानी पुस्तक ५). १०० चित्र कार्ड साईज़ पर १). साईज़ ६०×४० इञ्च १।॥). फ़ैशन बुक १). दर्ज़ी की पहली १).

* श्रीमद्भागवत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
When I am going to school, Ra

सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोङ्गिरसः सुताः ।
पुलस्तस्याज्यपाः पुत्राः वशिष्ठस्य सुकालिनः ॥

इसका अर्थ यह है कि हिरण्यगर्भ के पुत्र मनु, इसके पुत्र मरीचि आदि ऋषिगण और उन सब ऋषियों के पुत्रों को पितृगण कहते हैं। मरीचि के पुत्र अग्निशत्व देवताओं के पितृ हैं—यह बात लोकविश्रुत है। दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, रक्ष, सुपर्ण तथा किन्नरों के पिता बर्हिषद हैं—जो अत्रि के पुत्र हैं। विप्रों के पिता सोमपा, क्षत्रियों के पिता हविर्भुक्गण, वैश्यों के पिता आज्यपा और शूद्रों के पिता सुकाली हैं। सोमपा कवि का पुत्र है; हविर्भुक् अङ्गिरा का पुत्र है; आज्यप पुलस्त्य के पुत्र हैं और सुकाली वशिष्ठ के पुत्र हैं। *

इसी संश्रव से मनुजी ने पिंडदान तथा ब्राह्मणों की सेवा की व्यवस्था विस्तार के साथ दी है।

महर्षि मनुजी ने दूसरे स्थान पर कहा है—

वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ।
प्रपितामहांस्त्वादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ॥

अर्थात् वसुओं को पितृगण, रुद्रों को पितामहगण एवं आदित्यों को प्रपितामहगण कहते हैं। वसुगण २४ वर्ष, रुद्रगण ३६ वर्ष एवं आदित्यगण ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन कर सदाचारी विद्वान् हुए थे। वास्तव में ज्ञान और तपस्या के द्वारा ही वे पितृपद-वाच्य हुए थे (छान्दोग्य ३ प्रपा० १६ ख०)। किसी-किसी पुराण में छान्दोग्य-उपनिषत् के इस अंश का उल्लेख मिलता है। ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिभ्यो यत्नतः सदा।
पितॄणां हि बलं योगो योगात् सोमः प्रवर्तते ॥

योगियों को श्रद्धा के साथ श्राद्ध-दान करना पड़ेगा; क्योंकि योग ही पितरों का बल है। योग से ही सोम का प्रवर्तन होता है।

'योगियों को श्राद्ध-दान' करने की उक्ति से स्पष्ट प्रकट होता है कि जीवित योगियों को श्रद्धा के साथ नाना प्रकार की वस्तुएँ दान करनी चाहिए। ऐसा होने पर ही जीवित व्यक्तियों के श्रद्धापूर्वक दान करने की गणना 'श्राद्ध' शब्द में की जा सकती है।

वायुपुराण में श्राद्धकल्प पर उल्लेख है—

गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च।
ब्रह्मचारी सहस्रेण योगी ह्येको विशिष्यते ॥
यस्तिष्ठ्येदेकपादेन वायुभक्षशतं समा ।
ध्यानयोगीपरस्तस्मादिति ब्रह्मानुशासनम् ॥
आद्य एव गणः प्रोक्तः पितॄणाममितौजसाम् ॥

इन सब वचनों से भी—पितृगण कौन है—यह समझना कठिन नहीं रह जाता।

पुराणों में भी पितृगण को "देवसूनो" याने देवताओं के पुत्र कहा है। वायुपुराण के प्रथम अध्याय में कहा है—

ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः।
इत्येते पितरो देवाः देवाश्च पितरः पुनः।
अन्योन्यपितरः ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥

अर्थात्—ज्ञानदाताओं को भी पितृगण कहा जाता है। देवगण अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मणों को भी पितृगण कहते हैं तथा पितृगण को वेदज्ञ ब्राह्मण भी कहा जाता है। मनुजी ने ३।१६२ श्लोक में बताया है कि "अक्रोधन, शौचाचारी, सदा ब्रह्मचारी, त्यक्तशास्त्र महाभाग पुरुषों को भी पितृ कहते हैं।"

ऊपर जो-जो प्रमाण दिये गये हैं एवं भिन्न-भिन्न पुराणों में स्थान-स्थान पर जिस भाव से 'पितृ' गण का उल्लेख है, उससे स्पष्टतः ज्ञात होता है कि अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह को पितृगण नहीं कहते हैं। किन्तु हम तो उन्हें ही पितृगण समझकर उनकी मृत्यु के बाद पिंडदान करते रहते हैं। यह बात प्रकृत रूप से शास्त्रोक्त अर्थ के अनुसार नहीं है। अतः उनके वेदज्ञ ब्राह्मण होने या न होने पर भी वे शास्त्र के अनुसार भक्ति के आधिक्य के कारण जीवित काल में श्रद्धा का दान पाने योग्य हैं। उन्हें जीवित काल में उत्तम वस्त्र, शुद्ध अन्न, पादुका आदि दान करते हुए सदा सन्तुष्ट रखना उचित है—इसे भी श्राद्ध कहा जा सकता है। अतः अपने पिता-पितामह आदि को लक्ष्य करके ऐसा ही श्राद्ध करना उचित है।

पिंड-प्राप्ति के सम्बन्ध में कई एक पुराणों में जो कुछ लिखा मिलता है, वह बहुत ही विस्मय उत्पन्न कर देता है। हमने पहले त्रिभुवननाथ तथा प्यारेलाल के उद्धरण से समझाने की चेष्टा की है कि

* 'पितृ'-शब्द व्यवहृत करने में यदि कोई दोष हो, तो वह क्षन्तव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिभुवननाथ का पुत्र जो पिंड देता है, वह प्यारेकिशन को किसी भी प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकता, यद्यपि त्रिभुवननाथ ने ही मृत्यु के बाद प्यारेकिशन का रूप धारण किया हो। परन्तु किसी-किसी पुराणकर्ता ने बड़े ही आश्चर्यकारक रूप से उस पिंड को प्यारेकिशन के पास पहुँचने का प्रमाण दिया है; क्योंकि त्रिभुवननाथ ही पर-जन्म में प्यारेकिशन हुआ है। परन्तु अपर जन्म में वह मानव नहीं भी हो सकता था। मरने के बाद त्रिभुवननाथ पशु, पक्षी, यक्ष, दानव सभी हो सकता था। पद्मपुराणकर्ता का कहना है (वह यदि कृष्णद्वैपायन व्यास हों तो वही कहते हैं) कि मृत व्यक्ति पुनर्जन्म में कोई भी योनि क्यों न प्राप्त करे, उसे दिया हुआ पिंड भी उस योनि के अनुकूल खाद्य-पदार्थ (भोजन की वस्तु) का रूप धारण कर भोजन के लिए प्राप्त होगा। यदि माता-पिता ने मृत्यु के बाद देवयोनि प्राप्त की है तो पिंडान्न अमृत होकर उनके लिए भोज्य होंगे। यदि वे दैत्य हो गये हों तो भोग के रूप में, पशु हों तो तृण (घास) के रूप में, यक्ष या दानव हों तो मदिरा के रूप में, राक्षस हों तो रक्त के रूप में, मनुष्य हों तो अन्न-जल के रूप में, स्त्री-जाति हों तो रति-शक्ति के रूप में तथा अन्य सभी अवस्था में वही पिंडान्न वायु के रूप में उन्हें तृप्त करेगा। यथा—

दिव्यो यदि पिता माता शुभकर्मानुयोगतः ।
तस्मात् अमृतं भूत्वा दिव्यस्थेऽप्यनुगच्छति ॥
दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् ।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण नानात्वेवोपतिष्ठति ॥
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तु आमिषम् ।
दानवत्वे तथा पानं प्रेतत्वे रुधिरोदकम् ॥
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नाना भोगवतां भवेत् ।
रतिशक्ति स्त्रीयकान्न * * * ॥

पद्मपुराण सृष्टि अ०, १०

इससे अधिक निरङ्कुश कल्पना और क्या हो सकती है? क्या इस प्रकार का लेख वेदव्यासजी का हो सकता है? ऐसी दशा में श्राद्ध-कर्ता के श्राद्ध करने अथवा न करने पर उसके पिता-पितामहगण के स्वर्ग तथा नरक में जानेवाली की बात की क्या दशा होगी? पद्मपुराणकार ने पुनर्जन्म के साथ मिलाकर जो वर्णन किया है, उसके साथ स्वर्ग-नरक का कोई सम्बन्ध ही देखने में नहीं आता है। पिंड के नाना वस्तुओं में परिणत होने—यहाँ तक कि रति-शक्ति के रूप में परिणत होने—की प्रक्रिया हमारी समझ में नहीं आती। पद्मपुराण-कर्ता अगर समझा देते, तो विशेष उपकार हो सकता था।

फलतः 'पितृ' शब्द का प्राचीन तथा प्रकृत अर्थ भूल जाने के कारण ही हम पिता और पितामह आदि को पितृ-पद वाच्य समझकर नाना प्रकार की विस्मयकारी कल्पना की सृष्टि कर रहे हैं। वास्तव में पुराकाल में मृत व्यक्ति के श्राद्ध करने या उसके उद्देश्य से पिण्डदान करने की प्रथा प्रचलित नहीं थी। जीवित काल में श्रद्धापूर्वक दान द्वारा पिता पितामह और माता प्रभृति को तृप्त करना पड़ता था। यही प्रकृत इतिहास समझ में आता है।

पिण्डदान

मृत व्यक्ति के लिए पिण्डदान करने का अर्थ क्या है? दाता का स्वत्व नष्ट होकर ग्रहणकर्ता की सत्ता उत्पन्न होने को ही दान कहते हैं। पिण्डदाता के पिण्ड देने के बाद तण्डुलादि पिण्ड की वस्तुओं के ऊपर से उसका स्वत्व लोप (नाश) हो जाता है, किंतु मृत व्यक्ति का स्वत्व उस पदार्थ पर कैसे उत्पन्न हो सकता है? उसका तो किसी भी पदार्थ पर स्वत्व उत्पन्न होना सर्वथा असम्भव होता है। अतः मृत पुरुष के संबंध में दान भी व्यवहृत नहीं हो सकता; क्योंकि जीवित व्यक्ति को ही दान दिया जा सकता है, मृत व्यक्ति को नहीं।

यह हमने पहले ही कहा है कि किसी-किसी पुराण में मृतक के लिए श्राद्ध करने का उल्लेख है, और किसी में नहीं; क्योंकि पहले मृतक का श्राद्ध नहीं किया जाता था, पीछे वह शुरू हुआ। निमि राजा के उपाख्यान से भी यही बात प्रकट होती है। फिर भी ऐसे अनुष्ठान किये जाने का मूल कारण क्या है? सबसे पहले निमि राजा ने ही मृतक श्राद्ध किया था; किंतु किसी दूसरे किसी ने उनके इस अनुष्ठान का अनुकरण नहीं किया। इससे वह निन्दित हुए थे और उन्हें आत्म-ग्लानि का अनुभव भी हुआ था; परन्तु अनुष्ठान अनुकरण नहीं हुआ। चीन-देश में बहुत प्राचीन काल से आज तक मृतक के उद्देश कर नाना प्रकार की वस्तुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामा-लेखा और मुनीबी

गुमाश्ता, मुनीम और व्यापारी के सर्वदा व्यवहार में आनेवाली हर प्रकार के जमाखर्च की हिन्दी में सर्वप्रथम पुस्तक।

लेखक—कस्तूरमल बांठिया बी० काम० (बंबई)

भू० पू० डाइरेक्टर व अकाउन्टेन्ट, दी ईस्ट इंडियन प्रोड्यूस कं० लि० लन्दन, वाइस प्रेसीडेन्ट, दी इंडियन चेम्बर ऑफ कामर्स इन ग्रेट ब्रिटेन, रचयिता 'हिंदीवहीखाता' 'व्यापारी पत्र-व्यवहार' 'कम्पनी व्यापार प्रवेशिका' 'रुई और उसका मिश्रण' एक समय के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की मुनीबी परीक्षा के परीक्षक

पृष्ठसंख्या क्राउन ४ पेजी लगभग ५०० बढ़िया जिल्द कई नक़शे व चित्र मूल्य ५)

मनीआर्डर से मूल्य पहले भेज देने पर पोस्टेज ख़र्च माफ़

विषय-सूची

पहला खंड : मूल सिद्धांत

१ नामा-लेखा की शिक्षा २ पाउना, देना और पूँजी ३ लेन-देन का लिखना ४ जमा और नामे का तत्त्व ५ माल और अन्य हिसाब ६ खाताबही और उसका मिलान ७ पक्का आँकड़ा ८ नक़ल बही ९ जमा बही और बिक्री बही १० रोकड़ बही ११ नक़ल बही का विशेष परिचय १२ लेन-देन के सबसे पहले उल्लेख पत्र १३ खाता बही का विभाजन और नियंत्रण १४ आँकड़े की तैयारी १५ बहियाँ बन्ध करना।

दूसरा खंड : भिन्न-भिन्न व्यापारों के हिसाब

१६ साझे का संगठन १७ साझे का हिसाब १८ साझे का भंग १९ सम्मिलित व चलानी का व्यापार २० कंपनी का संगठन २१ कंपनी का संगठन २२ कंपनी का हिसाब २३ कंपनी का हिसाब २४ कंपनी का काम समेटना २५ देशी-विदेशी हुंडी, चेक व प्रामीसरी नोट २६ कारखानों के हिसाब २७ महकमों का व शाखाओं का हिसाब २८ हायर परचेज का हिसाब २९ रेलवे कंपनियों का हिसाब ३० बीमा कंपनियों का हिसाब ३१ मूल्यापकर्ष करने की भिन्न-भिन्न शैलियाँ ३२ दीवालियों के हिसाब ३३ क्लब, सोसाइटी, वकील, डाक्टर आदि के हिसाब ३४ इनकमटैक्स के हिसाब ३५ हिसाबों का विश्लेषण व विवेचन।

परिशिष्ट

१—भिन्न-भिन्न प्रकार के छपे हुए हिसाब व धन की विवेचना २—परीक्षार्थियों को उपयोगी सूचनायें ३—मुनीबी व बहीखाता की परीक्षायें ४—नामा-लेखक का साथी ६—कुछ चुने हुए अभ्यास के लिए प्रश्न।

पुस्तक पसंद न आने पर दाम वापस की गारंटी

हम आपका यह आर्डर इसी गारंटी पर लेते हैं कि आप ख़रीदने के पहले पुस्तक को अच्छी तरह देख लें और पढ़ लें। पुस्तक एक सप्ताह तक आप अपने पास रख सकते हैं। यदि पसंद न आवे तो आप हमें जैसी की तैसी लौटा दें। पुस्तक का मूल्य पुस्तक पहुँचते ही मनीआर्डर से आपके पास भेज दिया जायगा।

हम यह सहूलियत इसीलिए दे रहे हैं

क्योंकि

हमें हमारी पुस्तक के गुणों का विश्वास है।

एक दफ़ा देख लेने पर आप उसे अपने पास रखना ही पसंद करेंगे।

प्रकाशक—बांठिया एन्ड कंपनी, सिविल लाइन्स, अजमेर.

व्यापारी और औद्योगिक साहित्य के प्रकाशक.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमारी के बाद की
कमज़ोरी जल्दी दूर करता है !

बीमारी दूर होने के बाद की कमज़ोरी में केकर ओट्स का दैनिक पथ्य जितना लाभकारी अन्य कोई पथ्य है ही नहीं। स्वास्थ्य की पूर्ति, शक्ति की प्राप्ति और काया पलट कर देने के गुण केकर ओट्स में प्रचुरता से हैं। मांसपेशियों को यह सुडौल बनाता है, रक्त की वृद्धि करता है हड्डी और नसों को पुष्ट करता है, पच भी जल्दी जाता है, और स्वादिष्ट भी यह ख़ूब है। इसका सेवन सब को नित्य करना चाहिए।

ख़रीदते समय केकर का चित्र देखना न भूलें

केकर ओट्स

बनाते समय इसमें हाथ का स्पर्श भी नहीं होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान किया जाता है। मृत पिता-पितामह आदि को नाना प्रकार से दान द्वारा संतुष्ट करना चीनी गृहस्थों के धर्मानुष्ठान का एक आवश्यक कर्त्तव्य-कर्म है। संभवतः उनके, बौद्ध-धर्म ग्रहण करने के बाद, भारत-वर्ष में आकर बुद्ध-गया आदि स्थान में तर्पण करने से भारतवासियों ने उसी अनुष्ठान का अनुकरण करना शुरू किया होगा—ऐसा अनुमान किया जा सकता है। पुरोहित ब्राह्मणों को भी इसमें अर्थ-प्राप्ति की आशा थी। अतः उन्हीं की चेष्टा से ऐसे अनुष्ठान का प्रचलन विस्तार के साथ होने का अनुमान करना असंगत न होगा।

लोग प्रायः अर्थ-सञ्चय कर लेने पर भी उसे व्यय करना नहीं चाहते। किंतु जिस अनुष्ठान से सञ्चित अर्थ का व्यय होता है, उसके प्रचलन के लिए अवश्य ही बाह्य तथा आन्तरिक कारणों के गुरुतर प्रभाव की आवश्यकता होती है। उनमें आन्तरिक कारण हैं भक्ति, शोक, मोह, स्नेह—तथा बाह्य कारण है ब्राह्मण एवं पंडितों का आधिपत्य, जो एतद्देशीय समाज में अत्यधिक बढ़ा हुआ था। अतः मृतक का श्राद्ध या पिंड-दान आवश्यक कर्त्तव्य के अनुष्ठानरूप में प्रचलित होने से इन दोनों कारणों का अभाव नहीं हुआ। इस देश में एक बार बौद्धधर्म का विशेष विस्तार हो गया था। उसके साथ चीनी लोगों का अनुकरण करना भी अत्यंत स्वाभाविक था। किंतु अंत में यश की आकांक्षा तथा धन-संपदा दिखाने का दंभ, इन दोनों कारणों से श्राद्ध में पिंड-दान-कर्म बहुव्यय-साध्य तथा आडंबरपूर्ण हो चला था। श्राद्ध की यह मीमांसा शायद भूल से भरी नहीं मानी जायगी।

हम देख रहे हैं कि श्राद्ध या पिंडदान-कर्म "पितृ-यज्ञ"-रूप में अनुष्ठित होता है और मृत पिता-पितामह के उद्देश्य से यह अनुष्ठान आचरित होता है। अर्थात् पितृ-यज्ञ नित्य-नैमित्तिक कर्म है—वर्ष-भर में सिर्फ़ एक दिन के लिए करने का नहीं। इस योजना से हम यह भी देखते हैं कि पुरातन काल में मृतक का श्राद्ध-पिंडदान नहीं होता था। अगर कोई शोक या मोह के वश करता भी, तो वह निंदा का पात्र बन जाता था; क्योंकि यह प्रथा सनातनी नहीं थी। आज भी वह अनार्य-जुष्ट, [illegible] तथा अकीर्तिकर है। जीवित पिता-पितामहों को श्रद्धापूर्वक अन्न, वस्त्र, पादुका एवं गंधमाल्यादि का दान करना ही श्राद्ध है। ऐसे कार्य नित्य ही किये जा सकते हैं एवं हमारे कर्त्तव्य भी हैं। यहाँ तक हमने देखा है कि पितृगण कौन है और शास्त्र में पितृगण किसे कहा है? अपने पिता एवं पितामहादि का नाम 'पितृगण' नहीं है; भ्रम के कारण अज्ञानवश अथवा स्वार्थवश हमने 'पितृगण'-शब्द से अपने पिता-पितामह आदि का अर्थ ले लिया है तथा वर्तमान समय की प्रणाली के अनुसार श्राद्ध एवं पिंडदान का प्रयोग भी उसी भ्रम के आधार पर प्रतिष्ठित है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि श्राद्धा-नुष्ठान करनेवाले श्राद्ध के द्वारा जिस फल की कल्पना करते हैं, वह सर्वशास्त्रोक्त सर्वजन-विदित कर्म-फलवाद के विरुद्ध एवं पुनर्जन्मवाद के साथ संपूर्ण रूप से असम्मत एवं पृथक् है। जीवित व्यक्ति के लिए श्राद्ध-युक्त दान भी अर्वाचीन काल में श्राद्ध-पिंडदान में परि-णत हुआ है। यद्यपि यह परिणति शास्त्र-विरुद्ध है, तो भी अस्वाभाविक नहीं। आंतरिक तथा बाह्य कारणवश ही स्वाभाविक नियम से ऐसे बिखरे हुए भाव उत्पन्न हुए हैं। अज्ञता, चीन-देशवासियों का संसर्ग तथा समाज के बहु-सम्मानित संप्रदाय-विशेष का स्वार्थ—ये सभी कारण जीवित व्यक्ति के द्वारा मृत व्यक्ति के लिए श्राद्ध-प्रयोग करने के प्रेरक जान पड़ते हैं।

जो हो, मृतक का श्राद्ध अथवा पिंडदान-कर्म अर्वा-चीन प्रथा है—सनातन नहीं। यह बात उक्त विवेचन से आसानी के साथ समझ में आ जाती है।

ब्रह्मचारी गोपाल-चैतन्यदेव

× × ×

५००) इनाम।

महात्माप्रदत्त श्वेत कुष्ठ (सफ़ेदी) की अद्भुत वनौषधि। तीन दिन में पूरा आराम। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापनदाताओं की दवा कर निराश हो चुके हों तो इसे लगावें। बेफ़ायदा साबित करने पर ५००) इनाम। जिन्हें विश्वास नहीं, ✓) का टिकट लगाकर शर्त लिखा लें। मूल्य २) रु०।

वैद्यराज अखिल किशोर राम
आयुर्वेद-विशारद भिषगरत्न
नं० ३० पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—अमेरिकन ऋषि एमर्सन की ज्ञान-साधना

"Emerson's alliance with the 'brooding East' is (always remembering his strain of Western energy and practicality) more than emotional ; he is in certain higher reaches of his thought, almost a Brahman ; so that a cultured Hindoo may write, 'He seems to some of us to have been a geographical mistake. He ought to have been born in India.' "

उपर्युक्त विचार एक अँगरेज़ लेखक ने प्रकट किया है। एमर्सन के लेखों की भूमिका लिखते हुए, और जिन्होंने ऋषिवर एमर्सन के विचारों का मनन किया है, वे भी उसके स्वर में स्वर मिलाते हुए कह सकते हैं कि सचमुच एमर्सन बौद्धिक दृष्टि से ब्राह्मण थे। एमर्सन का संदेश (Message) आशा का संदेश है। इसमें है यौवन की मादकता, जीवन का उत्साह और सबल हृदय का जाज्वल्यमान् आत्मविश्वास। भारत के प्राचीन साधक महर्षियों की तरह उनके एक-एक शब्द में, एक-एक वाक्य में मानों गंभीर अर्थ-सूत्र निहित है। उन्हें अध्ययन करते हुए यह संदेह हो जाता है कि कहीं हम उपनिषदों की टीका या व्याख्या तो नहीं पढ़ रहे हैं। समय-समय पर चिंताशील विद्वानों ने इनके विचारों का समर्थन और विरोध भी किया है।

एमर्सन ने प्रत्येक प्राणी की एक संपूर्ण और स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है। समस्त विश्व इसी सत्ता का प्रकाश है। प्रत्येक प्राणी अपने में ही पूर्ण है। बाह्य संसार का कोई भी समाज, कोई भी धर्म अथवा कोई भी कर्म उसके लिए आवश्यक नहीं। वह अपने ही अंदर जितना सत्य प्राप्त कर लेता है, उतने में ही उसकी सार्थकता है। एमर्सन के विचार में बाह्य संस्कार से निर्मुक्त होकर बुद्धि जितना ही निर्बाध रहेगी, उतना ही दृढ़तर विश्व से मनुष्य का ऐक्य होगा। एमर्सन की सभी रचनाओं का मूलभाव यही है।

इस कथन की सार्थकता एमर्सन की रचनाओं से दो-एक उदाहरण देने पर स्पष्ट हो जायगी। "आत्म-निर्भर" शीर्षक एक निबंध में उसने लिखा है—यदि कोई मनुष्य होना चाहता है, तो उसे गतानुगतिक नहीं बनना चाहिए। तुम्हारे मन के भीतर जो संपूर्णता है, उसे छोड़कर संसार में और कोई तुम्हारे लिए बड़ा नहीं है। यदि तुम अपने को अपने ही निकट निर्दोष बनाओगे, तो समग्र संसार की सम्मति को तुम स्वयं प्राप्त कर लोगे। मुझे अपने शैशव-काल में एक धर्म-प्रचारक को ऐसा ही उत्तर देना पड़ा था। मैंने उनसे पूछा—यदि मैं अपने ही भीतर सत्यलाभ करूँ, उसी से सत्य-जीवन यापन करूँ, तो क्या मुझे इन बाह्य कुल-परंपरागत प्रथाओं को पुण्य मानने की आवश्यकता है? उसने उत्तर दिया—अंतःप्रेरणा नीचे ही जाती है, वह ऊपर नहीं जाती। तब मैंने कहा—मुझे तो ऐसा विश्वास नहीं होता। फिर भी यदि मैं शैतान का अनुवर्ती होऊँ, तो मैं उसी के भीतर से अपने प्राण आकर्षित करता रहूँगा। अपना प्रकृति के नियम को छोड़कर और कोई नियम मेरे लिए प्रबलतर और उत्कृष्टतर नहीं हो सकता। इसी प्रकार समाज के संबंध में एमर्सन ने लिखा है कि समाज तो कभी अग्रसर नहीं होता। वह एक ओर आगे बढ़ने के लिए दूसरी ओर पीछे रह जाता है। कभी वह सभ्य है तो कभी असभ्य, कभी वह धनी है तो कभी वैज्ञानिक। समाज में अनवरत क्षति-पूर्ति का नियम परिचालित होता रहता है। एक ओर वह अपनी क्षति करके दूसरी ओर अपनी पूर्ति करता है। सभ्यता के उल्लास में उसने गाड़ी का निर्माण किया है, किंतु पैरों का व्यवहार वह भूल रहा है। उसकी छाती पर जेनेवा की चमत्कार-पूर्ण घड़ी झूल रही है, परंतु सूर्य को देखकर समय का पता लगाना अब वह नहीं जानता। पुस्तकों के स्तूप ने उसकी स्वाधीन बुद्धि और कल्पना को भाराक्रांत कर दिया है। धर्म और मन्दिर ने उसके अंतर्निहित सुलभ आध्यात्मिक ज्ञान को अन्य विचारों से ढक दिया है।

लोग यह समझते हैं कि जिस जाति में महापुरुष उत्पन्न हो रहे हैं, वह जाति उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो रही है। पर यथार्थ में यह बात नहीं है। जितने महापुरुष होते हैं, वे अभ्यस्त संस्कार के पथ को छोड़कर अपने ही अंतर्जगत् के महामार्ग का अनुसरण करते हैं, और तभी उनका जीवन सार्थक होता है। वे किसी का अनुकरण नहीं करते।

उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि एमर्सन का आदर्श क्या है ? आत्मा के लिए सब है—आत्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उपकारार्थ ही सभी त्याग होता है और आत्मा के द्वारा ही समस्त उपलब्धि होती है। यही एमर्सन का भाव है। जड़-चेतन, जीवन-मरण तथा मानव-जाति की अभिव्यक्ति में जो कुछ विषमता है, उसको आत्मा की लड़ी में पिरोकर एमर्सन ने एक और अखण्ड दिखलाया है। एमर्सन की यह एकत्वानुभूति हमारे लिए नयी नहीं है। इसी के विरोध में ब्राडनेल-नामक एक विद्वान् ने आक्षेप किया है—यह कि बुद्धि को प्राधान्य देने का अर्थ यह है कि बुद्धि को बाधामुक्त कर देने में ही मनुष्य की साधना समाप्त हो जाती है, और फिर कुछ बाक़ी नहीं रह जाता। जो सत्य है वह प्रिय है—यह बात एमर्सन की वाणी से निःसृत नहीं हुई। उन्होंने चिंतन द्वारा अधिगम्य सत्य को ही 'प्राप्ति' मान लिया है।

फ्रांस में एमियल-नामक एक कवि हो गया है। उसकी वहाँ प्रसिद्धि भी है। उसने अपने 'जर्नेल' में ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य स्थापित किया है। ब्राडनेल ने जिस तत्त्व का आभासमात्र दिया है, उसकी विशद विवेचना एमियल ने अपनी कृति में की है। नीचे उसकी चर्चा संक्षेप में की जाती है।

जिन विद्वानों ने अंतर्जीवन का प्रतिपादन किया है, उन्होंने उसका यह रूप स्थिर किया है कि यह जीवन-काल के बंधन से निर्मुक्त है। वह एक ही समय में रूप-वैचित्र्य और आत्मा का ऐक्य दोनों ही उपलब्ध करने में समर्थ है। वह समस्त प्रतिकूल बाह्य घटनाओं के ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। वह भविष्य के संबंध में क्रिया-शून्य और नश्वर है। जरा और मृत्यु का प्रभाव उस पर नहीं पड़ सकता। वह अजर और अमर है। जब ये विद्वान् हमें ऐसे जीवन में प्रवेश कराते हैं, तब उसके संबंध में यही भाव होता है कि किसी भी बाह्य वस्तु अथवा नियम की अधीनता उसे नहीं स्वीकार करनी पड़ती। वह स्वकीय है। वह अपने में ही संपूर्ण है। परंतु ऐसे जीवन के मूल में केवल ज्ञानमय तत्त्व ही विद्यमान है, धर्म नहीं। अखंड, अविनश्वर, अलक्ष्य, स्वप्रतिष्ठ आत्म-स्वाधीनता का यही आदर्श—जो अपने ही अंतर्नियम से आप प्रकट होता है, जो बाह्य जगत् के समस्त को अग्राह्य करता है—एमर्सन का है। एमर्सन के मतानुसार मनुष्य अपने ही से अपने में आनंद-लाभ करता है, अपने ही व्यक्तिगत चैतन्य के दुर्गम दुर्ग में उसकी निर्भय प्रतिष्ठा है। वह आप ही अपना नियम है, आप ही अपना परिचालक है, आप ही अपना परिणाम है। वह वही है—यही उसके लिए पर्याप्त है। यह आदर्श मनुष्य के दुःख, दैन्य और दुर्बलता को मानना ही नहीं चाहता।

अब विचारणीय यह है कि मनुष्य के ऐहिक जीवन में यह आदर्श स्वीकृत हो सकता है, या नहीं। सत्य तो यह है कि विज्ञानमय चैतन्य को समस्त चैतन्य मानना, बुद्धि की मुक्ति को हृद्ग्रन्थि का उच्छेद समझना—अंश को समग्र स्वीकार करना है। ये विद्वान् आध्यात्मिकता का स्थान तत्त्व को देना चाहते हैं। इनके समस्त तत्त्वों के मूल में मनुष्य है, पर बुद्धि को ही ये मनुष्य भी श्रेष्ठ संपत्ति मानते हैं। यह बुद्धि की पूजा है, ज्ञान की साधना है। ये मन को सभी प्रकार के बाह्य संस्कारों से मुक्त कर विशुद्ध ज्ञान के द्वारा मनुष्य का उद्धार करना चाहते हैं। जो धर्मभक्ति-पथ के अनुयायी हैं, वे आत्म-परित्याग और आत्म-समर्पण के द्वारा मनुष्य को शुद्ध करना चाहते हैं। इन दोनों में भिन्नता यही है कि एक ज्ञान द्वारा मनुष्य को बंधन-मुक्त करने के बाद उसके अंतः की शुद्धि करना चाहता है, और दूसरा उसके हृदय को विशुद्ध कर उसको ज्ञानमय बनाना चाहता है। अब प्रश्न यह है कि मनुष्य किससे शीघ्र मुक्ति-लाभ करेगा? सत्य को जानकर या सत्य होकर—सत्य की चिंता से या सत्य के कार्य से? यदि ज्ञान से प्रेम की उत्पत्ति नहीं हुई तो वह यथेष्ट नहीं है। उससे जो सत्य प्राप्त होता है, वह उत्ताप-हीन आलोक के समान है। उसमें मनुष्यत्व का अभाव है। जब सत्य प्रेम भी संपत्ति हो जाता है, तब सत्य में समस्त व्यक्तित्व विलुप्त हो जाता है। ज्ञान द्वारा मनुष्य अपने ही बंधन—अपने ही संकीर्ण संस्कार से मुक्त होता है। परंतु प्रेम के द्वारा वही मुक्त नहीं होता, संसार का भी कल्याण करता है। यही कारण है कि दर्शन-शास्त्र कभी धर्म का स्थान नहीं ग्रहण कर सकता। बुद्धि मनुष्य को मनुष्य बनाती है; परंतु मनुष्य हृदय के द्वारा मनुष्य होता है। अतएव ज्ञान, प्रेम और कर्म इन तीनों का जहाँ सम्मिलन है, वहीं मानव-जीवन की सार्थकता है—पूर्णावस्था है।

श्रीकामेश्वर शर्मा 'कमल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुवन

(क) महाकाव्य और हिन्दी

"आरम्भ में किसी देवता को नमस्कार-सहित या कथा की सूचनायुक्त या आशीर्वाद-संयुक्त मंगलाचरण हो । देवता अथवा सद्वंशोद्भव, धीर, वीर, उदार, उन्नत एक अथवा अनेक क्षत्रिय-नायकों का वर्णन हो । कथा ऐतिहासिक हो अथवा किसी सज्जन की हो । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष किसी की प्राप्ति का उद्देश्य हो । कहीं दुष्टों की निन्दा और कहीं सज्जनों का गुण-कथन हो । सब रस हों ; पर श्रृंगार, वीर और शान्त प्रधान हों । सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात, दिन, मध्याह्न, प्रभात, अन्धकार, ऋतु, पर्वत, देश, समुद्र, पूर्णिमा, वन, शिकार, संयोग, वियोग, मुनि, यज्ञ, स्वर्ग, नगर, सेना-प्रयाण, मन्त्र से पुत्रोत्पत्ति और विवाह आदि का अंग-प्रत्यंग-सहित वर्णन हो । न छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग हों । एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द हों । किसी सर्ग में अनेक छंद भी हो सकते हैं । सर्गों के अन्त में कुछ अन्य छन्द हों । सर्गान्त में, आगे के सर्ग में कही जानेवाली कथा की सूचना हो । सर्गों के नाम उनकी कथा के अनुसार, और काव्य का नाम कवि के नाम पर या नायक के नाम से या कथा-प्रसंग के अनुसार हो ।"

ये हैं महाकाव्य के लक्षण, जो संस्कृत-साहित्य के रीतिग्रन्थों* में कहे गये हैं । कैसे अच्छे और कितने व्यापक हैं ! यदि नायिका के अंग-प्रत्यंग के वर्णन में ही सर्ग के सर्ग न समाप्त किये जाते, तो इन लक्षणों के अनुसार बने हुए महाकाव्य कितने सार्वदेशिक और मनोहर होते ।

हमारी हिन्दी-भाषा की अवस्था अब तक हज़ार वर्ष पुरानी मानी जाती थी, परन्तु बौद्ध पण्डित राहुल सांकृत्यायनजी के अनुसन्धान से वह १२ सौ वर्ष पुरानी हो गयी है । इतने लम्बे समय में हिन्दी का पद्य-साहित्य खूब फला-फूला । रासो, सूरसागर, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका और अनेक आलंकारिक ग्रन्थों का निर्माण हुआ । इन ग्रन्थों में संस्कृत-साहित्य के रीतिग्रन्थों का अनुकरण किया तो गया, पर एक बड़ी भारी विशेषता हिन्दी-रीति-ग्रन्थों में यह रही कि ग्रन्थकर्त्ता लोगों ने अपने ही बनाये हुए उदाहरणों का प्रयोग किया ; दूसरे के ग्रन्थों से एक भी उदाहरण नहीं लिया । यह हमारे हिन्दी-कवियों की प्रखर प्रतिभा का परिचायक है और गर्व की बात है । संस्कृत-साहित्य के अन्य सब रीति-ग्रन्थकारों ने उदाहरण अन्य ग्रन्थों से ही लिये हैं; केवल पंडितराज जगन्नाथ ने अपने 'रसगंगाधर' ग्रंथ में अपने ही बनाये हुए उदाहरणों का उपयोग किया है ।* इसका आपको गर्व भी विशेष था । सुनिए—

> निर्माय नूतनमुदाहरणानिरूपं
> काव्यं मयात्रनिहितं न परस्य किंचित् ।
> किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः
> कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ॥

---

* जिन ग्रन्थों में काव्य करने की रीतियों का वर्णन हो, उन्हें रीति-ग्रन्थ कहते हैं ।—लेखक

* कहा जा सकता है कि उस समय हिन्दी-साहित्य इतना परिपूर्ण नहीं था कि सब उदाहरण उसी में मिल सकें। इसके प्रतिकूल संस्कृत-साहित्य परिपूर्ण था । किन्तु चाहे कुछ हो, हमारे हिन्दी-रीति-ग्रन्थकारों की प्रतिभा में सन्देह नहीं है ।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यहाँ उदाहरणों के नवीन रूप निर्मित करके मैंने काव्य किया है ; इसमें दूसरों का कुछ भी नहीं । कस्तूरी उत्पन्न करनेवाले मृग अन्य गंध का क्यों सेवन करें ।

अस्तु । ऐसे रीति-ग्रन्थ हिन्दी में एक नहीं—अनेक लिखे गये, किन्तु काल-गति से नायिका-भेद की प्रधानता रही और महाकाव्य के लक्षण किसी में नहीं कहे गये ! कदाचित् यही कारण है कि इतने ग्रन्थों का निर्माण होते हुए भी हिन्दी में महाकाव्य नहीं बने। रासो एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, पर उक्त लक्षणों के अनुसार महाकाव्य नहीं है । सूरसागर भी एक उत्तम काव्य है, पर महाकाव्य नहीं । रामचरित-मानस, आचार्य द्विवेदीजी के शब्दों में, 'महाकाव्य' है, पर आलंकारिकों के नियमानुसार महाकाव्य नहीं । रामचन्द्रिका अवश्य महाकाव्य-लक्षणाक्रान्त है । इतने लम्बे (६ सौ वर्षों में) समय में केवल यही एक महाकाव्य कहा जाने योग्य ग्रन्थ बना, जब कि संस्कृत-भाषा में अनेक महाकाव्यों का निर्माण हुआ। इसके पीछे फिर वही मौनावलम्बन ! यह नहीं कि कोई महाकवि हुआ ही नहीं, अथवा कविता-प्रवाह ही बन्द हो गया । महाकवि हुए और काव्य-प्रवाह भी जारी रहा, पर बने वही नायिका-भेद और रीति-ग्रन्थ। प्रत्येक महाकवि ने अपना अलग ही अलग नायिकाभेद और रीतिग्रन्थ बनाना उचित समझा; पर महाकाव्य कौन कहे, कोशकाव्य और खण्डकाव्य * भी बहुत कम बने । हाँ, बहुत दिन पीछे रीवा के महाराज रघुराजसिंह (१६११—३७ वि०) ने अवश्य हिन्दी-भाषा की लाज रख ली । आपने रीतिग्रन्थों के अनुसार 'रुक्मिणी-परिणय' महाकाव्य बनाया,और दूसरा आपका 'राम-स्वयंवर' ग्रंथ भी महाकाव्य ही है । उधर बँगला और मराठी-भाषाओं में कई अच्छे महाकाव्य लिखे गये। रही हिन्दी के आधुनिक समय की बात, सो यदि इस समय भी हिन्दी-साहित्य अपने सब अंगों से सम्पन्न न हो तो कब होगा ?

भानुसिंह बाघेल

× × ×

* जिसके पद्य एक दूसरे से सम्बन्ध न रक्खें वह कोश-काव्य, और आठ सर्ग से कमवाले काव्य खंडकाव्य कहे जाते हैं ।—लेखक

(ख) अयोध्या के तीर्थों पर दो प्रसिद्ध मुसलमान कवियों की श्रद्धा

अयोध्या के इतिहास की खोज में और बातों के साथ गोश्तर (गुप्तार) तीर्थ के विषय में फ़ारसी के सुप्रसिद्ध कवि अमीर ख़ुसरो और वसाली की श्रद्धा की आख्यायिकाएँ मिली हैं, जो माधुरी के पाठकों की भेंट की जाती हैं । गुप्तारघाट पर आजकल सरकारी छावनी है, परंतु इसके पहले अयोध्या का मुख्य तीर्थ यही था । यह मत्स्याकार अयोध्यापुरी का मस्तक है । यहीं कल्पवास होता था । स्वामी युगलानन्यशरण आदि अनेक महात्मा यहीं रहते थे ; कण्टोमेंट हो जाने से सरकार अँगरेज़ी ने उन्हें क़िले पर स्थान दिया ।

त्रेतायुग में 'सरकार' के लीला-संवरण का स्थान यही था । जब सरकार देवकार्य कर रहे थे, श्रीसीताजी अपनी माता पृथिवी की गोद में चली गयीं । शेष के अवतार श्रीलक्ष्मणजी ने सहस्रधारा में प्रविष्ट होकर फिर अनन्त रूप धारण कर लिया तो यहीं—

घर तजि सकल नगर कै साथा ।
गये नगर बाहर रघुनाथा ॥
आयो नभ सन तुरत विमाना ।
ताहि देखि तहँ कृपानिधाना ॥
सरयुहि भक्तबछल रघुराई ।
सीढ़ी मनहु अनूप बनाई ॥
करत सकल पुरजन असनाना ।
भयो जो सोइ गोप्तर समाना ॥
यहि कारण सोइ ठाँव सुहावन ।
भयो प्रसिद्ध गोप्तर पावन ॥
जो प्रभु सँग तेहि अवसर आवा ।
तिन निज देवअंश तहँ पावा ॥
जाय स्वर्ग दिसि प्रभु सब साथा ।
दूजो स्वर्ग रचो रघुनाथा ॥
(रघुवंश-भाषा, स० ९५)

गोप्तर-तीर्थ की महिमा बढ़ जाने का एक कारण यह भी था कि मुसलमानों के राज्य में आजकल की अयोध्या का प्रधान अंश मुसलमानों की बस्ती बन गया था जिसका प्रमाण औरंगज़ेब की मसजिद का भग्नावशेष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. अमीर ख़ुसरो—हमने अयोध्या के इतिहास, पृष्ठ १४८, में लिखा है कि "हिंदी-फ़ारसी का प्रसिद्ध कवि अमीर ख़ुसरो दो वर्ष तक अयोध्या में रहा और यहीं की बोली में उसने हिंदी-फ़ारसी का कोश ख़ालिक़बारी (خالق باری) रचा ।" ख़ुसरो सूफ़ी था । कथा प्रसिद्ध है कि उसने यहीं गुप्तारघाट पर श्रीसरयूजी की पूजा की । इस पर मुसलमान बहुत बिगड़े । ख़ुसरो ने कहा—

खल्क़ मी गोयद कि ख़ुसरो बुतपरस्ती मी कुनद ।
ओर ओर मी कुनम् बा खल्क़ मारा कार नेस्त ॥

"लोग कहते हैं कि ख़ुसरो मूर्ति की पूजा करता है"
"हाँ-हाँ करता हूँ ; मैं किसी का परवा नहीं करता ।"

२. दूसरा सूफ़ी कवि वसाली था । जिसका बनाया हुआ मामुक़ीमाँ (مامقیمان)-काव्य अत्यन्त प्रसिद्ध है । मकतब में इसे हमने भी पढ़ा था । ख़ुसरो फ़क़ीर न था ; वसाली फ़क़ीर था और अयोध्या में रहता था । यहीं प्रमोदवन में उसकी समाधि (क़ब्र) है । वह एक दिन वजद् (आवेश) में आकर इसी घाट पर सरयू में कूद पड़ा । जल से निकलने पर उसकी गुदड़ी का एक धागा भी न भीगा था । इस पर उसने कहा—

गर ब दरिया रवद ब वजदये इश्क़ ।
रिश्तये दिलकशाँ न गरदद नम ॥

श्रीअवधवासी सीताराम (बी० ए०)

× × × ×

ख़ून साफ़ करनेवाली हुक्मी दवा

डॉ. वामन गोपाल का

Trade Mark

सार्सा परिला

इसके सेवन से उपदंश (गर्मी), लक़वा, संधिवातादि भयंकर रोग साफ़ निर्मूल होते हैं । क़ीमत १।)

डा० म० अलग ।

डा० गौतमराव केशव की शक्तिवर्धक

फ़ॉस्फ़रस पिल्स

C.B. 1 डा० गौतमराव केशव ऐंड संस, बंबई २

(ग) रस-कलश

फ़ारसी काव्य

फ़िरदौसी (९३५-१०२५ ई०)

मैंने बहुत परिश्रम किया—बहुत अध्ययन किया अरबी-फ़ारसी साहित्य का ।

ज्ञात और अज्ञात आख्यायिकाएँ एकत्रित करते हुए अब साठ और दो वर्ष व्यतीत हो गये हैं ।

दुःख और पापों के लिए तीक्ष्ण पीड़ा ही सब कुछ यौवन का परिणाम है ।

और मैं शोकपूर्ण विचारों के साथ कह रहा हूँ बू-ताहिर ख़ुसरवानी का यह पद्य—

"अपने यौवन की सुस्मृति पर, भरता हूँ मैं आह !
यौवन बीत गये यौवन के लिए आह ही आह !"

शेख़सादी (११८४-१२९१ ई०)

जब प्रभाव कुछ भी न करे, तो उठूँ और चल दूँ ;
यद्यपि घायल, असि-पथ पर पड़ रहा रेंगना मुझको ;
संभव है—अंचल का स्पर्शन उसके मैं पा जाऊँ ;
और उसी के द्वारे निश्चय मृत्युप्राप्त कर सो जाऊँ ।

रूमी (१२०७-१२७३ ई०)

समस्त संसार में मैंने केवल तुझे ही चुना ; क्या तू मुझे विषाद से विश्राम न देगा ? मेरा हृदय तेरे हाथ में लेखनीवत् है ; तू मेरे विषाद और आह्लाद—दोनों ही को लिख सकता है ।

तेरी कांक्षा के सिवा मुझमें कौन कांक्षा रह गयी है ? तू ही मुझमें कभी काँटे की और कभी फूल की उत्पत्ति करता है ।

यदि तू मुझे ऐसा ही चाहता है, तो मैं ऐसा ही रहूँगा ; और किसी भाँति, तेरी कांक्षा का विरोध न करूँगा ।

और......उस कुंड में जहाँ आत्माएँ अपना-अपना वर्ण लेती हैं, मैं क्या हूँ ?—प्रेम और घृणा क्या बतायेंगे ?

* * *

धातु से मरकर पौदा बना ; पौदे से मरकर चेतन रूप लिया ; पशु-योनि में मृत्यु प्राप्त होने पर मानव-परिधान में सज्जित हुआ ।

मरने से मुझे कब सद्गति मिली ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मनुष्य-रूप में मरूँगा—नभ-प्रदेश में गंधर्वों की तरह पंख फैलाकर उड़ने के लिए।

गंधर्वों के मध्य में भी स्थान-च्युत होना पड़ेगा; क्योंकि "उसके आनन के सिवा प्रत्येक वस्तु नश्वर है"।

मुझे अस्तित्वहीन होने दो। वीणा के तार स्पष्ट कह रहे हैं—

"हम उसी में लौटकर जाते हैं।"

* * *

हमारे मरुस्थल की कोई सीमा नहीं; हृदय और आत्मा को कभी विश्राम नहीं।

संसार पर संसार के रूप-स्वरूप बनते गये; इनमें कौन स्वरूप हमारे हैं?

जब तुम मार्ग में विच्छिन्न मस्तक देखो तो उससे पूछो—उससे पूछो हृद्गत रहस्य; क्योंकि उसी से तुमको गुप्त रहस्य अवगत होगा।

हाफ़िज़

साथी! प्रभात हुआ; सूर्य निकल आये। लजीली उषा अपने मोती-से कंधे पर चमकीली हरीतिमा के कोमल उड़ते हुए ओस आँचल को समेट रही है।

साथी, प्रातःप्याली—प्रातःप्याली!

ओस से गुल्लाला के गाल चितकबरे हो गये और पुहुमि से प्रातःकालीन मधुर सुवास उड़ने लगी। स्वर्गीय समीर इठला-इठलाकर बह रही है। आगामी प्रभात की स्मृति में पियो!

लाल गुलाब अपने पन्ने के सिंहासन पर बैठा है; चमचमाती हरीतिमा-राजि उसके पैरों के नीचे बिछी है। मदिरा, साक़ी, मदिरा—अग्नि-सी चमचमाती लाल-सी लाल!

साथी! प्रभात व्यतीत होने के पूर्व ही प्रातः-प्याली—प्रातःप्याली!

अरे! उन्होंने मद्यगृह फिर बंद कर दिया। ऐसे प्रभात में मद्य-गृह के द्वार बंद! द्वारपाल! हम गिड़-गिड़ा रहे हैं—हमारे लिए द्वार खोल दे, हमारी ठोकरों से वह नहीं खुलता।

यह एक विचित्र और बुरी बात है कि ऐसे समय वे मद्य-गृह बंद कर दें। फिर भी हम तो पियेंगे ही—गुलाब-वृक्ष के नीचे ही सही। इस छोटे-से सोते से जीवन बहता है।

इस कौतुकी प्याली में सिकंदर का दर्पण है। इसमें समस्त ब्रह्मांड प्रतिबिंबित है; अनुरंजित आँखों के लिए चित्रों से परिपूर्ण है। यह विश्व-बुद्धि है, जिसे तुम पी रहे हो।

लाल-लाल प्रभात में, लाल-लाल गुलाब के नीचे लाल-लाल मदिरा पीते हुए, और उसके लाल-लाल होठों का चुंबन करते हुए! कोई भी मधुमक्खी ऐसे पुष्प से मधु नहीं पीती। कोई भी राजाधिराज मेरा-सा जीवन नहीं व्यतीत करता।

एक बार फिर, ओ हाफ़िज़, प्रभात हो रहा है। एक दिन और मिला, जिसमें तू उसका श्रीमुख ढूँढ़े। धैर्य रख! वह दिन आयेगा, जब किसी अपरिचित स्थान में तेरे दृढ़ हाथ उसका परदा उठा ही लेंगे।

बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०)

* * *

स्त्री-मात्र का रक्षक व परम हितैषी इष्ट-मित्र जगत्-विख्यात

Registered. रजिस्टर्ड

'कौनटैक्स'

इसके सेवन से गर्भ स्थापित नहीं होता, जो स्त्रियाँ गर्भ-धारण करना और अधिक सन्तान उत्पन्न करना नहीं चाहतीं, वे 'कौनटैक्स' के सेवन से कभी गर्भवती नहीं होतीं। क़ीमत फ़ी शीशी १॥) रु० डाक-ख़र्च ।=)

पता—आनंदजीवन-फ़ार्मेसी,

C. B. 137 आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोजिनीदेवी की दो कविताएँ

१—पालकी वाहक

धीरे रे, धीरे रे कंधे पर चढ़कर चलती है,
गीत-वायु में खिले पुष्प-सी वह पल-पल हिलती है।
फेनिल सरिता पर वन-खग-सी करती है वह विचरण;
उड़ती है वह मधुर स्वप्न के अधरों की वंशी बन।
कंधे पर सुकुमार भार ले शनैः-शनैः गाते हैं;
कंपन के तागे में गूँथी मुक्ता हम लाते हैं।
धीरे रे, धीरे रे उसको लाते हैं कंधे पर;
गीत-तुहिन में तारक-चल-सी हिलती है कंपन पर।
विधुर सिंधु-भ्रू पर तिरती वह रवि की स्वर्णकिरण-सी,
गिरती है वर की सुंदर आँखों के आँसू-कण-सी।
कंधे पर सुकुमार भार ले बढ़ते हैं, गाते हैं;
कंपन के तागे में गूँथी मुक्ता हम लाते हैं।

\+ \+ \+

२—अवगुंठिता

उसका जीवन एक स्वप्न है, नृत्य कर रही जहाँ लालसा
उसका कटि-पट, शीश-आवरण, संध्या के नव अरुण-जालसा
कुहरे का धूमिल पट पहने
स्वर्ण, लाल, नीलम के गहने
छिपा वासना की चितवन से ईर्षित-रवि से कोमलतर तन
उसके अवगुंठन के नीचे सकल सुरक्षित उसका जीवन
प्रणय-ताज की हीरक-कनि के
चिर रहस्य-सी प्रेमी मन के
यदपि किसी अनजाने का कर नहीं खोल सकता उसका मुख
काल हटा देता है मुख-पट, दृष्टिदोष करता ही है दुख
युवती की आँखों के मौन—
अश्रु रोक सकता है कौन?

रामरतन भटनागर 'हसरत'

× × ×

(घ) हृदयविहीन समीर

(अ) प्राणदान

उस विजयादशमी—सुपवित्र विजयादशमी के अवसान-काल को क्या कभी भूलूँगी—जिस दिन आपने उस भीषण बाढ़ से क्रोधोन्मत्त काली नागिन के समान उफान खाकर आती हुई नदी की लहरों से बचाया था, उसे क्या कभी भूल सकूँगी? नहीं, नहीं, उस पवित्र दिवस को जब आपने प्राणदान दिया था—कभी न भूल सकूँगी। वह समय—वह बाढ़ अब भी हृदय-पट पर ज्यों की त्यों चित्र के समान अंकित है। उसे मिटाने की इच्छा नहीं होती।

(आ) क्रांति का उदय

जब मैं जागृत हुई, मेरी मूर्च्छा भंग हुई—तब आपने आपको आपके कमरे में लेटी पाया था। मैं पलँग पर लेटी थी और आप—आप मेरे समीप ही एक कुर्सी पर हाँ, कुर्सी पर बैठे थे। जब पूछा था—कहाँ हूँ? तब आप ही ने कहा था—मेरे घर में।

उस समय मुझमें वार्तालाप करने की शक्ति नहीं थी। आपसे कुछ न पूछ सकी। केवल आपकी ओर निर्निमेष ताक रही थी। आपके सुरभि-निःश्वास का अनुभव कर रही थी। हृदय में क्रांति उठने लगी थी। किंतु हाय! कुछ ही काल पश्चात् उसी क्रांति ने मूर्च्छित कर दिया था।

(इ) प्रेम

बेसुधी दूर हुई। मैंने पूछा—आपका नाम—"समीर"। आह! वह मधुर स्वर में सना हुआ नाम अब तक मेरे कानों में गूँज रहा है।

दूसरे दिन जब मैं घर पहुँचायी गयी थी—तब आपने स्वयं अपने हाथों का सहारा देकर उतारा था, मेरे कमरे तक पहुँचाया था। और, आते समय मेरी ओर देखकर जो निःश्वास छोड़ी थी, वह—वह आज तक मेरे हृदय को द्रवित कर रही है। बस, उसी एक निःश्वास ने—उसी एक करुणापूर्ण निःश्वास ने—मुझे आपकी ओर खींच लिया। मैं आपसे प्रेम—हाँ, प्रेम ही कहूँ—करने लगी।

(ई) उद्दंडता

क्षमा—प्राणाधार, क्षमा। मुझे उस समय यह ज्ञात नहीं था—यह बोध नहीं था—कि प्रेमपथ सदैव कंटकपूर्ण रहता है। मैं इसे एक साधारण खेल समझ रही थी।

किसी प्रकार स्वस्थ हुई—चलने फिरने की शक्ति आयी। आपका पता भाई द्वारा—हाँ, भाई द्वारा ही जाना था। उस प्रेम के आवेश में आपको पत्र लिख बाह्य—उफ़! लिख ही तो दिया। किंतु हाय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम वह अभागा पत्र आपके पास पहुँचा, या नहीं। कुछ समय तक उत्तर की प्रतीक्षा की। किंतु निराश हो दूसरा पत्र लिख मारा और उसे स्वतंत्रतापूर्वक विचरने के लिए छोड़ दिया।

बहुत दिन तक उत्तर की प्रतीक्षा की। किंतु उत्तर न मिला। मेरी उद्दंडता का कुछ परिणाम न हुआ।

(उ) विषरूप

छः मास किसी प्रकार कष्ट सहकर बिताये, किसी को कानोंकान ख़बर न लगने दी। किंतु आह! रोग ने धर दबाया। शरीर क्षीण होने लगा। खाट का सहारा लिया। डाक्टरों ने जेबें भरीं। कह दिया—क्षय-रोग है!

ज्यों-ज्यों दवा की, रोग बढ़ता गया। उठने बैठने की शक्ति गयी—भोजन छूट गया। डाक्टरों ने कह दिया—आशा नहीं!

सर्वत्र अंधकार। काल का विकराल रूप आँखों के सामने दिखायी देने लगा। कुछ सोच, कुछ समझकर आपके पास इस भयानक परिस्थिति का संदेश भेजा; आपको लिवा लाने भेजा।

उस समय निराश हो चुकी थी। संसारी जीवन विषरूप हो चुका था। केवल एक बार आपको देखने की आशा थी। वह आशा—आह! वह आशा भी...

(ऊ) सुख की खान

समाचार के साथ पत्र मिला। बहुत प्रयत्न किया कि उसे स्वयं ही पढ़ूँ। किंतु विवश थी। शरीर में शक्ति न थी, नेत्रों में तेज न था। अंधकार छाने लगा। पत्र हाथ से छूट गया। भाई ने पत्र पढ़कर सुनाया। उफ़! आनंद से हृदय परिपूरित हो गया। जिसके लिए वर्षभर कठोर कष्ट सहन किया, वही नेत्रों के सम्मुख दिखायी देने लगा। संपूर्ण सुख-संपत्ति, जो वर्षभर से गुम हो गयी थी, अचानक हाथ आ गयी। सुख की खान मिल गयी। द्वार की ओर ही नेत्र जा टिके—सब दुःख न जाने कहाँ चला गया था। शरीर आप-ही-आप शक्तिवान् होने लगा। नेत्रों की ज्योति आप ही बढ़ गयी। सर्वत्र आनंद दिखायी देने लगा।

(ए) प्रायश्चित्त

ईश्वर, तू बड़ा निष्ठुर है!—उस उठती हुई सुख-तरंग को तूने पत्र का रूप धर बैठा दिया—तोड़ दिया—मरोड़ दिया—और अब दाँत निकालकर हँस रहा है—अपनी निर्लज्जता का परिचय दे रहा है।

हाय, प्राणनाथ! आपने मेरे वियोग में प्राणों की आहुति देकर मुझे पाप का भागी बनाया। किंतु क्या आपने यह भी सोचा कि पाप का प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा? सुनो—प्राणों की आहुति देकर—जीवन-नौका को अनंत जल में विलीन कर।

(ऐ) अनंत पथ

वह देखो, समीर समीर के साथ जा रहे हैं। कितना सुख है—कैसा मोहन रूप है। मैं भी उसी समीर के समीर के साथ क्यों न जाऊँ?—पथ अनंत है। क्या चिंता है। एक बार चलकर तो देख लूँ—कैसा अनंत पथ हुआ करता है।

नाथ! आपको पुकारते-पुकारते बहुत दूर आ गयी; फिर भी पथ का ओर-छोर नहीं। सत्य है, यह प्रेम-पथ अनंत है।

आप हृदय-विहीन कहते सीधे चले आ रहे हैं और मैं—मैं हृदय-विहीन कहती हुई पीछा कर रही हूँ। देखो, किसकी विजय होती है और किसकी पराजय?

(ओ) पराजय

आया! प्राणेश्वर आया—इस पथ का छोर समीप आया।......कहाँ है? यह देखो—यह हृदय ही वह अनंत पथ है, और वह कटार—उस पथ को पकड़नेवाला हाथ है। अपना हृदय-द्वार खोलकर उस हाथ से उस कल्पित अनंत पथ को पकड़कर कहूँगी—देखो, यह है।

हाथ ने हृदयपट को खोल—उस कल्पित पथ को पकड़ लिया। अंत आ गया। मेरी विजय हुई। आपकी पराजय। आप हृदय-विहीन सिद्ध हुए—मैं हृदय-संपन्न। पहले आप बड़े गर्व से समीर में विचर रहे थे, किंतु अब आपका वह गर्व नष्ट हो गया। उसका नाश करनेवाली अभागिनी मैं हूँ।

(औ) पुरस्कार

उस दिन—पिछली विजयादशमी के दिन—आपने प्राणदान दिया था, हृदय छीनकर चरणों की दासी बनाया था। आज भी वही विजयादशमी है। आज भी आपने हृदय प्रदान किया, अनंत पथ का छोर दिखाया—जिसके पुरस्कार-स्वरूप आपको एक पदवी दिया चाहता हूँ। यदि अनुचित हो तो क्षमा करना। सुनो वह पदवी है—"हृदय-विहीन समीर।"

देवकरण पाटनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर-राष्ट्र

१--इटली की कूटनीति

जैसा कि पिछले महीने में लिखा जा चुका है इटली ने आस्ट्रिया के साथ जर्मन नाज़ी (नात्सी) दल की छेड़छाड़ बढ़ती देखकर उसकी सहायता करने का वचन दिया था। तदनुसार आवश्यकता के समय घटनास्थल पर भेजने के लिए इटली ने अपनी सेना भी सन्नद्ध कर रक्खी थी। म्यूनिस में स्थित नाज़ी नेता हर हैबिख्त ने डालफ़स की सरकार को नाज़ियों से मेल कर लेने के लिए केवल एक सप्ताह का समय दिया था। इसी से फ़रवरी के अंत में मध्य-योरप की स्थिति विशेष चिंतनीय हो गयी थी। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि आस्ट्रिया के मामले के कारण जर्मनी और इटली का संघर्ष अनिवार्य है। सौभाग्यवश मामला टेढ़ा देखकर हैबिख्त ने अपना निश्चय बदल दिया, जिससे आसन्न विपत्ति किसी तरह टल गयी।

जर्मनी से सहानुभूति

जर्मनी के प्रति इटली का यह भाव देखकर बहुतों को आश्चर्य हुआ; क्योंकि अभी तक अंतर-राष्ट्रीय प्रश्नों के उपस्थित होने पर वह बराबर जर्मनी का पक्ष लेता रहा है। अस्त्र-शस्त्रों के मामले में जर्मनी के समानाधिकार की माँग का समर्थन तो वह किया ही करता था, साथ ही संधियों में आवश्यक संशोधन कराने के संबंध में भी उसकी सहानुभूति जर्मनी की ओर देखी जाती थी।

इटली के इस रुख़ की एक ख़ास वजह थी। मुसोलिनी ने इटली में अपनी सत्ता सुदृढ़ रूप से स्थापित करने के लिए जिस नीति का अनुसरण किया था, उससे फ़्रांस तथा अन्य राष्ट्र उसके विरोधी बन गये थे। योरप में मुसोलिनी के कार्यों की तीव्र आलोचना का जाती थी। इसलिए उसे एक ऐसे दोस्त की ज़रूरत थी, जो उसी के तरीक़ों को अख़्तियार कर उससे भी आगे बढ़ जाने की चेष्टा करता। इसी से हिटलर के उद्भव से उसे बड़ी ख़ुशी हुई। उसने बड़ी प्रसन्नता के साथ उसका स्वागत किया और समय-समय पर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करनी शुरू की।

मुसोलिनी की यह चाल शीघ्र ही सफल हुई। अब योरपीय राष्ट्रों का ध्यान हिटलर की ओर आकर्षित हो गया और वे मुसोलिनी के कारनामों को भूल गये। दो वर्ष पहले तक जहाँ चारों ओर से उसकी निंदा की जाती थी और वह योरपीय शांति के लिए ख़तरनाक समझा जाता था, वहीं अब अनेक राष्ट्र उसके प्रशंसक बन गये हैं। योरपीय राजनीति में उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया है, और अब वह अत्यंत प्रभावशाली राष्ट्र-नायक समझा जाता है।

जर्मनी के साथ इटली की सहानुभूति होने का एक कारण और था। जर्मनी की तरह वह भी युद्ध-समाप्ति के बाद की गयी संधियों में परिवर्तन कराना चाहता था। युद्ध के दिनों में उसे जो बड़ी-बड़ी आशाएँ दी गयी थीं, वे पूरी नहीं की गयीं। फ़्रांस तथा ब्रिटेन की तुलना में उसे बहुत कम भूमि मिली, और अपनी सुरक्षा के लिए एड्रियाटिक समुद्र के तट पर वह जो एकाधिपत्य प्राप्त करना चाहता था, वह भी अपनी इच्छा के अनुसार उसे नहीं मिला। इसी से वह संधियों में आवश्यक संशोधन कराने की जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी आदि की माँग का समर्थन किया करता था।

परिवर्तित दृष्टिकोण

ऐसी अवस्था में जर्मनी के प्रति इटली का रुख़ सहसा इस तरह बदल जाने का कारण क्या है? घटनाओं पर सरसरी निगाह डालने से ही पता चल जायगा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका कारण इटली का अपना स्वार्थ ही है। जहाँ तक जर्मनी का संबंध है वहाँ तक मुसोलिनी को नाज़ीवाद से कोई चिढ़ नहीं, बल्कि वह उसे जर्मनी के लिए अच्छा ही समझता है। फ़ासिस्टवाद तथा नाज़ीवाद में बहुत कुछ समानता भी है। किंतु इसका यह आशय नहीं कि आस्ट्रिया पर भी हिटलर का आधिपत्य स्थापित हो जाने से उसे कोई आपत्ति न होगी। आस्ट्रिया की सीमा इटली का सीमा से लगी हुई है, अतः यह स्पष्ट है कि आस्ट्रिया पर जर्मनी का प्रभाव स्थापित हो जाने से इटली के लिए नया ख़तरा पैदा हो जायगा। इस मामले के संबंध में जर्मनी के प्रति इटली के बदले हुए रुख़ का यही कारण है।

आस्ट्रिया और जर्मनी के परस्पर मिल जाने की संभावना का ख़याल कर फ़्रांस तथा ब्रिटेन भी चिंतित थे, किंतु आस्ट्रिया के किसी राजनीतिक दल की सहानुभूति प्राप्त न कर सकने के कारण वे उस पर उतना प्रभाव न डाल सके, जितना इटली डाल सका। हाइमवेह्र-दल का अस्तित्व इटली के लिए विशेष लाभदायक प्रमाणित हुआ। इटली के लिए साम्यवादी दल की सहानुभूति प्राप्त करना तो संभव न था; क्योंकि फ़ासिज़्म और साम्यवाद में मेल होने की गुंजाइश ही कहाँ है। रहा नाज़ी-दल, सो उसका समर्थन इटली जान-बूझकर नहीं करना चाहता था; क्योंकि उसका पक्ष ग्रहण करने का आशय आस्ट्रिया पर जर्मनी के आधिपत्य का रास्ता खोल देना ही होता, जो उसे पसंद न था। इसी से इटली ने इन दोनों में से किसी का समर्थन न कर हाइमवेह्र-दल की सहानुभूति प्राप्त करने की नीति अख़्तियार की।

हाइमवेह्र-दलवाले आस्ट्रिया में फ़ासिस्ट शासन-प्रणाली स्थापित करना चाहते हैं। उनके एक नेता ने अभी कुछ ही दिन पहले यह मत प्रकट किया था कि आस्ट्रिया में अब जो शासन-विधान बनेगा, वह फ़ासिस्ट ढंग का ही होगा। यह बात छिपी नहीं है कि इटली बहुत पहले से ही इस दल की आर्थिक सहायता करता रहा है और वह डालफ़स की सरकार को भी इस दल का अधिकाधिक सहारा लेने की सलाह देता रहा है।

जर्मनी अपनी ओर से बराबर इस बात की कोशिश करता रहा है कि जहाँ तक हो सके, इटली से उसका मेल पूर्ववत् बना रहे। नाज़ी-नेताओं तथा नाज़ी-अख़बारों ने पोलैंड का टुकड़ा तथा अलसेस-लोरेन वापस पाने की माँग पेश की। उन्होंने तो यहाँ तक कहना शुरू किया था कि स्विट्ज़रलैंड का भी एक हिस्सा हमें मिलना चाहिए; क्योंकि वहाँ भी कुछ लोग जर्मन-भाषा बोलते हैं। किंतु दक्षिण-टाइरोल के संबंध में, जो अब इटली के अधिकार में हैं, वे चुप्पी साध गये। उद्देश्य यही था कि इस विषय में कुछ न कहने से जर्मनी के साथ इटली की सहानुभूति बनी रहे, किंतु मुसोलिनी इतना नादान न था जो उनकी यह चाल न समझता। वह ख़ूब जानता था कि मौक़ा आते ही नाज़ी लोग दक्षिण-टाइरोल पर भी अधिकार जमाना चाहेंगे, इसी से उनके भुलावे में न आकर उसने आस्ट्रिया में जर्मन-नाज़ियों की छेड़छाड़ का खुल्लम-खुल्ला विरोध करने का निश्चय किया। यदि हर हैबिख़्त की अंतिम सूचना की अवधि समाप्त होने पर जर्मनी की ओर से आस्ट्रियन सीमा पर आक्रमण किया जाता, तो इटली कदापि चुप न रहता। वह भी आस्ट्रिया की सहायता के लिए अपनी सेना भेज देता, जिससे भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हो जाती।

इटली क्या चाहता है

इटली के इस व्यवहार का संबंध उसकी भूमध्य-सागर-संबंधी नीति से है। भूमध्यसागर के तट पर अपना प्रभाव स्थापित करने के उद्देश्य से दक्षिण तथा मध्य-योरप में वह अपनी स्थिति अधिक सुदृढ़ बनाना चाहता है। अभी तक उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी फ़्रांस ही था, किंतु अब आस्ट्रिया के संबंध में जर्मनी की नीति स्पष्ट हो जाने से वह उससे भी भयभीत हो गया है। इसी से अब वह आस्ट्रिया के मामले में पहले से भी अधिक दिलचस्पी लेने लगा है।

मुसोलिनी का इरादा आस्ट्रिया और हंगरी में घनिष्ठता स्थापित कर उन्हें अपने प्रभाव में बनाये रखने का मालूम होता है। फ़्रांस तथा उसके समर्थक लघु-राष्ट्र-मंडल का प्रभाव रोकने और जर्मन ख़तरे से बचने का यही सबसे अच्छा उपाय उसकी समझ में आता है। इसी से वह इधर डॉक्टर डालफ़स का समर्थन ज़ोरों से करता रहा है। आस्ट्रिया, हंगरी और इटली में आर्थिक एकता स्थापित करने तथा एक दूसरे को व्यापारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविधाएँ प्रदान करने की योजना भी उसने तैयार की हैं। तीनों राष्ट्रों में इस संबंध में परस्पर सलाह-मशविरा भी शुरू हो गया है !*

जर्मनी के हैम्बर्ग-नामक बंदर की प्रतियोगिता के कारण इटली के ट्रीस्ट-बंदर के मार्ग से होनेवाले व्यापार को इधर काफ़ी नुक़सान पहुँचा है, अतः मुसोलिनी ने अब उसकी अवस्था सुधारने का भी निश्चय कर लिया है। मध्य-योरप के व्यापार को इस रास्ते से जाने के लिए उसने कई उपाय सोचे हैं। उनमें से एक यह भी है कि ट्रीस्ट का बंदर आस्ट्रिया के लिए बिलकुल खोल दिया जाय।

आस्ट्रिया और हंगरी के साथ इटली को इस तरह घनिष्ठता स्थापित करते देखकर फ़्रांस अवश्य ही चिंतित हो रहा होगा; क्योंकि इटली की प्रभाव-वृद्धि उसे कदापि सह्य नहीं हो सकती। जहाँ तक आर्थिक प्रश्न का संबंध है, वहाँ तक लघु-राष्ट्र-मंडल को आस्ट्रिया, हंगरी और इटली में अधिक निकट का सम्पर्क स्थापित होने देने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। जर्मनी और आस्ट्रिया की अपेक्षा इटली और आस्ट्रिया की आर्थिक मित्रता को वे उतना अधिक ख़तरनाक नहीं समझते। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि यदि इटली ने इन देशों पर अपना संरक्षण स्थापित करने की चेष्टा की और सीमा-परिवर्तन-संबंधी उनकी माँग का समर्थन करना शुरू किया, तो वे चुप नहीं रह सकते। इटली की यह कूटनीति कहाँ तक सफल होगी, कहना कठिन है।

× × ×

२—स्पेन में फिर अशांति

स्पेन में जब से पार्लियामेंट का नया निर्वाचन हुआ है, तब से वहाँ की स्थिति बड़ी चिंताजनक हो गयी है। जैसा कि हम जनवरी की संख्या में लिख चुके हैं, सारे फ़साद की जड़ साम्यवादियों और प्रजातंत्रवादियों का चुनाव में हार जाना ही है। चुनाव के ठीक पहले इन लोगों ने धमकी दी थी कि यदि हमारी हार हुई तो स्पेन की सड़कें युद्ध-क्षेत्र में परिणत हो जायँगी। इसी से गत दिसंबर महीने में वहाँ के साम्यवादियों ने ज़ोरों से विद्रोह कर दिया था। उस समय तो पुलिस तथा सेना की सहायता से किसी तरह शांति स्थापित कर दी गयी, किंतु अब फिर विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी है और आंदोलनकारियों ने भयंकर रूप से उपद्रव मचाना शुरू कर दिया है।

विद्रोह के लक्षण देखकर प्रधान मंत्री लीनर लेरो ने पहले ही गरम दलवालों को, जो विद्रोह कर रहे हैं, चेतावनी दे दी थी कि "उपद्रवों का दमन कठोरतापूर्वक किया जायगा, चाहे ऐसा करने के कारण ख़ून-ख़राबी ही क्यों न हो जाय।" इसी नीति के अनुसार इस समय वह आंदोलनकारियों को दबाने की चेष्टा कर रहे हैं।

वर्तमान सरकार के प्रति वहाँ के मज़दूरों में कितना असंतोष फैल गया है, यह आये दिन की हड़तालों से स्पष्ट है। १२ फ़रवरी से मकान बनाने का काम करनेवालों ने जो हड़ताल कर दी थी, वह अभी तक जारी है। इस बीच में १२ मार्च को सारे देश में आम हड़ताल भी मनायी गयी। उस दिन सारा काम-काज बंद रहा, यहाँ तक कि एक भी समाचारपत्र प्रकाशित न हो सका। दो राजतंत्रवादी पत्रों के प्रकाशन का यत्न अवश्य किया गया था, पर वह सफल न हो सका।

यद्यपि आम हड़ताल की समाप्ति के बाद कुछ लोगों ने यह आशा प्रकट की थी कि ख़तरा बढ़ने की अब कोई संभावना नहीं है, फिर भी बाद के समाचारों से स्पष्ट है कि देश में अब भी पर्याप्त अशांति विद्यमान है। वर्तमान मंत्रिमंडल तथा कोर्टेस (स्पेन की पार्लियामेंट) में राजतंत्रवादियों, फ़ासिस्टों, ज़मींदारों, कारख़ानेवालों आदि का ही ज़ोर है। ये लोग साम्यवादियों तथा प्रजातंत्रीय पक्षवालों की शक्ति कुचलने पर तुले हुए हैं। उधर आंदोलनकारियों ने इस बात का संकल्प कर लिया है कि देश में पुनः राजतंत्र की स्थापना न होने देंगे। इसी तरह वे फ़ासिस्ट शासन की स्थापना के भी विरुद्ध हैं।

वर्तमान स्थिति को देखते हुए वहाँ राजतंत्र स्थापित होने की संभावना तो नहीं मालूम होती, किंतु योरप में इस समय जैसी हवा बह रही है उसे देखते हुए यह असंभव नहीं कि शीघ्र ही इटली-जर्मनी आदि की

* बाद का समाचार है कि इस योजना को तीनों राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया है और उस पर तीनों के हस्ताक्षर भी हो गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह स्पेन में भी फ़ासिस्ट ढंग का शासन स्थापित हो जाय। साम्यवादी तथा अन्य विरोधी दलवाले आपस में मिलकर काम करने की कोशिश तो बहुत कर रहे हैं, पर कठिनाई यह है कि इस समय शासनसूत्र उनके हाथ में नहीं है। जो लोग इस समय देश के शासन-तंत्र का संचालन कर रहे हैं, वे स्वेच्छा से अपनी शक्ति कम न होने देंगे और सारी ताक़त लगाकर अपने को शासनारूढ़ किये रखने का प्रयत्न करेंगे। अतः यह स्पष्ट है कि स्पेन में अभी शांति और सुव्यवस्था की आशा करना व्यर्थ है।

× × ×

३—निरस्त्रीकरण की समस्या

निरस्त्रीकरण की समस्या अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है। ब्रिटिश-प्रतिनिधि श्रीएंथोनी एडन अभी हाल ही में पेरिस, रोम और बर्लिन गये थे और उन्होंने इस संबंध में उक्त देशों की सरकारों से बहुत कुछ सलाह-मशविरा किया, किन्तु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। फ़्रांस और जर्मनी का मतभेद दूर करने में उन्हें सफलता नहीं मिली। जर्मनी को फ़्रांस के प्रस्ताव मंज़ूर नहीं और फ़्रांस को जर्मनी की बात पसंद नहीं। अतः स्थिति सुधरे तो कैसे सुधरे?

जर्मनी ने ब्रिटेन को जो यह लिख दिया था कि निरस्त्रीकरण के मामले में ब्रिटेन का पंच बनकर काम करना व्यर्थ है; क्योंकि प्रधान मंत्री हर हिटलर के कार्य-क्रम के अनुसार जर्मनी अन्य राष्ट्रों के समान अपने अस्त्र-शस्त्र बढ़ायेगा और इस प्रोग्राम में कोई कमी नहीं की जा सकती—उससे योरप में बड़ी सनसनी फैल गयी है। जर्मनी के इस सैनिक आयोजन से बेल्जियम विशेष चिंतित हो रहा है। अभी उस दिन वहाँ के प्रधान मंत्री ने पार्लियामेंट में साफ़-साफ़ कह दिया है कि जब तक बेल्जियम की परिस्थिति सुरक्षित नहीं है, तब तक योरप में सच्ची शांति नहीं हो सकती। बेल्जियम पार्लियामेंट के एक सदस्य ने तो यहाँ तक कहा है कि जर्मनी की सैनिक स्थिति अब ऐसी हो गयी है कि वह विजय की आशा से शीघ्र ही युद्ध छेड़ सकता है; क्योंकि उसके पास अच्छे अस्त्र-शस्त्र तथा हवाई जहाज़ हैं और उसने बड़ी ही भीषण ज़हरीली गैस तैयार कर ली है।

संभव है, जर्मनी के संबंध में कही गयी इन बातों में अत्युक्ति की मात्रा हो, पर इसमें संदेह नहीं कि जर्मनी की गति-विधि से बेल्जियम और फ़्रांस अब पहले से भी अधिक सशंक हो गये हैं। फ़्रांस ने तो पहले ही से जर्मन ख़तरे का सामना करने की तैयारी कर रक्खी है, किंतु उससे अभी उसकी तृप्ति नहीं हुई है। उसने और भी ज़ोरों की तैयारी करने का निश्चय कर लिया है। योरप में सबसे अधिक हवाई जहाज़ उसके पास हैं, फिर भी वह और नये जहाज़ बनवाने जा रहा है। योरप की यह हालत देखकर ब्रिटेन भी सशंक हो उठा है और वह भी सैनिक तैयारियों की ओर अधिक ध्यान दे रहा है। उधर जापान और अमेरिका में अलग प्रतिद्वंद्विता चल रही है। रूस तो जापानी आक्रमण के भय से बहुत पहले से ही तैयारी करता रहा है। तात्पर्य यह कि इस समय चारों ओर अस्त्र-शस्त्र बढ़ाने का ही प्रयत्न हो रहा है और संसार के राष्ट्र शान्ति के बजाय युद्ध की ओर अग्रसर हो रहे हैं। ऐसी अवस्था में निरस्त्रीकरण का मसला तय होने की आशा ही कैसे की जा सकती है!

× × ×

४—ईस्थोनिया में फ़ासिस्टों का उपद्रव

बाल्टिक समुद्र के तट पर फ़िनलैंएड की खाड़ी से लगा हुआ ईस्थोनिया नाम का छोटा-सा देश है। कुछ समय से यहाँ फ़ासिस्टों का ज़ोर बढ़ रहा था। १५-१६ मार्च के पत्रों में प्रकाशित ख़बरों से मालूम होता है कि फ़ासिस्टों का उपद्रव बढ़ते देखकर वहाँ की सरकार ने ख़तरे की हालत घोषित कर दी है। उसने उनकी "भूतपूर्व कर्मचारी संघ"-नामक संस्था की तमाम शाखाओं को भंग कर उनके नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया है।

एक ओर तो यह कहा गया है कि कहीं अशान्ति नहीं है, दूसरी ओर यह भी बताया गया है कि ख़तरे की हालत की घोषणा छः महीने तक लागू रहेगी! हमारी समझ में इसका मुख्य उद्देश्य आगामी अप्रैल में होनेवाले पार्लियामेंट के चुनाव को स्थगित करना ही है। मंत्रिमण्डल के निश्चयानुसार १६ मार्च को बजट स्वीकृत होने के बाद ही पार्लियामेंट भंग होने को थी। फिर ख़तरे की हालत मौजूद रहते हुए शायद उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम भी न लिया जायगा । तात्पर्य यह कि जर्मनी-पोलैण्ड आदि की तरह वहाँ भी अधिनायक-तंत्र स्थापित होने जा रहा है । छः महीने बाद भी इसका अन्त होगा या नहीं, कहना कठिन है । फ़ासिस्टों ने सशस्त्र विद्रोह की जैसी तैयारी की थी, उसे देखते हुए ऐसा नहीं मालूम होता कि वे पैक्ट्स की सरकार को किसी तरह चैन लेने देंगे । जो हो, फ़िलहाल तो वहाँ दमन और दण्ड का ही दौरदौरा रहेगा । परिणाम चाहे भला हो या बुरा—शासकों को इसकी चिन्ता ही क्या ?

× × ×

५—फ़िलिपाइन-द्वीप की स्वतंत्रता

प्रशान्तसागर के फ़िलिपाइन-द्वीप को स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए अमेरिका की सरकार ने 'हावेज़कटिंग ला' नामक जो बिल स्वीकृत किया था, उसमें इस बात की गुंजाइश रक्खी गयी थी कि यदि फ़िलिपाइन की व्यवस्थापक सभा उसे स्वीकार कर ले, तो १०–१२ वर्षों के भीतर उसे पूर्ण स्वतंत्रता मिल सकती है । इसके लिए उसे एक वर्ष का समय दिया गया था । पर उसने उसे अग्राह्य समझकर अस्वीकृत कर दिया । वहाँ वाले चाहते हैं कि स्वतंत्रता उन्हें तुरंत दे दी जाय, अमेरिका वहाँ अपना जहाज़ी बेड़ा रखने की शर्त पर ज़ोर न दे और कुछ समय के लिए उचित शर्तों पर उनके साथ व्यापारिक समझौता कर ले ।

हावेज़कटिंग-विधान को स्वीकृत या अस्वीकृत करने के लिए क़ानूनन जो अवधि दी गयी थी, वह जिस दिन समाप्त हुई, उसी दिन वाशिंगटन में मैनुअल क्वेज़न के नेतृत्व में फ़िलिपन लोगों का एक प्रतिनिधि-मण्डल राष्ट्रपति रूज़वेल्ट से मिला था । उसने अपने देश की ओर से जो योजना पेश की, उसमें दो बातें कही गयी हैं । एक तो यह कि अमेरिका दो-तीन वर्ष के भीतर ही फ़िलिपाइन की स्वतंत्रता स्वीकृत कर ले और दस वर्ष तक उसके साथ व्यापारिक रियायत करने की शर्त मंज़ूर करे ; या फिर दूसरा उपाय यह है कि ४ जुलाई १९४० से उसे पूरी आज़ादी दे दी जाय ।

क्वेज़न-प्रतिनिधि-मण्डल की बातों का कोई प्रभाव राष्ट्रपति रूज़वेल्ट पर पड़ा है या नहीं, कहना कठिन है । फिर भी हाल में यह ख़बर आयी है कि अब उनकी सरकार एक नया बिल पेश करनेवाली है, जिसमें स्पष्ट रूप से यह शर्त रख दी जायगी कि अमेरिका वहाँ अपनी जलसेना का अड्डा न रक्खेगा । इतना होते हुए भी यदि स्वतंत्रता प्रदान करने की अवधि पहले ही जैसी १०–१२ वर्ष की रक्खी गयी तो संभव है, फिलिपाइनवाले उसे पुनः स्वीकार न करें । वे लोग शीघ्र से शीघ्र स्वतंत्र होना चाहते हैं । ऐसा होने से यदि उन्हें कुछ आर्थिक हानि उठानी पड़े, तो उसे भी सहने को वे तैयार हैं । यदि अमेरिका वाणिज्य-प्रतिबन्ध लगाकर उनकी चीनी मँगाना बंद कर देगा, तो वे जापान आदि को भेजना शुरू कर देंगे । जापान के साथ उनका व्यापार बढ़ ही रहा है, अतः इस सम्बन्ध में उन्हें विशेष कठिनाई न होगी ।

क ख ग

आपका भविष्य

अपने जीवन के संबंध में कोई भी ९ प्रश्न सीलबन्द लिफाफे में लिख भेजिए । उनका सही-सही उत्तर मय उस सीलबन्द लिफ़ाफ़े के १।) में भेज देंगे । डाकव्यय अलग । विस्तृत वर्षफल २॥) में बना दिया जायगा । अपने पैदा होने की तारीख़ और समय या चिट्ठी लिखने का समय लिख भेजिए ।

प्रोफ़ेसर जौहरी

(२४५) मैनस्ट्रीट, देवलाली कैंप ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान और व्यवसाय

१—रणदेवता के नवीन शस्त्रों की विफलता

जीवन-संहार के बड़े-बड़े भयानक यंत्र बन जाने पर भी आधुनिक युद्धों में उतने सिपाही नहीं मरते, जितने प्राचीन युद्धों में मरा करते थे। विषैली गैसों और हवाई जहाज़ों के रहते भी फ़्रांस का गत युद्ध बड़ा ही सुरक्षित था। महाभारत के युद्ध में १८ दिन में १८ अक्षौहिणी सेना ख़त्म हो गयी थी। म्यूज़-आर्गोन के युद्ध में १०,००,००० अमेरिकन सम्मिलित हुए थे, और उनमें से १८,००० सिपाही १८ दिन में मारे गये थे। सन् २१६ ईस्वी पूर्व ७६,००० की सेना में से ७०,००० रोमन, केनी (Cannoe) की लड़ाई के बाद, रणक्षेत्र में मरे पड़े थे; लड़ने की आयु के सब रोमनों का सातवाँ भाग एक ही दिन में मारा गया था। पुरानी लड़ाइयों में जहाँ मनुष्य हाथोंहाथ लड़ते थे, दो में से एक मनुष्य ज़रूर मारा जाता था; पराजित सेना अपनी टाँगों की शक्ति और साँस की मज़बूती से ही दौड़कर बच सकती थी।

तोपों में पहले से बहुत सुधार हुआ है, परंतु इसके साथ ही लड़ाई की तरह वे भी कम घातक हो गयी हैं। ये दोनों बातें ऊपर से परस्पर विरोधी जान पड़ती हैं, परंतु हैं ये ठीक। इसका कारण यह है कि सिपाही लोग जिन अस्त्रों का सामना बिना मरे नहीं कर सकते, उनके सामने से वे छिप जाते हैं। पिछले सेनापति अपने सिपाहियों को हिदायत किया करते थे कि जब तक तुम शत्रु की आँख से आँख न मिलालो, तब तक गोली मत चलाओ। वे दस गोलियों से जितने मनुष्य मार डालते थे, उतने आज का सिपाही १०,००० गोलियाँ चलाकर भी नहीं मार सकता। गत विश्वव्यापी युद्ध में एक सिपाही को मारने के लिए २८,००० राइफ़ल और मशीन-गन की गोलियाँ चलायी गयी थीं। सन् १८७० के फ़्रांस-जर्मन-युद्ध में एक सिपाही को मारने के लिए तोपख़ाने के ८० राउंडों की ज़रूरत होती थी। सन् १९०४-५ के रूस-जापान-युद्ध में प्रति मृतक तोप से चलाये गये राउंडों की संख्या बढ़कर १२० हो गयी थी। गत विश्वव्यापी युद्ध में, अनुमान किया गया है, यह संख्या बढ़कर ८६० तक पहुँच गयी थी।

नागरिक प्रजा की दशा सिपाहियों से भी अच्छी रही है। इतिहास-लेखक कहता है—जब मुग़ल राजधानी के अवशिष्टांश से कूच कर गये, तो वहाँ लोगों का न कोई चीत्कार था और न कोई हाहाकार सुनायी देता था; क्योंकि जितने भी लोग उस नगर में थे, वे सबके सब मरे पड़े थे। मुग़ल चङ्गेज़ख़ाँ संसार का सबसे बड़ा विजेता माना गया है। उसने, ७०० वर्ष हुए, १२ वर्ष के विकीर्ण युद्ध में १,८९,००,००० चीनियों का वध किया था। गत योरपीय महायुद्ध में मीलों दूर गोला फेंकनेवाली तोपें थीं, वायुयान थे और विषाक्त गैसें थीं; फिर भी मरनेवाले १००० मनुष्यों में सिपाहियों के सिवा एक भी कोई दूसरा न था। अब नागरिक प्रजा के एक थोक का विनाश शस्त्रों की अपेक्षा दयालुता या क्रूरता की बात हो चुकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर भी, हाल में शांति पर बहुत-सा साहित्य निकला है। उसका केन्द्रिक पक्ष यह है कि अगला युद्ध "सभ्यता का नाश कर देगा।" जिन लोगों को विशेषज्ञ माना जाता है, वे बड़े विश्वास के साथ कहते हैं कि आनेवाले युद्धों में सारे के सारे नगर नष्ट कर दिये जाया करेंगे, सारी प्रजा पर विषाक्त गैस छोड़ दी जाया करेगी और थोड़े-से वायुयानों के साथ जहाज़ों का पूरा बेड़ा डुबा दिया जायगा।

गत योरपीय महायुद्ध में बम्ब फेंककर न कोई जहाज़ डुबाये गये थे और न नगर नष्ट किये गये थे। आधुनिक सैनिक-वायुयान पहले से अच्छे हैं, परंतु महायुद्ध के वायुयानों से भिन्न नहीं। वे अधिक तेज़ी से उड़ सकते हैं, अधिक ऊँचा उड़ सकते हैं और अधिक भारी बोझ ले जा सकते हैं। परंतु वे हवा में एक जगह नहीं रह सकते; वे लंबाई के रुख़ ऊपर नहीं उठ सकते; वे शस्त्रों से सुसज्जित नहीं किये जा सकते; उनमें अभी तक अपनी सहज त्रुटियाँ मौजूद हैं। सैनिक अर्थों में, वे केवल मारकर भाग सकते हैं—वे खड़े रहकर लड़ नहीं सकते।

इसके अतिरिक्त, योरपीय महायुद्ध के बाद, वायुयानों को मार गिरानेवाली तोपों में बहुत अधिक सुधार हुआ है। अब दूरी मालूम करनेवाले यंत्र (Range-finder) को, आक्रमण करने के लिए आते हुए वायुयान की ओर फिरा दिया जाता है। इसके साथ ही एक गोली चलानेवाला यंत्र बिजली के द्वारा चार तोपें चलाता है। उनमें से एक मिनट में १०० के हिसाब से गोले निकलकर ज़ोर से फटने लगते हैं। इस प्रकार लोहे की गोलियों की बौछार-सी होने लगती है। वायुयान को इस बौछार में से होकर जाना पड़ता है। फटते हुए गोलों में इस्पात के टुकड़े ४,००० फ़ुट प्रति सेकण्ड की गति से उड़ते हैं। इन तोपों के गोले जितना ऊँचा ऊपर जाते हैं, उतना ऊँचा कोई भी लड़ाकू वायुयान आज तक नहीं जा सका। गत पाँच वर्ष में इन यंत्रों के साथ गोले फेंके जाते रहे हैं। इससे प्रकट होता है कि आकाश में दो मील ऊपर उड़ते हुए किसी बम्ब बरसानेवाले वायुयान को जब पृथ्वी पर खड़े तोपची देख लें, तो उसका औसत जीवन १२ सेकण्ड से अधिक नहीं होगा।

दो मील से कम उँचाई पर उड़नेवाले वायुयानों को एंटी एयरक्राफ़्ट मशीनगन की आधा इंच की फ़ौलाद की गोलियाँ निशाना बना लेंगी। १,००० फ़ुट की उँचाई पर वायुयान जो कपड़े की ढालें छाये रहते हैं, उन पर ऐसी बैटरियाँ एक मिनट में औसत ३०० गोलियाँ मारती हैं। हाल में एक बैटरी ने १०० मील प्रतिघंटे के वेग से उड़ते हुए वायुयान की ढाल पर १$\frac{1}{2}$ मिनट में १,४२० निशाने मारे थे। उस समय वायुयान १० [illegible] फ़ुट की उँचाई पर था।

"बंब" एक भयभीत कर देनेवाला शब्द हो गया है। इसके गिर्द लड़ाकू वायुयान का कुछ अद्भुत भाव इकट्ठा हो गया है। बम्ब ठीक वही चीज़ है, जो गोला है; अंतर केवल इतना है कि बम्ब ऊपर से गिराया जाता है और गोला ३,००० फ़ुट प्रति सेकंड तक के वेग से तो[प] के द्वारा मारा जाता है। प्रायः कहा जाता है कि बम मारकर नगर का नाम-निशान मिटा दिया गया, परं[तु] गोलों के संबंध में ऐसी बात कभी नहीं कही जाती। कहनेवाले इस बात पर ध्यान नहीं देते कि बंब को ठीक निशाने पर मारना मुश्किल है और गोले को आसान। ६० मील प्रतिघंटे के वेग से दौड़ती हुई मोटर में बैठकर पत्थर फेंकने का यत्न कीजिए और देखिए कि आप सड़क से दस फ़ुट पर खड़े खंभे पर निशाना लगा सकते हैं या नहीं। पत्थर एक वृत्तांश में जायगा और आप का निशाना खंभे से कम से कम उतनी दूर रह जायगा, जितनी दूर उससे आपकी मोटर थी। बंब फेंकनेवाले वायुयान के रास्ते में भी यही कठिनाई है। वह अपने निशाने से दो-तीन मील परे होता है और १५० मील प्रतिघंटे के वेग से उड़ता रहता है। तीन मील ऊपर से आप सड़क पर छकड़ा नहीं पहचान सकते और रेलगाड़ी ही पहचान सकते हैं। इसलिए बहुत उँचाई से गिराये हुए बंबों के लक्ष्य बड़े-बड़े होने चाहिए। जो बंब बरसानेवाला आधे समय तक भी नगर की चहार-दीवारी में बंब गिरा सकता है, वह अपने को विशेषज्ञ समझ सकता है।

समाचार-पत्रों के फ़ौजी विशेषज्ञ जो चित्र खींचते हैं, उनमें एक ही बंब को सारी इमारतों के चौक पर गिरता हुआ दिखाया जाता है। बंब ऐसी अलौकिक चीज़ नहीं [illegible] लकड़ी के मीनार पर चीनी तोप[ची]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठे हुए थे। जापानियों ने उस पर ६,००० पौंड बंब फेंके। फिर भी वे उसे गिरा न सके। अमेरिका के यूनाइटेड-स्टेट्स की सेना ने एक बार परीक्षा के तौर पर एक पुल पर ६०० पौंड बम्ब गिराये ; परंतु फिर भी पुल पर केवल निशान ही पड़े, वह टूटा नहीं। अन्ततः ११०० पौंड बंबों का उपयोग किया गया, तब कहीं वह टूटा। बड़े से बड़े बंब भी, फ़ौलाद और कंक्रीट की इमारतों पर लगने या उनके निकट फटने से, केवल स्थानीय हानि ही करते हैं, वे इमारत को गिरा नहीं देते। गत योरपीय युद्ध के चार वर्षों में लण्डन पर जितने भी हवाई जहाज़ों के हमले हुए, उनमें सब मिलाकर ६७० व्यक्ति मारे गये थे। यह संख्या उस संख्या से आधी थी, जो उसी नगर में सन् १९२८ में भीड़ के आने-जाने से मरी थी।

हमारी साँस लेने की हवा में विषाक्त गैस के कारण होनेवाली अदृश्य मृत्यु ने कल्पना पर जितना संस्कार डाला है, उतना किसी दूसरे शस्त्र ने नहीं। लोगों का विश्वास है कि यह चुपचाप चलती है; यह न दिखायी देती है और न इसमें कोई गंध ही होती है। वे समझते हैं कि इससे मरनेवाले मनुष्यों को तभी इसका पता लगता है कि हमें गैस दी गयी है, जब वे मृत्यु की वेदना में अपना कण्ठ पकड़ते हैं। परंतु बात असल में इसके सर्वथा विपरीत है। अधिकांश फ़ौजी गैसें, इसके पूर्व कि वे इतनी तेज़ हों कि उनसे मनुष्य की हानि हो, देखी और सूँघी जा सकती हैं। मस्टर्ड गैस की गंध ऐसी होती है, मानों किसी ने रणभूमि में लहसुन का बघार उड़ा दिया हो। हरे अनाज या पुराने सूखे घास की-सी गंध आये तो समझ लो, फोस्जीन (Phosgene) है। लेविसाइट (Lewisite) की गंध खट्टे फल-जैसी होती है। रुलानेवाली गैस में से चीनियों के लोबान-जैसी मधुर गंध आती है।

लड़ाई की जिन बहुत ही सफल गैसों का इस समय हमें ज्ञान है, वे सब गत महायुद्ध के अन्त में प्रायः उपयोग में लायी जाती थीं। बहुत बड़े क्षेत्र को गैसों से विषाक्त कर देना जैसे अब असम्भव है, वैसे ही तब था। कारण यह कि इसके लिए बहुत अधिक गैस की ज़रूरत होगी, तभी वह इतनी तेज़ हो सकती है कि वह भयावह बन जाय। एक सौ गज़ वर्ग-क्षेत्र को गैस से विषाक्त बनाने के लिए उसमें ३०० पौंड फोसजीन-गैस को एक-सा बिखेरने की ज़रूरत है। न्यूयार्क या लंदन-जैसे शहर को गैस से ढकने के लिए २,८०,००,००० पौंड गैस चाहिए। इतनी गैस को फैलाने के लिए १४,००० वायुयान चाहिए--उनमें से प्रत्येक २,००० पौंड उठा सके। परंतु सारे संसार में ऐसे १,४०० भी वायुयान नहीं हैं। गैस एक बहुत ही परिमित उपयोग का अस्त्र है। मनुष्यों को मारने में यह कितनी असमर्थ है, इसका पता इस बात से लग सकता है कि गत महायुद्ध में गैसों से हानिग्रस्त होने के कारण ७०,००० से भी अधिक अमेरिकन सिपाही अस्पतालों में आये थे, परंतु इनमें से केवल १,३९९ की मृत्यु हुई। अर्थात् जितने लोग अस्पताल में आये थे, उनमें से केवल २ प्रतिसैकड़ा ही मरे। महायुद्ध के बाद से कोई ऐसी गैस आविष्कृत नहीं हुई, जो लड़ाई में काम दे सके और साथ ही अधिक घातक भी हो। इसके विपरीत ऐसे गैस-मास्क बन गये हैं, जिन्हें मुँह पर पहन लेने से कोई भी लड़ाई की गैस हानि नहीं पहुँचा सकती।

गैस और बंबों को वायुयानों द्वारा नागरिक बस्ती में ले जाना संभव है, इसलिए लोग मान लेते हैं कि इन दोनों चीज़ों को वहाँ ज़रूर ले जाया जायगा। परंतु बात असल में यों है कि ऐसा करना युद्ध के नियमों के विरुद्ध है। यदि यह नियमों के विरुद्ध न भी होता, तो भी कोई सेना अपने बहुत ही परिमित उपायों को नागरिक बस्ती पर नष्ट करना पसंद न करती। सेना का उद्देश्य शत्रु-सेना को पराजित करना होता है। किसी नगर पर जितनी गैस छोड़ी जायगी, सिपाहियों को गला घोंटकर मार डालने के लिए उतनी ही उसके पास कम रह जायगी। जिसे बंब को गिरजे पर गिराकर व्यर्थ नष्ट किया गया, उससे शत्रु के शस्त्रागार को नष्ट करने का काम लिया जा सकता था।

भविष्य में यदि कोई युद्ध हुआ, तो वह—जैसा कि गत महायुद्ध और दूसरे सब युद्ध जीते गये हैं—विनाश के नये-नये अस्त्रों से नहीं, वरन् उस मनुष्य की सहायता से जीता जायगा जिसके हाथ में कटार होगी। इस कटार को भाला कहकर इसे चाहे तोप के सिरे पर लगा लीजिए, परंतु यह कटार ही है—ठीक वैसी ही जैसी कि ५,००० वर्ष पहले के योद्धा काम में लाते थे। मनुष्य के सारे आधुनिक आयुध हाथ में कटारवाले मनुष्य के लिए मार्ग तैयार करते हैं। वही लड़ाई को जीतता और भूमि को छीनकर अपने अधिकार में रखता है। *

संतराम (बी० ए०)

× × ×

* इस लेख की सामग्री अमेरिका के Saturday Evening Post-नामक पत्र से संकलित की गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—कृत्रिम रेशम

गत पचास वर्षों में संसार में विज्ञान की बहुत उन्नति हुई है। इसके उदाहरण रेल, तार, बिजली, बेतार का तार, हवाई जहाज़, विटैमीन आदि हैं। इसके अतिरिक्त रसायनशास्त्र के आविष्कर्ताओं ने अनेक पदार्थ, जो अब तक केवल प्रकृति की सहायता से ही प्राप्त होते थे, अपनी प्रयोगशालाओं में बनाये हैं, जैसे—नील, रंग, रबड़, सुगंध, खाद, कृत्रिम रेशम आदि। इन पदार्थों के इस प्रकार तैयार करने के कारण अब इनका मूल्य घट गया है; यह अधिक मात्रा में सरलता से मशीनों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

इन आविष्कारों के कारण व्यापार के लिए भी बहुत क्षेत्र बढ़ गया है। आजकल बाज़ारों में अनेक चमकीले रंग-बिरंगे बहुत सस्ते कपड़े बिकते हैं। यह सब कृत्रिम रेशम के बने होते हैं, परन्तु इनकी चमक-दमक रेशम से भी अधिक मालूम होती है।

यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए कृत्रिम रेशम का विवरण दिया जाता है।

अब तक रेशम के लिए मनुष्यों को रेशम के कीड़ों पर निर्भर रहना पड़ता था। इन कीड़ों का पालना तथा इनके लिए मलबरी के पौदों की पैदावार करना और फिर उनमें से रेशम निकालना एक कठिन कार्य है। इस रेशम को रँगने के लिए भी विशेष प्रकार के रंगों की आवश्यकता होती है। इन सब कारणों से रेशम का मूल्य भी अधिक हो जाता है, और केवल धनवान् लोग ही इसको व्यवहार में ला सकते हैं। जब अनेक पदार्थ कृत्रिम रीति से बनने लगे, तब कुछ वैज्ञानिकों का ध्यान रेशम की ओर गया और अनेक अन्वेषणों के पश्चात् वह लोग रुई तथा बाँस के गूदे से रेशम के समान चमकीले पदार्थ को बनाने में सफल हुए।

इतिहास—रेशम के कपड़े रुई के कपड़ों से अधिक चमकीले तथा मज़बूत होने के कारण ही अच्छे समझे जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) के द्वारा रेशम तथा रुई के धागों की परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ है कि रेशम के धागों की सतह एक-सी होती है, परंतु रुई के धागों की सतह काँटेदार होती है। यदि रुई के धागों की सतह के काँटे दूर कर दिये जायँ, तो रुई कम से कम चमक में रेशम के समान हो जाय। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने कार्य शुरू किया।

सन् १७३४ ई० में रूमर (Reumer) नाम के एक वैज्ञानिक ने बतलाया कि यदि रुई को किसी द्रव्य में घोला जाय और उस घोल से फिर धागा बनाया जाय, तो इसमें रेशम के समान चमक पैदा हो सकती है। इसी सिद्धान्त पर आजकल कृत्रिम रेशम बनाने की समस्त विधियाँ अवलम्बित हैं।

रुई, काग़ज़ या लकड़ी का गूदा, इनमें से किसी प्रकार का भी सेलूलोज़ (Cellulose) कृत्रिम रेशम बनाने में कच्चे माल की तरह आजकल काम में लाया जाता है। सबसे पहले इन Cellulose से ऐसा पदार्थ बनाया जाता है, जो किसी उपयुक्त घोल में घुलकर सजातीय (Homogeneous) घोल बन जाय।

पाठकों के मनोरंजनार्थ (कृत्रिम) रेशम बनाने की प्रमुख विधियों का थोड़ा-थोड़ा वर्णन नीचे दिया जाता है।

(१) कारडोनेट विधि (Chardonnet process)—रेशम बनाने की यह सबसे प्राचीन विधि है। इसको प्रथम बार एक फ़ांसीसी वैज्ञानिक एंडमरी (Andemery) ने मलबरी पौदे की छाल पर आज़माया। परन्तु कारडोनेट ने इस विधि की उन्नति की और इसको व्यापारिक स्थिति पर पहुँचाया। इसी से इस विधि के साथ उसका नाम जुड़ा है।

इस विधि में रुई (Cotton cellulose) काम में लायी जाती है। रुई को गंधक और शोरे के तेज़ाब (Sulphuric acid, Nitric acid) के द्वारा सेल नाइट्रेट * (Cell-nitrate) में परिणत किया जाता है। अब इसे धोने के पश्चात् दबाव डालकर इसकी अधिक नमी दूर की जाती है और अलकोहल (Alcohol) और ईथर (Ether) में घोला जाता है। यह घोल बहुत सावधानी से छाना जाता है, जिससे इसमें किसी प्रकार के ठोस पदार्थ न रह जायँ। अब यह सूत बनाने के योग्य हो जाता है।

इस घोल को मशीन के दबाव द्वारा फ़व्वारों में होकर तेज़ी से निकाला जाता है। इन फ़व्वारों में ख़ास संख्या में एक-से व्यास के अनेक छोटे-छोटे छिद्र होते हैं, जिनमें से घोल फ़व्वारे की तरह बाहर निकलता है। इस

* अनेक पदार्थ शोरे और गंधक के तेज़ाब के साथ सावधानी से काम करने पर नाइट्रेट में बदल जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़व्वारों के छेदों के व्यास पर ही कृत्रिम रेशम के सूत की मोटाई निर्भर है ।

कातने की मशीन पर फ़व्वारे (Jets) इस प्रकार बने होते हैं कि वह चारों ओर से घोल को ठोस बनानेवाले पदार्थ से घिरे रहें । ज्यों ही सूत बनाने के घोल की महीन धारें फ़व्वारों में से निकलती हैं, वह चारों ओर के घोल के कारण ठोस अथवा अर्द्ध ठोस अवस्था में परिवर्तित हो जाती हैं एवं लगातार घूमनेवाली गोल गिर्री पर सूत बनकर चढ़ती जाती हैं । इसके पश्चात् यह सूत बटा जाता है और फिर इसकी कुकड़ी बना ली जाती हैं ।

इस विधि से जो सूत बनता है, उसमें एक भय यह था कि यह सेल नाइट्रेट होने के कारण अत्यन्त शीघ्र जलनेवाला था । परन्तु कारडोनेट ने इन कुकड़ियों को एमोनियम सलफ़ाइड से धोकर रेशम के सूत के सेल नाइट्रेट * को सेलहाइड्रेट (Cell-hydrate) में परिवर्तित कर दिया । अब इनमें कोई भय की बात नहीं रही । अब यह कुकड़ियाँ धो डाली जाती हैं; इनका रंग दूर कर दिया जाता है और अन्त में सुखा ली जाती हैं । सूखने पर धागे रेशम के समान चमकीले हो जाते हैं ।

* एमोनियम सलफ़ाइड से अनेक पदार्थों के नाइट्रेट्स के नाइट्रो ग्रूप हाइड्रोक्सिल ग्रूप (Hydroxyl group) में बदले जा सकते हैं ।

डाबर (डाः एस, के, बर्म्मन) लिः

५० वर्षों से प्रसिद्ध, अतुल्य देशी पेटेंट दवाओं का बृहत् भारतीय कार्यालय !

STAR TRADE SKB MARK (REGD)

(स्टार ट्रेड मार्क)

यात्रा और भ्रमण में !

मंगाइये ! छपकर तैयार है !
नवीन सम्वत् १९९१

लाखों स्त्री पुरुष इसे मंगाकर साल भर तक लाभ उठाते हैं ।

आप १ कार्ड लिखकर मंगा लें । बट जाने पर दूसरे संस्करण की बाट जोहनी पड़ेगी ।

नोट—सब जगह मिलती हैं । दवा ख़रीदते समय स्टार ट्रेड मार्क और डाबर नाम अवश्य देख लिया करें ।

विभाग नं० (१३१) पोस्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता ।

एजेंट—लखनऊ (अमीनाबाद पार्क) में किंग मेडिकल हाल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) क्युप्र-एमोनियम विधि (Cuprammonium process)—

इस विधि में भी कृत्रिम रेशम बनाने में रुई काम में लायी जाती है। सबसे पहले रुई को दाहक सोडा (Caustic soda) या सोडियम कार्बोनेट के साथ उबालकर उसका चिकनापन दूर किया जाता है। फिर क्युप्र-एमोनियम के घोल में कम तापक्रम पर इसको घोला जाता है। अब सूत कातने का घोल तैयार हो गया। पिछली विधि में बतायी रीति से इससे दबाव डालकर सूत काता जाता है। फ़व्वारों के चारों ओर इसमें गंधक का अम्ल भरा होता है और सेलूलोज़ की फ़व्वारे की-सी धारें इसमें आते ही ठोस सूत की शकल की हो जाती हैं। इसके पश्चात् सूत को गिर्रियों के ऊपर ही हलके अम्ल से धोकर उनका ताम्र का पदार्थ दूर करके सुखाया जाता है और अन्त में बटकर कुकड़ी बनाकर फिर पहले की तरह इनको धोया जाता है; रंग दूर किया जाता और सुखाया जाता है।

इस विधि से बना रेशम कारडोनेट की विधि से बने रेशम से अधिक चमकीला और मज़बूत होता है और चाक इसमें काम में आया हुआ ताम्र और अमोनिया फर से निकाला जा सकता है, इस कारण इस विधि से बना रेशम अधिक सस्ता भी पड़ता है।

(३) विसकोज़ विधि (Viscose process)—आजकल अधिकतर कृत्रिम रेशम इसी विधि द्वारा बनाया जाता है। इस विधि में रुई का सेलूलोज़ अथवा लकड़ी का गूदा या इन दोनों के मिश्रण में से कोई भी कच्चा माल काम में लाया जा सकता है, परंतु आजकल सब ओर सस्तेपन का अधिक ध्यान होने के कारण लकड़ी का गूदा ही प्रायः सब कारख़ानों में काम में लाया जाता है।

लकड़ी का गूदा यहाँ तक सुखाया जाता है कि उसमें लगभग ७% नमी रह जाय। अब इसको १०% दाहक सोडे में कई घंटे तक भिगोया जाता है। फिर गूँधने-वाली मशीनों द्वारा एक निश्चित तापक्रम पर दो घंटे तक गूँधा जाता है। इस प्रकार से बना हुआ सोडियम सेलूलोज़ लोहे के पीपों में भरकर कुछ दिनों एक कमरे में रक्खा रहने दिया जाता है। इस कमरे का तापक्रम स्थायी होता है। इस प्रकार रखने से इसमें कोई रासायनिक परिवर्तन हो जाता है, जिसके कारण इस पदार्थ की चिपचिपाहट कम हो जाती है। अब इसको कार्बनडाई सल्फ़ाइड के साथ हिलाया जाता है, यहाँ तक कि उसका रंग सफ़ेद से नारंगी-जैसा हो जाता है। उस समय यह सेलूलोज़ ज़ेनथेट (Cellulose xanthate) बन जाता है। अब इसको हलके दाहक सोडे में घोलकर सूत कातने का घोल तैयार किया जाता है और सूत कातकर, कुकड़ी बनाकर, धोकर सुखा लिया जाता है।

(४) एसीटेट विधि (Acetate process)—इस विधि में रुई या काग़ज़ का सेलूलोज़ काम में लाया जाता है। इससे एसीटिक एनहाइड्राइड (Acetic anhydride) और सिरकाम्ल (Acetic acid) द्वारा गंधक के तेज़ाब की उपस्थिति में सेलूलोज़ एसीटेट (Cellulose acetate) बनाया जाता है, जिसको घोल में से पानी डालकर तलछट किया जाता है। अब इसको धोकर, सुखाकर, एसीटोन में घोलकर सूत कातने का घोल तैयार किया जाता है।

इससे पहली विधियों की तरह सूत तैयार किया जाता है। धागों को ठोस बनाने के लिए काष्ठमद्यार्क (Methylated spirit) काम में लाया जाता है। अब इसको सुखाकर, इसका बचा हुआ एसीटोन निकालकर, बटकर सूत की कुकड़ियाँ बना ली जाती हैं।

इस विधि से बने रेशम का सूत सबमें मज़बूत होता है। परन्तु इसमें एक ऐब होता है कि इसके धागों पर अन्य विधियों से बने रेशम के समान रंग नहीं चढ़ सकता। इसके लिए विशेष रंगों की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि इस विधि में अन्तिम पदार्थ सेलूलोज़ एसीटेट बनता है और अन्य विधियों में सेलूलोज़ या सेलूलोज़-हाइड्रेट बनता है। इसका एसीटाइल ग्रूप दूर करके सेलूलोज़ हाइड्रेट बनाया जा सकता है, परन्तु ऐसा करने पर सूत कमज़ोर हो जाता है।

गुण—कृत्रिम रेशम असली रेशम से अधिक चमकदार होता है और सरलता से चाहे जैसे रंग में रँगा जा सकता है। परन्तु इसके साथ ही यह सूत असली रेशम के सूत से कमज़ोर तथा मोटा होता है। हाल ही में यह पता चला है कि कृत्रिम रेशम के धागों को फ़ॉरमेलडीहाइड (Formaldehyde) में भिगो दें तो यह मज़बूत हो जाता है।

'कृत्रिम रेशम' नाम भ्रमात्मक है; क्योंकि यह वैज्ञानिक रचना में असली है। रेशम से बिलकुल भिन्न होता है। वस्तुतः यह अधिकतर रुई और सन के समान होता है।

आजकल अन्य देशों में कृत्रिम रेशम का व्यापार बहुत उन्नति पर है, परन्तु अभी भारतवर्ष में ऐसे व्यापारों की ओर लोगों का ध्यान ही नहीं गया है।

सेलूलोज़ और लकड़ी के गूदे से अन्य पदार्थ भी बनाये जाते हैं—जैसे काग़ज़, सेलूलाइड के खिलौने, फ़ोटो की फ़िल्में। और, इन सबमें लगभग एक ही सी मशीनों की आवश्यकता होती है। इससे यह व्यापार इस देश में कच्चे माल की अधिकता के कारण आसानी से फैल सकता है। हमें आशा करनी चाहिए कि धनी लोग इन व्यापारों की ओर ध्यान देंगे।

सच्चिदानंद (एम्० एस-सी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—अभिनंदन

माधुरी के प्रेमी पाठक जानते होंगे कि नवलकिशोर-इस्टेट, माधुरी के संस्थापक स्व० मुंशी विष्णुनारायणजी भार्गव के स्वर्गवास के उपरांत, कोर्ट आफ़ वार्ड्स के प्रबंध में आ गयी थी, अतएव इस्टेट की पत्रिका होने के कारण माधुरी भी कोर्ट आफ़ वार्ड्स की देखरेख और प्रबंध में निकलती थी। किंतु अब इसी अप्रैल-महीने से कोर्ट का प्रबंध हट गया है, और माधुरी पूर्व की भाँति अपने हिंदी-प्रेमी जन्मदाता—स्वनामधन्य स्व० मुंशीजी के सुयोग्य उत्तराधिकारी श्रीमान् मुंशी रामकुमारजी भार्गव की छत्रच्छाया में आ गयी है। मुंशी रामकुमारजी होनहार नवयुवक हैं; हिंदी से आपको विशेष अनुराग है; अपने स्वर्गीय पिताजी की स्मृति-रक्षा का भी आपको ध्यान है। अतएव अधिकार-प्राप्ति के इस सुयोग का हम अभिनंदन करते हैं और भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि श्रीमान् मुंशी रामकुमारजी तथा तेजकुमारजी को दीर्घायुष्य प्रदान करें और वह स्वस्थ मस्तिष्क, बुद्धि और विवेक के साथ नवलकिशोर-इस्टेट का कार्यभार सफलतापूर्वक वहन करते हुए सुयश प्राप्त करें। तथास्तु।

२—दिल्ली-साहित्य-सम्मेलन

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का तेईसवाँ अधिवेशन दिल्ली में समाप्त हो गया। किंतु सम्मेलन के मनोनीत सभापति महाराज बड़ौदा के भाषण पर विशेषतः उन लोगों को निराशा हुई होगी, जिन्होंने समस्त हिंदीभाषियों की आँखों में धूल झोंककर महाराज का नाम प्रस्तावित किया था तथा उनको सभापति बनाने के लिए आकाश-पाताल एक कर डाला था। महाराज सम्मेलन में स्वयं उपस्थित भी नहीं हो सके; महाराज के नायब दीवान कर्नल शिवराजसिंहजी ने प्रतिनिधिस्वरूप आपका भाषण पढ़ा तथा आचार्य पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय ने कार्यवाहक सभापति का पद ग्रहण किया। महाराज की ओर से एक हज़ार रुपये हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को दिये जाने की घोषणा की गयी। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के संतोष के लिए इससे अधिक और क्या चाहिए था। साहित्य-सम्मेलन के अंतर्गत साहित्य-परिषद्, दर्शन-परिषद्, इतिहास-परिषद् तथा विज्ञान-परिषद् के अधिवेशन हुए। कवि-सम्मेलन, गल्प-सम्मेलन तथा पत्रकार-सम्मेलन भी हुआ। सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव भी पास हुए। श्री० जयचंद्र विद्यालंकार को 'भारतीय इतिहास की रूप-रेखा'-नामक ग्रंथ पर १२००) का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक दिया गया और श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम० ए० को 'स्त्रियों की स्थिति' नामक पुस्तक पर ५००) का सेकसरिया-पुरस्कार दिया गया। आगामी सम्मेलन के लिए इंदौर का निमंत्रण स्वीकृत किया गया। संक्षेप में दिल्ली-सम्मेलन की इतनी ही कार्यवाही है।

३—सभापति का भाषण

सभापति के भाषण में हमें जो बात दिखती है वह केवल यह कि भाषा-प्रचार तथा एक लिपि की योजना ही इस भाषण के दो दृष्टिबिंदु हैं। ये कोई नयी बातें नहीं हैं। प्रचार-कार्य सम्मेलन की ओर से होता ही रहता है और एक लिपि की आवश्यकता भी महसूस की जाने लगी है। इन पर ज़ोर भी दिया जाता रहा है। अतएव यह चलता-फिरता भाषण अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति की योग्यता की दृष्टि से बहुत हलका, उथला एवं अपर्याप्त है। यह भाषण पढ़कर हमें दुःख इस बात का होता है कि सभापति महोदय की दृष्टि में हिंदी-भाषा का उतना भी महत्त्व नहीं है जितना उनकी प्रांतीय भाषा मराठी का है। अभी पिछले वर्ष की बात है, स्वयं महाराज बड़ौदा ही सत्रहवीं महाराष्ट्र-साहित्य-कानफ़रेंस के सभापति कोल्हापुर में हुए थे। आपके उस भाषण को पढ़कर ही हमें यह लिखना पड़ा है कि दिल्लीवाला भाषण चलता-फिरता भाषण था। उस भाषण का सारांश यह था—"विज्ञान, शिक्षा तथा विषय-विशेष की पुस्तकों एवं पाश्चात्य देशों के शास्त्रीय ग्रंथों के अनुवादों का अभाव है...एक ही ढंग की पुस्तकें तो बहुत निकलती हैं, परंतु विषय-विशेष की ओर ध्यान नहीं दिया जाता... ग्रंथकारों को चाहिए कि माँग और पूर्ति की आर्थिक नीति को भूल जायँ और समाज को उन्नति की ओर ले जानेवाले साहित्य का सृजन करें।" इत्यादि। आपने 'भारतीय साहित्यिक एकेडेमी' की योजना का विचार उपस्थित किया था, ताकि अंतर-प्रांतीय सहयोग से प्रकाशक-गण चुनी हुई पुस्तकों के अनुवाद भिन्न-भिन्न भाषाओं (वर्नाक्यूलर्स) में प्रकाशित कर सकें। प्रस्तावित एकेडेमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चाहिए कि एक सार्वजनीन भाषा और लिपि निश्चित करे और एक मत से निर्धारित रूढ़ शब्दों का प्रचार करे। अस्तु, महाराष्ट्र-साहित्य-कानफ़रेंस में जिस एकेडेमी का संकेत महाराज ने सभापति की हैसियत से किया था, उसकी पूर्ति के लिए वह हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को तैयार कर सकते थे—अर्थात् हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ही वह एकेडेमी बने। कहना व्यर्थ है कि नागरी ही वह सार्वजनीन लिपि तथा हिंदी ही वह सार्वजनीन भाषा हो सकती है, जिसको केंद्र मानकर अंतर-प्रांतीय सहयोग सफल बनाया जा सकता है। परंतु इस बात का दिल्लीवाले भाषण में कोई ज़िक्र नहीं। किंतु भविष्य की सच्ची आवश्यकता यही है। हमने भाद्रपद की माधुरी में यह संकेत किया था कि सम्मेलन को आज जो रूप प्राप्त है, वह दस वर्षों में बदल जायगा; उसे केवल प्रकाशन-संस्था के रूप में रहना पड़ेगा। उसके लक्षण स्पष्ट देख पड़ते हैं। सम्मेलन को अभी से उसके लिए सोचते रहना चाहिए, ताकि परिस्थितिवश ही अपने को झुकाने का कलंक उसके ऊपर न लगे—प्रत्युत परिस्थिति के संचालन का श्रेय वह प्राप्त कर सके। तब अखिल भारतीय साहित्य-सम्मेलन के रूप में अंतर-प्रांतीय भाषाओं के साहित्य का संचालन करने की ज़िम्मेदारी उसीके ऊपर होगी। यदि ऐसा वह कर सकेगा तब तो वह जीवित रह सकेगा; अन्यथा दूसरी गति निश्चित है।

४—साहित्य-परिषद्

सबसे अधिक निराशा हमें साहित्य-परिषद् के अधिवेशन से हुई है। वस्तुतः साहित्य-परिषद् का सभापति ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो हिंदी-साहित्य के अंग-प्रत्यंग से परिचित होकर अधिक-से-अधिक प्रांतीय और विदेशी साहित्यों से भी परिचित हो। तभी वह साहित्य की गति-विधि पर भली भाँति प्रकाश डाल सकता है और तुलना के लिए भिन्न-भिन्न साहित्यों की विशेषताओं को उपस्थित कर सकता है। वह केवल सभापति का आसन सुशोभित करने अथवा विज्ञापनबाज़ी के लिए न बुलाया गया हो, बल्कि साहित्य को कुछ देने की भी क्षमता उसमें हो। ऐसी परिषद् में लोग 'लफ़्फ़ाज़ी' अथवा केवल शब्द-कौशल देखने-सुनने नहीं जाते और न 'चोर' अथवा 'चित-चोर' की व्याख्या ही सुनने के लिए अपना समय बर्बाद करते हैं। सभापति से वे साहित्यशास्त्र की गवेषणा सुनना चाहते हैं। और, साहित्य की ठोस बातों का निरूपण जब सभापति के भाषण में नहीं मिलता तो श्रोताओं के दिल पर क्या गुज़रती है, यह वे ही जानते हैं। यह भी बात नहीं कि हिंदी में बहु भाषा और बहु साहित्याभिज्ञ विद्वान् न हों। साहित्याचार्य पं० शालग्राम शास्त्री, डॉ० हेमचंद्र जोशी, श्रीधीरेंद्र वर्मा प्रभृति अनेक विद्वानों से हिंदी-भाषा-भाषी भली भाँति परिचित हैं। हिंदी-साहित्य से परिचित अन्य भाषाओं के विद्वान् भी ऐसी परिषदों के सभापति का आसन सुशोभित करें तो कोई हानि नहीं। साहित्य की इतनी अधिक व्यापक सत्ता है कि हमें अपनी इस छोटी-सी चहारदीवारी के बाहर भी जाने की सुविधा प्राप्त है। फिर कोई कारण नहीं कि स्वागत सभाएँ दर्शकों और श्रोताओं के लिए निराशाजनक आयोजन उपस्थित करें। ऐसा जान पड़ता है कि साहित्य-परिषद् के सभापति का चुनाव बहुत निराशाजनक परिस्थितियों में किया गया; अन्यथा ऐसी बात न होती। बँगला, मराठी, गुजराती-साहित्य-परिषदों के सभापतियों अथवा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की पिछली साहित्य-परिषदों के सभापतियों के भाषणों की तुलना में जब हम दिल्ली-साहित्य-परिषद् के सभापति के भाषण पर विचार करते हैं, तो बड़ी निराशा उत्पन्न होती है।

५—एक अप्रिय प्रसंग

"हिंदी-कविता में छायावाद" शीर्षक के अंतर्गत लगभग दो वर्षों से पं० महेशप्रसाद मिश्र 'रसिकेश' मुख़्तार के लेख 'सुकवि' मासिक पत्र में निकल रहे हैं। जनवरी, सन् १९३४ (वर्ष ६, अंक १०) में रसिकेशजी का पत्र हमारे पढ़ने में आया और उसके नीचे सुकवि-संपादक का एक फ़ुटनोट भी। फ़ुटनोट से विदित होता है कि रसिकेशजी ने इन पंक्तियों के लेखक को भी एक पंच अपने और अपने प्रतिवादी लेखक के मामले में निर्णय के लिए चुना है। रसिकेशजी अपने प्रतिवादी लेखक पर अदालत में मान-हानि का मुक़दमा चलाने का विचार कर रहे थे, किंतु सुकवि-संपादक श्री० सनेहीजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर आपने उसे साहित्यिकों की पंचायत में पेश करना स्वीकार कर लिया है। रसिकेशजी की इस सुबुद्धि की हम प्रशंसा करते हैं; कौन जाने, हम स्वयं ऐसे प्रसंग पर साहित्यिकों की पंचायत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने ऐसे मामले को, जिसे हम अपने विचार से मानहानि का समझते, पेश करना स्वीकार करते या न करते। पर हमारी और रसिकेशजी की स्थिति में कुछ अंतर है—यह कि रसिकेशजी खुद ही मुख़्तार हैं, सुकवि हैं, भाषा और भाव का ज्ञान उन्हें है; संभवतः क़ानूनी दाँवपेंच को हमसे अधिक अच्छा समझते हैं। वह यदि मुख़्तार होते हुए कुछ सोच-समझकर मानहानि का दावा दायर करने के लिए अदालत की शरण लेने जा रहे थे तो उन्हें अपने विवेक और बुद्धि पर क़ानून का ककहरा भी न जाननेवाले लोगों की अपेक्षा कुछ अधिक विश्वास रहा होगा। फिर भी साहित्यिक होने के नाते साहित्यिकों के निर्णय को मंज़ूर कर लेना उन्होंने अपना धर्म समझा। अब प्रश्न यह है कि दूसरा पक्ष भी साहित्यिकों के निर्णय के सामने सिर झुकाने को तैयार है या नहीं? जब तक दूसरे पक्ष का वक्तव्य भी लिखित रूप में सामने न आ जाय, तब तक किसी भी साहित्यिक के लिए ऐसे मामले में पंच होना एक भूल कर बैठना है—संभवतः ऐसी भूल जान-बूझकर करना आचार्य द्विवेदीजी, पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी अथवा अन्य किसी को भी पसंद न होगा। यही उनके अस्वीकार करने अथवा चुप्पी साधने का कारण हो सकता है। हमें भी, बहुत दिन हुए, रसिकेशजी ने एक पत्र इसी संबंध में लिखा था। इधर सुकवि-संपादक का नोट भी प्रकाशित हो चुका है। पंच होना बुरा नहीं, पर पंच बनकर वादी अथवा प्रतिवादी द्वारा अपने निर्णय की अवमानना देखना कदाचित् प्रस्तुत प्रसंग की अपेक्षा भी अधिक मानहानिजनक है। इसलिए रसिकेशजी को खूब सोच-समझकर साहित्यिकों की पंचायत के सामने यह मामला पेश करने के पहले इस बीच में इस बात की भी गारंटी ले लेनी चाहिए कि सुकवि-संपादक दूसरे पक्ष को भी साहित्यिक पंचों का निर्णय मानने के लिए राज़ी कर सके हैं, या नहीं। ऐसा होने पर कोई भी विवेकशील साहित्यिक ऐसे अप्रिय प्रसंग को ख़त्म करने के लिए तैयार किया जा सकेगा; अन्यथा रसिकेशजी हों अथवा कोई हों, उनके सामने स्वतंत्र मार्ग खुला हुआ है। रही हमारी व्यक्तिगत बात, सो इन दिनों चि० अंचल के अस्वस्थ रहने के कारण हम महीने-दो महीने के लिए क्षमा माँगते हैं।

६—संपादक-सम्मेलन या ख़ानगी बैठक ?

सूचनाएँ पढ़ने में आया करती थीं कि दिल्ली-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर संपादक सम्मेलन भी होगा। सो यह भी हो गया। लेकिन जिस प्रकार इसकी काररवाई हुई, उससे प्रकट होता है कि यह संपादक-सम्मेलन तो नहीं, केवल पत्रकारों की एक ख़ानगी बैठक थी, जिसमें वहाँ उपस्थित कुछ पत्रकार और लेखक सम्मिलित हो गये थे। एक तो आख़िर तक यह नहीं बताया गया कि किन महानुभाव के सभापतित्व में यह सम्मेलन होगा; दूसरे, इसमें एक-आध ऐसे अनुचित एवं उच्छृंखल प्रस्ताव पास हुए हैं जो यह स्पष्ट प्रकट करते हैं कि उक्त सम्मेलन केवल कुछ के 'शासन' और 'सत्ता' की रूपरेखा खींचने के लिए ही किया गया था। एकतंत्रवाद का रूप दिखाकर इस सम्मेलन ने व्यष्टि और समष्टि के बीच—व्यक्ति और संस्था के बीच एक ऐसी स्पष्ट भेद की रेखा खींच दी है, जो पत्रकार-पद को अपमानित करनेवाली है। सभ्य संसार अब तक यही जानता था कि संस्था के लिए व्यक्तियों का बलिदान किया जा सकता है, किंतु हमारे पत्रकारों की महासभा इसके बिलकुल विपरीत यह शासन देती है कि व्यक्ति का मान रहे, समष्टि अथवा संस्था की कोई मर्यादा नहीं है। कितना विवेकपूर्ण निर्णय है! और, उसको कार्यान्वित करने का मार्ग देखिए—

"दिल्ली-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में उपस्थित हिंदी-पत्रकारों की यह सभा आर्यमित्र के अधिष्ठाता के उस अनुचित व्यवहार के प्रति अपना घोर असंतोष प्रकट करती है जिसके कारण पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न को संपादकीय सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए आर्य-मित्र से पदत्याग करने के लिए विवश होना पड़ा है।" प्रस्ताव को उपस्थित करनेवाले थे पं० माखनलाल चतुर्वेदी। आगे—"जब तक पं० हरिशंकरजी के साथ न्याय न हो जाय, तब तक कोई पत्रकार आर्यमित्र के संपादकीय पद को स्वीकार न करे।" इन पंक्तियों पर कुछ लिखने के पूर्व हम यह बतला देना चाहते हैं कि पं० हरिशंकरजी से हमारा कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं है, और न आर्य-प्रतिनिधि-सभा के अधिष्ठाता से ही हमारा कोई संबंध है। पुनः हम आर्यसमाजी भी नहीं हैं कि इसी नाते सभा अथवा अधिष्ठाताजी के प्रति हमारी कोई सहानुभूति हो। बात केवल सिद्धांत की है, और स्पष्ट एवं निर्भीक निष्कर्ष चाहती है। सिद्धांत और दलबंदी में बहुत अंतर है। हमारे पास भी हरिशंकरजी का सूचना-पत्र प्रकाशनार्थ आया था। हमारी उनसे सहानुभूति है और संपादकीय सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए उन्होंने जो त्याग किया है, उसके लिए हमारे हृदय में समादर है तथा हम उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। पत्रकारों की सभा में वस्तुतः इसी आशय का प्रस्ताव पास होना चाहिए था। किंतु एक पत्रकार की प्रशंसा प्रस्तावरूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न होकर ऐसे रूप में सामने लायी गयी है जो एक संस्था को एक व्यक्ति के लिए बदनाम करने की प्रेरणा उत्पन्न करती है। आश्चर्य है कि इंद्रजी-जैसे अनुभवी और विवेकशील पत्रकार एक व्यक्तिगत वार्ता को सार्वजनिक रूप देने में क्यों और कैसे सहायक हो गये ! हमें इस बात का भी दुःख है कि ऐसे अधिनायक-तंत्रवादी सम्मेलन में खींच-तानकर वयोवृद्ध पं० बाबूराव-विष्णु पराड़करजी को भी शामिल किया जाता है। हमें भी एक ऐसे ही प्रसंग का अनुभव है। गंगापुस्तकमाला और सुधा के संपादकीय विभाग से संबंध-विच्छेद हो जाने के बाद जब हमने 'आज' में इसकी सूचना भेजी, तो पराड़करजी ने हमें लिखा कि "यह तो मालिक और कर्मचारी का संबंध-विच्छेद है। संबंध-विच्छेद की सूचना-भर छाप दी जायगी।" ठीक ऐसी ही घटना आर्य-प्रतिनिधि-सभा के अधिष्ठाता और हरिशंकरजी के बीच की है। इससे अधिक कुछ नहीं। ऐसी वैयक्तिक बातों को ख़ानगी तौर पर चाहे जैसा भी रूप दिया जाय, सार्वजनिक महत्त्व उनका कुछ भी नहीं है। फिर यह कैसा उच्छृंखल अनुशासन है कि जब तक न्याय न हो जाय तब तक कोई पत्रकार आर्यमित्र का संपादकीय पद न स्वीकार करे ! संपादक-सम्मेलन अथवा पत्रकारों के संगठन के बाद से ऐसी न जाने कितनी घटनाएँ हुई होंगी, किंतु एक व्यक्तिगत घटना को अनुचित रूप से उच्छृंखलता के साथ व्यापक महत्त्व देने का यह पहला ही अवसर है, जिससे प्रकट होता है कि हिंदी-पत्रकार साधना एकतंत्रवाद का ही कर रहे हैं, और जनतंत्रवाद की कोरी डींगें मारकर व्यक्तिवाद की वेदी पर जनतंत्र के सर्वमान्य सिद्धांतों का संहार करने की ठान ठाने हुए हैं। हमें अत्यंत दुःख है कि कुछ कड़े शब्दों में पत्रकार-सम्मेलन की कार्यवाही की आलोचना हमें करनी पड़ी है, पर हमारा क्षुद्र विवेक हमें ऐसा करने को मजबूर कर रहा है।

७--तेरह दिन का पक्ष

यह एक असाधारण बात है कि तेरह दिन का पक्ष हो। शुक्लपक्ष में भी तेरह दिन का पक्ष होना अच्छा नहीं माना गया। भारतीय ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार इसका फल बुरा बतलाया गया है। 'ज्योतिर्निबंध' में कहा है—

पक्षस्य मध्ये द्वितिया पतेतां तदा भेवद्रौरवकालयोगः।
पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवरास्समस्ताः॥

तथा—

त्रयोदशादिने पक्षे तदा संहरते जगत्।
अपि वर्षसहस्रेण कालयोगः प्रकीर्तितः॥

अर्थात्—ऐसा संयोग जब हो कि तेरह दिन का पक्ष आ पड़े तब उसे 'कालयोग' समझना चाहिए। महाभारत में युद्ध के पूर्व भीष्म ने दुर्योधन से कहा था—

चतुर्दशीं पचदशीं भूतपूर्वांश्च षोडशीम्।
इमां त्वामभिजानेहं नामावास्यां त्रयोदशीम्॥

अर्थात्--१४, १५ और १६ दिन का पक्ष भले ही सुना गया है, किंतु कृष्ण-पक्ष में तेरह दिन का पक्ष नहीं सुना गया। युद्ध अवश्य होना चाहिए। वैसा ही हुआ भी। महाभारत में न-जाने कितना संहार हो गया।

अभी बहुत दिन की बात नहीं हुई। गत योरपीय महायुद्ध जब सन् १९१४ में हुआ था, उस वर्ष भी तेरह दिन का पक्ष पड़ा था। ऐसे ही संयोग को 'काल-योग' नाम दिया गया है। पिछले बिहार-भूकंप के समय गोल-योग था। सात ग्रह एक केन्द्र में एकत्र हो गये थे। भाग्यवशात् सातों ग्रह बहुत थोड़े समय तक केंद्र में रहे, अन्यथा न जाने क्या हो जाता। जो हो। जैसे 'गोल-योग' के संबंध में ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी, वैसे ही कालयोग के संबंध में भी उन्हें विचार कर भविष्यवाणी करनी चाहिए। माधुरी-पाठकों के सुपरिचित ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायणजी व्यास तथा अन्य विद्वान् ज्योतिषियों का ध्यान हम इस ओर आकर्षित करते हैं कि भारतीय ज्योतिष-शास्त्र के इस सिद्धांत पर कुछ विशद रूप से प्रकाश डालने की कृपा करें। हमारा अपना विश्वास तो ऐसा ही है कि भारतीय शास्त्रों के सिद्धांत मिथ्या नहीं होते।

मिस चटकीली जान

(रंज व चिन्ता का शर्तिया इलाज—बेहद हँसाने की कल)

हास्यरस की बहुत ही ज़बरदस्त हिंदी-पुस्तक ग्लेज़ काग़ज़ पर सुंदर छपाई-सफ़ाई के साथ छप रही है, एक-एक पृष्ठ बीसों बार हँसानेवाली सामग्री से लबालब भरा मिलेगा। ऐसी मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद बड़ी पुस्तक का मूल्य अति सस्ता २) होगा। ३० अप्रैल से पहले ही वी० पी० का आर्डर लिख भेजनेवालों से १) होगा। डाकव्यय अलग और सुंदर जिल्द बँधी हुई लेने पर ॥) अलग लगेंगे। अप्रैल के आख़ीर तक छपकर तैयार हो जायगी। शीघ्र ही रियायती ग्राहकों में नाम लिखाइये।

पता—एल० पी० कुलश्रेष्ठ, [illegible], पोस्ट [illegible], (आगरा) यू० पी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ई० सन् १९०१ में स्थापित]

च्यवनप्राश-३) सेर   अध्यक्ष मथुरा बाबू का   मकरध्वज-४) भरी

शक्ति औषधालय-ढाका

आयुर्वेदिक संसार में युगांतर उपस्थित कर दिया है।

कारखाना और हेड आफ़िस ढाका, बंगाल। तार का पता "शक्ति" ढाका।

कलकत्ता हेड आफिस—५२। १, बीडन स्ट्रीट,

बंगाल से बाहर की शाखाएँ:—देहली, कानपूर, इलाहाबाद, पटना, भागलपूर, गया, लखनऊ, बनारस, गोरखपूर, बुलानाला, मुज़फ्फ़रपूर, जमशेदपूर, गौहाटी, तिनसुकिया (आसाम), मद्रास, रंगून, बेसिन, मांडले (बर्मा) इत्यादि।

ब्रांच भारतवर्ष में सर्वत्र और बर्मा में

मृतसंजीवनी सुरा (गवर्नमेन्ट से पासशुदा) हमारी गया की दूकान कचहरी रोड—गया से मँगाइए।

अध्यक्ष गण—श्रीमथुरामोहन, लालमोहन, फणीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय चक्रवर्ती।

मैनेजिङ्ग प्रोप्राइटर—श्रीमथुरामोहन मुखोपाध्याय, चक्रवर्त्ती बी० ए०

हिन्दू केमिष्ट और फ़िज़िसियन।

पत्र और मनीआर्डर आदि मथुरा बाबू मैनेजिङ्ग प्रोप्राइटर के नाम भेजिए।

आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणाली संवलित सूचीपत्र मुफ़्त मिलता है।

SELECTIONS FROM UPNISHADS

उपनिषत्सार संग्रह

लेखक, रायबहादुर पंडित काशीनाथ एम्० ए०, एम्० वी० ई०

संस्कृत न जाननेवाले हिंदी और अँगरेज़ी के विद्वान् उपनिषदों के रहस्य न जानने के कारण कितनी कर्त्तव्य और ज्ञातव्य बातों के ज्ञान से वंचित रहते हैं। जिनका जानना प्रत्येक भारतवासी के लिए आवश्यक है। अतः इस संग्रह में उपनिषदों में से अधिक उपयोगी श्लोकों को एकत्र करके उनको हिंदी और अँगरेजी अनुवादों के सहित प्रकाशित किया गया है, ताकि सर्वसाधारण भी उपनिषदों के रहस्य को समझ सकें।

मूल्य २)

मिलने का पता—मैनेजर, नवलकिशोर प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered NO. A. 1127.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारी सुखों से महरूम और जीवन से निराशों के लिए

सच्ची ख़ुशख़बरी !!!

याद रक्खो—स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचन्द्रोदय के लेखक

बाबू हरिदास वैद्य महोदय

प्रमेह, धातुक्षीणता, नपुंसकत्व, स्वप्नदोष, लक़वा, फ़ालिज, गठिया, क्षय या थाइसिस, जीर्णज्वर, बवासीर और ख़ूनख़राबी के रोगों का इलाज करने में सिद्ध-हस्त और अद्वितीय हैं। लाखों भारतीय इन रोगों के इलाज में आपको ऐक्सपर्ट (Expert) समझते हैं। आपने ऐसे-ऐसे रोगी चंगे किये हैं, जो जीवन से निराश थे और डाक्टर-वैद्यों ने जिन्हें असाध्य कहकर त्याग दिया था।

बाबू साहब की चिकित्सा के सम्बन्ध में

चन्द प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित सज्जनों की रायें :—

धातुरोग पर—

धनी-मानी मालगुज़ार, बाबू कन्हैयालालजी पँवार, मु० पिंडरई, पो० खवासा, ज़िला सिवनी छपारा लिखते हैं—मैंने अज्ञानावस्था में कुकर्मों द्वारा अपना सब कुछ खो दिया था। संसारी सुखों के लिए रोता और तरसता था। भाग्य से "चिकित्साचन्द्रोदय" चतुर्थ भाग मेरी नज़र तले आ गया। मैंने बाबू हरिदासजी से लिखा-पढ़ी करके एकदम २००) दो सौ रुपये भेज दिये। आपने पूरी ईमानदारी के साथ मुझे आठ महीनों में आराम कर दिया। अब मैं बेधड़क संसारी सुख भोगता हूँ—जगदीश की दया से सन्तान भी होनेवाली है।

बलहीनता पर—

बाबू ओमप्रकाशजी रस्तोगी, पो० सियाणा, ज़ि० बुलन्दशहर लिखते हैं—आप पर मुझे इतना विश्वास हो गया है कि आप अगर मुझे सफ़ेद राख की चुटकी भी दें तो मुझे पूरा लाभ होगा। तनिक भी सन्देह नहीं। आपकी दवाएँ अति उत्तम हैं। राजराजेश्वर इससे चेहरे की सफ़ेदी जाकर लाली आई, झुर्रियाँ बिलकुल चली गईं।

क्षय या थाइसिस पर—

दीवान साहब श्रीमान् जुझारसिंहजू देव बहादुर, चरखारी हौस, सिविल लाइन्स, नौगाँव, बुन्देलखण्ड से लिखते हैं—मेरी पुत्री को क्षय प्रभृति कई रोग हो गये थे। ग़श पर ग़श आते थे, ज्वर बना रहता था। बहुत से इलाज किये। ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज़ बढ़ते गये। अन्त में परेशान और निराश होकर बाबू हरिदासजी का इलाज किया। आपको इलाज में सफलता मिली। आज लड़की निरोग और सुखी है।

प्रमेह पर—

बाबू बद्रीप्रसादजी कटेलिहा, छोटा-पारा, रायपुर सी० पी० लिखते हैं—आपकी प्रमेह की दवा से बहुत लाभ हुआ।

भयानक चर्म पर—

लाला लक्ष्मीनारायणजी, छीपी, वैरागपुरा, मथुरा लिखते हैं–मेरा सारा शरीर सड़ गया था। लोग मुझे पास नहीं आने देते थे, शहर के सभी डाक्टर-वैद्यों ने मुझे जवाब दे दिया। मैंने भी समझ लिया, अब नहीं जीऊँगा, अन्त में बाबू हरिदासजी की शरण में गया—आपने ३ महीने में सुवर्ण-काया कर दी।

नोट—पत्रव्यवहार सख़्ती से गुप्त रखा जाता है। बिला इजाज़त प्रशंसापत्र नहीं छापे जाते।

पता—मैनेजर, हरिदास एण्ड कम्पनी, गंगाभवन, लाल दर्वाज़ा, मथुरा।

Printed & Published by K. D. Seth at the Newul Kishore Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल नया प्रकाशन !

रोमाञ्चकारी रूस में

लेखक, डा० सत्यनारायण पी० एच-डी०

सोवियट रूस में बरसों रहकर देखे-सुने, अनुभव किये हुए तथा सोवियट-समाज के हृदय की तसवीरें, रूस की नदियों, कछारों, गाँवों और झोपड़ियों के अनोखे और अद्भुत दृश्य, उपन्यास और यात्रावर्णन एक साथ। मूल्य २)

सुमनाञ्जलि

उच्चकोटि का ओजस्वी काव्य-संग्रह

लेखक, 'वर्तमान भूषण' सुकवि पं० अनूप शर्मा एम्० ए०, एल्-टी०

भूमिका और परिचय-लेखक

राजकुमार डा० रघुवीरसिंह डी० लिट् और पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल-एल० बी०

घनाक्षरी छन्दों में खड़ी बोली की ज़ोरदार कवितायें, चित्तौड़-दर्शन, दांडी-प्रयाण, विराट् भ्रमण, मार्तण्ड-मण्डल आदि पढ़कर फड़क उठेंगे। मूल्य दो रुपया।

पनघट

श्रीसुदर्शन की लिखी हुई काव्य-कला और कल्पना की पन्द्रह कहानियाँ
भाव रसीले, भाषा बाँकी और शैली जादू से भरी। मूल्य सिर्फ़ डेढ़ रुपया।

झंकार

श्रीसुदर्शनजी गीत भी बड़े सुन्दर लिखते हैं।
इस पुस्तक में उनके ४१ गीतों का संग्रह है। मूल्य आठ आना।

शेष स्मृतियाँ

ले० राजकुमार डा० रघुवीरसिंह डी० लिट्

इसमें ताज, एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ, अवशेष, तीन क़ब्रें और उजड़ा स्वर्ग ये पाँच भावात्मक गद्यकाव्य हैं, जो मुग़ल-काल के वैभव की स्मृति दिलाकर हृदय की एक अजीब हालत कर देते हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसकी ३३ पेज की विस्तृत भूमिका लिखकर इस रचना की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मूल्य दो रुपया।

नोट—अपने समीप की दूकान से ख़रीदिए, नहीं तो फिर हमें लिखिए।

संचालक, हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय

हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी

JANUARY 1940

जनवरी १९४०

संस्थापक

स्व० श्रीविष्णुनारायण भार्गव

वर्ष १८ खंड १

संख्या ६ पूर्ण संख्या २१०

अध्यक्ष

श्रीरामकुमार भार्गव

श्रीतेजकुमार भार्गव

सम्पादक

रूपनारायण पांडेय

एक अंक का मूल्य ||=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥),छः मास का ३॥) और नमूने की एक प्रति का ॥=) अग्रिम है। वी० पी० से मँगाने में ≡) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिए ग्राहकों को मनीआर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य १०), छः महीने का ५॥) और प्रति संख्या का १) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, लेकिन ग्राहक बननेवाले सज्जन चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

माधुरी अँगरेज़ी मास के प्रथम सप्ताह में प्रति मास प्रकाशित हो जाती है।

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो १५ तारीख़ तक प्रतीक्षा करने के बाद अप्राप्त संख्या के लिए १५ दिन के अंदर ही कार्यालय को सूचना दे देनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-आफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। ठीक समय पर सूचना न मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा और उस संख्या को ग्राहक ॥=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिए जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना मैनेजर माधुरी नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिए पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर संशोधन के लिए इधर-उधर जगह छोड़कर लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करेंगे, वे टिकट भेजने पर ही वापस किये जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र सम्पादक माधुरी, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से भेजने चाहिए।

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे इस प्रकार है —

१ पृष्ठ	या २ कालम	की छपाई	... २०)	प्रति मास
१/२ ,,	या १ ,,	,,	... ११)	,, ,,
१/४ ,,	या १/२ ,,	,,	... ६)	,, ,,
१/८ ,,	या १/४ ,,	,,	... ४)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई पेज विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। विज्ञापनदाता द्वारा छपे हुए ८ पृष्ठ के फ़ोड़-पत्र की सिलाई और बटाई चार्जेज़ ६०), ४ पृष्ठ के ३५) और २ पृष्ठ के २०) लिये जाते हैं। रीडिंग मैटर में विज्ञापन की छपाई के लिए अधिक मूल्य लिया जाता है। इस सम्बन्ध में मैनेजर माधुरी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बिलकुल सच है

कि

विज्ञापन से ही आजकल माल की खपत बढ़ती है। जितना अधिक आप विज्ञापन छपाएँगे, उतनी ही अधिक सफलता आपको मिलेगी।

माधुरी का प्रचार आजकल बहुत बढ़ रहा है। भारत में ही नहीं, इँगलैंड, अमेरिका, जापान आदि विदेशों में भी इस पत्रिका के ग्राहक हैं। माधुरी में छपा हुआ विज्ञापन लगभग ५०००० आदमियों की नज़रों से गुज़रता है।

माधुरी में एक बार विज्ञापन देकर आज़माइश कीजिए। फिर तो आप स्वयं स्थायी रूप से विज्ञापन छपाने लगेंगे।

माधुरी आज से नहीं, आपकी १७ साल से सेवा कर रही है।

इतने पर भी हमारे विज्ञापन-छपाई के रेट सस्ते और सुविधाजनक हैं। आज ही नीचे लिखे पते पर विज्ञापन छपने के लिए भेजिए—

मैनेजर, "माधुरी", लखनऊ.

ग्राहकों के हित की बात

कृपया नोट कर लीजिये

अधिकांश ग्राहक अपना ग्राहक-नंबर नहीं लिखते, जिससे उनकी आज्ञा पालन करने में बड़ी असुविधा होती है। 'माधुरी' की विशाल ग्राहक-संख्या में ग्राहक-नंबर मालूम हुए विना किसी व्यक्तिविशेष का पता लगा सकना हमारे लिये नितान्त कठिन है।

मनिऑर्डर द्वारा चन्दा भेजते समय भी ग्राहक-गण अपना ग्राहक-नंबर लिखना भूल जाते हैं जिससे उनके हिसाब में रुपया जमा करने में हमें बड़ी दिक़्क़त पड़ती है। अतएव ग्राहकों को चाहिए कि पत्र-व्यवहार अथवा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिखें।

थोड़ी-सी सावधानी रखकर अगर ग्राहक महोदय हमारे इस निवेदन पर ध्यान देंगे तो निःसन्देह हमारी और आपकी—दोनों की परेशानियाँ कम हो सकती हैं। ध्यान रहे मनिऑर्डर कूपन या पत्र में ग्राहक-नंबर लिखे विना 'माधुरी' चालू करने या आदेश-पालन करने में विलंब होना अनिवार्य है।

ग्राहक-नंबर 'माधुरी' के लिफ़ाफ़े पर नाम के पहले लिखा या पते की चेपी पर छपा रहता है।

मैनेजर, "माधुरी", लखनऊ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

विषय	पृष्ठ
१. परदेसी-पंछी (कविता)—[लेखक, श्रीरामचन्द्र मित्तल	७३५
२. महायुद्ध के बाद का जर्मनी (सचित्र)—[लेखक, श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज बी० ए०, सी० टी०	७३६
३. जासूसों के दिलचस्प कारनामे (सचित्र)—[लेखक, श्रीभगवतीप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०	७४६
४. झक्कड़ (कहानी)—[लेखक, श्रीबलभद्र दीक्षित	७५६
५. मानस की एक अर्धाली—[लेखक, डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू बी० एम्-सी०, एम० ए०, डी० लिट्	७६१
६. अरुणोदय (कविता)—[लेखक, विद्यार्थी महावीरप्रसाद वर्मा (बी० ए० क्लास)	७६३
७. बाल्टिक-समुद्र में रूसी महत्वाकांक्षा—[लेखक, श्रीमहाव्रत विद्यालङ्कार ...	७६४
८. सेवाधर्म (नाटक)—[लेखक, सेठ श्रीगोविन्ददास	७६८
९. स्मृति (कविता)—[लेखक, श्रीरामाधार त्रिपाठी 'जीवन'	७८५
१०. समाजवादी (कहानी)—[लेखक, श्रीनीलाम्बर घोषाल	७८७
११. ब्रश और दतून—[लेखक, श्रीशीतलासहाय बी० ए०	७८८
१२. भाषा का विकास—[लेखक, श्रीरामविलास शर्मा एम० ए०	७९१
१३. नवीन कहानी-लेखक बनाम सम्पादक—[लेखक, श्री रा० र० खाडिलकर (साप्ताहिक "आज" से) ...	७९७
१४. चीन का शासक-परिवार—[लेखक, श्रीदीनदयालु शास्त्री	७९९
१५. विवशता (कविता)—[लेखक, श्रीजयनाथ 'नलिन'	८०४
१६. कुछ इस दिशा में भी—[लेखक, श्रीमूलचन्द अग्रवाल	८०५

नक़्क़ालों से सावधान

ख़िज़ाब को छोड़ो

और इस्तेमाल करो वीरेन्द्र मोहिनी सुगंधित तैल

इस तैल से बाल का पकना रुककर और पका बाल काला पैदा होकर यदि ६० वर्ष तक काला न रहे तो दूना मूल्य वापस की शर्त लिखा लें। एकाध बाल पका हो तो २), इससे अधिक पका हो तो ३।) या कुल पका हो तो ४।।) का तैल मँगवा लें। पता—एन्ड ग्र हेयर स्टोर नं० ७०, पो० कतरीसराय (गया)

गोरे और सुन्दर बनाने का निहायत खुशबूदार और मनमोहिनी

तुहफ़ा

कायापलट ब्युटी (रजिस्टर्ड)

यह एक नये प्रकार का उबटन है। इसके प्रयोग से चेहरे के दाग़, धब्बे, झाइयाँ, मुहांसे वग़ैरह थोड़े ही दिनों में सदा के लिये दूर हो जाते हैं और चेहरा गुलाब के फूल के समान सुन्दर मुलायम और चमकीला हो जाता है। खुशबू इसकी इतनी मस्त और मोहिनी है कि एक बार के लगाने से दिमाग़ को घंटों तक तरोताज़ा और सुगन्धित बनाये रहती है यहाँ तक कि पास बैठनेवाले भी इसकी सुगन्ध से मोहित हो जाते हैं। मूल्य प्रति बक्स जो बहुत दिनों के लिये काफ़ी होता है २।।) डाक महसूल अलग।

नोट—अगर कायापलट ब्युटी सेवन करने के बाद **रोग़न हुस्न अफ़ज़ा** (जिसकी शीशी का मूल्य १।) है) की कुछ बूँदें चेहरे पर मल ली जायँ तो चेहरे की रौनक़ और चमक दमक ग़ज़ब की हो जाती है।

मिलने का पता—कायापलट फ़ार्मेसी (रजिस्टर्ड) फ़र्रुख़ाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ

१७. भूल (कहानी)—[लेखक, श्री वी० जी० वैशम्पायन ८१०

१८. प्रगतिशील साहित्य--[लेखक, श्रीराजकिशोरसिंह विद्यार्थी ८१२

१९. नारी के प्रति—(कविता)—[लेखक, श्रीसिद्धेश्वरप्रसादसिंह चौधरी "मंजु" ८१५

२०. अच्छे दिन (कहानी)—[लेखक, श्रीमोहनसिंह सेंगर ८१६

२१. हिन्दी की तीन नई किताबें--[लेखक, श्रीनाथसिंह ८२४

२२. दोषी कौन (कहानी)—[लेखक, श्रीदयानन्द गुप्त बी० ए०, एल्-एल्० बी० ८२६

२३. डॉ० जानसन (शेषांश)—[लेखक, श्रीप्रेमनारायण टंडन बी० ए०, विशारद ८३३

२४. वर्तमान हिन्दी-साहित्य की प्रगति—[लेखक, श्रीकान्तिस्वरूप गोविल बी० ए० ... ... ८४०

२५. पुस्तक-परिचय—[लेखक, 'निराला' और श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी एम्० ए० ८४४

२६. हमारा दृष्टिकोण ८५१

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. मीराबाई

२. उर्मिला

सादे चित्र अनेक

१००) रुपया इनाम

सिद्ध वशीकरण-यंत्र—जिसे आप चाहते हैं, वह पत्थरहृदया क्यों न हो, इस यंत्र की अलौकिक शक्ति से आपसे मिलने के लिये आयेगी। मू० ताँबा २) चाँदी २॥) सोना ७)

लक्ष्मी-यंत्र—इसके धारण से व्यवसाय में उन्नति, मुक़दमा, कुश्ती, लाटरी में जीत, परीक्षा में सफलता, नवग्रह की शांति, नौकरी में तरक्की और सौभाग्यवान् बनाता है। मूल्य ताँबा २) चाँदी २॥) सोना ७)। झूठा साबित करने से १००) इनाम। विश्वास न हो तो -) आने का टिकट भेजकर शर्त लिखवा लें।

काशी विश्वनाथ आश्रम

पो० कतरीसराय (गया)

सिद्ध योगेन्द्र कवच

इनाम १०० रुपया

इस अद्‌भुत शक्तिशाली वशीकरण कवच को केवल धारण करने मात्र से ही कठिन से कठिन कार्य पूर्ण होता है। आप जिसे चाहते हैं वह स्त्री या पुरुष कैसा ही कठोर हृदय अभिमानी क्यों न हो इस यन्त्र के प्रभाव से व्याकुल होकर मिलने चली आयगी और आपसे शादी (प्रेम) के लिये इच्छा प्रकट करेगी। इससे दुर्भाग्य और शत्रु का नाश, नौकरी, संतान, धन की प्राप्ति, व्यापार में लाभ, परीक्षा में पास, मुक़दमे में जीत, नवग्रहों की शान्ति, जुआ और लाटरी में जीत और कठिन से कठिन रोगों से छुटकारा होकर भाग्योदय होता है। बेफ़ायदा साबित करने पर १००) इनाम। मूल्य ताँबा का २) चाँदी का २॥), सोने का ७) रु०

पता:—श्रीमहाशक्ति आश्रम, नं० २११, पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवाल्मीकीय रामायण भाषा संपूर्ण तथा सचित्र

यह ग्रंथ अभी नया ही प्रकाशित हुआ है। भाषा इतनी सरल, काग़ज़ ग्लेज़ और अक्षर इतने बड़े हैं कि बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी के लिये उपयोगी है। बहुरंगे चित्रों ने तो और भी अनोखापन ला दिया है। दो जिल्दों में इस बड़े ग्रंथ का मूल्य केवल ८) है।

श्रीसुखसागर

पुराणों में श्रेष्ठ श्रीमद्भागवत के बारहों स्कंध का सरल भाषा में सुन्दर विवरण इसी में आपको मिल सकता है। बहुरंगे चित्र और काग़ज व छपाई की सफ़ाई ने और भी ख़ूबी पैदा कर दी है।

बड़े मोटे अक्षरों में ८)

मध्यम साइज़ और बड़े अक्षर ४।)

गुटका साइज़ २)

विश्रामसागर

रचयिता श्रीमन्महामहोपाध्याय परम वैष्णव महात्मा श्रीरघुनाथदासजी रामसनेही। मनोहर सुललित छंदों में रचित पौराणिक कथाओं, उत्तमोत्तम भगवद्भक्तों एवं अवतारों के पूर्ण विवरण इसमें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। रंगीन चित्रों सहित मूल्य केवल १।।)

उसी का गुटका मूल्य १=)

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा

केवल भाषा में संपूर्ण अनुवाद भावार्थ सहित। विराट् स्वरूप का चित्र भी दर्शनीय है। मूल्य ग्लेज काग़ज ।।।) रफ़ ।।=)

शिवपुराण भाषा

सचित्र

ग्लेज काग़ज़ सजिल्द

मूल्य केवल ४।।)

श्रीमद्भगवद्गीता

टीकाकार—उपनिषदों के प्रसिद्ध टीकाकार रायबहादुर श्रीजालिमसिंहजी। इसमें मूल श्लोक, फिर पदच्छेद, तदनन्तर बाईं ओर संस्कृत अन्वय और दाहिनी ओर अर्थ दिया है। पश्चात् विस्तृत भावार्थ भी दिया है। मूल्य केवल २।।)

रामायण श्रीगोस्वामी तुलसीदासकृत

बालबोधिनी टीका सहित। इस टीका की सरलता और लोकप्रियता के लिये कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है; रंगीन चित्रों से सुसज्जित क्षेपक सहित आठोंकाण्ड रामायण इस अनुपम टीका के साथ आपको केवल ४) में ही मिल सकती है।

छोटा साइज़ गुटका मूल्य २।)

महाभारत

श्रीचौहान सबलसिंहजी ने, ग्रंथशिरोमणि श्रीमहाभारत को दोहा चौपाइयों में वीररस से पूर्ण तैयार किया है। सचित्र, सजिल्द ग्लेज पुस्तक का मूल्य केवल २)

ब्रजबिलास

भक्तशिरोमणि श्रीब्रजवासीलालजी कृत श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र का बाल्यकाल से कंसवध पर्यंत प्रेममय वर्णन सुन्दर काव्य में। मूल्य १।।)

ब्रजबिलास गुटका मूल्य ।।।=)

श्रीमद्भगवद्गीता टीकाकार पं० सूर्यदीनजी सुकुल

इसमें आरंभ में भारतसार दिया है जिससे गीता का प्रयोजन तथा भारतवंशी राजर्षियों का चरित्र ज्ञात होता है। टीका पद्यात्मक सुन्दर लावनी छंदों में की गई है। मूल्य केवल १।)

पुस्तक मिलने का पताः—मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, हजरतगंज, लखनऊ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी

[खंड १
वर्ष १८] पौष, सं० १९९६ वि०

परदेसी-पंछी

श्रीरामचन्द्र मित्तल

पंछी बोलो उड़ चले कहाँ, करने किस जग को सुख-विभोर ?
वह कैसा मधुर सवेरा था ! हाँ, कुछ-कुछ रहा अँधेरा था ;
सूनी डाली पर बना नीड़, जब हमने किया बसेरा था ।
पल्लव - पल्लव में रूप जगा, डाली - डाली पर हुआ शोर ;
पंछी बोलो उड़ चले कहाँ, करने किस जग को सुख-विभोर ?
मैं थी, तुम थे, थी हरी डाल, जिस पर था अपना छोटा घर ।
दिन-दिनभर करते थे कलोल था पत्तों का मृदु मरमर स्वर ।
निर्धन के धन ! क्या हुआ आज, जो तोड़ चले तुम नेह-डोर ?
पंछी बोलो उड़ चले कहाँ, करने किस जग को सुख-विभोर ?
पंछी ने आँखें फैला दीं, थी जिसमें करुणा रही बोल ;
फिर वह अम्बर को चीर चला, उठ, अपने दोनों पंख खोल ।
पंछी-बाला यह सोच रही, क्यों छोड़ गया पंछी कठोर ?
पंछी उड़ता जाता होगा, जाने किस आशा में विभोर ?

[पूर्ण संख्या २१०
संख्या ६] तुलसी-संवत् ३१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महायुद्ध के बाद का जर्मनी

श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज बी० ए०, सी० टी०

लन्दन-सोसाइटी की कुछ रमणियाँ, जो युद्ध-सम्बन्धी कार्यों में अपने देश की सहायता करेंगी।

गत महायुद्ध के बाद का जर्मनी का इतिहास एक ऐसी जाति का इतिहास है, जिसने अपने पुराने बचे-खुचे साधनों को पुनः एकत्रित करके भविष्य के लिए एक नये राष्ट्र के निर्माण की तैयारी की। संसार के एक शक्तिशाली राष्ट्र की हैसियत से जर्मनी ६ नवम्बर, सन् १६१८ को संसार के पर्दे से मिट गया था, जब कि उसका सम्राट् राजसिंहासन को छोड़कर हालैण्ड को भाग गया था और शासन-प्रबन्ध का कार्य ईबर्ट नाम के एक समाजवादी नेता के हाथ में छोड़ गया था।

सन्धि हो जाने पर और क़ैसर के जर्मनी से भाग जाने पर सबसे पहली और मुख्य बात जो जर्मन जाति को तय करनी थी, वह यह थी कि जर्मनी में किस प्रकार की शासन-प्रणाली को जन्म दिया जाय। यह सवाल बड़े महत्त्व का था। लोगों की भी इस बारे में एक राय न थी। कोई दल किसी प्रणाली के पक्ष में था तो कोई दूसरी ही तरह का शासन चाहता था। नतीजा यह हुआ कि जर्मनी में इस प्रश्न को लेकर लोगों में आपस में मारकाट मच गई। जगह-जगह छोटी-मोटी लड़ाइयाँ हुईं और काफ़ी ख़ून-ख़च्चर हुआ। आख़िरकार यह निश्चय हुआ कि आम चुनाव हो, जिसमें प्रजा की ओर से डेलीगेट चुने जायँ। डेलीगेटों की यही असेम्बली बाद में जर्मन प्रजातंत्र के लिए शासन-विधान तैयार करे। इस असेम्बली का सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जून के महीने में (सन् १९१९ ई० में) वीमार-नामक जगह में होना निश्चित हुआ। इसी सम्मेलन में जर्मनी में प्रजातंत्र शासन-प्रणाली की स्थापना हुई और आगे के लिए उसका शासन-विधान तैयार किया गया।

नये जर्मन प्रजातंत्र की स्थापना तो हो गई, पर इसी से उसकी सारी दिक़्क़तों का अन्त न हो सकता था। युद्ध के बन्द होने के परिणामस्वरूप जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई थीं, उन सबका उसे सामना करना था और इनमें से प्रत्येक को किसी-न-किसी प्रकार से हल भी करना था। महायुद्ध में जर्मनी के सेनापति मार्शल हिंडनबर्ग की कमाण्ड में जो सेना लड़ी थी, उसके सैनिकों को अब सेना से हटा दिया गया था। इस प्रकार लाखों सैनिक बेकाम हो गये थे। इनमें से जो लोग युद्ध से पूर्व किसानी का पेशा करते थे, वे तो शान्तिपूर्वक अपने-अपने घर जाकर पुनः अपने कार्य पर लग गये। जहाँ से सन् १४ में उन्होंने अपने जीवन को छोड़ा था, वहीं से फिर उसे उठा लिया। पर सेना के सभी सैनिक तो गाँवों में बसनेवाले किसान न थे। जो लोग शहरों में रहते थे और वहाँ से काम छोड़-छोड़कर सेना में भर्ती हो गये थे, लौटने पर अब शहरों में उनके लिए किसी काम का मिलना मुश्किल था। महायुद्ध के कारण देश का व्यापार नष्ट हो चुका था, कारख़ानों में ताले लग गये थे और दफ़्तर बन्द पड़े थे। इन युद्ध से लौटे हुए सिपाहियों के लिए कोई धन्धा करने को न था। खाने-पीने की सामग्री की जो कठिनाइयाँ थीं, उनका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं।

ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य में डालनेवाली बात न थी कि वे सिपाही, जिनको युद्ध के ज़माने में लड़ना, हत्या करना और लूटमार करना उनका कर्तव्य बताकर सिखाया गया था, अब शान्ति के ज़माने में भी इन्हीं कामों को करने लगे, जिनको अब क़त्ल और अपराध के नाम से पुकारा जाता था। उन्हें तो किसी-न-किसी तरह से अपने आश्रित कुटुम्बीजनों का पालन-पोषण करना था ही। एकदम सारे जर्मनी में हिंसा, उपद्रव और लूटमार होनी प्रारम्भ हो गई। बहुत-से सेना के अफ़सरों को उनकी मोटरों में से पकड़कर बाहर खींच लिया गया, सेना के पद-चिह्नों को फाड़ डाला गया और उनकी तलवारों को उनसे छीन-छीनकर तोड़ दिया गया। बहुत-सी दूकानों को लूट लिया गया, और दिन-दहाड़े घरों में डाके पड़ने लगे, हत्याएँ होने लगीं। गलियों में मशीनगनें चक्कर लगाती थीं और किसी को पता न था कि कब उसे अगली गोली का शिकार बन जाना पड़े। मनुष्य के प्राणों का मूल्य बड़ा सस्ता हो गया। क्यों? महायुद्ध ने इसका भी पाठ संसार को पढ़ाया था। उस समय के अनेक जर्मन राजनीतिज्ञों को अपनी सम्मतियों का मूल्य अपने जीवन द्वारा चुकाना पड़ा। वीमार में स्थापित होनेवाली जर्मन सरकार को यथाशक्ति देश में पुनः शान्ति स्थापित करनी थी और इस अराजकता का ख़ात्मा करना था।

आर्थिक संकट के कारण देश में एक दूसरी ही तबाही थी। सन् १९२० में आकर इस आर्थिक संकट ने ऐसा भयानक रूप धारण कर लिया कि ऐसा दिखाई देने लगा, मानो आस्ट्रिया, जर्मनी और हंगरी तीनों के तीनों दिवालिये हो जायँगे। इस स्थिति का कारण यह था कि जर्मनी की सरकार अपना सारा सोना तो युद्ध के लिए सामान मोल लेने में ख़र्च कर चुकी थी, और देशों की भाँति उसने भी अपने यहाँ काग़ज़ का सिक्का (नोट) चलाया था। इस काग़ज़ी सिक्के का अर्थ यह होता है कि मानो सरकार ने हमारा असली सिक्का हमसे उधार ले लिया है और उसके बदले हमें एक काग़ज़ पर लिखकर वादा किया है कि जब हम अपना असली सिक्का माँगेंगे, तभी इस काग़ज़ के पेश करने पर हमें उसका असली मूल्य मिल जायगा। जिन देशों में सरकार की साख अच्छी होती है, उन्हीं में काग़ज़ का सिक्का भी सफलतापूर्वक चलता रहता है। जब सरकार की साख में किसी प्रकार की ख़राबी आ जाती है, तभी इस प्रकार के नोटों का चलना मुश्किल हो जाता है। युद्ध के बाद जर्मन सरकार की साख बिलकुल जाती रही। उसने महायुद्ध के समय में अपने यहाँ नोट चलाये थे, किन्तु १९१९ के बाद एक तो देश का व्यापार चौपट हो गया था, उद्योग-धन्धे जाते रहे थे और दूसरे लड़ाई के ख़र्च में उसे बहुत साधन "मित्रराष्ट्रों" को देना पड़ा था। इस तरह देश का सोना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़तम हो गया था और सरकार बराबर नोट बनाती जा रही थी। इस नीति का नतीजा यह हुआ कि नोट का मूल्य दिन-पर-दिन सस्ता होता चला गया। लोगों को इस बात का पता लग गया कि सरकार के पास इतना सोना है ही नहीं कि अपनी प्रतिज्ञाओं को निभा सके। इसी को साख का उखड़ जाना कहते हैं।

ज्यों-ज्यों यह बात ज़्यादा लोगों को मालूम होती गई, मार्क (जर्मनी का सिक्का) के नोटों का मूल्य गिरता ही गया। १५ नवम्बर, सन् १६२३ तक तो हालत यह हो गई कि एक अमेरिकन डालर के बदले में (जिसका युद्ध से पहले ४ मार्क मूल्य था) २५०००००००००००० मार्क के नोट मिल सकते थे। इसका अर्थ यह था कि जर्मनी में असली रुपया नाम को भी न रहा था। सिक्के की दर में कमी आने के कारण उन लोगों का तो सत्यानाश ही हो गया, जिनका धन बैंकों में जमा था या जिनके पास नोट थे। इसका प्रभाव उन लोगों को छोड़कर, जिनके पास ज़मीन थी, जर्मनी की क़रीब-क़रीब सारी आबादी पर पड़ा।

ऐसी दशा में कई बार देश में उपद्रवों द्वारा सरकार को बदल डालने का प्रयत्न भी किया जाना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार का पहला विद्रोह सन् १६२० ई० में हुआ, जब कि रूर-प्रांत में कोयले की खानों में काम करनेवाले मज़दूरों ने हड़ताल कर दी थी। आगे चलकर सन् १६२१ में भी दो बार सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन हुआ। न सरकार ही इन आंदोलनों को दबा सकी और न आंदोलनकर्ता ही किसी ऐसी सरकार की स्थापना करने में सफल हो सके, जो वहाँ के मज़दूरों और साधारण जनता की कठिनाइयों को दूर कर सकती।

यह दशा महायुद्ध के बाद से लेकर सन् १६२३ तक चलती रही। सन् २३ में जर्मनी के सौभाग्य से डॉक्टर स्ट्रेसमेन नाम का एक नेता जर्मनी का चांसलर चुना गया। जर्मनी में चांसलर का पद वही होता है, जो ब्रिटेन आदि देशों में प्रधान मंत्री का। इस समय तक जर्मनी ने इस बात की भी घोषणा कर दी थी कि अपनी आर्थिक अवस्था के बिगड़ने के कारण वह मित्रराष्ट्रों को एक अनिश्चित समय तक उस रुपये को न दे सकेगा, जो कि उसकी ओर से वर्साई की सन्धि के अनुसार मित्र-राष्ट्रों को दिया जाना था। इससे मित्रराष्ट्रों को भी इस बात की चिन्ता हो चली थी कि जैसे बने जर्मनी की आर्थिक अवस्था को सुधारा जाय। अमेरिका भी इस प्रश्न पर बड़ी गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहा था।

अतः सन् १६२३ में एक अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी जर्मनी की आर्थिक अवस्था की जाँच करने के लिए बैठी। अमेरिका के जनरल डावेस इस कमेटी के सभापति थे। इस कमेटी का उद्देश्य इस बात की जाँच करना था कि जर्मनी किस हद तक बग़ैर बरबाद हुए लड़ाई के व्ययवाला रुपया मित्रराष्ट्रों को दे सकता है। जनरल डावेस की कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कई ऐसी बातों की सिफ़ारिश की, जिनके अमल में लाने से जर्मनी की आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो सकती थीं। सब राष्ट्रों ने मिलकर जर्मनी को काफ़ी सोना उधार दिया, जिससे वह अपनी गिरी हुई हालत को सुधार सके।

इसी समय से जनरल डावेस की योजना के फल-स्वरूप जर्मनी पुनः अंधकार से निकलकर उजाले में आया। उसका कार-बार फिर से जमा। सिक्के-सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी धीरे-धीरे दूर होने लगीं। बाज़ारों में फिर वही चहल-पहल आ गई और लोग धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक अपने-अपने रोज़गार से लग गये।

जब डॉक्टर स्ट्रेसमेन पहली बार सन् २३ में चांसलर के पद पर आये थे तो उन्हें ऊपर वर्णन की हुई आर्थिक कठिनाइयों के अलावा कई उपद्रवों और विद्रोहों का भी सामना करना पड़ा था। एक इसी प्रकार का उपद्रव म्यूनिक में हुआ था। इसका नेता था—अडोल्फ़ हिटलर—जिसको आज संसार का बच्चा-बच्चा अच्छी तरह जानता है। इस समय तक अडोल्फ़ ने, जो महायुद्ध के दिनों में सेना में भी काम कर चुका था, अपनी एक अलग पार्टी बना ली थी, जिसको 'नेशनल सोशलिस्ट' (National Socialist) या नाज़ी पार्टी के नाम से पुकारा जाता है। वह चाहता था कि जर्मनी का शासन-प्रबन्ध किसी डिक्टेटर के द्वारा हो। इटली में इससे कुछ दिन पूर्व ही 'डिक्टेटरशिप' के शासन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म हो चुका था। हिटलर भी उसी आदर्श को सामने रखकर अपनी पार्टी के बल को बढ़ाने की योजना में लगा हुआ था। हिटलर का यह म्यूनिकवाला विद्रोह दबा दिया गया और उसे कुछ महीने जेलख़ाने में भी बिताने पड़े। ठीक दस वर्ष बाद यही हिटलर जर्मनी का डिक्टेटर होनेवाला था।

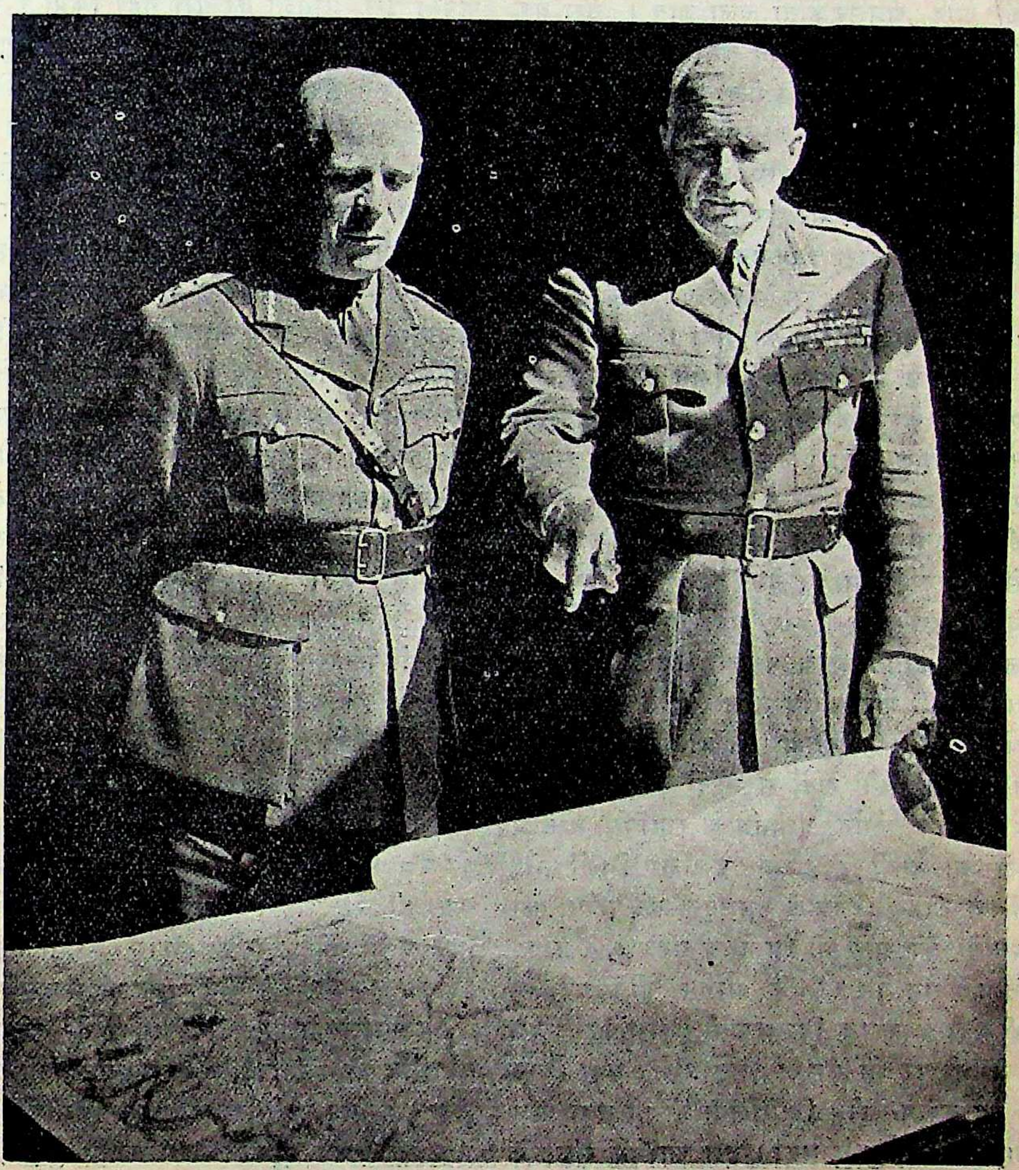

(बाईं ओर) ब्रिटेन के प्रधान सेनापति लार्ड गोर्ट सर एडमंड आयरन साइड के साथ युद्ध-सम्बन्धी नक़शे का अध्ययन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉक्टर स्ट्रेसमेन इस बात को भली भाँति समझते थे कि जर्मनी की उन्नति के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि ब्रिटेन और फ्रांस-जैसे शक्तिशाली राष्ट्रों से उसकी मित्रता रहे और एक राष्ट्र दूसरे की मदद से दिन-दिन उन्नति की ओर अग्रसर होता चला जाय। उस वक़्त ब्रिटेन के प्रधान मंत्री सर आस्टन चेम्बरलेन थे। फ्रांस के प्रधान मंत्री भी इस प्रकार के मेल को अच्छा समझते थे। तीनों के उद्योग से सन् १९२६ में तीनों राष्ट्रों में लोकार्नो-नामक स्थान पर संधि हो गई, जिसमें यह तय हुआ कि तीनों राष्ट्र भविष्य में मेल से रहेंगे और किसी बाहरी देश द्वारा आक्रमण किये जाने पर एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस संधि के अगले ही वर्ष जर्मनी राष्ट्रसंघ में भी शामिल हो गया।

डावेस-योजना के कार्य-रूप में परिणत होने से जर्मनी में फिर एक बार ख़ुशहाली की बहार आ गई। उसका व्यापार पुनः चमक उठा। उसे और देशों के समान सेना पर धन व्यय नहीं करना पड़ रहा था; क्योंकि वर्साई की संधि में एक शर्त यह भी थी कि जर्मनी अपनी सेना बहुत कम कर देगा और आगे अस्त्र-शस्त्र न बनावेगा। इस कारण वह बड़ी शीघ्रता से फिर मालामाल होने लगा। उसके पड़ोसी राष्ट्र जो सेना पर और लड़ाई के हथियार आदि मोल लेने में अपना धन ख़र्च करते थे, वह जर्मनी में नहीं हो रहा था। अतः वह अपने कई पड़ोसी राष्ट्रों से जल्दी ही ज़्यादा धनी हो गया; क्योंकि जर्मन प्रजातंत्र के स्थापित होने में सोशलिस्टों का काफ़ी हाथ था, इसलिए मिलों और कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों की दशा को बेहतर बनाने की ओर भी प्रजातंत्र सरकार ने काफ़ी ध्यान दिया। सन् १९२९ के समाप्त होने पर जब व्यापार की मंदी के कारण विश्वव्यापी अर्थ-संकट उत्पन्न हुआ तो जर्मनी पर भी उसका बहुत प्रभाव पड़ा। सन् ३१ में वह क़रीब-क़रीब दिवालिया ही हो गया और लड़ाई का ख़र्चा भी न दे सका। इस आर्थिक संकट के समय ब्रिटेन और फ्रांस ने फिर उसे ऋण देकर उसकी सहायता की।

उन दिनों जर्मनी में इस तरह की आर्थिक कठिनाइयाँ तो थीं ही, साथ ही उन्हीं दिनों उसके अन्दर घरेलू झगड़ों की बाढ़-सी आ गई। राष्ट्रीय मान-अपमान का विचार भी जड़ पकड़ने लगा। जर्मन लोग कहते थे कि मित्रराष्ट्रों ने, जिन्होंने वर्साई की संधि के समय अपनी सैनिक शक्ति को कम कर देने का वादा किया था, अपनी उस प्रतिज्ञा को पूरा नहीं किया। फिर जर्मनी भी क्यों न अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाना शुरू कर दे? जर्मनी की सरकार यह भी कहती थी कि ज़बरदस्त सैनिक शक्ति के न होने से सरकार का टिकना भी असम्भव है। उन दिनों जर्मनी के अन्दर दो दल थे—एक दल नाज़ी लोगों का था और दूसरा था कम्यूनिस्टों का। नाज़ीदल का नेतृत्व हर हिटलर के ही हाथ में था। सन् १९२० में युद्ध बन्द हो जाने पर सिपाही होने के अलावा उसने देश की राजनीति में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और वह सभाओं में लेक्चर आदि देने लगा। तब से उसने राजनीति से अपना सम्बन्ध जारी रक्खा। सन् २३ के म्यूनिक-विद्रोह का वही मुखिया था। यह विद्रोह असफल रहा। उसे गिरफ़्तार करके जेल भेज दिया गया। उन्हीं दिनों उसने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'माइन काम्फ़' लिखी, जिसकी ३० लाख प्रतियाँ बिकीं और संसार की आठ भिन्न-भिन्न भाषाओं में उसका रूपान्तर हुआ। इस पुस्तक से उसे ५ लाख ६० हज़ार पौण्ड की आमदनी हुई। सन् २४ में उसने 'जर्मनी जर्मनों के लिए' के सिद्धांत को लेकर अपनी पार्टी की योजना की और 'रीशटाग' में उसके दल के लोगों का ३२ स्थानों पर अधिकार हो गया। १९२८ में रीशटाग में उसकी पार्टी की संख्या घटकर १२ ही रह गई। किन्तु सन् ३० में नाज़ीदल का फिर १०७ सीटों पर अधिकार हो गया।

सन् १९३२ तक आते-आते देश में उसके अनुयायियों की काफ़ी संख्या हो गई। उन दिनों की उसकी शक्ति का अन्दाज़ा इसी एक बात से लगाया जा सकता है कि चुनाव में वह उसी साल जर्मन प्रेसीडेंट हिंडनबर्ग के मुक़ाबले खड़ा हुआ था। यद्यपि चुनाव में सफलता हिंडनबर्ग को ही मिली, तथापि उसे कुल वोटों की ३७ फ़ीसदी वोटें मिली थीं। उसी चुनाव में 'रीशटाग' में उसकी पार्टी के सदस्यों की संख्या २३० हो गई। सन् १९३३ में हिटलर जर्मनी का चांसलर चुना गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी वर्ष चुनाव के मौक़े पर एक और घटना हो गई। फ़रवरी के महीने में 'रीशटाग' की इमारत में किसी ने आग लगा दी। यह कार्य कम्यूनिस्ट पार्टी की करतूत समझा गया, पर जर्मनी में ऐसे लोगों की भी कमी न थी, जो यह समझते थे कि यह कार्य ख़ुद नाज़ियों ने ही किया है और बेचारे कम्यूनिस्टों के सिर उन्हें बर्बाद करने की ग़रज़ से ही यह दोष मढ़ा जा रहा है। ऐसे लोगों का कहना था कि जनमत को कम्यूनिस्टों के ख़िलाफ़ करने के लिए ही नाज़ियों ने यह चाल चली है। बाद में कम्यूनिस्टों पर जर्मन अदालत में मुक़दमा भी चला। इसके फलस्वरूप एक डच को इस अपराध का अपराधी क़रार दिया गया और उसे फाँसी का हुक्म हुआ।

सन् १६१६ में इसके सदस्यों की संख्या थी ७ (हिटलर उन दिनों ७ नम्बर का सैनिक था)।

सन्	१६२०	में इसके सदस्यों	की संख्या	थी	३०००
,,	१६२५	,,	,,	,,	२७०००
,,	१६२६	,,	,,	,,	४६०००
,,	१६२७	,,	,,	,,	७२०००
,,	१६२८	,,	,,	,,	१०८०००
,,	१६२६	,,	,,	,,	१७८०००
,,	१६३०	,,	,,	,,	३८६०००
,,	१६३१	,,	,,	,,	८६२०००
,,	१६३२ (जनवरी)	,,	,,	,,	६२००००

ये अंक, जो यहाँ दिये गये हैं, हिटलर के जर्मनी का

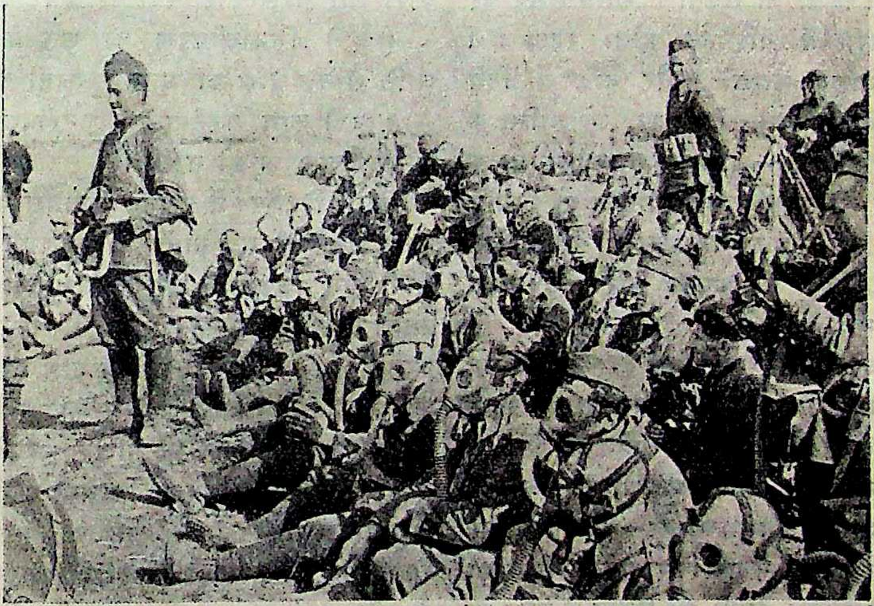

गैसमास्क लगाये हुए पोलिश सेना के सिपाही

हिटलर—शक्ति के शिखर पर

जिस क़दर तेज़ी के साथ जर्मनी में "नेशनल सोशलिस्ट" (नाज़ी) पार्टी ने उन्नति की, वैसा राजनीतिक दलों के विकास में कम होता है। नीचे की सूची से पाठकों को नाज़ीदल के तीव्रगामी विकास और वृद्धि का पता लगेगा—

चांसलर होने से पहले के हैं। इन्हें देखकर अनायास ही मन में एक प्रश्न उत्पन्न होता है। नाज़ीदल की इतनी उन्नति कैसे हुई?

किसी दल की उन्नति के प्रधान कारण उस दल के संस्थापक में पाये जाते हैं। यही बात नाज़ीदल के संस्थापक हर हिटलर के साथ भी लागू है। हम यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिटलर के सम्बन्ध में उन बातों का संक्षेप में वर्णन करेंगे, जिनकी वजह से उसके दल ने इतनी जल्दी यह आश्चर्यजनक उन्नति करके दिखाई।

हिटलर संसार का एक बहुत बड़ा अवसरवादी है। अवसर आने पर जैसे बने, वह अपना काम निकालने की फ़िक्र में रहता है। अमुक बात उसके द्वारा कही जानेवाली किसी पहली बात के प्रतिकूल पड़ेगी, अमुक घटना किसी नैतिक बन्धन को तोड़ देगी, उसके अमुक कार्य से उसके द्वारा की हुई कोई प्रतिज्ञा भंग हो जायगी—इन बातों का वह विचार नहीं करता। जहाँ तक इन बातों का सम्बन्ध है, वह पक्का 'मैकियावली' * का शिष्य है।

हिटलर की राजनीति स्थायी नहीं। उसके वचनों का विश्वास नहीं किया जा सकता। समय-समय पर उसकी विचार-धारा में परिवर्तन होता रहता है। उसकी पुस्तक "माइन काम्फ़" और बाद में दिये जानेवाले उसके भाषणों में—विशेषकर जो शान्ति के सम्बन्ध में दिये गये हैं—आकाश-पाताल का अन्तर है। आपको यह विश्वास करना मुश्किल हो जायगा कि इन भाषणों को देनेवाला हिटलर वही हिटलर है, जिसने थोड़े ही दिन पूर्व अपना चरित्र—"माइन काम्फ़"—लिखा था।

प्रत्येक व्यक्ति जो अवसरवादी होता है, उसके लिए यह आवश्यक होता है कि वह पहले जिस देश में रहता हो या जिस स्थान में कार्य करना चाहे, उस देश या स्थान के रहनेवालों की आवश्यकताओं का—उनकी परेशानियों और उनकी समस्याओं का—मनोवैज्ञानिक अध्ययन करे। ऐसा कर चुकने पर फिर अपनी नीति का लक्ष्य उन्हीं मर्मस्थानों को बनावे, जो जनता के हृदय पर सीधा असर करें। हिटलर की कार्य-प्रणाली पर नज़र डालने से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। कार्य-क्षेत्र में कूदने से पहले हिटलर ने भली भाँति देख लिया था कि 'जर्मन प्रजातंत्र' के स्थापित हो जाने पर भी जर्मनों को सन्तोष नहीं हुआ। अतः एक नई प्रकार की शासन-प्रणाली के लिए काफ़ी स्थान था। उसने अवसर से लाभ उठाकर गर्म लोहे पर चोट मारी।

संक्षेप में उस काल के जर्मनी की दशा भी यह थी—

(१) वर्साई की संधि के प्रति जर्मनों के हृदय में क्षोभ था। जर्मनी की शक्ति, जो इस समय में क्षीण कर दी गई थी, जर्मन जाति के विचार में उसका "राष्ट्रीय अपमान" था।

(२) यहूदी लोग सम्पन्न थे और बहुत-से सरकारी और ग़ैरसरकारी पदों पर थे। वे जर्मन न थे।

(३) निःशस्त्रीकरण की शर्त के कारण जर्मन जाति सैनिक ह्रास का अनुभव करती थी।

(४) काम करनेवाले मज़दूरों और किसानों की माली हालत अच्छी न थी।

अतः हिटलर ने अपने नाज़ीदल का संगठन करते समय ऊपर की सब बातों को बदलकर जर्मनी में एक नया 'युग' उपस्थित कर देने का वादा किया। उसने आशा दिलाई कि वह वर्साई की सन्धि को भंग करके जर्मनी को पुनः वही प्रतिष्ठा प्राप्त करावेगा, यहूदियों को निकालकर जर्मन जाति को उनके चंगुल से मुक्त कर देगा। वह भूखों को भोजन, ग़रीबों को धन और बेकारों को काम देगा। किसानों की हालत सुधारेगा और निःशस्त्रीकरण की शर्तों को तोड़कर जर्मनी को फिर पहले की तरह ही 'योद्धाओं' की जाति बना देगा। ये और इसी प्रकार की बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ की गईं। इनमें से कितनी प्रतिज्ञाओं को वह पूरी कर चुका है या उन्हें किस तरह से उसने पूरा किया, उसके तरीक़े ठीक थे या ग़लत—नैतिक या अनैतिक इन सारी बातों का संक्षेप वर्णन तो हम आगे करेंगे। यहाँ निस्सन्देह इतना ही कहा जा सकता है कि उसकी वजह से जर्मनी में एक नये जीवन का संचार हुआ और जर्मन जाति फिर से सिर ऊँचा उठाकर चलने लगी। यहाँ तक कि आज हर हिटलर भी सन् १४ के क़ैसर की भाँति ही बद-

* मैकियावली—मध्ययुग का इटली का एक राजनीतिवेत्ता, जिसका विचार था कि शासक को शासन-सम्बन्धी कार्यों में भले-बुरे अथवा सत्य-असत्य का विचार न करना चाहिए। उसने अपनी पुस्तक 'राजकुमार' (Prince) में इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़कर बातें मारने लगा है और विश्व की मौजूदा अशान्ति का एक भयंकर कारण बन गया है।

शक्ति-सम्पादन

१९३३ ई० में शक्ति पाते ही हर हिटलर के लिए सबसे पहली और ज़रूरी बात तो यह थी कि वह जर्मनी में अपनी और अपनी पार्टी की ताक़त बढ़ावे। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए जर्मनी में पिछले पाँच-छः वर्षों के अन्दर अनेक उपाय काम में लाये गये हैं। इनमें सबसे पहला क़ानून जो २४ मार्च, सन् १९३३ को पास हुआ, वह एनेबलिंग ऐक्ट (Enabling Act) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार 'रीश' के मंत्रि-मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया।

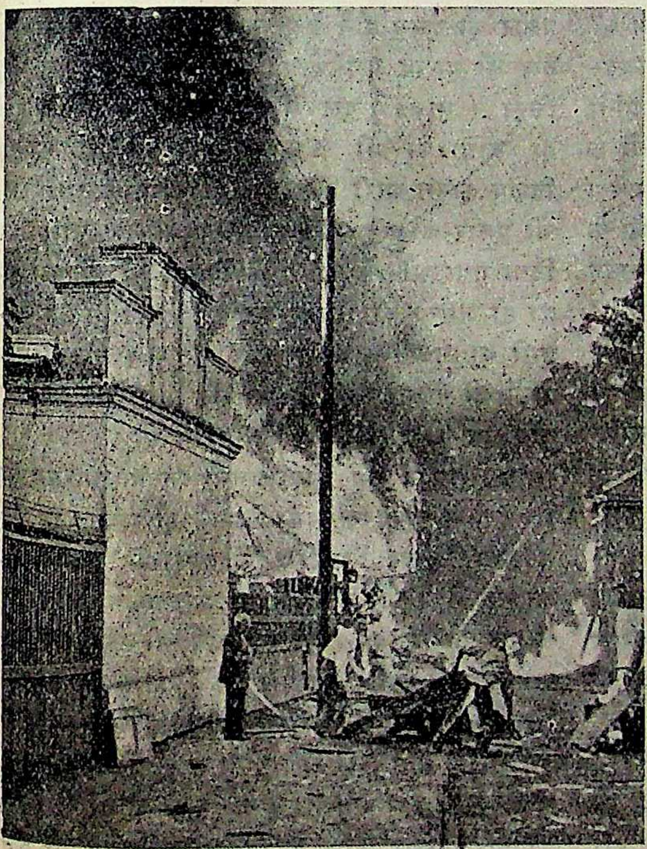

पोलैण्ड के नगरों के मकानों पर बम गिरने से नगरों की दुर्दशा।

इस प्रकार के क़ानून अगर शासन-विधान की सीमा के अन्तर्गत न आते हों, तब भी पास किये जा सकते थे। इन क़ानूनों का मसविदा तैयार करने का कार्य चांसलर को सौंपा गया। इसके अतिरिक्त मंत्रिमंडल को विदेशी राष्ट्रों से संधियाँ आदि करने का भी पूरा अधिकार दे दिया गया। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि २३ मार्च के दिन हिटलर ने अपने एक भाषण में अपनी नीति को प्रकट किया था। उसी नीति के आधार पर उक्त ऐक्ट की धाराओं की रचना हुई। यह पूरा क़ानून 'रीश' ने उसी दिन पास कर दिया और अगले ही रोज़ से उस पर अमल भी होने लगा।

हिटलर को अपने देश में जो शक्ति प्राप्त हुई, उसमें इस 'ऐक्ट' (Enabling Act) का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा क़ानून बनाने का कार्य 'रीशटाग' और 'रीशराट' से हटकर मन्त्रिमण्डल के हाथों में आ गया। बजट को छोड़कर और सब प्रकार के कार्यों का निबटारा मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जा सकता था। विधान की आज्ञाओं के विरुद्ध भी इस प्रकार के क़ानून बनाये जा सकते थे। इस प्रकार के सब क़ानूनों की रचना-कार्य मंत्रिमंडल की ओर से चांसलर के हाथ में था। इसका सीधा-सादा अर्थ यह था कि चांसलर पूर्णतया स्थिति का स्वामी था। उसकी शक्ति में केवल एक ही रुकावट पड़ती थी और वह यह कि उक्त ऐक्ट केवल ४ वर्ष के लिए लागू किया गया था अर्थात् ३१ मार्च, सन् ३७ तक। चार वर्ष समाप्त होने से पूर्व ही ३१ जनवरी सन् १९३७ को 'रीशटाग' ने इस क़ानून की अवधि चार वर्ष के लिए और बढ़ा दी! इस प्रकार जर्मनी में हिटलर की तानाशाही की स्थापना हुई।

जर्मनी भी भारतवर्ष की तरह ही छोटे-छोटे प्रान्तों में बँटा है। प्रत्येक प्रान्त को 'स्टेट' (State) के नाम से पुकारा जाता है। हिटलर के शक्ति ग्रहण करने से पूर्व इन प्रान्तों में भी अपनी-अपनी क़ानून बनानेवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभाएँ (Diets) थीं। जिस प्रकार केन्द्रीय सरकार ने 'एनेबलिंग ऐक्ट' पास करके 'रीश' की क़ानूनी शक्तियों को छीन लिया, उसी प्रकार प्रांतीय मंत्रिमंडलों को भी स्वतंत्र रूप से क़ानून बनाने की आज्ञा दे दी गई। फ़र्क़ इतना था कि प्रांतीय मंत्रिमण्डलों को ऐसे क़ानून बनाने का हक़ न था, जो शासन-विधान के ख़िलाफ़ जाते हों। हाँ, प्रांत के शासन-विधान के ख़िलाफ़ क़ानून बनाने की उन्हें पूरी आज़ादी थी।

७ अप्रैल, सन् १६३३ को एक दूसरा क़ानून प्रांतीय शासन के सम्बन्ध में पास हुआ। इस क़ानून द्वारा प्रांत के शासन पर भी हिटलर का पूरा अधिकार हो गया। प्रत्येक प्रांत के लिए एक 'रीजेण्ट' की नियुक्ति होने लगी। यह रीजेण्ट केवल चांसलर (हिटलर) के प्रति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी था। उसका कर्तव्य था कि वह यह देखे कि प्रांतों में चांसलर की नीति व्यवहार में लाई जा रही है या नहीं। इस क़ानून से प्रांतों की स्थिति बिलकुल बदल गई। राजनीतिक इकाइयों के स्थान में अब वे भौगोलिक इकाइयाँ ही रह गये। उनका अस्तित्व अब केवल शासन-सम्बन्धी सुविधा के लिए ही था। इस क़ानून के बनने से जर्मनी के अन्दर 'संघ-शासन' (Federalism) का ख़ात्मा हो गया। रीजेण्ट प्रत्येक प्रांत में चांसलर का प्रतिनिधि है। उसे काफ़ी अधिकार मिले होते हैं। वह प्रांत के प्रेसीडेण्ट को बरख़ास्त करके उसके स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति कर सकता है। मंत्रिमण्डल के सदस्यों के ऊपर भी उसका यह अधिकार है। प्रांत के लिए क़ानूनों की रचना भी वही करता है।

पार्लियामेंटरी देशों में दो व्यवस्थापक सभाएँ रखने की प्रथा है। जर्मनी में भी दो ही थीं—(१) रीशराट और (२) रीशटाग। 'रीशराट' का स्थान 'अपर हाउस' (Upper House) की तरह था और 'रीशटाग' को 'लोअर हाउस' (Lower House) की तरह समझना चाहिए। 'रीशराट' के सदस्य प्रांतों (States) के प्रतिनिधि होते थे और उनकी संख्या सब मिलाकर ६८ होती थी। १४ फ़रवरी, सन् १६३४ के दिन केन्द्रीय सरकार की ओर से एक विशेष आज्ञा निकाली गई, जिसके अनुसार 'रीशराट' का अन्त कर दिया गया। रीशराट का अन्त हो जाने से प्रांतों की रही-सही स्वतंत्रता पर भी पानी फिर गया।

नाज़ीदल के अतिरिक्त हिटलर और किसी राजनीतिक दल को फूटी आँख भी न देख सकता था। उसका विचार है कि भिन्न-भिन्न दलों के कारण केन्द्रीय सत्ता दुर्बल हो जाती है। कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये। समाजवादियों की शक्ति भी काफ़ी क्षीण कर दी गई, यहाँ तक कि 'एनेबलिंग ऐक्ट' के लिए दी जानेवाली कुल १२० वोटों में से ६४ वोटें समाजवादियों की ही थीं। प्रजातंत्रदल के ख़िलाफ़ भी क़ानून बनाकर जारी कर दिये गये। विभिन्न दलों के ख़िलाफ़ जब इस प्रकार का दमन होते देखा गया तो अन्य छोटे-मोटे दल भी या तो अपनेआप मिट गये या 'नेशनल सोशलिस्ट' (नाज़ी) दल में सम्मिलित हो गये। इतना हो जाने पर भी १४ जुलाई, १६३३ को एक विशेष क़ानून जारी किया गया। इसके अनुसार किसी भी प्रकार की नई पार्टी को जन्म देना वर्जित कर दिया गया और केवल एक 'नेशनल सोशलिस्ट' पार्टी को ही जर्मनी की राजनीतिक पार्टी क़रार दिया गया। इसी क़ानून की एक धारा के अनुसार किसी नवीन पार्टी की रचना करने की कोशिश करनेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष का दण्ड दिया जा सकता था।

इन सब उपायों और क़ानूनों का नतीजा यह हुआ कि देश में नाज़ीदल सर्वशक्तिमान् हो गया। नाज़ीदल के प्रधान—हर हिटलर—के हाथ में असीम शक्ति आ गई। पार्टी के अन्दर अनुशासन और उसके संगठन को बनाये रखने का कार्य भी हिटलर के ही अधिकार में था। वह पार्टी के किसी भी सदस्य के ख़िलाफ़ अनुशासन की कार्यवाही कर सकता था। इन सारी बातों का अर्थ होता था—हिटलर की पूरी 'डिक्टेटरशिप'। नाज़ीदल के कुछ लोगों में हिटलर की इस अपार शक्ति के विरुद्ध असन्तोष भी बढ़ा। अर्नेस्ट रोम (Ernst Rohm) और उसके कुछ साथियों ने, जो नाज़ीदल के ही थे, हिटलर को राजनीतिक क्षेत्र से हटाने के लिए एक षड्यन्त्र सन् ३४ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा। हिटलर को इसका पता पूरा होने से पहले ही लग गया। परिणाम यह हुआ कि उसने गोरिंग तथा गोबल आदि अपने साथियों की सहायता से रोम और उसके कई सौ साथियों को अपनी मौजूदगी में गोली से उड़वा दिया। यह भीषण हत्याकाण्ड म्यूनिक नगर में हुआ और इसका कारण बताया गया—नैतिकता की रक्षा।

इसके एक महीने के बाद ही २ अगस्त, १९३४ को मार्शल हिंडनबर्ग की मृत्यु हो गई। मार्शल हिंडनबर्ग सन् २५ से लेकर ही जर्मन राष्ट्र के प्रेसीडेंट थे। उसी दिन हिटलर ने एक क़ानून प्रकाशित कराया, जिसके अनुसार प्रेसीडेंट और चांसलर का पद मिलाकर एक कर दिया गया। चांसलर वह पहले से था ही। अब वह प्रेसीडेंट भी हो गया।

यहूदियों का विनाश

यहूदियों का वध करने में मैं अपने 'प्रभु' का कार्य कर रहा हूँ। —हर हिटलर

नाज़ीदल के हाथ में शक्ति आते ही जर्मनी में यहूदियों के ऊपर अत्याचार होना प्रारम्भ हुआ। नाज़ीदल और उसके नेताओं को यहूदियों से बड़ी घृणा थी। बात यह थी कि व्यापार, विज्ञान तथा कला आदि में यहूदी लोग जर्मनों से पहले ही बाज़ी मार ले गये थे। जर्मनी के अनेक बड़े-बड़े बैंक उनके हाथ में थे, कई बड़े-बड़े अख़बारों पर उनका अधिकार था और देश के सामाजिक जीवन में भी उनका बड़ा प्रभाव था। क्रान्ति होने के बाद यहूदियों ने राजनीतिक और शासन-सम्बन्धी क्षेत्रों में भी काफ़ी उन्नति की। फल यह हुआ कि अनेक उत्तरदायी पदों पर यहूदी लोग पहुँच गये। युद्ध के बाद की जर्मनी की राजनीतिक हलचल में कई यहूदी जर्मनी के नेता बन गये।

यहूदियों की इस उन्नति को—उनके इस बढ़ते हुए प्रभाव को—नाज़ीदल के नेता ठंडे कलेजे से कैसे देख सकते थे? यहूदी लोग नाज़ियों की नज़र में बुरी तरह खटकने लगे। यह सच है कि धनी लोगों का वर्ग होने के कारण जर्मनी की ग़रीब जनता—विशेषकर किसानों—के हृदय में यहूदियों के विरुद्ध असंतोष के भाव पहले से ही मौजूद थे। किन्तु हिटलर और उसके दल ने इस यहूदीविरोधी भावना को अनेक प्रकार का रंग देकर उत्तेजना के शिखर पर पहुँचा दिया। सब प्रकार के दोष यहूदियों में दिखलाये जाने लगे। जर्मनी की तत्कालीन गिरी हुई दशा की ज़िम्मेदारी भी यहूदियों के ही मत्थे मढ़ी गई, यहाँ तक कि महायुद्ध में जर्मनी की हार का कारण भी जर्मनी में 'यहूदियों का होना' ही बताया गया। नाज़ीदल की ओर से इस बात की दुहाई दी जाने लगी कि "जर्मनी की अवनति इसलिए है कि वह "ओछे विदेशियों" (यहूदी) के हाथों में पड़ा हुआ है। अगर जर्मनी को उन्नति करनी है—आगे बढ़ना है—तो उसे चाहिए कि सबसे पहले यहूदियों का नामोनिशान मिटा दे।" यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'जर्मनी की उन्नति' का अर्थ था—नाज़ीदल की उन्नति। इस लगातार चलनेवाले आन्दोलन का परिणाम यह

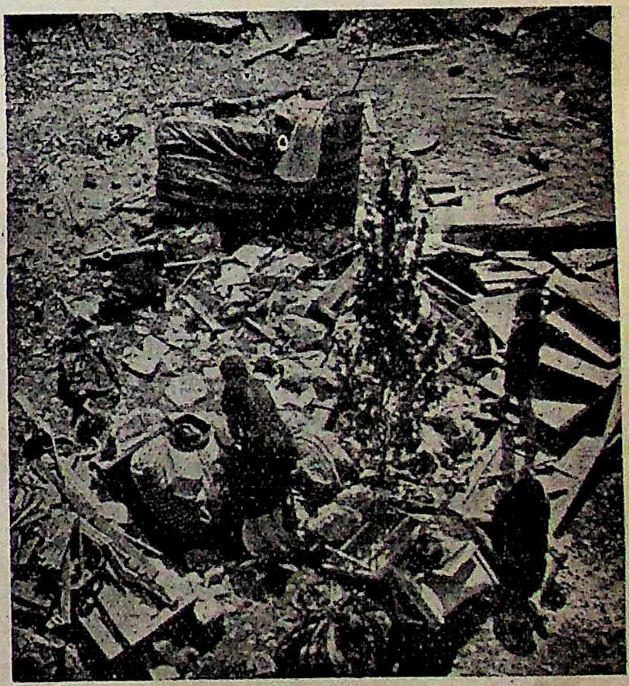

बम द्वारा ध्वंस किये गये एक मकान में एक पोलिश स्त्री अपना सामान ढूँढ़कर निकाल रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कि जर्मनीभर में एक स्वर गूँजने लगा और वह स्वर था—

"जर्मनी जाग और यहूदियों को बर्बाद कर दे।"

क्या नाज़ीदल के जलसों में, क्या समाचारपत्रों में, यहीं तक नहीं गलियों और बाज़ारों तक में, जर्मनी में यहूदियों के विरुद्ध एक भयानक तूफ़ान-सा आ गया। सार्वजनिक स्थानों में यहूदियों के विरुद्ध गीत गाये जाने लगे। ऐसे अनेक गीतों की रचना कराई गई। नाज़ीदल की ओर से राष्ट्रीय गानों की जो पुस्तकें प्रकाशित कराई गईं, उनमें यहूदियों के विरोध में गाने भरे रहते थे। एक इसी प्रकार की पुस्तक की चार पंक्तियाँ ये हैं—

"So stand the storm battalions,
Ready for racial fight;
Only when Jews lie bleeding,
Can we be really free."

इन पंक्तियों में जर्मन जाति को यहूदियों के विरुद्ध शस्त्र उठाने को उत्तेजित किया गया है। पिछली दो पंक्तियों का अर्थ है—"हम (जर्मन) सच्ची आज़ादी यहूदियों का ख़ून बहाकर ही कर सकते हैं।"

एक अर्द्ध-सरकारी पत्र में यहूदियों के विरुद्ध निकला—

"जर्मन नेशनल कॉमरेड * क्या तुम्हें मालूम है कि जर्मनी में बसे हुए प्रत्येक यहूदी के कारण—

तुम्हारे बच्चे के अधिकारों पर कुठाराघात होता है।
तुम्हारी पत्नी की प्रतिष्ठा को धब्बा लगता है।
तुम्हारी बहन की प्रतिष्ठा को धब्बा लगता है।
तुम्हारी प्रेयसी की प्रतिष्ठा को धब्बा लगता है।
तुम्हारे माता-पिता का वध होता है।
तुम्हारी सम्पत्ति की चोरी होती है।
तुम्हारी प्रतिष्ठा की हँसी उड़ाई जाती है।
तुम्हारे चरित्र को घृणा की नज़र से देखा जाता है।
तुम्हारे धार्मिक विचारों में अपवित्रता आती है।
तुम्हारी सभ्यता का नाश होता है।
तुम्हारी जाति में विनाशकारी कीटाणु फैलते हैं।"

बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे नाज़ीदल के नेताओं ने यहूदियों के विरुद्ध उत्तेजना फैलाने में कुछ कसर न रक्खी। हिटलर ने किस प्रकार यहूदियों के वध को "प्रभु (Lord) का कार्य" समझा था, इसका हम शुरू में ही वर्णन कर चुके हैं। यहूदियों के प्रति जर्मन नेताओं के विचारों को स्पष्ट करने के लिए डॉक्टर गोबेल्स (जर्मनी के प्रचार-मन्त्री) की इन पंक्तियों पर ध्यान दीजिए—

"एक यहूदी को देखनेमात्र से ही मुझे नफ़रत है। जब मैं किसी यहूदी को देख लेता हूँ तो मुझे सचमुच क़ै हो जाती है।..........एक साधारण वेश्या को मैं विवाहित यहूदी-स्त्री की अपेक्षा ऊँची नज़र से देखता हूँ।"

जब यहूदियों के विरुद्ध इतना ज़बरदस्त आंदोलन था तो उनके साथ हिटलर की सरकार का क्या सलूक हो सकता था, इसका अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। नाज़ी-सरकार की ओर से सर्वत्र यहूदियों के बहिष्कार की घोषणा की गई। सरकारी पदों पर से उन्हें हटा दिया गया। वकील, डॉक्टर, प्रोफ़ेसर, व्यापारी—जो भी कोई यहूदी जहाँ कहीं था, वहाँ से हटा दिया गया। यहूदियों की दूकानों से माल न लेने के नारे लगाये गये। स्वस्तिक चिह्न लगाये हुए सन्तरी यहूदियों की दूकानों पर तैनात किये गये, जो उन लोगों के नाम नोट करते थे, जो कि उन दूकानों से माल ख़रीदने आते थे। ऐसे लोगों का बाद में सामाजिक बहिष्कार होता था। हिटलर जर्मन जाति को विशुद्ध आर्य जाति के रूप में देखना चाहता था। अतः थोड़े दिनों ही बाद यह आज्ञा निकाली गई कि न कोई जर्मन-स्त्री किसी यहूदी से शादी करे और न कोई जर्मन-पुरुष किसी यहूदी स्त्री से। जर्मनी के अन्दर बसे हुए यहूदियों को नागरिकता के अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया। जो लोग सरकारी नौकरी में थे, उन्हें आज्ञा हुई कि वे अपने वंश तथा सम्बन्धियों का पूरा-पूरा विवरण दाख़िल करें। जिन लोगों के आर्य होने में ज़रा भी सन्देह हो सकता था, उनको निम्नलिखित शपथ लेनी पड़ती थी—

* नाज़ीदल की ओर से जर्मनी के नागरिकों को इसी प्रकार सम्बोधित किया जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"I hereby testify on oath that: despite careful examination, no circumstances are known to me which could justify the supposition that I am not of Aryan descent or that any of my parents or grandparents at any time professed the Jewish religion. I am aware that I am liable to legal prosecution and dismissal from service if this declaration does not contain the truth."

अर्थात्—"मैं शपथपूर्वक इस बात की तसदीक़ करता हूँ कि भली भाँति छानबीन करने पर मुझे किसी भी ऐसी बात का पता नहीं है, जिससे मेरे आर्य होने में कोई भी सन्देह किया जा सके। मेरे वंशज किसी समय भी यहूदी-धर्म के अनुयायी नहीं रहे। मुझे इस बात का पता है कि यदि मेरा यह कथन असत्य हुआ तो मुझ पर क़ानून के अनुसार मुक़दमा चलाया जायगा और मैं नौकरी से बर्ख़ास्त कर दिया जाऊँगा।"

यहूदी ही क्या, किसी भी क़ौम का इन क़ानूनों, प्रतिबन्धों तथा अत्याचारों के सामने टिकना कठिन था। यहूदियों ने लुट जाने के डर के मारे अपनी-अपनी दूकानें बन्द कर दीं, बैंकों में ताला लगा दिया और जिसको जहाँ शरण मिली, वहीं वह जर्मनी को छोड़कर जा छिपा। नाज़ीदल को छोड़कर प्रायः और सभी दलों के लोगों के साथ इसी तरह की सख़्ती का व्यवहार किया गया। नतीजा यह हुआ कि एक ही वर्ष के अन्दर लगभग ६०,००० स्त्री-पुरुष देश छोड़कर भाग गये। इनमें यहूदी कम्यूनिस्ट और समाजवादी सब इसी प्रकार के लोग थे, जिनका हिटलर की नई हुकूमत में जर्मनी में रहना भारू हो गया था। अनेक देशों ने इन अभागे लोगों की सहायता के लिए संस्थाएँ क़ायम कीं और "सहायता-फ़ंड" खोले। राष्ट्र-संघ की असेम्बली में भी इन लोगों की सहायता का प्रश्न उठाया गया और एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति इनको सहायता पहुँचाने के लिए हुई।

इस तरह यहूदियों और दूसरी विरोधी शक्तियों का दमन करके हिटलर ने जर्मनी में अपनी और अपने दल की शक्ति को मज़बूत बना लिया। चांसलर होने के बाद के पहले चार वर्षों का इतिहास हम यहाँ देते हैं—

१९३३

जनवरी—अडोल्फ़ हिटलर चांसलर।

अक्तूबर—निःशस्त्रीकरण कांफ्रेंस से जर्मनी ने अपने आपको हटा लिया—राष्ट्रसंघ से अलग होने का नोटिस—जर्मनी में खुल्लमखुल्ला शस्त्रीकरण शुरू हुआ।

१९३४

पोलैंण्ड और जर्मनी में अनाक्रमणसंधि—पोलैंण्ड ने डैंज़िग के नाज़ियों की सहायता करना स्वीकार किया।

३० जून—हिटलर ने अपने ही दल के ३०० नाज़ियों का वध कराया।

आस्ट्रिया के नाज़ियों द्वारा डॉक्टर डालफ़स की हत्या—जर्मनी की सरकार को इस षड्यन्त्र का पहले से ही पता था।

१९३५

जनवरी—सार के सम्बन्ध में होनेवाले मतसंग्रह (Plebiscite) में जर्मनी की जीत।

मार्च—हिटलर द्वारा वर्साई की संधि की सैनिक-शक्ति-सम्बन्धी धाराओं का विरोध—अनिवार्य रूप से सैनिक-शिक्षा ग्रहण (Conscription) करने की योजना शुरू हुई।

सितम्बर—जर्मनी द्वारा प्रोत्साहन मिलने पर इटली ने अबीसीनिया पर चढ़ाई कर दी।

१९३६

मार्च—लोकार्नो की संधि को जर्मनी ने भंग कर दिया—राइन-प्रदेश में जर्मन सेनाओं का प्रवेश—फ़्रांस चुप होकर बैठ रहा।

इटली के ज़ोर डालने पर आस्ट्रिया ने जर्मनी को कुछ और रिआयतें दे दीं।

जर्मनी और इटली मिलकर स्पेन के सैनिक अफ़सरों को वहाँ की प्रजातंत्र सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने को उकसाते हैं।

अक्तूबर—जर्मनी और इटली में एक "सम्मिलित नीति" बर्तने की परस्पर प्रतिज्ञा हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३६-१९३७—हिटलर ने वर्साई की संधि की ी धाराओं का उल्लंघन कर दिया ।

१९३७ जनवरी—"सम्मिलित नीति" की संधि के अनुसार इटली और जर्मनी ने प्रजातंत्र और कम्यूनिस्ट राष्ट्रों के विरुद्ध कार्य करने की घोषणा की—"रोम-बर्लिन-धुरी" की स्थापना हुई ।

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए
एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सूज़ाक (गनोरिया) की हुक्मी दवा

डा० जसानी का
जगत्-विख्यात 'गोनोकिलर' रजिस्टर्ड

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने व निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर एक ऐसी ही आश्चर्यजनक दवा है जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता ।

चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को "गोनोकिलर" जड़ से नष्ट कर देता है ।

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
दवा का नाम गोनोकिलर
और मुर्गा छाप सीलबंध
पैकेट देख लीजिये

मूल्य ४० गोलियों की शीशी का दाम ३) रु० वी० पी० डाक व्यय आठ आना अलग

एकमात्र बनानेवाले—डॉ० डी० एन० जसानी M. L. गिरगाँव बैंक रोड, बंबई नं० ४

लखनऊ स्टाकिस्ट—किंग मेडिकलहाल अमीनाबाद पार्क ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जासूसों के दिलचस्प कारनामे

श्रीभगवतीप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०

माताहारी

आज से ठीक २२ वर्ष पहले की घटना है। फ्रेंच सार्जेंएट ने सन्तरी को हुक्म दिया था कि "सामने खड़ी हुई सुन्दरी के कान में पिस्तौल की गोली दागकर उसकी हत्या कर डालो"। पेरिस ही नहीं, वरन् समूचे फ्रांस में इस सुन्दरी स्त्री के जोड़ की अन्य कोई महिला रूप तथा नृत्यकला में खोजने पर भी नहीं मिल सकती थी। माताहारी के छद्म नाम से इस सुन्दरी ने गत महायुद्ध में जर्मनी की ओर से जासूसी की थी। तीक्ष्ण बुद्धि तथा अपने रूपलावण्य और साहस की बदौलत इसने मित्रराष्ट्रों के अनेक भेद जर्मन सरकार के लिए प्राप्त किये थे।

माताहारी का वास्तविक नाम मार्गरेट-गर्ट्रूड-ज़ेली मेक्लेओड था और यह हालैंड देश की रहनेवाली थी, किन्तु उसने अपने को जावाद्वीप की सुन्दरी के नाम से मशहूर कर रक्खा था। वह अपने अपूर्व नृत्य से मित्रराष्ट्र के फ़ौजी तथा सरकारी अफ़सरों का मन लुभाकर उन्हें अपने प्रेमपाश में फँसा लेती। फिर मौक़ा पाकर उनसे किसी-न-किसी तरह युद्ध-सम्बन्धी भेद प्राप्त कर लेती।

> श्रीयुत भगवतीप्रसादजी श्रीवास्तव एक उदीयमान लेखक हैं। आपके लेख मनोरंजक होने के साथ ही ज्ञानवर्द्धक होते हैं। आपका यह लेख भी पाठकों के लिए बहुत ही मनोरंजक होगा। श्रीवास्तवजी माधुरी में बराबर लिखते रहेंगे। आशा है, पाठक उनके लेखों को पसंद करेंगे।
>
> माधुरी-संपादक

माताहारी की करततों से मित्रराष्ट्रों के २०००० सैनिक जर्मनों के हाथ निर्दयता के साथ भूने गये थे। कदाचित् गत महायुद्ध में तमाम जर्मन जासूसों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम इसी ने किये थे।

माताहारी पर जासूस होने का सन्देह मित्रराष्ट्र के गुप्तचर-विभाग को काफ़ी दिनों से था, किन्तु माताहारी के प्रेम में ऊचे ऊँचे सरकारी अफ़सर इतने अंधे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहे थे कि वे इस बात पर विश्वास करने के लिए राज़ी न होते। अतः इनके डर से गुप्तचर-विभाग के लोग माताहारी को गिरफ़्तार करने में भी हिचकते थे; क्योंकि ये जानते थे कि जब तक ऊँचे अफ़सर माताहारी के हिमायती बने रहेंगे, तब तक माताहारी के ख़िलाफ़ सबूत इकट्ठा करना सम्भव न हो सकेगा। आख़िर पर्याप्त सबूत के संग माताहारी मित्रराष्ट्रों के गुप्तचर-विभाग द्वारा पूरे तीन साल की मिहनत के बाद गिरफ़्तार की गई। कोर्ट मार्शल के बाद, जासूसों की एकमात्र सज़ा, प्राणदण्ड उसे मिला। लेकिन कितने दर्दनाक क़िस्म की मौत। कान में गोली दागकर हत्या और आँख पर पट्टी चढ़ाने की भी उसे इजाज़त नहीं मिली थी।

क्लादे फ्रांस, एक फ़िल्म ऐक्ट्रेस ने माताहारी का भंडाफोड़ किया था। बाद में अपने इस काम पर उसे इतनी ग्लानि हुई कि उसने शीघ्र ही अपनी आत्म-हत्या कर डाली।

आज योरप में एक बार फिर युद्ध की ज्वाला धधक उठी है। निस्सन्देह पिछले युद्ध की भाँति इस युद्ध में भी जासूसों की सहायता महत्त्वपूर्ण साबित होगी। इसी कारण इँगलैंड और फ्रांस में स्थान-स्थान पर पोस्टर लगे हुए हैं कि "अजनबी लोगों से होशियार रहो। युद्ध-सम्बन्धी बातें कहीं पर मत करो। दीवाल के भी कान होते हैं।"

सच तो यह है कि जासूस को देखकर आप पहचान तो सकते नहीं कि अमुक व्यक्ति नुकीली दाढ़ीवाला, अवश्य जासूस-सा दीखता है। कलफ़ की हुई आस्तीन-वाली क़मीज़ उसने पहन रक्खी है, ताकि ज़रूरी बातें वह आस्तीन के ऊपर नोट कर ले। इस प्रकार की जासूसों की वेषभूषा का अक्सर ज़िक्र शरलाक् होम्स की जासूसी कहानियों में आता है; किन्तु वास्तविक दुनिया में तो जासूस को सबसे अधिक सावधानी इस बात के लिए रखनी होती है कि उसका पहनावा, उसकी चाल-ढाल सब कुछ आम लोगों-सरीखा दीखे, ताकि उसे देखकर कोई भाँप न सके कि यह शख़्स किसी ख़ास उद्देश्य को लेकर हमसे बातें कर रहा है। क्योंकि मतलब की ख़बर इकट्ठी करने के लिए जासूसों को तरह-तरह की तरकीबें ईजाद करनी होती हैं। यदि आप युद्ध-सम्बन्धी आफ़िस में काम कर रहे हैं, और दुश्मन का जासूस जानता है कि आपसे मतलब की बातें मालूम की जा सकती हैं, तो वह किसी-न-किसी बहाने आपके पास आकर बैठ जायगा और इधर-उधर की सिनेमा और मौसम-सम्बन्धी वार्तालाप शुरू कर देगा। बात शुरू करने के लिए एक ख़ास तरीक़ा जो जासूस इस्तेमाल में ले आते हैं, वह यह है कि अगर आप रेस्टराँ में बैठे चाय पी रहे हैं तो वह आपकी मेज़ के पास से होकर गुज़रेगा और सफ़ाई के साथ आपकी मेज़ से धक्का खायगा। आपको जान पड़ेगा कि संयोग-वश अनजान से धक्का लग गया है। अब अपनी भूल के लिए क्षमा-याचना करते हुए वह शायद बेहरा को फिर से नई चाय लाने का हुक्म देगा। आप भी उसी मेज़ की बग़ल में बैठकर इधर-उधर की बातें करने लगेंगे। धीरे-धीरे आप समझेंगे कि यह कितने भले हृदय का व्यक्ति है। बातों के सिलसिले में एकाध प्रश्न करके वह अपने मतलब की बातें भी मालूम कर लेगा; किन्तु हमेशा वह जताएगा कि उसकी दिलचस्पी शायद किसी और चीज़ में है। जब वह उठकर वहाँ से चला जायगा, तब शायद आप सोचेंगे कि आपको अमुक बात सेना के सम्बन्ध में उस अजनबी के सामने नहीं करनी चाहिए थी। किन्तु फ़ौरन् आपको याद आएगा कि वह अजनबी तो क्रिकेट के मैच की बातों में अपनी दिलचस्पी दिखला रहा था और बहुत मुमकिन है कि मेरी उस सेना-सम्बन्धी बात की ओर उसका ध्यान ही न गया हो।

अभी दो हफ़्ते की बात है। एक अँगरेज़ जासूस इङ्गलैंड में लन्दन के निकट के एक गाँव में बैठा हुआ था। उसने एक घटना का ज़िक्र किया है। "उसी बेंच पर एक वयस्क महिला आकर बैठ गई और यद्यपि हम दोनों एकदम अजनबी थे, किन्तु थोड़ी ही देर में हमने एक दूसरे की बातों में गहरी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी और युद्ध के बारे में इधर-उधर की बहस होने लगी। फिर यकायक मेरे कानों के पास झुककर उस महिला ने कहा कि क्या आपको मालूम है कि उस सामनेवाले बग़ीचे में पाँच वायुयान-विध्वंसक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोपें छिपाकर रक्खी गई हैं ? मैंने ज़रा उसकी इस बात पर अविश्वास जताया। बस, फ़ौरन् ही ज़ोर देकर उसने अपनी बातों की पुष्टि करना शुरू किया। उसने कहा—मेरे कथन में सन्देह करने की गुंजाइश ही नहीं। स्वयं मेरा लड़का एंटीएयर-क्रैफ़्ट दल का स्वयं-सेवक है। उसी की ज़बानी मुझे यह बात मालूम हुई है।"

आम जनता कभी महसूस ही नहीं कर सकती कि इस तरह की सेना तथा राष्ट्र-रक्षा-सम्बन्धी छोटी-छोटी जानकारी से दुश्मन किस क़दर फ़ायदा उठा सकते हैं। शत्रु की सेना का संगठन, उसकी स्कीम तथा उसकी वायुयान-सेना तथा हमले का प्रोग्राम, इन सब बातों की जानकारी हासिल करना भी उतना ही ज़रूरी समझा जाता है, जितना तोप, बारूद और गोले का हासिल करना। यही कारण है कि जासूस को गहरी रक़म उनकी सेवाओं के लिए मिलती है।

पिछले महायुद्ध में जासूसों ने भेस बदलकर शत्रु के देश में घुसकर तरह-तरह के मौलिक तरीक़ों से अपना मतलब हासिल किया था, और आश्चर्य नहीं, इस वर्तमान युद्ध में भी जासूस अपनी जान को हथेली पर लेकर शत्रु के शिविर में घुसकर अपना काम कर रहे हों।

प्रायः जासूस इधर-उधर से समाचार एकत्रित करके उन्हें एक सूत्र में पिरोकर उनका असली अभिप्राय मालूम कर लेता है। होटलवालों को, नौकरानी और धोबिन वग़ैरह को मिलाकर वह उनके ज़रिये समाचार इकट्ठे करता है। भिन्न-भिन्न जगहों से इकट्ठे किये गये समाचार देखने में एक दूसरे से भिन्न तथा बेमतलब के जँचते हैं, किन्तु हेडक्वार्टर में उन सबका अध्ययन करके शत्रु की सेना की गतिविधि का अन्दाज़ थोड़ा-बहुत अवश्य लगाया जा सकता है।

पिछले महायुद्ध में प्रसिद्ध जर्मन जासूस अर्नेस्ट कार्ल इँगलैंड की फ़ैक्टरियों के मज़दूरों की बातें रेस्टराँ और सड़कों पर बड़े ग़ौर से सुना करता। उनके बहस-मुबाहसे से उसने फ़ौरन् मालूम कर लिया कि उन फ़ैक्टरियों में कौन-कौन-सी चीज़ें और कितनी मिक़दार में तैयार की जा रही हैं। इस तरह जर्मन सरकार के पास ख़बर पहुँचाई जा सकी थी कि अँगरेज़ों के पास कौन-कौन-सी सामग्री और कितनी मिक़दार में मौजूद है।

एक अँगरेज़ जासूस ने अपने संस्मरण में लिखा है—"मैं क़रीब ६ वर्ष पहले एक विदेशी शहर में सरकारी काम से भेजा गया था। मुझे वहाँ राजदूतावास से एक गुप्त-संधि-वार्तालाप के बारे में ख़बर लानी थी। मैंने वहाँ जाकर राजदूतावास में काम करनेवाली नौकरानी को रुपये देकर उसे वश में कर लिया और उससे केवल आफ़िस के रद्दी की टोकरी में पड़े काग़ज़ के टुकड़ों को मैं प्रतिदिन मँगा लिया करता था। दो सप्ताह के अन्दर मेरे पास चिट्ठियों के टुकड़े तथा सोख़्ते पर उभरे हुए उलटे अक्षर इतने काफ़ी जमा हो गये कि फ़ौरन् मैंने ज़रा-सी मेहनत के बाद मालूम कर लिया कि यह गुप्त-संधि-वार्ता किन उद्देशों को लेकर की जा रही है।"

जासूसों के लिए मतलब की बातें मालूम कर लेना उतना मुश्किल नहीं है, जितना उस ख़बर को अपने हेडक्वार्टर को भेजना; क्योंकि ख़बर भेजते समय शत्रु के गुप्तचर-विभाग की आँखों को बचाना पड़ता है, वरना सारा किया-कराया भी चौपट जाय और स्वयं अपनी जान भी मुफ़्त खोयें।

साधारणतः भिन्न प्रकार की सांकेतिक भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। किन्तु शत्रु का गुप्तचर-विभाग प्रायः इन सांकेतिक भाषाओं का मतलब हल कर ही लेता है। पिछले महायुद्ध में तो जर्मन सेना की संकेत भाषा की पूरी किताब ही ब्रिटिश-गुप्तचर-विभाग के हाथ लग गई थी। बस, जो कुछ भी समाचार जर्मन सेना के अफ़सर अपनी सांकेतिक भाषा में एक जगह से दूसरी जगह को रेडियो द्वारा भेजते, ब्रिटिश-सरकार को उस समाचार का फ़ौरन् पता लग जाता। इस प्रकार जर्मन सेना का बहुत-सा भेद मित्रराष्ट्रों को मालूम हो गया था।

एडमिरल सर रेजिनाल्ड हाल सांकेतिक भाषा के पहचानने में बहुत ही निपुण थे। अपनी इस सतर्कता की बदौलत आपने ३० जर्मन जासूसों को गिरफ़्तार कराया था। इनमें से १२ को गोली मार दी गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांकेतिक भाषा के लिए भी विचित्र प्रकार के तरीक़े इस्तेमाल किये गये हैं। इटली के एक जासूस ने कंघी के दाँतों के बीच गर्द के काले-काले ज़र्रों को एक ख़ास तरीक़े पर बिठाकर सांकेतिक भाषा में गुप्त समाचार भेजा था।

जासूस अपने साथ ले जाते थे। एक बार जर्मन अधिकारियों ने एक ब्रिटिश-जासूस का ख़ानातलाशी ली तो उन्होंने उसकी चाभा के सूराख़ में जर्मनी के एक सरहदी क़िले का नक़शा एक छोटे काग़ज़ पर बना पाया। फ़ौरन् उस जासूस को गोली मार दी गई।

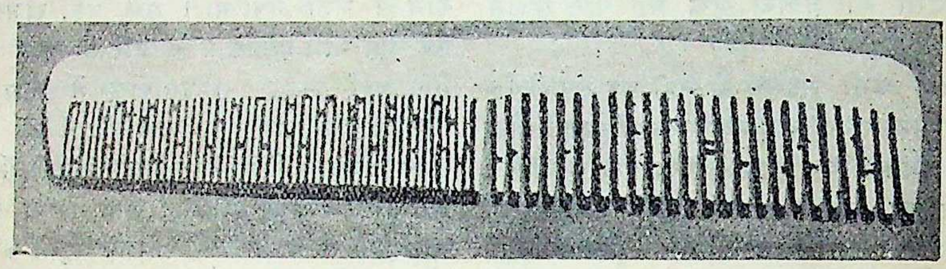

१९०५ की जापान और रूस की लड़ाई में जासूसों ने समाचार प्राप्त करने का एक अनूठा तरीक़ा ईजाद किया था। एक फल बेचनेवाला ही ख़बर पहुँचाया करता। उसकी टोकरी में रक्खे हुए फलों को देखकर ठीक-ठीक ख़बर मालूम की जा सकती थी। भिन्न-भिन्न फलों का एक ख़ास संकेत होता था। जैसे सेब का अर्थ हुआ एक क़िस्म की तोप तो नाशपाती से दूसरी क़िस्म की तोप का अभिप्राय होता। बहुत-से सिगरेट के डिब्बों से मतलब होता कि इतने पैदल सिपाहियों का दस्ता। उस तरीक़े से ख़बर पहुँचाने में फ़ायदा यह था कि ख़बर ले जानेवाले व्यक्ति के ख़िलाफ़ किसी प्रकार का अभियोग नहीं लगाया जा सकता था।

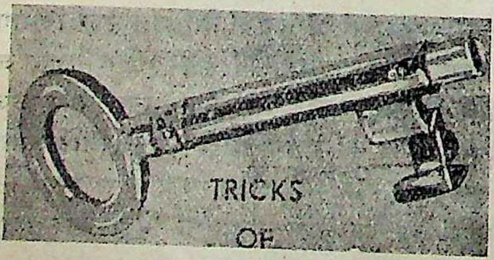

ख़बरों को छिपाकर भेजने की भी कोशिश जासूसों ने अक्सर की है। एक-से-एक बढ़कर नई तरकीबें जासूस बराबर ईजाद करते रहते हैं।

जर्मन महायुद्ध में सरहद पार करते समय खोखली चाभियों के अन्दर ज़रूरी काग़ज़ के टुकड़े भरकर उसे

जर्मन जासूसों ने कुछ दिनों तक मरी हुई मछलियों के शरीर के भीतर ज़रूरी काग़ज़ भरकर उन्हें नदी में तैरा देने की भी तरकीब इस्तेमाल की थी। जर्मन अधिकारी उन मछलियों को जाल में पकड़कर उक्त समाचार प्राप्त कर लेते।

एक प्रसिद्ध जासूस अपनी नक़ली आँखों की पुतलियों के अन्दर छिपाकर ज़रूरी काग़ज़ात ले जाया करता था। अबरक के टुकड़ों पर अदृश्य स्याही से समाचार लिखकर एक जासूस कई बार सरहद से होकर आया और गया। वह अबरक के इन गोल टुकड़ों को अपने चश्मे के शीशों पर चढ़ा लेता। किसी को संदेह ही नहीं होता कि वहाँ पर कोई चीज़ छिपी हुई है।

एक अँगरेज़ जासूस ने सांकेतिक भाषा में अपनी पीठ पर संदेश लिख लिये और वह निरापद जर्मनी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर निकल आया। किन्तु एक और जासूस ने अपनी खोपड़ी के बाल घुटा डाले और उस पर अपनी रिपोर्ट गुदने से गुदा ली। फिर इन्तज़ार करने लगा कि बाल उग आवें, तब अपने देश को लौटें। किन्तु इसी बीच में गुप्तचर-विभाग को उसका पता चल गया और बेचारा वहीं गिरफ़्तार हो गया।

खोखले आलू के भीतर भी ज़रूरी चिट्ठियाँ सांकेतिक भाषा में लिखकर भर दी जाती थीं और आसानी से सरहद के उस पार भेज दी जातीं। उसी प्रकार खोखले सिक्कों के भीतर भी ज़रूरी काग़ज़ भरकर बाहर भेजे जाते थे। चाकलेट के अन्दर और जूते की एड़ी में भी ज़रूरी काग़ज़ात छिपाकर भेजे जाते थे। जासूस लोग अपनी दूरदेशी और कल्पनापूर्ण प्रतिभा के सहारे नित्य नये-नये उपाय शत्रुराष्ट्र से अपने राष्ट्र को सूचनाएँ पहुँचाने के लिए खोज निकालते हैं।

पेरिस - स्थित एक जर्मन जासूस ने ख़बर भेजने के लिए एक बहुत ही मौलिक तरीक़ा ईजाद किया था। सांकेतिक ढंग पर तैयार करके वह समाचारपत्रों में विज्ञापन प्रकाशित करा देता, और वह विज्ञापन २४ घण्टे के अन्दर स्विटज़रलैण्ड में जर्मन ख़ुफ़िया-विभाग के केन्द्र में पहुँच जाता। उदाहरण के लिए जर्मन हवाई जहाज़ की बम-वर्षा से पेरिस में क्या नुक़सान हुआ। इस बात की ख़बर देने के लिए उक्त जासूस ने निम्नलिखित विज्ञापन छपाया था—

"१९—२२ जान तीन मित्रों के साथ पहुँचो। मा की तबियत ख़राब है—३,१६०।"

इस विज्ञापन का अर्थ था कि "इस बम-वर्षा से १९ नम्बर की गली में २२ नम्बर के मुक़ाम पर तीन व्यक्तियों की जानें गईं और लोगों के अन्दर बड़ी बेचैनी और खलबली है।" बस, जर्मन युद्ध-विभाग को मालूम हो गया कि कल प्रातः की बम-वर्षा से पेरिस

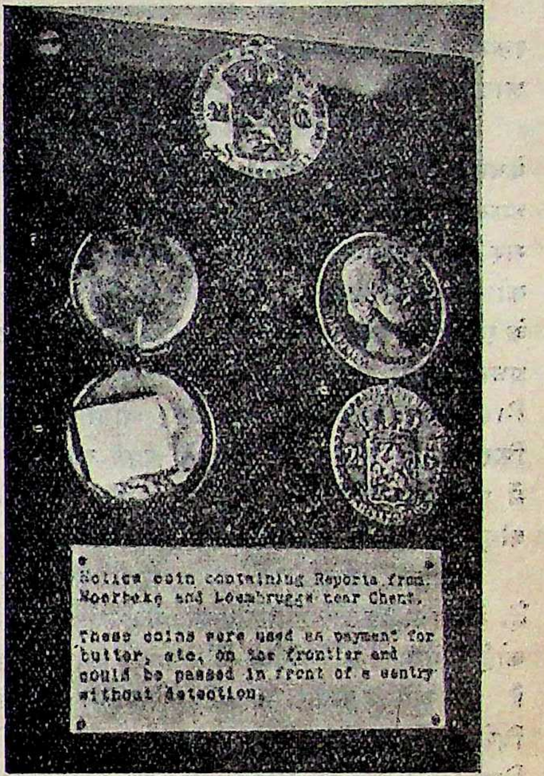

को हमने कितना नुक़सान पहुँचाया। यह ख़बर जासूस नं० ३१६० द्वारा भेजी गई थी।

प्रायः सभी देशों में सांकेतिक भाषा के पढ़ने के लिए गुप्तचरों का विशेष डिपार्टमेण्ट होता है। इसे क्रिप्टोग्रैफ़िक-विभाग के नाम से पुकारते हैं। इस डिपार्टमेण्ट की सभी बातें निहायत गुप्त रक्खी जाती हैं। इँगलैंड के गुप्तचर-विभाग के दो मुख्य हिस्से हैं—एक वैदेशिक विभाग और दूसरा स्वराष्ट्र-विभाग। वैदेशिक विभाग में विदेश में काम करनेवाले जासूसों की देखरेख होती है। गुप्तचरों की मद में सबसे अधिक रुपया विदेश में भेजे गये जासूसों के ऊपर ख़र्च होता है। किन्तु स्वदेश के अन्दर काम करनेवाले गुप्तचरों के ऊपर भी काफ़ी धन ख़र्च करना पड़ता है। ब्रिटेन ने इस वर्ष अपने समूचे गुप्तचर-विभाग के लिए ८० लाख पौण्ड ख़र्च करना तय किया है—यह रक़म आज से ५ वर्ष पहले ख़र्च की जानेवाली रक़म से तीन गुनी ज़्यादा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्तचर-विभाग में ख़र्च होनेवाली इस गहरी रक़म के बारे में हाउस ग्राफ़ कामन्स या हाउस ग्राफ़ लार्ड्स में किसी प्रकार के प्रश्न नहीं पूछे जा सकते।

ये रुपये कैसे ख़र्च किये जाते हैं, इस बात का पता केवल दो व्यक्तियों को रहता है—एक तो ट्रेजरी के अध्यक्ष तथा दूसरे वैदेशिक विभाग के स्थायी अध्यक्ष सर राबर्ट वंसीटार्ट महोदय। मिनिस्टर या प्रधान मन्त्री को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वे गुप्तचर-विभाग के ख़र्च के ब्योरे को देख सकें; क्योंकि मिनिस्टर और प्रधान मन्त्री के पद पर चार-पाँच साल के लिए भिन्न-भिन्न राजनीतिक पार्टी के सदस्य आया करते हैं, और फिर अवधि समाप्त होने पर वे अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश कर जाते हैं। अतः गुप्तचर-विभाग के लिए यह वांछनीय नहीं है कि लोग उसके रहस्य का पता पा जायँ।

ब्रिटेन के जासूस जो अन्य देशों में काम करते हैं, वे प्रायः किसी ख़ास कला में विशेषज्ञ होते हैं। कोई वायुयान के निर्माण में कमाल हासिल किये हुए है तो कोई रसायन, इञ्जीनियरिङ्ग या अर्थशास्त्र में विशेष शिक्षा प्राप्त किये हुए रहता है। ये विशेषज्ञ भिन्न-भिन्न देशों की कार्यवाहियों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते रहते हैं और काम की बातें फ़ौरन् किसी-न-किसी तरीक़े से इँगलैण्ड में पहुँचा देते हैं। सेना-विभाग की ओर से सभी देशों में पहरे के अन्दर नई-नई तोपों और टैङ्कों की शक्ति की जाँच के लिए कृत्रिम युद्ध का सीन रचा जाता है। इस बात की पूरी चौकसी रक्खी जाती है कि केवल सेना के अफ़सर ही उस प्रदर्शन को देख सकें। किन्तु किसी-न-किसी तरह ये जासूस भी वहाँ घुस ही जाते हैं और अपनी सरकार को ख़बर कर देते हैं कि उस देश की सेना ने एक नये क़िस्म की तोप तैयार की है, जिसकी शक्ति इतनी है। यदि संभव हुआ तो उस तोप के माडल के विवरण भी भेजने का वे प्रयत्न करते हैं। बस, उस देश की सरकार भी आगाह हो जाती है और इन नई तोपों को मात करने की तरकीब ईजाद करने की फ़िक्र करती है। जर्मनी की नाज़ी-सरकार की गुप्तचर-योजना कदाचित् संसार की सबसे अधिक सुव्यवस्थित है। नाज़ी-सरकार के गुप्तचर 'गेस्टैपो' के नाम से पुकारे जाते हैं। जर्मनी के साधारण नागरिक गेस्टैपो के नाम-मात्र से डरते हैं। गेस्टैपो का जाल हर कहीं बिछा हुआ है। हरएक वर्कशाप, हरएक फ़ैक्टरी में नाज़ी-पार्टी के गुप्तचर मौजूद रहते हैं। नाज़ीवाद के ख़िलाफ़ कहीं किसी ने अपनी राय प्रकट की, बस गेस्टैपो के हेडक्वार्टर पर ख़बर दी और दूसरे ही दिन वह व्यक्ति गिरफ़्तार करके कन्सेन्ट्रेशन कैम्प में डाल दिया गया।

जर्मनी के प्रत्येक होटल में गेस्टैपो का आदमी वेष बदले मौजूद रहता है। उसका काम इस बात का पता लगाना होता है कि होटल में किस प्रकार के आदमी आते-जाते हैं। नाज़ीवाद के विरुद्ध उस होटल में कहीं षड्यंत्र तो नहीं रचा जा रहा है, साम्यवादी लोग तो इस होटल में इकट्ठे नहीं हुआ करते—इन सब बातों की ख़बरगीरी गेस्टैपो के आदमी करते हैं। पूरे २०,००० गेस्टैपो गुप्तचर जर्मनी में इधर-उधर फैले हुए हैं। इनके आतंक से किसी भी साधारण नागरिक की हिम्मत नहीं होती कि वह अपने रेडियो सेट पर रूस या इँगलैण्ड के ब्राडकास्टिंग स्टेशन की ख़बर सुन सके।

युद्ध शुरू होने के पहले ४०० जर्मन गेस्टैपो जासूस इँगलैंड में सरगर्मी के साथ काम कर रहे थे और बहुत सम्भव है, अब भी रुपये के लोभ से इँगलैंड में बहुत-से व्यक्ति गेस्टैपो की छिपे-छिपे मदद कर रहे हों। ब्रिटेन का गुप्तचर-विभाग अवश्य ही इन लोगों की टोह में लगा होगा।

युद्ध-सम्बन्धी समाचार प्राप्त करने के लिए पालतू कबूतरों की भी मदद ली जाती है। बारहवीं शताब्दी में भी तुर्की की फ़ौज में कबूतरों को युद्ध के मैदान से ज़रूरी समाचार के खरीते को स्वदेश की राजधानी को ले जाना सिखाया करते थे। कबूतरों के अन्दर अपने अड्डे को पहचानने की सहज बुद्धि मौजूद होती है। अड्डे से सैकड़ों मील के फ़ासले पर आप पालतू कबूतर को छोड़ दीजिए। वह सीधा कई सौ फ़ीट ऊपर आकाश में उड़कर पहुँच जायगा। फिर वहाँ दो-चार चक्कर वह लगावेगा, और तब सीधा अपने अड्डे पर तेज़ रफ़्तार से उड़कर पहुँच जायगा। प्रायः कबूतरों की रफ़्तार ६० मील प्रतिघंटे पहुँचती है। रास्ते में शत्रु की गोलियों से यदि ये घायल भी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँ तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने अड्डे तक पहुँचने की ही कोशिश ये करते हैं।

पिछले महायुद्ध में हज़ारों की संख्या में मित्रराष्ट्रों की सेना के साथ पालतू कबूतर युद्धस्थल पर भेजे गये थे। साधारण मोटरलारियों को कबूतरख़ाने में परिवर्तित कर दिया गया था। पनडुब्बी जहाज़वाले भी टोकरियों में बन्द करके पालतू कबूतर अपने साथ ले जाते थे। इन कबूतरों की टाँग में एक हलकी-सी नली लगी रहती है, और उसी नली में मोड़कर ज़रूरी काग़ज़ात रख देते हैं, और कबूतर सीधा उड़कर अपने अड्डे पर ख़बर पहुँचा देता है।

अभी कुछ ही साल हुए, वजीरस्तान में इपी के फ़क़ीर के ४०० आदमियों ने अँगरेज़ सिपाहियों के एक छोटे-से दस्ते को चारों ओर से घेर लिया था। अँगरेज़ सेना के दस्ते के पास गोली-बारूद काफ़ी मात्रा में मौजूद न थी। अपने को आफ़त में फँसा पाकर उन्होंने फ़ौरन् अपने पालतू कबूतर कैम्प के अड्डे की ओर उड़ाये। बस, आध घंटे के भीतर हवाई जहाज़ से उनकी मदद के लिए लेफ़्टिनेंट जैक्सन आ पहुँचे। उन्होंने पैराशूट की सहायता से गोली-बारूद इन घिरे हुए सिपाहियों के पास पहुँचा दी। शाम तक ये लोग अफ़रीदियों का मुक़ाबला करते रहे और तब तक कैम्प से एक पूरी बटैलियन उनकी सहायता को आ पहुँची और वे सही-सलामत अफ़रीदियों के पंजे से छुड़ा लिये गये।

अब तो हलके क़िस्म के नन्हें-नन्हें स्वयंक्रिय कैमरे भी तैयार किये जा चुके हैं। कबूतर की टाँग में कैमरे को बाँधकर शत्रु की सरहदी क़िलेबन्दी की ओर से उन्हें उड़ा देते हैं। जिस समय कबूतर इस प्रदेश में से होकर उड़ता है, उस कैमरे में अपने-आप प्रतिसेकंड बीस-पचीस की रफ़्तार से फ़ोटो उतरती जाती है। अड्डे पर सावधानी से इस कैमरे को उतार लेते हैं, और फ़िल्म को मसाले से धोकर उसकी फ़ोटोग्राफ़ को स्थायी रूप से अंकित कर लेते हैं। इस प्रकार शत्रु की क़िलेबन्दी का रहस्य बहुत कुछ अंशों में मालूम किया जा सकता है।

निस्सन्देह जासूसों को अपने काम के लिए गहरी रक़म मिलती है। किन्तु उनके सिर पर प्रतिक्षण नंगी तलवार लटकती रहती है। भेद खुल जाने पर जासूस के लिए क्षमा-याचना की कोई गुंजाइश नहीं है। ऐसी हालत में तो उन्हें मृत्यु का आलिंगन करना ही पड़ता है। यही एक ऐसा अपराध है, जिसके लिए उसकी हिमायती गवर्नमेंट कुछ भी नहीं कर सकती; क्योंकि वह गवर्नमेंट भी तो उसी की भाँति मुजरिम है।

फ़ोटो एनलार्जमेन्ट

बहुत ही सस्ती भेंट

चारों तरफ़ हमारे काम की प्रशंसा हो रही है

राजा .....(लखनऊ) से लिखते हैं :—चित्र बहुत ही कलापूर्ण एवं मस्ते हैं।

आनरेरी मजिस्ट्रेट (सीतापुर) का कहना है—हमारे आर्डर को शीघ्र पूरा करने के लिए धन्यवाद। यद्यपि हमने जो फ़ोटो भेजी थी धुँधली थी फिर भी एनलार्जमेंट बहुत अच्छा रहा।

रानी साहिबा ...... (ई० एस० ए०)—एनलार्जमेंन्ट अच्छे थे। मैं अपना आर्डर भविष्य में भी आपके पास भेजूँगी।

श्रीमती ...(इन्दौर)—आपका काम हमें पसन्द आया।

जब सभी लोग हमारे काम से सन्तुष्ट हैं तो कोई कारण नहीं कि आप भी हमारे काम से संतुष्ट न हों। आप अपनी अकेले की अथवा ग्रुप की फ़ोटो भेजें और हम उन्हें एनलार्ज कर देंगे। चित्र कला-पूर्ण होंगे। आपकी भेजी हुई तसवीर ख़राब नहीं होगी। हमारे रेट और प्रतियोगियों के रेट से बहुत कम हैं।

रेट यह हैं— ६ इञ्च × ८ इञ्च — प्रति कापी २।।।)
१०" × १२" — प्रति कापी ३।।।)
१२" × १५" — प्रति कापी ४।।।)
१७" × २३" — प्रति कापी ९।।)
एक ही फ़ोटो की चार कापियाँ लेने से तीन का ही दाम लिया जायगा।

आर्डरों की तामील फ़ौरन की जायगी, अपना आर्डर आज ही भेजें।

वंडर वेल्यू स्टूडियो, १४४, मुट्ठीगञ्ज, इलाहाबाद
WONDER VALUE STUDIO, 144, Muthigunj, Allahabad

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

झक्कड़

(एक स्केच)

श्रीबलभद्र दीक्षित

(१)

नाले के बहुत गंदे मुक़ाम पर, अशोक के नीचे, झक्कड़ का आसन लगा हुआ था। एक कटा-फटा टाट का टुकड़ा कंकड़ के चट्टे पर बिछा हुआ। मिट्टी के कूज़े और टीन के डिब्बे में शिवमंदिर के उतारे हुए मुरझे फूल और रंगीन कनकौए का मसला हुआ काग़ज़ कनेर की टूटी टहनियों के साथ खुँसा हुआ था। ये सामने की कल्पित चौकी के फूलदान झक्कड़ ने सजाये थे। कई घंटे से वह अपनी मीटिंग के लिए इंतज़ाम कर रहे थे। उनके ख़याल में यह 'आज़ाद-मैदान' था, और उन्हें घेरकर हज़ारों आदमी उन्हीं के व्याख्यान का इंतज़ार कर रहे थे। क़रीब दो बरस से, जबसे झक्कड़ ने पूर्ण मानवता पा ली है, उन्हें कण-कण में जीवन का अनुभव होने लगा है। कुत्तों, झाड़ियों, चील-कौओं और कंकड़-पत्थरों से वह घंटों, बिना किसी दिक़्क़त के उनकी भाषा और विचार समझकर उनको अपने विचार समझा लेते हैं। वह बड़ी दूर की सोच लेते हैं, बड़ी दूर तक समझ लेते हैं और बड़ी दूर से, जिसे चाहते हैं, देख लेते हैं। जब तक झक्कड़ अधूरा समझे, तब तक हर तरह अध्ययन करके अपने को पूरा बनाते रहे। लाल क्रांति और फ्रांस के जन-आन्दोलन की किताबें उन्होंने अपने इस जीवन के आरम्भ में हफ़्तों, महीनों पढ़ीं और सम-पथ-गामियों से बहसें कीं। ट्राट्स्की को वह गीता का कृष्ण मानते थे। फिर जब अंतर से उनकी मानवता पुकार उठी कि "बस, विश्व के समराङ्गण में अब नवयुवकों की सर की बाज़ी का समय आ गया है", तब वह फ़ौरन अपना सर हथेली पर रखकर विश्व-क्रांति के दावानल में कूद पड़े। गुज़री रात को झक्कड़ का कहना था कि विप्लव का वह बड़ा मुहूर्त आ गया है। रूस में पास हुआ है कि दुनियाभर में एक ही दिन और एक ही साथ क्रांति कर दी जाय। और, चूँकि हिन्दुस्तान अहिंसक रहकर संसार को 'लीड' करेगा, इसलिए वहाँ का डिक्टेटर, दक्षिण-मार्गी, महाराज श्री वी० जगन्नाथम् पंतलू गारू किसी वक्त का टबल एम्० ए०, जिसे आजकल के लोग झक्कड़ के नाम से पुकारने लगे हैं, मुक़र्रर किया जाता है। रातभर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूटा डोंगा बजा और गला फाड़कर शहर की सड़क, गली-गली में वह इसी बात का ऐलान करते हुए दौड़े थे। कहीं हवाई जहाज़ की भर्राहट, कहीं पर मुँह से रेल और जहाज़ की सीटी बजती थी। मुहल्लेवालों की जब परेशानी बढ़ी, तब उन्होंने थाने को टेलीफ़ोन किया। फलस्वरूप पाँच बजे सुबह तक भक्कड़ हवालात में रहे। इस वक़्त हज़ारों के हुजूम को वह एड्रेस करने की तैयारी में थे।

पबलिक लैबेटरी की आड़ में उनका प्राइवेट रूम था। हवा में, कुछ किसी भाषा में लिखकर (जिस तरह टीचर ब्लैकबोर्ड पर लिखता है) वह एक अदा और झोंके में अपने फ़र्ज़ी कमरे में चले गये। गुम्मा ईंट के रोड़ों पर एक फटा चीड़ का तख़्ता, कूड़ेख़ाने से चुनी हुई टूटी बोतल, उसी तरह का शीशा-कंघा और ट्वाइलेट का सामान। भक्कड़ ने उचक-उचककर शेव किया; पतलून की टाँग और कोट की आस्तीन पहनी; फिर हैट के एक टुकड़े को बग़ल में दबाकर, पहली जगह, टाट के टुकड़े की ओर लोगों को अपने स्वागत के लिए धन्यवाद देने की मुद्रा से मद-भरी चाल में चले।

ठीक जलती हुई दोपहर; न कहीं आदमी, न आदमज़ाद। भक्कड़ अपने व्याख्यान से ज़मीन-आसमान के क़ुलाबे एक किये दे रहे थे। तीन-चार कुतिया-कुत्ते नाले की दीवार की छाया और कीचड़ की ठंड में पड़े थे, स्पीच की शुरुआत में भूँकने लगे; लेकिन सरगरमी आते ही दूर भाग गये। भक्कड़ के आँख, नाक, सिर, हाथ-पैर सब एक साथ चल रहे थे। अशोक वृक्ष के नीचे इधर-उधर छरककर वह अहिंसा और हिंसा, शान्ति के बाद क्रांति और न जाने क्या-क्या, अपने कल्पित सभासदों को समझा रहे थे। दर्जनों भाषाएँ, बहुत शुद्ध और अशुद्ध भी, वह बोल रहे थे। दस-बीस शब्द साफ़ तेलगू में बोलकर उन्होंने आगे झुक छाती पर दाहना हाथ रखकर माफ़ी माँगी।

"कॉमरेडो, मुझे सिर्फ़ दक्षिणी और दक्षिणी भाषा ही अपने में नहीं बाँध सकती; वैसे तो मैं समस्त विश्व की सम्पत्ति हूँ, फिर भी इस वक़्त इस देशभर का डिक्टेटर हूँ—हिन्दी अभी देशभर की भाषा नहीं हुई, लिहाज़ा मैं अँगरेज़ी बोलता हूँ।"

भक्कड़ की अँगरेज़ी कॉकनी ऐक्सेण्ट की थी। 'स्टेज' को जब 'स्टइज' कहते तो मुँह और पूरा शरीर झिटक जाता। क़रीब एक घंटा भक्कड़ी अँगरेज़ी का प्रवाह रहा। बीच-बीच में एक चीथड़े के रूमाल से अपने मुँह का लेफ़ा और पसीना पोंछते जाते थे। कभी दोनों हाथ कमर पर रख आगे झुककर कृत्रिम हँसी में खीस निपोर कुछ कहते, कभी एक टूटी पेंसिल ठुड्डी में लगा आँखें मूँद एक क्षण कुछ सोचते और फिर आँख खोल बड़े तपाक से बोल उठते।

तीसरा पहर, शाम और फिर अँधेरा—समय में इतना परिवर्तन हुआ, लेकिन भक्कड़ को काम पर काम और बोल पर बोल सूझते रहे। जब खड़े न रह सके तो बैठकर, फिर लेटकर अपना काम चलाते रहे। अंत में वह बोलते-बोलते बेहोश हो गये।

(२)

किसी सेठ के यहाँ पितरों का श्राद्ध था। दान के बाद पुण्य, ब्राह्मणभोज, हो चुका था, कँगले खिलाये जा रहे थे। आगतों की अनेक क़िस्में—अंधे, लूले, लँगड़े, बहुतों के हाथ-पैर महा-रोगों से कटे और सड़े-गले। अंगहीन अपनी ख़ामियों को खोल-खोल दिखा रहे थे, धार्मिकों-दयावानों को अपने प्रति दया का उद्रेक करने के लिए। एक की जाँघ भर बाघी से हौद हो रही थी। सेठजी को अपनी ओर आते देख उसे हिलाकर वह ज़ोर से कराहने लगा। सेठजी ने घबराहट में उसे तीन दफ़े नक़द ख़ैरात और दो दफ़े भोजन दिलाया।

थोड़े दिनों से भक्कड़ सामाजिक प्राणी हो रहे थे। राजनीति की बातें, अगर अपना मन बहलाने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले रास्ते के मुलाक़ाती करते भी तो वह उदासीन हो जाते। अब उनका ख़याल था कि राजनीति द्वारा सुधारा हुआ माज मिथ्याचारी और यंत्रवत् हो जाता है। सुधार व्यक्ति का होना चाहिए।

शहर भर के फ़क़ीरों के झक्कड़ सरताज हो रहे थे। झक्कड़ के नियंत्रण से उन्हें आराम भी मिलता था। ब्रह्मभोजियों और हाजियों के घर पहले सब भभ्भर मारकर चढ़ाई कर देते थे, जिससे बच्चे, गर्भिणियाँ और अंगहीन पैरों के नीचे कुचलकर चोट खा जाते थे। झक्कड़ के प्रयत्न से ऐसे मौक़ों पर उनकी टोलियाँ बन जातीं। दाता को अगर कोढ़ी, रोगग्रस्त और गंदे फ़क़ीरों के पास पुण्य और सबाब का महामोह न हो तो वे उनके पास न फटकें, यह बात झक्कड़ से छिपी नहीं रही। इस तरह लोगों को उबकाई और छूत लगने का डर कम रहता, जिससे फ़क़ीरों का, पुण्यात्माओं की रज़ामन्दी के साथ, माली नफ़ा भी बढ़ गया था। शहर के बहुत-से गीता-प्रेमी झक्कड़ को फ़क़ीरों का कमांडर कहने लगे थे।

झक्कड़ ने एक दिन अपने जातीय लेक्चर में कहा— "दुनिया तरक़्क़ी पर है, लिहाज़ा हम कँगलों को भी चाहिए कि अपने केन्द्र से उठने की कोशिश करें।" किस तरह बैठने से, किस तौर कराहने से और किस दीन-दृष्टि से देखने से, हृदय में हाहाकार भरे हुए दयालुओं पर चोट होती है, यह उन्होंने समझदार कोढ़ियों और अंधों को समझाया था।

नाले पर जाने से झक्कड़ का पागलपन बढ़ जाता। दूसरे जूझी (एक लावारिस भिखारिन) से उनका प्रेम-सम्बन्ध जुड़ गया था। इसलिए शहर के नाके पर एक झोपड़ी डालकर वह उसी के साथ रहने की कोशिश कर रहे थे। झक्कड़ के इशारे की देर थी। फ़क़ीरों की पंचायत ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फ़ौरन् आपस में चंदा हुआ और एक चाँदनी रात में ब्याह, निकाह अथवा ठेका भी।

होटलों, होस्टलों और नानबाइयों की दूकानों से लोग तरह-तरह के खानों की जूठन बटोर लाये थे। पैसा सिर्फ़ ताड़ी और बीड़ी में ख़र्च करना पड़ा। शाकाहारियों के लिए मीठी भंग का इन्तज़ाम हुआ।

जूझी का पूर्व पति श्रेष्ठ कुल का था; शिक्षिता और स्वेच्छाचारी मा-बाप की बेटी होने से, वह इसे पागल हुई कह रहा था। जब नहीं थी, तब कोठरी में बन्द करके चारों ओर इसके पागल और बाप ही के यहाँ से चरित्रहीना होने की, मुश्तहरी की जाती। जब सचमुच पागल हो गई तो भाग निकली। जवान थी, लेकिन कहीं टिकती न थी। इसलिए जब तक गली-कूचे के लोग उठा सके, इससे नाजायज़ फ़ायदा उठाते रहे। अब दरबदर मारी फिरती थी। एक बच्चा कहीं से आ गया था—पैदा होकर गले पड़ा। जूझी की एक आँख भी जाती रही थी।

ताड़ी की झोंक में, मुँह के कोने में बीड़ी दाबकर झक्कड़ ने जूझी का हाथ पकड़ लिया। फिर कहा— देखो, तुम अब तक चाल-चलन में कमज़ोर रही होगी। लेकिन कोई चिंता नहीं। क्या किया जाय; जरूरत आदमी से सब कुछ करा लेती है। ख़ैर, मैं भी इस मामले में बेदाग़ नहीं बचा। लेकिन इस वक़्त से हम दोनों सम्बन्ध-सूत्र में बँधते हैं। अब दोनों के लिए इधर-उधर के जूठे बर्तन सूँघना जुर्म है। पंचों से इसकी तसदीक़ कराई गई।

फिर झक्कड़ ने विवाह क्या है और लोग उसे क्यों करते हैं, इस पर दो घंटे व्याख्यान दिया। यहाँ तक कि फ़क़ीर ऊँघने और उकताने लगे। उन्होंने कहा— "मैं एक रजिस्ट्री बादशाह सलामत के पास भेज चुका हूँ—या तो लोग वैवाहिक बंधन को महत्त्व दें, अथवा विवाह का रिवाज दुनिया भर से उठा दिया जाय। लोग होटलों में खाना खायँ और चकलों में विहार करें। कहते-कहते उन्हें अपनी पहली स्त्री और बच्चे की याद आ गई। पढ़ाई समाप्त होने पर बेकारी में किस तरह इनका दिमाग़ फिरा और उन बेचारों को कुत्ते की मौत, भूख और रंज में मरना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा, इसका बहुत बड़ा अफ़साना वह दो-एक दिल रखनेवाले कँगलों को सुनाते रहे। उन्होंने कहा—"जीवन को सुखमय बनाने के लिए मनुष्य को कभी हताश नहीं होना चाहिए। बहादुर बिगड़े हुए भाग्य को भी सुधार सकता है।"

जूझी कृतज्ञता से भरी झक्कड़ की हर बात में बड़ी दिलचस्पी ले रही थी।

(३)

धीरे-धीरे झक्कड़ के अनशन की चर्चा शहर-भर में फैल गई। सत्याग्रह, धरना और अनशन उन दिनों देश में विशेष महत्त्व रखता था। सुबह चहल-क़दमी के वक़्त अथवा गंगा-स्नान को जाते लोग बड़े कौतूहल में बात करते, "अजी वही मदरासी फ़क़ीर, जिसे आप बहुत दिन तक ख़ुफ़िया पुलिस का कहते रहे थे, कई दिनों से अनशन कर रहा है! उसे लोग सिड़ी समझ रहे थे, साहब वह तो कमाल कर रहा है।"

झक्कड़ सिर्फ़ पानी, थोड़ा नमक मिलाकर ले रहे थे। प्रतिज्ञा आमरण अनशन की थी। पानी इसलिए पीते जा रहे थे कि शरीर-पात में कोई भौतिक यंत्रणा न हो। छठा हफ़्ता चल रहा था, लेकिन चेहरे पर शिकन नहीं; शरीर ताँबे-सा झन्ना रहा था।

अनशन का कारण बड़ी मुश्किल से झक्कड़ की एक बहुत अंतरंग मित्र फ़क़ीरिन से मालूम हुआ। वह दाम्पत्य-जीवन-सम्बन्धी धर्म से ताल्लुक़ रखता था। सहधर्मिणी ने उनके विश्वास का दुरुपयोग किया था। गृहिणी ने उन्हें धोका दिया था। पुरुषत्व के अपमान की आग उन्हें झुलसाये दे रही थी। फिर भी उन्हें हर वक़्त ख़याल था कि उसकी झड़प, उसी को लगानेवाली, जूझी को कहीं न लग जाय। कई दिन तक वह खुले में पद्मासन पर विराजमान रहे। उनका कहना था, लोगों ने भक्ति को बहुत सस्ता बना दिया है; लेकिन दरअसल है वह सिर का सौदा। स्त्री पुरुष का बायाँ अंग है। अपनी भार्या के किये हुए पाप का जो प्रायश्चित्त नहीं कर सकता, वह कायर है।

सोना तपने से निखरता है। अनशन के सातवें सप्ताह में शहर में ऐसे स्त्री-पुरुष बहुत कम रह गये थे, जिन्हें झक्कड़ के महाव्रत का ज्ञान न हो। जो घटना-स्थल पर नहीं पहुँच सकते थे, वे पहुँचे हुओं से अपनी शंकाओं का समाधान कर लेते थे। चौथी बार जूझी फिर लाकर झक्कड़ के क़दमों पर डाला गई। वह काँप रही थी। आर्द्र हो, जूझी का सिर अपने पिचके वक्ष में चिपका देने का इशारा करते हुए झक्कड़ ने बहुत क्षीण स्वर में कहा—"जूझी, तुम प्रसन्न रहो। तुम्हारा सम्बन्ध कई जन्म तक नहीं टूट सकता। मैं तो दुश्मन से भी अप्रसन्न नहीं हो सकता। फिर तुम्हारा तो रक्त-मांस एक हो चुका है। मैं जानता हूँ, तुम्हें मेरे लिए बड़ा मोह लग रहा है; लेकिन अब पछताये होत का जब चिड़िया चुग गई खेत! दूसरे मुझसे, दाम्पत्य-जीवन पर निसार हो जानेवाले लोग दृष्टांत ग्रहण करेंगे।"

एक मेला-सा लगा रहता। पुलीस पहले झक्कड़ को वही पुराना झक्कड़ समझ रही थी; लेकिन 'जिसे पिया प्यार करें, वही सोहागिन नारि'। जनता का रुख़ देखकर कोतवाल साहब बदनामी से बचने के उपाय खोजने लगे। झक्कड़ को धूप नहीं लगने पाती, कोई शख़्स बग़ैर पास लिये उनके क़रीब नहीं जा सकता।

झक्कड़ का बयासी दिन में अंत हुआ। पागल प्राण निकलने ही न आता। बाहर से कोई आमद न थी, इसलिए शरीर अपने ही को खा-खाकर जी रहा था। हड्डियों का गूदा तक सूख गया था, लेकिन साँस टूटने ही न आती।

छठे हफ़्ते में झक्कड़ के काम को ख़ुदकुशी क़रार देकर सरकार ने उन्हें जबर्दस्ती भोजन कराना चाहा; मगर किये किसी के कुछ न हुआ। झक्कड़ ने चौंहें कस लीं; पिचकारी से दिये हुए फलों के रस को मेदे ने उलटी में बाहर निकाल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जूझी के प्रति घृणा दिखाने के लिए शहर की स्त्रियाँ उसकी महिमा बढ़ा रही थीं। सेठानियाँ और मेमें मोटर में बिठाकर घर ले जातीं। वहाँ उससे दाम्पत्य-जीवन के अनोखे प्रश्न करतीं। एक बहूजी ने तो यह तक जानने की कोशिश की कि जूझी में वह कौन-सी ख़ूबी थी कि उसका पति उसकी ग़लती के लिए अपनी जान दे रहा था।

जूझी आधी पगली थी। औरतों की बातें न समझ अथवा उनका कोई उत्तर न सूझने पर, आँखें फाड़-फाड़ देखती। कभी हँसने या सिसकने लगती। ऐसी हालत में स्त्रियाँ अपने रहस्यपूर्ण प्रश्नों का उत्तर अपने ही में खोजकर कट-पिट रही थीं।

झक्कड़ की महायात्रा के दिन एक बंदर भी दरख़्त से गिरकर जूझ गया था। दोनों अर्थियाँ साथ थीं। जनता उन्हें कबीर साहब की-सी बिदा दे रही थी।

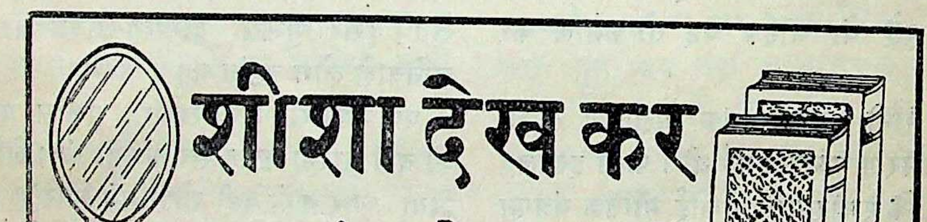

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

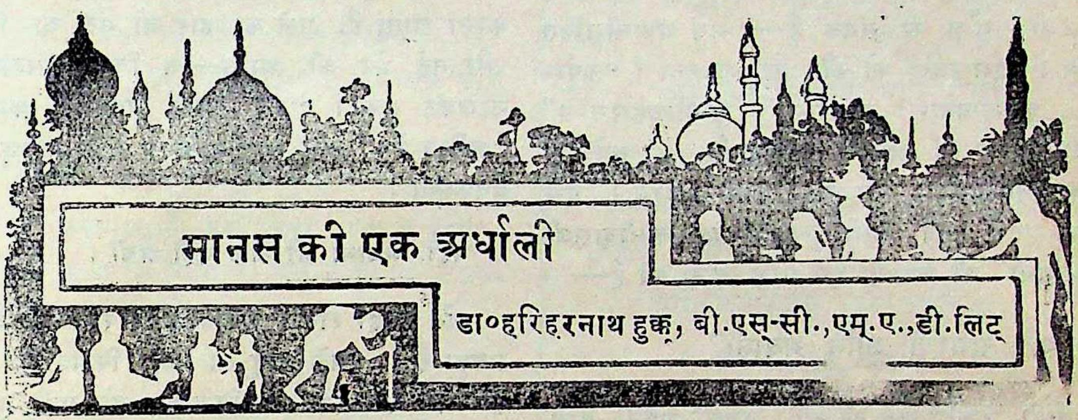

मानस की एक अर्धाली

डा० हरिहरनाथ हुक्कू, बी.एस्-सी., एम्.ए., डी.लिट्

गिरा मुखर, तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥

यह अर्धाली बालकाण्ड के २४६ वें दोहे के बादवाली चौपाइयों में की है। प्रसंग यह है—स्वयंवर का दिन है। "कुँवरि मनोहरि बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय" के लोभी राजा राजसमाज में बैठे हैं। रामचन्द्रजी महाराज लखनलाल सहित एक ऊँचे मंच पर विराजमान हैं। प्रभु की मोहिनी लोगों पर अपना प्रभाव दिखा रही है और सबका हृदय इस बात की साक्षी दे रहा है कि हो न हो, रामचन्द्रजी महाराज सुकुमारी जानकीजी के लिए रचे गये हैं और जनकसुता चितचोर कौशल्या-पुत्र के लिए।

जानि सुअवसरु सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुन्दर सकल, सादर चलीं लिवाइ॥

जगत्-जननी की शोभा देखकर सब राजा मोह गये—और कवि भी! कवि को सीयशोभावर्णन करने के लिए कोई उपमा न मिली। उपमा ढूँढ़कर, कष्ट उठाकर, कुकवि कहलाने का अयश लेना उन्होंने पसन्द न किया। लेकिन मन फिर भी न माना; कवि-हृदय ही जो ठहरा! लगा लोक ढूँढ़ने। तब उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश और कामदेव की स्त्रियाँ याद आईं। सब कवि की पुरानी सुपरिचित थीं, खूब देखी-भाली, समझी-बूझी, लेकिन कवि-हृदय ने इन्हें स्वीकृत न किया, क्योंकि—

गिरा मुखर, तन अरध भवानी।

सरस्वतीजी को तुलसी ने विमला न कहा, विद्या न कहा, कहा गिरा। अर्थात् वह जिनकी विशेषता जीभ में, गिरा में है। जीभवाली, बक्की, मुखर। एक बार कवि की दृष्टि सुकोमल, शांत, सिय-मुख-ससि की ओर जाती थी, जो अपनी अमृतभरी ज्योत्स्ना से सुख लुटा रहा था और दूसरी बार मुखर गिरा की ओर। कहाँ सीता की शांत मधुरिमा! कहाँ उनके होंठों का संकोच! प्यार संकेत का विषय है, बकवाद का नहीं। गिरा की चपलता उस रस की हत्या करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जिसकी वृद्धि लाजभरे मौन से ही हो पाती है। इसलिए मुखर होना कामिनी के सौंदर्य का अंग नहीं। तो जो साक्षात् गिरा हो, उसकी मोहक शक्ति तो बहुत सदोष होगी ही!

तुलसी ने शिवप्रिया को हिमाचल-सुता नहीं कहा, न उमा कहा, न कहा पार्वती। कहा भवानी। यह बहुत साभिप्राय है। भवानी नाम हमारे कानों में एक स्तोत्र की गूँज से संगत है—"भवं भवानीसहितं नमामि।" इस स्तोत्र को कौन नहीं जानता? "कर्पूर-गौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।" भवानी तो भव की अर्धाङ्गिनी हैं, और इस स्तोत्र में भव का स्वरूप कहा गया है "भुजगेन्द्रहारम्।" ऐसे भव की "तन अरध" कैसी सुन्दर होंगी! तुलसीदासजी ने "भवानी" की व्याख्या इस पंक्ति द्वारा की है—

"भवहिं समरपी जानि भवानी"

भवानी, अर्थात् भव की स्त्री, उनकी अपनी वस्तु, प्यारी, हृदय में रखनेवाली चीज़। लेकिन भवानी की यह परिभाषा बालकाण्ड में उस स्थान पर है, जहाँ उमा-शंभु का विवाह-वर्णन है। शिवजी की बारात हिमवान् के घर आने के बाद पाणिग्रहण के अवसर तक हिमाचलसुता के लिए कवि ने भवानी शब्द का विशेष प्रयोग किया है—

(१) जननिहि बिकल बिलोकि भवानी
(२) जगदंबा तव सुता भवानी
(३) बसहिं भवन जेहि मातु भवानी
(४) सुन्दरता मरजाद भवानी
(५) छबिखानि मातु भवानि
(६) पूजेउ संभु भवानि
(७) भवहिं समरपी जानि भवानी

सात बार भवानी शब्द आया है और पाणिग्रहण से पहले २६ पंक्तियों के भीतर पाँच बार। मानस में और किसी स्थल पर इतना भवानी शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। इसलिए तुलसी की "भवानी" की व्याख्या इसी स्थल से ढूँढ़नी चाहिए।

इस प्रसंग में जिन भव की यह भवानी हैं, उनका रूप यों वर्णन किया गया है—

गरलकण्ठ उर नर-सिर-माला।
असिव बेष सिवधाम कृपाला॥

सुन्दरी का सिंगार माथे की नन्हीं बिंदिया, हाथों की प्यारी चूड़ियाँ, जिन्हें पिया के छूने का विरोध करना आता है, गले का हार जो भेंट का चिह्न हो और नई भेंट की आशा—न कि नरसिरमाला या गरलकंठ। कहाँ "तन अरध भवानी" का आधा "असिव बेष" और कहाँ छबिगन मध्य महाछबि जैसी जनकसुता!

नहीं, भवानी भी ठीक नहीं जँचीं।

रति? हाँ रति। मनोहरता में रति को कौन पा सकता है? उसके जादू-सा जादू किसका? कामदेव की स्त्री ही ठहरी। लेकिन वह तो बड़ी दुखी है, कवि कहते हैं। शेक्सपियर ने टेम्पेस्ट में दुःख को सौन्दर्य का घुन कहा है। रति का अनुपम सौन्दर्य घोर दुःख नष्ट कर रहा है। इस अर्धाली में कामदेव के लिए अतनु शब्द का तुलसी ने विशेष कारण से प्रयोग किया है। रति काम की स्त्री है, अर्थात् काम की शक्ति अर्थात् मूर्तिमती काम का काम-पन। जब कोई काम-ग्रस्त होता है तो उसे कुछ भी नहीं सूझता, एक काम-वासना-तृप्ति की ही धुन सवार रहता है। नारदमोहप्रसंग में देखिए—

जप तप कछु न होइ यहि काला।
हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला॥

जब ऐसे बड़े ऋषि की यह हालत थी तो जो काम के कामपन की मूर्ति है, उसका क्या हाल होगा? लेकिन काम-वासना की तृप्ति शरीर द्वारा ही हो सकती है, मन द्वारा नहीं। बेचारी रति क्या करे! उसका पति तो अतनु है! शरीररहित! हवा के गले में कोई क्या हाथ डाले? जो अतनु हो, उसका क्या स्पर्श और कैसा गले लगना! क्या उससे मिलने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख ! पति रहते हुए भी रति पतिवंचिता है ! अतनु पति जानी, वह दुखी है—"अति दुखित ।"

तुलसी ने यहीं नहीं किया कि उसके दुःख का कारण कहा । उन्होंने उसकी अति दुखित अवस्था हमारी आँखों के सामने खींच दी—

रति अति दुखित अतनु पति जानी ।

ज़रा "त" अक्षर की ओर ध्यान दीजिए । "त" "रति" का अंग है और यह कैसा बार-बार इस पंक्ति में लोट-पोट रहा है ।

रति अति दुखित अतनु पति जानी ।

"त" के अनुप्रास ने यहाँ बड़ा मज़ा दे दिया । इसमें रति के दुःख की गाथा है, उसकी बेचैनी, उसकी तड़प, उसकी छटपटाहट !

अभ्युदय का मूल आरोग्य

आप पहले अपने आरोग्य की अभिलाषा करें।

आरोग्य से ही अभ्युदय की अभिलाषा सफल होगी । आरोग्य का लाभ लेने के लिये

आतंकनिग्रह गोलियाँ

ही प्रशस्त साधन हैं ।

क़ीमत—३२ गोलियों की डिब्बी का १) एक रुपया

आतंकनिग्रह औषधालय
जामनगर, काठियावाड़

लखनऊ एजेंट—इंदरचंद एण्ड कं०, चौक

अरुणोदय

विद्यार्थी महावीरप्रसाद वर्मा (बी० ए० क्लास)

(१)

तम-तोम भयभीत हो क्यों भगा जाता अब,
होकर प्रसन्न क्यों विहङ्ग-वृन्द गाता है ?
लज्जा से हुआ है लाल प्राची-प्रमदा का मुख,
नाचता समीर हो प्रमोद-मद-माता है ?
आनँद-तरङ्गें तुङ्ग उठतीं हृदय-बीच,
सुन्दर अमन्द चन्द मन्द हुआ जाता है ?
मोद उपजाता, वारिजों को विकसाता हुआ,
कौन छवि क्षिति पर छाता चला आता है ?

(२)

मंजुल मृदुल कञ्ज सर में खिला है यह,
प्राची में तमारिदेव ने या छबि छाई है ?
काल-से कराल महा व्याल-शीश पर आज—
अति मंजु मणि ने छटा क्या छिटकाई है ?
सागर में किंवा किसी देव-अङ्गना ने यह—
थाली लाल फूलों से भरी हुई बहाई है ?
किंवा अति सुन्दर विशाल भाल में अमन्द —
बिन्दी लाल प्राची-दिशा-बाला ने लगाई है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्टिक-समुद्र में रूसी महत्त्वाकांक्षा

श्रीमहाव्रत विद्यालंकार

पोलैण्ड के बँटवारे के बाद रूसी सरकार का ध्यान बाल्टिक-देशों पर अपना आधिपत्य जमाने की ओर गया है। इस दिशा में उसे बहुत सफलता भी मिली है। इस्थोनिया, लाटविया और लिथुएनिया तीनों ने अपने प्रसिद्ध सामुद्रिक नाके तथा हवाई अड्डे रूस को सौंप दिये हैं, और उससे अनाक्रमण संधि भी कर ली है। इन तीनों छोटे-छोटे देशों ने—जो १९१८ ई० से पूर्व रूसी साम्राज्य के ही अंग थे और जिन्हें बोल्शेविक-सरकार ने स्वतंत्र कर दिया था—इस नवीन संरक्षा के लिए रूस के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की है। जर्मनी की ओर से उन्हें ख़तरा कम हो गया है। जर्मनी और रूस-जैसी दो प्रबल शक्तियों के बीच स्थित होने के कारण यह आवश्यक है कि ये देश किसी-न-किसी पक्ष की ओर निश्चित भाव से हो जायँ। रूसी बोल्शेविक-सरकार का यह क़दम चाहे भोली जनता की नज़र में साम्राज्यवादी विस्तार दिखाई पड़े, परन्तु रूस ने भावी आक्रमणों से बचने के लिए आत्मरक्षा के भाव से यह किया है। इन देशों की स्वायत्तता में कोई विशेष अन्तर नहीं आवेगा, बशर्ते कि वे साम्यवादी-बोल्शेविक-सरकार के प्रति अपना द्वेषभाव न रक्खें।

इन तीन बाल्टिक-देशों के अतिरिक्त फ़िनलैण्ड ही एक ऐसा देश रह गया है, जिसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसमें हिटलर के नाज़ी अनुयायियों के दृढ़ संगठन के कारण रूसी सरकार को भय है कि यह बाल्टिक-समुद्र में रूस के विरुद्ध षड्यंत्रों का अड्डा न बन जाय। विगत रूसी साम्राज्य के अधीन बाल्टिक-देशों में, जिन्हें रूसी बोल्शेविक-सरकार उनके जातीय अधिकारों का आदर करती हुई स्वतंत्र कर चुकी थी, पोलैण्ड और फ़िनलैण्ड ही दो ऐसे देश हैं, जिन पर विश्वासघात का दोष लगाया जा सकता है; क्योंकि इन दोनों देशों ने ही बोल्शेविक-सरकार के विरुद्ध विदेशी सेनाओं को बुलाकर रूस पर हमला करने का मौक़ा दिया था। रूस को फ़िनलैण्ड के प्रति जो भय है, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा असंगत और न्यायविरुद्ध नहीं । फ़िनलैण्ड की सरकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमेशा रूस के विरुद्ध रही है । इस समय भी यद्यपि फ़िनलैण्ड के नाज़ियों को हिटलर की ओर से टका-सा जवाब मिल जाने के कारण तथा पूर्व में जर्मन-प्रसार पर बाँध लग जाने के कारण जर्मन प्रभाव का भय नहीं रहा । फ़िनलैण्ड के अधीन बाल्टिक में स्थित टापुओं की भौगोलिक स्थिति रूस के जंगी बेड़े पर बड़ी भारी बन्दिश है ; और ये टापू किसी समय रूस के विरुद्ध आक्रमण के अड्डे बन सकते हैं । रूस ने फ़िनलैण्ड की सरकार के सामने निम्नलिखित माँगें पेश की हैं—

१. लावंसारी, सेइससारी और सुरसारी नामक टापू, जो क्रोन्स्टाड (रूसी क़िला) खाड़ी के प्रवेश-मार्ग पर विरोधी अड्डे हैं, रूस के सिपुर्द कर दिये जायँ। इसके बदले में रूसी सरकार करेलिया का कुछ प्रदेश फ़िनलैण्ड को देना स्वीकार करती है ।

२. फ़िनलैण्ड अपने अधीन आलैण्ड-नामक टापुओं के समूह में क़िलेबन्दी न करे और हमेशा के लिए रूस को उनके निरीक्षण का अधिकार दे दे ।

३. फ़िनलैण्ड रूस के साथ सैनिक संधि कर ले ।

उपर्युक्त माँगों से स्पष्ट है कि रूस आत्मरक्षा के भाव से फ़िनलैण्ड पर दबाव डालना चाहता है, न कि जर्मनी की तरह उसे पराधीन बनाने या उस पर आधिपत्य जमाने के लिए ।

फ़िनलैण्ड के अधीन बाल्टिक-टापुओं में आलैण्ड टापू-समूह बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसका ज़िक्र उपर्युक्त दूसरी शर्त में किया गया है । आलैण्ड टापू-समूह में लगभग ६५०० के क़रीब छोटे-बड़े टापू हैं, जो बाल्टिक-समुद्र के संकुचिततम हिस्से में फ़िनलैण्ड और स्वीडन के बीच फैले हुए हैं । इसी कारण ये बोथीनिया की खाड़ी पर ही नहीं, बल्कि स्टाकहोम के उत्तरवर्ती प्रदेश तथा फ़िनलैण्ड के पश्चिमान्तवर्ती प्रदेश तक अपने छोटे-मोटे बन्दरगाहों पर प्रभुत्व रखते हैं । इसके अतिरिक्त चूँकि बाल्टिक-समुद्र में प्रवेश करनेवाली तरंगें भी इन टापुओं से टकराती हैं, अतः इनके द्वारा लेनिनग्राड से आने-जाने-वाले जहाज़ों पर पूरी तरह से रोक की जा सकती है ।

इसी लक्ष्य से विगत महायुद्ध के बाद योरपियन देशों की सीमाओं का नये सिरे से फ़ैसला किया गया और इन टापुओं का आधिपत्य फ़िनलैण्ड को दे दिया गया । अभिप्राय यही था कि इन टापुओं को सदा के लिए तटस्थ बना दिया जाय । सन् १९२१ ई० के 'कन्वेन्शन' का यही सार है, जिस पर बाल्टिक-समुद्र में स्वार्थ रखनेवाली सब शक्तियों ने दस्तख़त किये थे । सिर्फ़ रूस को इस समझौते से बाहर रक्खा गया था । इस संधि के अनुसार फ़िनलैण्ड ने आलैण्ड टापुओं में रहनेवाले स्वीड्-भाषा-भाषी निवासियों को स्वायत्तता देने का वादा किया था और साथ ही उनकी सभ्यता की रक्षा तथा हर प्रकार के करों और नौकरियों से मुक्त रखने का भी वादा किया था । परन्तु इस संधि की मुख्य शर्त यह थी कि इन टापुओं में सैनिक तैयारियाँ नहीं की जायँगी । इस संधिपत्र को लीग आफ़ नेशंस के दफ़्तर में जमा करवा दिया गया और उसने आलैण्ड-टापू-समूह की तटस्थता की गारंटी भी दे दी ।

लीग के सामान्य रक्षा के वर्षों में तो फ़िनलैण्ड को इसकी विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ी, परन्तु योरप में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली नीति का अमल शुरू होते ही तथा अपनी गारंटी को पूरा करने में लीग की असमर्थता को लक्ष्य कर फ़िनलैण्ड ने अपनी स्थिति का पुनरवलोकन किया । उसे भय हुआ कि कहीं इन नई लड़ाइयों के सिलसिले में कोई अन्य देश इन टापुओं पर क़ब्ज़ा करके फ़िनलैण्ड के तट पर भी अधिकार न कर ले । अतः फ़िनलैण्ड की सरकार ने निश्चय किया कि इन टापुओं के बाहरी हिस्सों में क़िले-बन्दी की जाय, ताकि यदि किसी ओर से अचानक आक्रमण हो भी जाय तो सम्पूर्ण टापू-समूह उसका शिकार न बने और स्केण्डिनेवियन देशों की तटस्थता पर चोट न हो सके । इसका अभिप्राय यह था कि सन् १९२१ ई० के कन्वेन्शन को पलटा जाय । इस कारण सबसे पहले फ़िनलैण्ड की सरकार ने स्वीडिश-सरकार से बातचीत की । इन दोनों ही देशों के व्यापार को इन पर विदेशी आधिपत्य हो जाने से चोट पहुँचने की संभावना थी । इन दोनों देशों के बीच इस बारे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३८ ई० से पहले ही समझौता हो चुका था, परन्तु फ़रवरी, १९३९ के प्रारम्भ में क़िलेबन्दी तथा सामान्य सहायता के विषय में योजनाओं पर पुनः विचार किया गया। आलैण्ड-कन्वेन्शन पर दस्तख़त करनेवाले सब देशों से फ़िनिश-सरकार ने इस कार्यवाही के प्रति उनकी स्वीकृति चाही।

आलैण्ड-संधि पर दस्तख़त करनेवाले देशों के अतिरिक्त फ़िनलैण्ड ने रूस से भी स्वीकृति चाही। रूस यद्यपि उपर्युक्त समझौते से बाहर रक्खा गया था, परन्तु उसने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि उसका आलैण्ड-टापुओं के प्रबन्ध में विशेष स्वार्थ है। अन्य सब देशों ने तुरन्त अपनी-अपनी स्वीकृति दे दी, परन्तु जर्मनी ने कुछ विलम्ब के बाद व्यंग में हेलसिंकी (फ़िनलैण्ड की राजधानी) से पूछा कि अगर लीग आफ़ नेशंस की अशक्तता को देखकर ही आलैण्ड-टापुओं की स्थिति-परिवर्तन की ज़रूरत अनुभव की गई है तो इस मामले को लीग के पास ही पुनः क्यों भेजा जाय। साथ ही जर्मनी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस बारे में लीग की शक्तियों के साथ समझौता होते हुए भी जर्मनी जेनेवा की प्रणाली के साथ अपनी सहमति नहीं प्रकट कर सकता। रूसी उत्तर से ही उस समय विस्मय प्रकट किया गया।

लीग में इस प्रश्न पर बहस से पूर्व फ़िनिश-सरकार ने पुनः मास्को को इस बारे में एक नोट भेजा और उससे जेनेवा में इस मामले में सहायता माँगी। रूस ने उत्तर में हेलसिंकी की सरकार से तीन प्रश्न पूछे। वे थे—

१. फ़िनलैण्ड आलैण्ड-टापुओं में क़िलेबन्दी क्यों करना चाहता है?

२. क़िलेबन्दी किस प्रकार की होगी?

३. फ़िनलैण्ड मास्को को क्या यह गारंटी देता है कि कोई तीसरी शक्ति इन क़िलों का रूस के विरुद्ध इस्तेमाल नहीं करेगी?

उपर्युक्त तीनों प्रश्नों में रूसी आशंका साफ़-साफ़ झलकती है। मास्को को हेलसिंकी से जब कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं मिला तो सोवियट-प्रजातंत्र ने निश्चय किया कि जेनेवा में फ़िनिश-प्रस्तावों का विरोध किया जाय, जिसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि लीग की कौंसिल ने इन टापुओं की क़िलेबन्दी से सहमति प्रकट नहीं की।

तीसरे प्रश्न से रूस का झुकाव स्पष्ट है। भौगोलिक चित्र पर एक नज़र डालने से यह विश्वास हो जायगा कि रूस की आशंका और चिन्ता इस बारे में निराधार नहीं है। उत्तरीय सागर तथा बाल्टिक-समुद्र की ओर उसके बहिर्द्वार का मार्ग फ़िनलैण्ड की सँकरी खाड़ी में से गुज़रता है और इस पर आलैण्ड-टापुओं का प्रभुत्व है। यदि इस द्वीपसमूह की क़िलेबन्दी पर शत्रु-देश का अधिकार हो जाय तो वहाँ से वह रूसी जंगी बेड़े के बाल्टिक-सागर में प्रवेश को ही नहीं रोक सकता, बल्कि उसके केन्द्र क्रोन्सश्टाड को भी व्यर्थ कर सकता है। यही नहीं, वहाँ से लेनिनग्राड पर आक्रमण भी आसानी से किया जा सकता है।

जब तक फ़िनलैण्ड की तटस्थता में, और उसके मास्को के साथ सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका नहीं, तब तक तो सब मामला ठीक है, परन्तु यदि किसी तीसरी शक्ति का इन टापुओं पर अधिकार हो जाय, (जैसा कि खुला रहस्य है कि फ़िनलैण्ड और स्वीडन को जर्मन-आक्रमण का ही सबसे बड़ा भय है) तो उस अवस्था में प्रश्न उठता है कि क्या फ़िनलैण्ड इन टापुओं की रक्षा कर सकेगा? फ़िनिश लोगों का विश्वास है कि वे क़िलेबन्दी के बाद इनकी रक्षा कर सकते हैं, परन्तु चाहे फ़िनलैण्ड के निवासी कितने ही बहादुर क्यों न हों, वे जर्मनी के आक्रमण को रोकने में समर्थ नहीं। यह बात पोलैण्ड और चेकोस्लोवाकिया के उदाहरणों से स्पष्ट है, जिनकी शक्ति फ़िनलैण्ड से कहीं ज़्यादा थी।

इस सैनिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त—जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं—फ़िनलैण्ड के राजनीतिक-झुकाव से भी रूस को उसके वादों पर विश्वास नहीं होता। यदि इन टापुओं की रक्षा और क़िलेबन्दी में रूस का भी हाथ होगा तो बात ही दूसरी है; परन्तु इस बात को स्वीडन और फ़िनलैण्ड नहीं मानते; क्योंकि ऐसा करने से उन्हें जर्मनी के आक्रमण का भय है। जर्मनी को ऐसी हालत में उनके ऊपर रूस की सहायता करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अन्देशा हो सकता है, जिसे वह किसी भी हालत में बरदाश्त नहीं कर सकता।

इसके अतिरिक्त फ़िनलैण्ड कम्युनिज़्म (साम्यवाद) के घोर विरुद्ध है। सन् १९१९ ई० से लेकर (जब जर्मनी ने उसे बोल्शेविज़्म के विरुद्ध सहायता की थी) अब तक उसकी सहानुभूति जर्मनी के साथ है। फ़िनलैण्ड में नाज़ी-दल शक्तिशाली है, इस कारण रूस को उस पर और भी विश्वास नहीं होता। फ़िनलैण्ड इसका जवाब अपनी तटस्थता की गारंटी के अलावा और कुछ नहीं देना चाहता। परन्तु रूस को स्वीडन और फ़िनलैण्ड की क़िलेबन्दी के रहस्य को देखते हुए इन सब वादों पर विश्वास नहीं होता।

एक बड़ी दिलचस्प बात यह है कि इस मामले में रूस के प्रस्तावों का सबसे बड़ा समर्थन आलैण्ड-वासियों द्वारा किया जा रहा है, जिनमें अधिकांश स्वीडिश हैं। वे लोग इस क़िलेबन्दी के सर्वथा ख़िलाफ़ हैं; क्योंकि उन्हें भय है कि फ़िनिश फ़ौज के उनकी ज़मीन पर आ जाने से उन्हें सैनिक बनने के लिए मजबूर किया जायगा और फ़िनिश लोगों की वहाँ प्रधानता हो जायगी। फ़िनिश-सरकार ने उन्हें विश्वास दिलाया है कि सिपाही और अफ़सर सब स्वीडिश - बोलनेवाले होंगे, परन्तु टापूवासी कोई बात भी नहीं सुनना चाहते। उन्होंने इस क़िलेबन्दी के विरुद्ध जेनेवा भी अपना डेपुटेशन भेजा था। आलैण्ड-वासियों ने स्वीडन में भी सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की है और इस दिशा में उन्हें कुछ सफलता भी मिली है; परन्तु साधारणतः स्वीडनवासी इन टापुओं की भौगोलिक स्थिति को अपने देश के वास्ते हितकर अनुभव करते हुए अपनी सरकार के साथ ही हैं, जो फ़िनलैण्ड को अपनी तटस्थता की नीति में साथ रखती है और पारस्परिक रक्षा में सहयोग भी देना चाहती है। इसके लिए यदि स्वीडन को सैनिक शक्ति की सहायता लेनी पड़े तो वह उसके लिए भी तैयार है। विगत सितंबर-संकट के बाद से फ़िनलैण्ड को स्वीडन की सैनिक शक्ति में विश्वास हो गया है। और भविष्य में सहयोग के वास्ते दोनों देशों ने विस्तृत योजनाएँ भी तैयार कर ली हैं। स्वीडिश गवर्नमेंट ने रूस को जवाब दिया कि यदि इन टापुओं में क़िलेबन्दी कर ली गई तो स्वीडन-फ़िनलैण्ड की तटस्थता से रूस को लाभ ही होगा। उसे किसी प्रकार के भय की गुंजायश नहीं। परन्तु मास्को को इस गारंटी में बहुत विश्वास नहीं, जब तक कि इन टापुओं की रक्षा में उसका हाथ न हो। इसमें भी संदेह नहीं कि अब आलैण्ड का प्रश्न जेनेवा में नहीं जायगा, अतः इसका फ़ैसला मास्को और हेलसिंकी के बीच ही होना है। फ़िनलैण्ड के वैदेशिक सचिव म० एर्को ने कहा है कि वह इस बारे में अपने निश्चय से नहीं डिग सकते और ऐसी भी अफ़वाह है कि क़िलेबन्दी का काम जारी भी हो चुका है। परन्तु इसमें कोई सचाई नहीं प्रतीत होती; क्योंकि स्वीडिश गवर्नमेंट ने अभी हाल ही में घोषणा की है कि जब तक रूस और फ़िनलैण्ड के बीच आलैण्ड-टापुओं के बारे में फ़ैसला नहीं हो लेता, तब तक उसका निर्णय स्थगित समझना चाहिए। स्टाकहोम की सोशलिस्ट-सरकार मास्को के साथ किसी प्रकार का मनमुटाव नहीं पैदा करना चाहती, और ऐसी आशा करनी चाहिए कि रूस भी अपनी प्रजातंत्रवादी नीति का अनुसरण करता हुआ कोई ऐसी माँग पेश नहीं करेगा, जो न्याय के विरुद्ध हो। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि सोवियट प्रजातंत्र अपनी रक्षा के वास्ते भविष्य में सम्पूर्ण स्थिति का बहुत ग़ौर से निरीक्षण करेगा। यद्यपि वह फ़िनलैण्ड की आज़ादी पर कोई चोट नहीं करना चाहता, फिर भी इसमें संदेह नहीं कि यदि रूस को इन टापुओं की ओर से कोई भय दिखाई दिया तो अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए वह चुपचाप भी नहीं बैठेगा। यह लेख लिखने के बाद ही रूस ने फ़िनलैंड पर चढ़ाई कर दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवाधर्म

(गत अंक से आगे)

सेठ श्रीगोविंददास (जबलपूर)

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—सेवाकुटी के बाहर का मैदान
समय—संध्या

[दीनानाथ और कमला खड़े हैं]

कमला—प्रोफ़ेसरी के लिए स्वयं प्रार्थनापत्र भेजने पर, उसके स्वीकृत हो जाने और प्रोफ़ेसरी मिलने पर भी अब आप प्रोफ़ेसरी न करेंगे ? युनिवर्सिटीवाले क्या कहेंगे ?

दीनानाथ—मैं उन्हें स्पष्ट लिख दूँगा कि क्षणिक निर्बलता के आवेश में आकर, मैंने वह प्रार्थनापत्र भेजा था।

कमला—(आश्चर्य से) निर्बलता के आवेश में आकर ?

दीनानाथ—अवश्य।

कमला—कैसी निर्बलता ?

दीनानाथ—वही स्वार्थ की।

कमला—आपके स्वार्थ की व्याख्या ही समझना कठिन है।

दीनानाथ—नहीं कमला, बहुत ही सरल है।

कमला—कैसे ?

दीनानाथ—देखो, स्वार्थ का मूलोच्छेदन केवल विषयभोगों के त्याग से ही नहीं होता।

कमला—तो फिर विषयभोग का त्याग निरर्थक है। आपने व्यर्थ ही इतना कष्ट पाया और पा रहे हैं ?

दीनानाथ—नहीं उनका त्याग तो आवश्यक है। विना उनके त्याग के तो स्वार्थत्याग के पथ में पैर रखना ही असंभव है। जिस प्रकार लंबी-से-लंबी यात्रा के लिए भी पहले क़दम की आवश्यकता है, उसी प्रकार मेरे स्वार्थत्याग के पथ की यात्रा के लिए विषयभोगों का त्याग पहला क़दम, पहली सीढ़ी है। विषयभोग के त्याग और अपने सिद्धांत की अटलता में विश्वास होने पर अपने पथ पर चलने की आत्मशक्ति अवश्य प्राप्त हो जाती है; परन्तु उसे स्वार्थ के आक्रमणों से बचाने का फिर भी सदा प्रयत्न करने की आवश्यकता है। अच्छे-से-अच्छा घुड़सवार बुरी-से-बुरी तरह गिरता भी है। मेरे पथ का पथिक भी विना गिरे अपने निर्दिष्ट स्थान को नहीं पहुँच सकता। कीर्ति सुनने की लालसा और बुराई सुनने से क्रोध एवं शोक, ये दोनों भी तो स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं। इस घाटी को लाँघने और यदि इसके लाँघने में पतन हो तो उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतन के पश्चात् और दृढ़ता से उठकर चलने की आवश्यकता है।

कमला—आप न-जाने इस संसार को किस दृष्टि से देखते हैं ? प्राचीन काल के बड़े-बड़े त्यागी ऋषि-मुनियों और राजर्षि नरेशों तथा इस समय के बड़े-बड़े नेताओं सभी को अपनी कीर्ति सुनने की अभिलाषा रही है, और है; किसी को अपनी बुराई अच्छी नहीं लगी, और न लगती है।

दीनानाथ—जिन्हें भी यह लालसा रही है, या है, समझ लो, वे अपने हृदय से स्वार्थ का मूलोच्छेदन नहीं कर सके; और यही कारण उनके पथभ्रष्ट होने का है। कीर्तिश्रवण की लालसा का स्वार्थ तो कमला, विषयभोग के स्वार्थ से भी बड़ा है। कई व्यक्ति इसी लिए प्रत्यक्ष में विषयभोगों का त्याग कर देते हैं कि उनकी कीर्ति होगी। भीतर-ही-भीतर वे इन विषयों को भी पूर्ण रूप से नहीं त्यागते। छिपे-छिपे वे उनका उपभोग करते हैं। छिपकर जो कार्य किया जाता है, वही पाप है। पाप का यह घड़ा जहाँ फूटा कि ऐसे व्यक्ति पथभ्रष्ट हुए; और वह प्राय: फूटता ही है।

कमला—और जो लोग सचमुच विषयभोग त्याग देते हैं, जैसे आपने त्याग दिये हैं ?

दीनानाथ—उनके हृदय में भी कीर्तिश्रवण का स्वार्थ बना रहता है। सर्वसाधारण से ऊँचे उठने का जो उद्योग करता है, उस पर सर्वसाधारण की दृष्टि लगी रहती है। कोई किसी को, जहाँ तक उससे हो सकता है, अपने से ऊपर नहीं उठने देना चाहता, अतः ऐसे मनुष्यों का सदा छिद्रान्वेषण होता है। कुछ स्वार्थी कभी-कभी इनके विरुद्ध मिथ्या अपवाद भी फैला देते हैं। चूँकि आज संसार में बुराइयों से युक्त ही अधिक मनुष्य हैं, अतः इस प्रकार के मिथ्या अपवादों पर सर्वसाधारण को शीघ्र ही विश्वास हो जाता है। जिनमें अपनी कीर्ति सुनने का स्वार्थ विद्यमान है, ऐसे विषयभोगों को भी सचमुच त्याग देनेवाले व्यक्ति अपनी अकीर्ति श्रवण न कर सकने के कारण पथभ्रष्ट हो जाते हैं। यह स्वार्थ है, कमला स्वार्थ ! इसी स्वार्थ के वशीभूत होकर उस दिन मैंने प्रोफ़ेसरी के लिए प्रार्थनापत्र भेजा था।

कमला—फिर अब आप क्या करेंगे ?

दीनानाथ—वही, जो अब तक करता था। अन्तर केवल इतना ही होगा कि बिना इस बात की चिन्ता किये कि कोई मेरी बुराई करता है या भलाई, वही काम करूँगा। जो मेरी अकीर्ति हुई है, उसे मैं एक प्रकार की परीक्षा मानता हूँ। कमला, यह भी मेरे पथ की एक सीढ़ी थी। हृदय में निर्बलता अवश्य आई, पर विवेक ने............

कमला—मैं क्या कहूँ, आपके स्वार्थत्याग का पथ ही अद्भुत है। अभी और भी सीढ़ियाँ शेष होंगी ?

दीनानाथ—यह मैं कैसे कह सकता हूँ ? जब मैंने इस पथ पर चलना आरंभ किया, तब इसमें कितनी सीढ़ियाँ हैं, यह मुझे कहाँ दिखता था ? पहले मैं इस पथ पर चलने के लिए विषयभोग का त्याग ही यथेष्ट समझता था, पर उसके पश्चात् तो न-जाने कितनी परीक्षाएँ देनी पड़ीं, कितनी सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं। एक-एक इन्द्रिय ने विप्लव किया है, छोड़ी हुई वासनाओं का सुख स्मरण आया है, तुम्हारे और बच्चों के कष्ट ने सताया है, कदाचित् इसी लिए विवाह की इच्छा न रहते हुए भी विवाह हुआ था। अनेक लोगों ने एवं अनेक अभिन्न मित्रों तक ने मेरे पथ की नाना प्रकार की आलोचनाएँ की हैं, हँसी उड़ाई है।

कमला—पर फिर भी आपने अपना पथ परिवर्तित कहाँ किया ?

दीनानाथ—हाँ परिवर्तित तो नहीं किया, पर अनेक बार हृदय में सन्देह अवश्य उत्पन्न हुआ कि मेरा पथ ठीक है या मैं पथभ्रष्ट हूँ। अनेक बार भासित हुआ कि यह तो ऐसा पथ है, जिस पर मैं अकेला ही चल रहा हूँ, कोई साथी तक नहीं। ऐसे अवसरों पर घने जंगल में एक तंग पगडंडी पर चलनेवाले अकेले पथिक की जो दशा होती है, वही मुझे भी अपनी जान पड़ी। पर....(रुक जाता है)

कमला—पर ?

दीनानाथ—पर उन सब परीक्षाओं को देने के समय, इन सब सीढ़ियों पर चढ़ने के समय, हृदय ने इस प्रकार की निर्बलता नहीं दिखलाई। जब कीर्ति गई और अपयश हुआ, तब हृदय भी एक बार निर्बल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। हर्ष की बात है कमला कि विवेक ने अन्त में इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण करा दिया, इस सीढ़ी पर भी चढ़ा दिया। (कमला सिर हिलाती है) जिस प्रकार सोने की परीक्षा के लिए काली कसौटी है, उसी प्रकार हृदय की परीक्षा के लिए भगवान् ने कदाचित् ये बाधाएँ बनाई हैं। बिना सान पर चढ़ाये जिस प्रकार रत्न में दीप्ति नहीं आती, उसी प्रकार बिना परीक्षाओं के हृदय भी कदाचित् प्रकाशित नहीं हो सकता।

कमला—चलिए, चलते जाइए, जो आपकी इच्छा हो करते जाइए। पर इसे हठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

दीनानाथ—नहीं, कमला, यह हठ नहीं है। हठ और प्रतिज्ञापालन का व्यवहार चाहे एक-सा दीखे, पर दोनों में बड़ा अन्तर है।

कमला—क्या अन्तर है? मुझे तो कुछ नहीं दिखता।

दीनानाथ—हठ के पीछे कोई सिद्धांत नहीं रहता; परन्तु प्रतिज्ञापालन सिद्धांत पर अवलंबित रहता है। प्रतिज्ञापालक के विचार और कार्य उसे एक निश्चित लक्ष्य की ओर ले जाते हैं।

कमला—जिसे अपनी पत्नी; अपने रक्त से उत्पन्न बच्चों की चिन्ता नहीं........

दीनानाथ—नहीं कमला, मुझे तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की चिन्ता है, बहुत अधिक चिन्ता है, अपने शरीर से भी अधिक; पर हाँ, उतनी ही, जितनी दूसरी स्त्रियों और दूसरे बच्चों की।

कमला—(घृणा से) आप इस संसार में नहीं, स्वप्न के संसार में रहते हैं।

दीनानाथ—(कुछ सोचते हुए) कदाचित् यह सत्य हो, परन्तु स्वप्न के संसार में रहने से स्वप्न के कुछ सुखों की प्राप्ति हो जाती है। जो केवल इस संसार में रहते हैं, उन्हें तो इस संसार का दुःख ही दुःख मिलता है।

कमला—(लंबी साँस लेकर क्रोध से) भगवान् ने आपको हृदय नहीं, पत्थर दिया है, और क्या कहूँ।

[शीघ्रता से प्रस्थान। दीनानाथ भी कुछ सोचता हुआ जाता है। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—शक्तिपाल के मकान का वही कमरा

समय—प्रातःकाल

[घड़ी में आठ बजने को पाँच मिनिट हैं। यात्रा के ख़ाकी कपड़ों में एक चमड़े का बेग हाथ में लिये मार्गरेट का प्रवेश। वह लिखने के टेबिल के निकट जा बेग उस पर रखती है और बेग में से दोनों थरमामीटर निकाल सोफ़ा पर आकर बैठ घरों में से थरमामीटरों को निकाल एक को मुँह में और दूसरे को बग़ल में लगा हाथघड़ी को देखती है।]

मार्गरेट—(कुछ देर पश्चात् मुँह का थरमामीटर निकालकर) ओह ! नाइंटीएट पाइंट फ़ाइव। (बग़ल का निकालकर) नाइंटीएट पाइंट वन। (दोनों थरमामीटर केसों में रख राइटिंग टेबिल के पास जा दोनों को बेग में रख देती है; फिर सोफ़ा पर बैठ नब्ज़ देखती है।) एट्टीवन। (खड़े होकर नब्ज़ देख) नाइंटी। (सोफ़ा पर लेटकर नब्ज़ देख) सेविंटीसिक्स। रादर एक्साइटेड।

[श्रीनिवास का अँगरेज़ी वस्त्रों में प्रवेश।]

श्रीनिवास—(टोप उतारते हुए) गुडमार्निंग मिसेज़ वर्मा।

मार्गरेट—गुडमार्निंग, गुडमार्निंग, मिस्टर शीनिवैश!

श्रीनिवास—आप तो चलने के लिए तैयार हैं?

मार्गरेट—यस. मिस्टर शीनिवैश, गोकि आज हमारा टेंप्रेचर जाडा और पल्स भी एक्साइटेड, आज टो बेड में कनफ़ाइन होने का माफिक हेल्थ, लेकिन हम लोग टो शिमला चलटा। वहाँ का क्लाइमेट टो बोट आच्छा।

श्रीनिवास—हाँ, हाँ, वह तो हेल्थ रिजोर्ट है, और फिर मैं आपके साथ हूँ, आप जानती हैं टूर में मैं आपके हेल्थ की कितनी केयर रखता हूँ।

मार्गरेट—हाँ, अब टो आपका साट घूमटे-घूमटे टीन साल का क़रीब हो गिया। आपका केयर के लिए टो हम बोट थैंकफ़ुल। हम चलटा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनिवास—(हाथ की घड़ी देखते हुए) मिस्टर वर्मा से तो आप मिल लीं न, और आपका लगेज तो स्टेशन गया न ? क्योंकि गाड़ी जाने में पन्द्रह मिनिट ही हैं।

मार्गरेट—हाँ, हाँ, हम उससे मिल लिया, लगेज भी स्टेशन गया। हम आपका साट चलने को एकडम टैयार। (राइटिंग टेबिल के निकट जाकर बेग उठा श्रीनिवास के पास जाकर) चलिए मिस्टर शीनिवैश।

श्रीनिवास—चलिए।

[दोनों का प्रस्थान। शक्तिपाल के दो सेक्रेटरियों का प्रवेश। दोनों का रंग साँवला है और दोनों अँगरेज़ी ढंग के कपड़े पहने हैं। दोनों की बग़लों में दो बड़े-बड़े फ़ाइल दबे हुए हैं। दोनों फ़ाइलों को लिखने की टेबिल पर रख देते हैं और कुर्सियों पर बैठ जाते हैं।]

एक—(घड़ी की ओर देखकर) वेल मिस्टर शर्मा, हम लोग पाँच मिनिट देर से आये हैं। ग़नीमत है कि मिनिस्टर साहब अब तक नहीं आये, नहीं तो संडे को भी पाँच मिनिट देर से आने के लिए पन्द्रह मिनिट की एक स्पीच सुननी पड़ती।

दूसरा—हाँ, भाई, इस मिनिस्टर ने तो आफ़त कर डाली; छुट्टी के दिन भी छुट्टी नहीं। ठीक वक़्त बँगले पर आओ, सुबह आओ, रात को आओ, ठीक वक़्त आफ़िस में पहुँचो, पर आफ़िस से जाने का कोई ठीक वक़्त मुक़र्रर नहीं। एक-एक काग़ज़ को ठीक तरह से रक्खो, चाहे कोई रद्दी भी हो, क्योंकि न-जाने किस वक़्त रिफ़रेंस के लिए कौन काग़ज़ माँगा जाय, ज़रा देर हुई कि डाँट पड़ी।

पहला—फिर जब कौंसिल का सेशन होता है, तब तो इसके सिर पर भूत सवार हो जाता है।

दूसरा—और बोलता वह हम लोगों के सिर पर है।

पहला—इस साल कौंसिल के सेशन के वक़्त ही एक्ज़ीबिशन करा दी, तब तो जान जाते-जाते बची।

दूसरा—राम-राम करते-करते ये तीन साल बीतने पर आये हैं। ऐसा तो कोई मिनिस्टर नहीं हुआ।

पहला—भाई, सोशलिस्ट मिनिस्टर है कि तमाशा ?

दूसरा—पर तीन साल की मेहनत के बाद भी यह कर क्या सका ? सोशलिज़्म एक पैर भी आगे बढ़ा ? कैबिनेट में इसकी कोई स्कीम कभी मंज़ूर नहीं होती। कौंसिल में मिनिस्टर होने के सबब यह कोई बिल वग़ैरह ला नहीं सकता। याद नहीं, इसकी पार्टी में से एक मेम्बर, जो किसानों के हक़ बढ़ाने की बाबत बिल लाया था, और एक जो मज़दूरों के काम करने के दस घण्टों से आठ घण्टे, और फ़ैक्टरी में काम करनेवाले लड़कों की उम्र ग्यारह साल से पन्द्रह साल कराना चाहता था, दोनों अपनी सोशलिस्ट पार्टी में ही इतने बदनाम हुए कि उन्हें अपनी पार्टी का ही कोई सपोर्ट करनेवाला नहीं मिला।

पहला—अरे नाम की सोशलिस्ट पार्टी है। ज़मींदारों और पूँजीपतियों से भरी हुई है। सोशलिज़्म, सोशलिज़्म चिल्लाने से ही सोशलिज़्म क़ायम नहीं हो सकता।

दूसरा—हम छोटे-छोटे सेक्रेटरियों और क्लार्कों को कोल्हू के बैलों के माफ़िक चलाने के सिवा और मिनिस्टर साहब क्या कर सके ?

पहला—कर ही क्या सकते थे ? पहले तो कोई अख़्त्यारात नहीं, दूसरे पार्टी का यह हाल, तीसरे कमिश्नरियों के कमिश्नर, ज़िलों के डिप्टी कमिश्नर और इन्हीं के डिपार्टमेंटों के योरपियन और सीनियर सेक्रेटरी तक इनकी रत्तीभर परवा नहीं करते। जो ख़ुशी होती है, करते हैं। बात यह है कि ये सब लोग जानते हैं कि इनकी सर्विस परमेनेंट है और ये मिनिस्टर रोज़ आते और रोज़ जाते हैं।

दूसरा—और थोड़े दिन हैं। इस दफ़ा के चुनाव में यह कभी नहीं जीत सकता। इतनी मेहनत करने पर भी गवर्नमेंट और पब्लिक दोनों में बदनाम हो गया है। फिर इसकी पार्टी भी न जीतेगी; क्योंकि इसके ज़्यादातर मेम्बर ही इस पार्टी की तरफ़ से खड़े होना नहीं चाहते।

पहला—इस दफ़ा उसका सबसे बड़ा मददगार श्रीनिवास भी तो चुनाव के लिए कुछ नहीं कर रहा है।

दूसरा—यह क्यों ?

पहला—एक तो इन दोनों में अब बनती नहीं, दूसरे श्रीनिवास को पालिटिक्स में कोई इंटरेस्ट भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। देखते नहीं, कौंसिल के सेशन तक में वह बहुत कम आता है और तीसरे तुमने सुना नहीं कि बिजनेस में उसे बड़ा घाटा है। इज़्ज़त बच जाय तो बड़ी बात है।

दूसरा—अच्छा, वह तो बड़ा अक़्लमंद आदमी था।

पहला—सब अक़्ल मार्गरेट की क़दमबोसी में ख़र्च हो गई। मिनिस्टर साहब की सारी तनख़्वाह वह चाट जाती है। इतना ही नहीं, श्रीनिवास को भी वह दिवालिया बनाने के फ़िराक़ में है।

[लंबा चोग़ा (ड्रेसिंग गाउन) और स्लीपर पहने नंगे सिर शक्तिपाल का प्रवेश। दोनों सेक्रेटरी उसे देखकर खड़े हो जाते हैं।]

एक—गुड मार्निंग सर।

दूसरा—गुड मार्निंग सर।

शक्तिपाल—गुड मार्निंग, गुड मार्निंग। (घड़ी की ओर देखकर) ओह ! आएम आफुली सॉरी। एस्क्यूज़ मी मिस्टर शर्मा, एण्ड मिस्टर गुप्ता, मिसेज़ वर्मा आज शिमला जा रही थीं, इसी से कुछ लेट हो गया।

एक—दैट्स आल राइट, सर।

दूसरा—ओह ! क्वाइट आल राइट सर।

शक्तिपाल—आप लोग दस्तख़त के लिए पेपर्स ले आये हैं ?

एक—जी हाँ, सब तैयार हैं।

[शक्तिपाल दफ़्तर की कुरसी पर बैठता है। दोनों सेक्रेटरी अपने-अपने फ़ाइल उठा कुर्सी के दोनों ओर खड़े हो जाते हैं।]

शक्तिपाल—पहले आप अपने पेपर्स पुट अप कीजिए मिस्टर शर्मा।

एक—बहुत अच्छा। (फ़ाइल खोलकर एक काग़ज़ टेबिल पर रखता है।)

शक्तिपाल—(चश्मा उतारकर पढ़ते हुए) ओ ! यह तो वही लेटर है, जो कल मैंने डिक्टेट कराया था ?

पहला—जी हाँ।

[शक्तिपाल हस्ताक्षर करता है। वह दूसरा काग़ज़ रखता है।]

शक्तिपाल—(उसे पढ़ते हुए) यह तो मेरा डिक्टेट कराया हुआ नहीं है !

पहला—जी नहीं।

शक्तिपाल—इसमें जिन काग़ज़ात का रिफ़रेंस दिया गया है, वे पेश कीजिए।

पहला—(कुछ घबराकर) वे तो आफ़िस में हैं।

शक्तिपाल—(कुरसी से टिक उसकी ओर देखते हुए) आप जानते हैं कि मैं तो सब काग़ज़ों को पढ़े बग़ैर किसी चिट्ठी पर दस्तख़त नहीं करता।

पहला—पर इसके रिफ़रेंस के काग़ज़ात तो इतने ज़्यादा थे कि बाइसिकिल के कैरियर पर नहीं आ सकते थे।

शक्तिपाल—तो आपको ताँगा किराया कर लेना था। अब तो इस पर कल इसी वक़्त दस्तख़त होंगे, क्योंकि संडे के सबब आफ़िस की तो आज छुट्टी है। (कुछ ठहरकर) देखिए मिस्टर शर्मा, आपको मेरे पास काम करते तीन साल होने आते हैं, आप जानते हैं मैं किसी काम को पैंडिंग नहीं रखना चाहता और आप हमेशा इसी तरह की ग़लती करते हैं।

[चपरासी का प्रवेश। वह सलाम करता है।]

चपरासी—नगरसेठ साहब तशरीफ़ लाये हैं हुज़ूर।

शक्तिपाल—(सेक्रेटरियों से) अच्छा देखिए मिस्टर शर्मा, और मिस्टर गुप्ता, आज बहुत देर हो गई है और कुछ लोगों से मेरे आज एंगेजमेंट्स भी हैं। बेहतर होगा कि आप दोनों कुल काग़ज़ात लेकर आज रात को ठीक साढ़े आठ बजे यहीं आवें।

पहला—(उदास होकर) बहुत अच्छा।

दूसरा—(उदासी से) अच्छी बात है।

[दोनों का नमस्कार कर प्रस्थान।]

शक्तिपाल—(चपरासी से) सेठ साहब को सलाम दो।

[चपरासी का सलाम कर प्रस्थान। शक्तिपाल चश्मा लगाकर सोफ़ा पर बैठ सिगरेट जलाता है।]

शक्तिपाल—(ज़ोर से) चपरासी ! चपरासी !

[चपरासी फिर आकर सलाम करता है।]

शक्तिपाल—देखो, उन्हें बहुत ख़ातिर से भेजना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चपरासी—जो हुकुम सरकार। (सलाम कर जाता है।)

[घुटने तक चढ़ी हुई धोती और अँगरखा पहने, गले में दुपट्टा डाले और सिर पर पगड़ी लगाये, साँवले रंग के एक मोटे-से सेठ का प्रवेश।]

सेठ—(दोनों हाथ सिर पर लगाते हुए) जै गोपाल, जै गोपाल मिनश्टर शाब।

शक्तिपाल—(खड़े होकर हाथ जोड़ नमस्कार का उत्तर दे) बैठिए, बैठिए, सेठ साहब, कहिए आप अच्छी तरह हैं? बहुत दिनों बाद आपका नियाज़ हासिल हुआ।

(बैठता है)

सेठ—(बैठते हुए) पियाज तो म्हे लोग खाँवाँ ई कोनी मिनश्टर शाब, आपने युंई कहेई श्युं बाश आई होशी।

शक्तिपाल—(मुस्कराकर ज़ोर से) नहीं-नहीं, सेठ साहब, मेरा मतलब यह था कि आप बहुत दिनों बाद आये।

सेठ—हो! मैं थोड़ो ऊँचो शुणू हूँ। आपने जद बुलायो बीं बखत तो आयो ई मिनश्टर शाब!

शक्तिपाल—(ज़ोर से) हाँ-हाँ, यह तो आपकी (साधारण स्वर में) नवाज़िश है।

सेठ—नुमाइश तो म्हारी कांई आपकी ही है, म्हा का बाबा! म्हे कांई नुमाइश कर शकाँ हाँ। और भोत चोखी हुई मिनश्टर शाब, प्रागजी में इशी नुमाइश देख बा मा आई ही, बीं के पीछै तो कदैई इशी नुमाइश कोनी देखी।

शक्तिपाल—(हँसी को रोकते हुए ज़ोर से) मेरा नुमाइश से मतलब नहीं था सेठ साहब, वह तो सचमुच अच्छी हुई, हालाँकि इलाहाबाद के मुक़ाबले में तो वह कुछ भी नहीं थी। इस वक़्त तो मैंने यह अर्ज़ किया था कि आपकी मुझ पर हमेशा ही मेहरबानी रहती है।

सेठ—हो! महरबानगी तो आप लोगाँ की चाये मिनश्टर शाब। म्हाँ लोगाँ की क्याँ की महरबानगी म्हाँ का बाबा!

[शक्तिपाल सिगरेटकेस आगे करता है।]

सेठ—(हाथ जोड़ते हुए) मैं पऊँ नईं हूँ। मिनश्टर शाब।

शक्तिपाल—(सिगरेटकेस हटाते हुए) सेठ साहब, मैं फिर खड़ा हो रहा हूँ।

सेठ—(जल्दी से खड़े होकर) क्यूँ कुरशी पर कोई जिनावर इनावर तो कोनी है क?

शक्तिपाल—(हँसी को रोकने के लिए खाँसते हुए ज़ोर से) नहीं-नहीं, मेरा मतलब कौंसिल के लिए खड़ा होने का है। आप जानते हैं चुनाव फिर आ गया है।

सेठ—(बैठते हुए) हो! पण मिनश्टर शाब, ई बखत तो आप खड़ा नईं होवो तो चोखी बात है। क्यूं झगड़ा में पड़ो हो?

शक्तिपाल—(ज़ोर से) क्यों सेठ साहब, क्या लोग मुझसे नाराज़ हैं?

सेठ—(बग़लें झाँकते हुए) नईं नाराज़ी की तो बात कोनी, पण मिनश्टर शाब, आप जद मने भरोसो कर बलायो है तो मने भी आप श्यूँ शाँची शाँची बात कै देनी चाये।

शक्तिपाल—ज़रूर-ज़रूर।

सेठ—अबार ऊँन्यालाँ की मोशम मा, जद उल्टी दस्ताँ की बेमारी फैली ही, बीं बखत आप मुनश्यपालटी का प्रेशीडंट शाब के सागे गाँव में घूमकर हलवायाँ की दुकानां श्यूँ मिठाई फिंकवाई ही न, और फलाँ का बेपारियाँ का फल बी फिकाया हान, और कूँजड़ा की शागभाजी बीं फिकाई हीन?

शक्तिपाल—(ज़ोर से) ज़रूर, क्योंकि हलवाइयों की दुकानों में बहुत-सी गंदी मिठाई थी, फलवाले और कूँजड़े बहुत-से सड़े हुए फल और शाकभाजी बेचते थे। उससे हैज़ा बढ़ रहा था सेठ साहब।

सेठ—पण लोग इतनों अबार कठे शमजे है म्हाका बाबा! लोग आप श्यूँ नाराज हो गया हैं मिनश्टर शाब, कवै है आपने तो हजाराँ की तनखा मिले है। आप गरीबाँ की गरीबी कठे देखी।

शक्तिपाल—पर सेठ साहब, आप लोग तो अरबन के वोटर............

सेठ—(हाथ जोड़ते हुए) म्हारा तो आप मालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ मिनश्टर शाब, आम्हारी आपकी अनबन की बात कोनी ।

शक्तिपाल—(ज़ोर से) नहीं-नहीं, मेरा मतलब अनबन से नहीं था । मेरा मतलब था कि आप लोग जो शहरों में रहनेवाले हैं, उन्हें तो इन सब बातों को समझना चाहिए ।

सेठ—हो ! पण मिनश्टर शाब, लोग अतरी नईं शमझे है । खैर, आप खड़ा होश्यो तो मैं तो आपकी जठे ताणी होशी मदत जरूर ही करश्यूँ ।

शक्तिपाल—मैं आपका निहायत शुक्रगुज़ार हूँ ।

सेठ—नईं नईं मिनश्टर शाब ! आप गुँवार नहीं, आप तो हर तरश्यूँ बुदी वाला हो । लोग हीं गुँवार....

शक्तिपाल—(ज़ोर से) मेरा मतलब गँवार से नहीं था सेठ साहब, मैं तो, देखिए, क्या कहना चाहिए, हाँ-हाँ, आपको (और ज़ोर से) धन्यवाद दे रहा था ।

सेठ—हो ! ईं की काईं जरूरत है म्हाका बाबा ! मैं तो आपको ई हूँ । मने तो आप कैश्यो जियांईं करश्यूँ ।

[चपरासी का चाँदी की रकाबी में एक कार्ड लेकर प्रवेश । चपरासी सलाम कर, रकाबी आगे करता है ।]

शक्तिपाल—(कार्ड उठा चश्मा निकाल कार्ड को पढ़, चश्मा लगाते हुए चपरासी से) उन्हें अच्छी तरह बैठाओ, मैं उनसे अभी मिलूँगा ।

[चपरासी का सलाम कर प्रस्थान ।]

सेठ—तो अब मने भी इजाजत होय मिनश्टर शाब !

शक्तिपाल—(खड़े होते हुए) बहुत ख़ूब, तो आपकी तो मदद मुझे ज़रूर ही रहेगी । (ज़ोर से) और आप कोशिश करेंगे कि शहर के मारवाड़ी और महाजन वग़ैरह मुझे ही वोट दें ।

सेठ—(खड़े होते हुए) जरूर मिनश्टर शाब, जरूर । (जाते हुए) जै गोपाल मिनश्टर शाब जै गोपाल !

शक्तिपाल—(बैठते हुए) जै गोपाल सेठ साहब जै गोपाल । [सेठ का प्रस्थान ।]

शक्तिपाल—(ज़ोर से) चपरासी ! चपरासी !

[चपरासी का प्रवेश । वह सलाम करता है ।]

शक्तिपाल—ज़मींदार साहब को बहुत ख़ातिर से भेज दो ।

[चपरासी का प्रस्थान । एक ठिंगने क़द के मनुष्य का चोग़ा, चपकन और पाजामा पहने तथा साफ़ा बाँधे हुए प्रवेश । रंग साँवला है और दाढ़ी है । वह एक हाथ से ज़मीन तक झुककर सलाम करता है ।]

शक्तिपाल—(खड़े हो सलाम का उत्तर देते हुए) आइए ज़मींदार साहब, और ज़मींदार साहब ही क्यों, फ़ैक्टरी ओनर साहब भी, आइए, तशरीफ़ लाइए ।

[दोनों बैठते हैं ।]

शक्तिपाल—कहिए साहब मिज़ाज तो अच्छा है ? (सिगरेटकेस आगे करता है ।)

ज़मींदार—हुज़ूर की मेहरबानी है । (सिगरेट लेकर जलाता है ।)

शक्तिपाल—आज मैंने आपको इसलिए तकलीफ़ दी है कि चुनाव फिर नज़दीक आ रहा है ।

ज़मींदार—मैं तो हर तरह से सरकार की ख़िदमत को तैयार हूँ, लेकिन........

शक्तिपाल—लेकिन क्या जनाब ?

ज़मींदार—जब हुज़ूर ने मुझे अपना समझ तलब फ़रमाया है तो मेरा भी फ़र्ज़ है कि मैं सच-सच बात सरकार की ख़िदमत में अर्ज़ कर दूँ ।

शक्तिपाल—बेशक ।

ज़मींदार—गुज़ारिश यह है कि ग़रीबपरवर की पार्टी के एक मेम्बर ने काश्तकारों के हुक़ूक़ों के मुताल्लिक़ एक बिल कौंसिल में पेश किया था न और एक ने फ़ैक्टरी में काम करनेवाले मज़दूरों के दस घंटे से आठ घंटे कर देने की बाबत ।

शक्तिपाल—हाँ, ये तो बड़े अच्छे बिल थे, अफ़सोस है कि पास न हो सके ।

ज़मींदार—पर हुज़ूर, इन बिलों के सबब सभी ज़मींदार और फ़ैक्टरीवाले सरकार की पार्टी के ख़िलाफ़ हो गये हैं ; क्या कहूँ ।

शक्तिपाल—लेकिन ज़मींदार साहब, दरअसल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बिल ज़मींदारों और फ़ैक्टरी ओनर्स के ख़िलाफ़ नहीं थे। इस वक़्त तो आप जानते हैं, ज़मींदारों और काश्तकारों, फ़ैक्टरी ओनर्स और मज़दूरों, सभी को तकलीफ़ है। जब ज़मीनों पर किसानों के हक़ बढ़ेंगे तो वे उनकी और तरक़्क़ी करेंगे, इससे ज़मींदारों की जायदाद की क़ीमत बढ़ेगी। फ़ैक्टरी के मज़दूरों के घंटे कम हो जाने से उनकी तन्दुरुस्ती सुधरेगी, वे ज़्यादा काम कर सकेंगे।

ज़मींदार—यह तो जनाब का फ़रमाना बजा है, लेकिन ग़रीबपरवर, अभी लोग इतना समझते कहाँ हैं? उन लोगों का तो अब यह पक्का यक़ीन हो गया है कि सोशलिज़्म से उनकी जायदादें ज़ब्त कर ली जायँगी।

शक्तिपाल—यह तो सोशलिज़्म का आख़िरी स्टेज है और उस वक़्त तो दुनियाभर में किसी के पास भी जायदाद न रह जायगी, तब यहीं के लोगों को घबराने की क्या ज़रूरत है? फिर वह वक़्त तो ऐसे आराम का होगा, जिसका बयान तक नहीं किया जा सकता। इस वक़्त की सब तरह की तकलीफ़ें उस वक़्त रफ़ा हो जायँगी। अमीरी और ग़रीबी का कोई डिस्टिंक्शन ही न रह जायगा। ग़रीबों के सबब से आज अमीरों को भी तो तकलीफ़ है, पर वह ग़रीबों के सबब से है और उसका इलाज दुनिया में ग़रीबी नहीं रखना है, इसे वे समझते ही नहीं।

ज़मींदार—मैं तो अगर सरकार खड़े हुए तो जी-जान से सरकार की मदद करूँगा, लेकिन गुज़ारिश यह है कि........

[चपरासी का एक रकाबी में कार्ड लिये हुए प्रवेश। सलाम कर रकाबी आगे करता है]

शक्तिपाल—(चश्मा निकाल कार्ड पढ़ते हुए) ओ! ट्रेड यूनियन के सेक्रेटरी साहब। (चपरासी से, चश्मा लगाते हुए) उन्हें बहुत अच्छी तरह बैठाओ। मैं अभी मिलता हूँ।

[चपरासी का सलाम कर प्रस्थान।]

ज़मींदार—तो मुझे अब इजाज़त हो सरकार।

शक्तिपाल—(उठते हुए) बहुत अच्छा। मैं आपका अज़हद शुक्रगुज़ार हूँ। ज़मींदारों और फ़ैक्टरी ओनर्स के वोट आपके ज़िम्मे हैं।

ज़मींदार—(उठते हुए) मुझसे जहाँ तक हो सकेगा, मैं हुज़ूर की ख़िदमत करने में कोई बात उठा न रक्खूँगा ग़रीबपरवर। [ज़मीन तक झुककर एक हाथ से सलाम कर प्रस्थान।]

शक्तिपाल—(बैठते हुए) चपरासी! चपरासी!

[चपरासी का प्रवेश। वह सलाम करता है।]

शक्तिपाल—सेक्रेटरी साहब को भेज दो। (चपरासी सलाम कर जाने लगता है) देखो, (वह ठहर जाता है।) बहुत ख़ातिर से भेजना।

चपरासी—बहुत ख़ूब सरकार। (सलाम कर जाता है।)

[खादी के कपड़ों में एक ऊँचे पूरे व्यक्ति का प्रवेश।]

आगन्तुक—गुड मार्निंग कामरेड शक्तिपाल!

शक्तिपाल—(उठते हुए) गुड मार्निंग, गुड मार्निंग मिस्टर अगरवाला, टेक योर सीट प्लीज़।

[दोनों बैठ जाते हैं।]

अगरवाला—वेल सर, इलेक्शन इज़ अगेन कमिंग।

शक्तिपाल—इसी लिए तो भाई तुमको बुलाया है।

[सिगरेटकेस आगे करता है।]

अगरवाला—(मुँह बिचकाकर) पर भाई, इस समय तो तुम्हारी पार्टी को हमारे ट्रेड यूनियन के बहुत कम वोट मिलेंगे। (सिगरेट लेकर जलाता है।)

शक्तिपाल—सोशलिस्ट को ट्रेड यूनियन वोट नहीं देंगे?

अगरवाला—बात यह है कि तुम्हारी पार्टी के एक मेम्बर ने फ़ैक्टरी में काम करनेवाले लड़कों की अवस्था बढ़ाने के सम्बन्ध में यत्न किया था?

शक्तिपाल—ज़रूर। इसमें बुरा क्या किया? बग़ैर इसके लड़कों को तालीम किस तरह दी जा सकती है?

अगरवाला—ठीक है, परन्तु मज़दूरों को उनके लड़कों के काम से अभी जो थोड़े-बहुत पैसे मिल जाते हैं, वे तो उन्हें देखते हैं। वे अभी इतने फार साइटेड कहाँ हुए हैं?

शक्तिपाल—तुम लोग उनके लीडर हो, तुम्हें उनको समझाना चाहिए।

अगरवाला—भाई, यदि हम लोग अपना पोज़ीशन रखना चाहें तो हमें उन्हीं की इच्छाओं के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलना पड़ता है। यथार्थ में हम लोग लीडर नहीं, लेड हैं। फिर एक बात और है।

शक्तिपाल—वह क्या ?

अगरवाला—(शक्तिपाल के निकट सरककर धीरे-धीरे) चुनाव के समय उन्हें कुछ खाने-पीने को देना पड़ता है।

शक्तिपाल—(त्योरी बदलकर) यह आप किससे बात कर रहे हैं जनाब ?

अगरवाला—(बेपरवाही और घृणा से हँसकर) लीजिए, आप तो तोते के समान आँख ही बदलने लगे। अजी साहब, मैं कोई ज़मींदार या सेठ-साहूकार नहीं हूँ कि आपके आँखें दिखाने से डर जाऊँ। जब आपने बुलाया, तब आपके बँगले पर आया हूँ। और आप बुलाकर मुझे अपने रूफ के ही अन्दर इनसल्ट कर रहे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि मैं किससे बात कर रहा हूँ। मैं उन्हीं से बात कर रहा हूँ हज़रत, जिनके चुनाव में गत वर्ष श्रीनिवास साहब ने दो हज़ार रुपया हमारे यूनियन को दिया था।

शक्तिपाल—उन्होंने दिया होगा, मैंने नहीं दिया।

अगरवाला—वे आपके इलेक्शन एजेंट नहीं थे ?

शक्तिपाल—ख़ैर, जाने दीजिए उस बात को। अब श्रीनिवास से चुनाव से कोई मतलब नहीं है। इस तरह रिश्वत बाँटना और वोटरों को करप्ट करना मेरे सोशलिस्ट प्रिंसिपल्स के ख़िलाफ़ है। मैं यह सब नहीं कर सकता।

अगरवाला—तो फिर आपको ट्रेड यूनियन से (सिर हिलाकर) एक वोट भी नहीं मिल सकता। (खड़े होते हुए) गुड बाई (जाता है।)

[शक्तिपाल उठकर इधर-उधर टहलता है। चपरासी का प्रवेश।]

चपरासी—(सलाम कर) दीनानाथजी तशरीफ़ लाये हैं सरकार।

शक्तिपाल—अच्छा, मैं ख़ुद चलता हूँ।

[शक्तिपाल का प्रस्थान। दीनानाथ और शक्तिपाल का पुनः प्रवेश। दोनों सोफ़ा पर बैठ जाते हैं।]

शक्तिपाल—(मुस्कराते हुए) आपको तो सिगरेट ऑफर करना ही फ़िज़ूल है। और किस चीज़ से ख़ातिर करूँ, यह भी समझ में नहीं आता।

दीनानाथ—मित्रों से भेंट ही आतिथ्यसत्कार के लिए यथेष्ट है। आपने मुझे आज स्मरण किया, यही मेरा आतिथ्यसत्कार है शक्तिपालजी।

शक्तिपाल—वाजिब तो यह था कि मैं ख़ुद ही आपके पास हाज़िर होता, मगर वहाँ तो हमेशा इतनी भीड़भाड़ रहती है कि कोई बात ही होना मुश्किल है।

दीनानाथ—वह तो एक ही बात है शक्तिपालजी, मैं सेवा में उपस्थित हो गया। आज्ञा दीजिए, यदि मैं आपकी कोई भी सेवा कर सका तो अपने को सौभाग्यशाली समझूँगा।

शक्तिपाल—इसकी तो मुझे हमेशा ही उम्मीद रहती है। जिनसे आपका कोई ताल्लुक़ नहीं, उनका काम भी जब आप अपना समझकर करते हैं, तब मैं तो आपका इतना पुराना दोस्त ठहरा।

दीनानाथ—मैं तो अपने को हरएक का सेवक ही समझता हूँ शक्तिपालजी।

शक्तिपाल—आप जानते ही हैं कि कौंसिल का चुनाव नज़दीक आ रहा है। मैं फिर खड़ा हो रहा हूँ। आपकी ख़िदमात के सबब आज इस ज़िले क्या, तमाम सूबे पर आपका जो असर है, उसे मुल्कभर जानता है। मैं आपकी मदद चाहता हूँ।

दीनानाथ—आप स्वयं विचार सकते हैं कि यदि मैं आपकी कोई भी सेवा कर सकूँ तो मुझे कितना हर्ष हो, परन्तु जो आज्ञा आप मुझे दे रहे हैं, उस सम्बन्ध में तो कुछ भी करना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

शक्तिपाल—क्यों, क्या मैंने अपना काम ईमानदारी से नहीं किया है ?

दीनानाथ—पूरी ईमानदारी से शक्तिपालजी, मैं जानता हूँ, आज सारे देश में आपसे अधिक सच्चा और ईमानदार कोई मिनिस्टर नहीं है।

शक्तिपाल—तब क्या आप मुझे मिनिस्टरी और कौंसिल के लायक़ नहीं समझते ?

दीनानाथ—आपकी लायक़ी पर मुझे न कभी सन्देह था और न आज है।

शक्तिपाल—फिर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनानाथ—ये कौंसिलें और कौंसिलों के ये पद आपके योग्य नहीं हैं।

शक्तिपाल—(सिगरेट जलाकर मुस्कराते हुए) यह तो वही पुरानी बहस निकल आई दीनानाथजी, मैं फिर कहता हूँ कि मौजूदा हालत में भी इन कौंसिलों के सिवा मुल्क की ख़िदमत करने का और कोई रास्ता नहीं है।

दीनानाथ—यही तो मतभेद का प्रश्न है। आरम्भ ही से आपका और मेरा इस सम्बन्ध में मतभेद रहा है, पर अब तो आपने इसका अनुभव भी कर लिया; क्षमा कीजिएगा, यदि मैं पूछूँ कि इन तीन वर्षों में आपके इस कार्य का क्या फल निकला?

शक्तिपाल—उसका सबब दूसरा है दीनानाथजी, मेरी पार्टी से ज़्यादातर ऐसे लोग गये थे, जो सच्चे दिल से सोशलिस्ट ख़याालातों के नहीं थे। इस दफ़ा मैं इस तरह के लोगों को खड़ा ही न करूँगा।

दीनानाथ—तो जिन्हें आप खड़ा करेंगे, वे सफल ही न होंगे।

शक्तिपाल—क्यों?

दीनानाथ—इसलिए कि आज इस देश की जनता पर ऐसे ही लोगों का प्रभाव है, जो साम्यवादी नहीं हैं। ज़मींदार, सेठ-साहूकार इन्हीं सबका लोगों पर प्रभाव है और साम्यवाद इन सबके स्वार्थों के विरुद्ध है।

शक्तिपाल—लेकिन क्या आप यह नहीं मानते कि गुज़िश्ता तीन सालों में इस तरह के लोगों का असर घटा है?

दीनानाथ—थोड़ा-बहुत चाहे घटा हो, पर इतना नहीं घटा कि आप सच्चे साम्यवादियों को चुनाव में सफल करा सकें।

शक्तिपाल—इसी तरह धीरे-धीरे कौंसिल में कोशिशें होने से इनका असर कम होता जायगा।

दीनानाथ—तो क्या आप यह समझते हैं कि गत तीन वर्षों के कौंसिल के कार्य से इस प्रकार के लोगों का प्रभाव घटा है?

शक्तिपाल—बेशक। मेरी पार्टी के कुछ सच्चे सोशलिस्ट मेम्बरों ने जो सोशलिज़्म को आगे बढ़ाने की कौंसिल में कोशिशें कीं और उनकी कोशिशों का जो प्रोपेगैंडा किया गया, ख़ासकर उसी का यह नतीजा है। हाँ, आपके कामों से भी सोशलिज़्म के ख़यालातों को ज़रूर मदद मिली है।

दीनानाथ—इसमें भी मेरा आपसे मतभेद है।

शक्तिपाल—कैसा?

दीनानाथ—कौंसिल में जो कुछ भी हुआ है, उसका कोई भी प्रभाव जनता पर नहीं पड़ा।

शक्तिपाल—(आश्चर्य से) अच्छा!

दीनानाथ—बात यह है कि कौंसिलों में इस सम्बन्ध में जो कुछ हुआ है, उसे छपवाकर आपके दल ने बटवाया भर है, पर यहाँ पर तो सौ में से नब्बे मनुष्य अशिक्षित हैं। जो शिक्षित हैं, वे आपके सिद्धांतों के विरुद्ध हैं, अतः उन्होंने, जो कुछ आपके दल के कुछ सदस्यों ने किया, उसके मनमाने अर्थ लगाकर लोगों को समझाया।

शक्तिपाल—मुझे तो कैबिनेट में रहने के सबब इतना वक़्त नहीं मिलता कि मैं दौड़-धूपकर इन सब बातों को लोगों को समझा सकूँ, इसलिए जो कुछ वहाँ होता है, उसे छपवाकर बटवाने के सिवा और मैं क्या कर सकता था?

दीनानाथ—मैं इसे मानता हूँ और चूँकि आपको जनता के संपर्क में आने का अवसर नहीं मिलता, इसी लिए आप भूल में हैं कि कौंसिल-कार्य के कारण ही जनता साम्यवाद के पक्ष में हो रही है।

शक्तिपाल—लेकिन दीनानाथजी, आपका तो आम लोगों से बहुत ज़्यादा ताल्लुक़ है। कम-से-कम मेरे निस्बत इस तरह की ग़लतफ़हमियों को आपको तो दूर करना चाहिए।

दीनानाथ—इसके लिए मैं तैयार हूँ और मैं सदा यह करता भी हूँ।

शक्तिपाल—(प्रसन्न होकर) तो फिर मैं अब तक के तमाम काम की तफ़सील और अपना इलेक्शन मैनिफ़ैस्टो वग़ैरह आपकी ख़िदमत में भेज दूँगा। आप इसके मुताल्लिक़ लोगों को सही-सही बात कह दें। इतना ही काफ़ी होगा।

दीनानाथ—यह मैं बराबर कर दूँगा, परन्तु इसी के साथ एक बात मुझे और कहनी पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिपाल——वह क्या ?

दीनानाथ——यह कि आपके इतने ईमानदार और कार्यदक्ष होते हुए भी इन कौंसिलों से कोई लाभ न होगा, क्योंकि यदि साम्यवादी दल के लोग कौंसिल में पहुँच भी गये, तो कौंसिलों को कोई अधिकार नहीं, वे कुछ नहीं कर सकते।

शक्तिपाल——यह तो फिर डिफ़रेंस आफ़ ओपिनियन का सवाल आ गया।

दीनानाथ——यह तो है ही शक्तिपालजी, फिर एक बात और है।

शक्तिपाल——वह क्या ?

दीनानाथ——आपको तीन हज़ार रुपये वेतन मिलता था और आप सबका सब अपने रहन-सहन में ख़र्च कर देते थे, इससे लोगों को बड़ा असंतोष है।

शक्तिपाल——क्यों ? उस पर मेरा हक़ था। मैं अपनी तनख़्वाह का चाहे कुछ भी करूँ। क्या आप कह सकते हैं कि मिनिस्टर रहते हुए तनख़्वाह के सिवा किसी तरह का भी ज़ाती फ़ायदा उठाने की मैंने कोशिश की ?

दीनानाथ——फूटी कौड़ी भी आपने इधर-उधर की, यह यदि कोई भी कहे तो मैं कह सकता हूँ कि वह झूठा है। सभा में भाषण द्वारा या पत्रों में लेख द्वारा या जिस प्रकार आप कहें आपका समर्थन करूँगा; पर शक्तिपालजी, आज जब देश के अधिकांश लोगों को यथेष्ट भोजन और वस्त्र नहीं मिल रहे हैं, तब हम में से किसी को यह अधिकार नहीं कि हम जनता की इतनी बड़ी रक़म अपने पर ख़र्च करें और आपके सिद्धांतों के अनुसार भी तो यह एक प्रकार से पूँजी-वाद का समर्थन है।

शक्तिपाल——सोशलिज़्म के क़ायम होने के बाद अगर मैं ऐसा करूँ तो। जब तक सोशलिज़्म क़ायम नहीं हो जाता, तब तक ज़ाती क़ुर्बानी फ़िज़ूल है, यह मैंने आपसे कई दफ़ा कहा है। फिर दीनानाथजी, अगर मेरी जगह कोई दूसरा होता, तब भी तो उसे यही तनख़्वाह मिलती न ? मेरी पार्टी न भी गई तो कौंसिल की सीटें तो ख़ाली न रहेंगी, कोई-न-कोई तो जावेगा ही ?

दीनानाथ——इसी लिए मैं आपका विरोध नहीं करता। सन् १९२३ के चुनाव में भी मैं तटस्थ था और सन् १९२६ के इस चुनाव में भी उसी प्रकार तटस्थ रहूँगा; पर जब मुझे इस कार्यक्रम पर विश्वास नहीं है, तब आपका समर्थन किस प्रकार करूँ, यह आप ही बता दीजिए ?

शक्तिपाल——(लंबी साँस लेकर) आपको अपने उसूलों के ख़िलाफ़ चलाकर मैं आपसे हरगिज़ किसी तरह की मदद नहीं लेना चाहता दीनानाथजी, मैं इतना ख़ुदग़र्ज़ नहीं हूँ।

दीनानाथ——यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

शक्तिपाल——आज दीनानाथजी, मैंने कई हज़रात को अपनी मदद के लिए बुलाया था; पर सबसे मुझे बड़ी नाउम्मीदी हुई, फिर भी मैं नाउम्मीद नहीं हूँ। ईमानदारी से किया हुआ काम, कामयाबी न होने पर भी, दुनिया में फ़िज़ूल नहीं जा सकता, इसका मुझे यक़ीन है। चुनाव का तमाम काम अब मैं अकेला ही करूँगा और मुझे यक़ीन है कि मैं ज़रूर कामयाब होऊँगा।

दीनानाथ——आपके साहस को धन्य है। शक्तिपालजी, ईमानदारी से किया हुआ कार्य असफल होने पर भी श्रेष्ठ ही होता है, यह मानता हूँ, पर यदि उसी प्रकार का असफल कार्य, उसी असफलता के मार्ग से किया जाय तो उसमें निरर्थक ही समय जाता है।

शक्तिपाल——हालाँकि आपको थोड़ी बहुत कामयाबी हासिल हुई है, पर मुआफ़ कीजिए मेरी राय आपके मुत्तफ़िक़ नहीं। सियासी अख़्त्यारात के ज़रिए जो कुछ आपने इतने सालों में किया है, वह एक दिन में किया जा सकता है।

दीनानाथ——एक दिन में लोकमत तैयार नहीं किया जा सकता, पर राजनीतिक अधिकारों से बहुत कुछ हो सकता है, इसे मैं अस्वीकृत नहीं करता। सारा प्रश्न यह है कि जब तक वे अधिकार प्राप्त नहीं होते, तब तक क्या किया जाय ? (कुछ ठहरकर) अच्छा, तो अब आज्ञा देंगे ?

शक्तिपाल——आपसे जाने के लिए क्योंकर कहूँ, हालाँकि आपकी राय से मैं मुत्तफ़िक़ नहीं, पर न जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों आपके पास बैठने और आपसे बातें करने में एक अजीब क़िस्म की राहत मिलती है।

दीनानाथ—यह आपकी कृपा है शक्तिपालजी, जब आज्ञा होगी तभी उपस्थित हो जाऊँगा।

[दीनानाथ उठने लगता है। शक्तिपाल भी खड़ा होता है। परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—सेवाकुटी का बाहरी मैदान

समय—संध्या

[कमला और सरला का प्रवेश।]

सरला—बहन, मैं तो जब-जब यहाँ आती हूँ, तब-तब उसी मुक़दमे का स्मरण हो आता है। इतनी लज्जा आती है कि क्या कहूँ, पर उस पाप का प्रायश्चित्त यहाँ आने और इस सेवापथ के कार्य में योग देने के अतिरिक्त और क्या है?

कमला—उस बात को भूल जाओ सरला, वर्षों बीत गये। और फिर मैं तो समझती हूँ कि वह मुक़दमा चलाकर श्रीनिवासजी ने हमारा उपकार ही किया था; इस जनता का सच्चा स्वरूप दिखा दिया था। उनके हृदय पर इसका प्रभाव भी पड़ा था, पर तुम तो अब उन्हें अच्छी तरह से जानने लगी हो।

सरला—हाँ बहन, मैं तो उन्हें मनुष्य न मानकर देवता मानती हूँ। ज्ञान के वे केंद्र और कर्म के वे क्षेत्र हैं। ज्ञान का सच्चा उपार्जन और कर्म का ठीक दिशा में अनुष्ठान ही मनुष्य को देवता बना देता है, क्योंकि ज्ञान का लक्ष्य सत्य और कर्म का नीति है। दोनों का अन्तिम परिणाम परमार्थ की प्राप्ति है, जो सेवा से ही होती है। वे इसी में संलग्न हैं। देखा नहीं, इसी रहस्य को समझने और अपने पथ पर अटल रहने के कारण जनता की वह अकीर्ति ग्रहण के सदृश किस प्रकार निकल गई और वे सूर्य के समान फिर से किस प्रकार चमकने लगे?

कमला—हाँ, तुम कदाचित् ठीक ही कहती होगी। पर बात यह है कि "जाके पैर न फटी बिमाई। सो का जानै पीर पराई।"

सरला—लो, तुम तो फिर उसी प्रकार बातें करने लगीं। न-जाने कितने जीवों को उनके चरित्र और उपदेश से शान्ति मिल रही है, पर तुम्हें अभी भी नहीं।

कमला—मेरा दुर्भाग्य हो सकता है।

सरला—मुझ ही को देखो कमला, मेरी जो सारी सम्पत्ति नष्ट हो रही है, वे जो इस प्रकार मार्गरेट को लिये हुए सारे देश में चक्कर लगा रहे हैं, इन सब दुःखों में मुझे उन्हीं के चरित्र को देख, उन्हीं के उपदेशों को सुन, शान्ति मिलती है। मैंने तो यहाँ दंड के रूप में, एक पाप के प्रायश्चित्त के निमित्त, आना आरंभ किया था, पर वह दण्ड सुख में परिणत हो रहा है।

कमला—मुझे तो तुम्हारा सुख देखकर आश्चर्य ही होता है।

सरला—मुझको ही नहीं, पर न-जाने कितने और कितने प्रकार के दुखियों को यहाँ शांति पहुँच रही है। तुम्हारे पति केवल निर्धन दुखियों की ही सेवा नहीं कर रहे हैं, धनवान् दुखियों की भी सेवा कर रहे हैं, चरित्रहीन दुखियों की भी सेवा कर रहे हैं। इसी कारण तो उनके पास केवल किसान और मज़दूरों का ही नहीं, वरन् बड़े-बड़े ज़मींदारों और सेठ-साहूकारों का भी जमघट लगा रहता है। तुम तो सदा यही समझती हो कि निर्धन ही दुखी हैं, पर मैं फिर तुमसे कहती हूँ कि धनवानों के दुःख निर्धनों के दुःखों से कहीं अधिक होते हैं।

कमला—तुम्हारी यह बात कभी पूर्ण रीति से मेरी समझ में नहीं आई।

सरला—क्योंकि तुम्हें उस जीवन का अनुभव नहीं है। धनवानों के घरों के षड्यंत्र और पापों का तुम्हें कहाँ अनुभव? कहीं बाप दुखी है तो कहीं बेटा, कहीं पति दुखी है तो कहीं पत्नी, कहीं भाई दुखी है तो कहीं बहन और कहीं सारा घर। जब किसी घर की आय आवश्यकता की पूर्ति के अनुसार ही रहती है, तब सब लोग सच्चरित्र रह सन्तोष के साथ उसे बाँटकर सुख से खा लेते हैं, पर जब आवश्यकता से अधिक संचय होता है, तब उस संचय से न-जाने कितने पापों की उत्पत्ति होती है और उसके बँटवारे के लिए षड्यंत्रों और झगड़ों की सृष्टि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमला—कहीं-कहीं होता होगा ?

सरला—कहीं-कहीं नहीं कमला, सर्वत्र यही दशा है। फिर जब कभी कोई धनवान् घर निर्धन होने लगता है, और ध्यान रहे यह सदा होता है, तब उस घर के धनवानों के दुःखों का वर्णन नहीं हो सकता।

कमला—हाँ, तब दुःख अवश्य होता होगा।

सरला—ऐसा-वैसा दुःख नहीं होता, महान् दुःख होता है, महान्। किसी को अपने भोगे हुए विलासों का स्मरण और भावी कष्टों की कल्पना कँपा देती है। किसी को अपनी मान-मर्यादा का ध्यान आकर, वह अपना मुख समाज को किस प्रकार दिखा सकेगा, यह विचार व्यथित कर देता है। कोई यह सोचता है कि उसने या उसके पूर्वजों ने यह सम्पत्ति कितनों का पेट काटकर उपार्जित की थी। उस समय उसे अपनी संगमरमर की ऊँची-ऊँची श्वेत अट्टालिकाओं की सफ़ेदी के पीछे न-जाने कितने निर्धनों का रक्त दिखाई देता है, अपने दीर्घकाय उद्यानों में लटकते हुए लाल-लाल और पीले-पीले फलों के पीछे न-जाने कितने कँगलों की छिपी और रक्त से सनी हुई रोटियाँ दिखती हैं। उस समय अपने जाते हुए धन को पुनः निर्धनों को बाँट देने के लिए उनके हृदय में जैसी छटपटाहट होती है और यह करने में अपने को असमर्थ पा जैसा महान् क्लेश होता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता बहन।

कमला—पर जब धन बढ़ता है, तब वैसा ही आनन्द भी तो होता होगा ?

सरला—वह भी नहीं कमला, बढ़ने और घटने दोनों में ही दुःख-ही-दुःख है। जिसके घर में धन बढ़ता जाता है, उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है, सन्तोष उसे कभी होता ही नहीं और धीरे-धीरे उसकी आत्मा पर इस बढ़ते हुए धन का इतना बोझ पड़ता है कि उसके कारण ही वह तिलमिला उठता है। कमला, इस धन के उपार्जन में दुःख, इसकी रक्षा में दुःख, इसके व्यय में दुःख, इसके नाश में दुःख। मुझे तो धन और दुःख, ये दोनों पर्यायवाची शब्द जान पड़ते हैं। धन-वानों के कष्टों की कल्पना करने का भी यत्न करो।

कमला—अब ये बातें कुछ-कुछ तो मेरी समझ में भी आने लगी हैं, पर बहुत ही कम।

सरला—कुछ वर्ष पूर्व एक दिन जब मेरे गृह में तुमने अपने दुःखों का वर्णन किया था और मैंने उनकी प्रशंसा की थी और तुम्हारे नेत्रों में आँसू आ गये थे, उस समय मुझे स्वयं अपने पर बड़ी ग्लानि हो आई थी, मैंने तुमसे क्षमा माँगी थी। पर आज तो मेरे दुःख इतने बढ़ गये हैं, साथ ही दीनानाथजी से मुझे इतनी शांति मिली है कि मैं अपने सम्पूर्ण बल के साथ कह सकती हूँ कि तुमसे अधिक भाग्यवान् और कोई स्त्री नहीं हो सकती, जिसे ऐसा पति प्राप्त हुआ हो। (दौड़ते हुए ६-७ वर्ष के एक बालक का प्रवेश। बालक बड़ा सुन्दर है, खादी का जाँघिया और कुरता पहने है। सिर पर गांधी टोपी है।)

बालक—(कमला से) मा, चलो, शीघ्र चलो, मेरे बाल-समाज की प्रार्थना तो सुन लो।

सरला—अच्छा तुमने बाल-समाज स्थापित किया है ?

कमला—क्या पूछती हो, यह तो उनसे भी बड़ा महात्मा होगा; पूत के लक्षण पालने में ही दिख जाते हैं।

सरला—और बहन, अपने महिला-समाज के भी तो एक दिन दर्शन कराओ। मैंने आज ही सुना कि तुमने भी महिला-समाज स्थापित किया है। इन दिनों कुछ समय से नहीं आ सकी थी, इसी बीच यहाँ दो नवीन संस्थाओं का जन्म हो गया।

कमला—(सिर नीचाकर) महिला-समाज तो अभी बहुत ही नया है बहन, उसे क्या देखोगी ?

सरला—नहीं नहीं, देखना क्या, मैं उसकी सदस्या बनूँगी और तुम्हारी उस कार्य में सहायता करूँगी। (मुस्कराकर) अन्त में तुम्हें भी महिला-समाज स्थापित करना ही पड़ा, क्यों ?

कमला—नरक का कीड़ा नरक में रहते-रहते उसमें ही सुख मानने लगता है। वहीं के जीवों के समान आचरण भी करने लगता है।

सरला—फिर वही बात! फिर वही बात! आह! क्या कहती हो बहन, क्या कहती हो ? तुम्हारा जीवन नरक का जीवन! नहीं-नहीं, यह स्वर्ग का जीवन है, और जिस सम्पत्तिशाली जीवन को तुम सुख का जीवन समझती हो, वह नरक का जीवन है। भगवान् की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसी माया है कि जिसे तुम नरक का जीवन और मैं स्वर्ग का जीवन समझती हूँ वह तुम्हें दिया है और जिसे तुम स्वर्ग का जीवन और मैं नरक का जीवन समझती हूँ वह मुझे मिला है।

बालक—मा, तुम तो देर कर रही हो, हमारे समाज में ठीक समय पर प्रार्थना आरम्भ हो जाती है।

कमला—चलो, चलो, तुम्हारे समाज में चलती हूँ, बेटा, सच तो यह है कि तुम्हारे पिता के वर्षों के कार्य का भी मेरे मन पर प्रभाव न पड़ा, पर तुम्हारे दिनों के कार्य का पड़ रहा है।

सरला—देख लेना, यह बालक तुम्हारे इस नरक को स्वर्ग में परिणत करके रहेगा। (बालक से) क्यों मुझे अपने बाल-समाज में न ले चलोगे ?

बालक—हाँ-हाँ, चलिए, आप भी चलिए।

[तीनों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—टाउन हॉल

समय—संध्या

[तीन ओर दीवारें हैं, जो सफ़ेद कलई से पुती हैं। तीनों ओर की दीवारों में अनेक दरवाज़े और खिड़कियाँ हैं, जिनके किवाड़ों में काँच लगे हैं। सभी दरवाज़े और खिड़कियाँ खुली हैं, जिनसे बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखाई देता है, जो अस्त होते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों से आलोकित है, हॉल की छत से बिजली की बत्तियाँ और पंखे झूल रहे हैं। फ़र्श पर बिछावन है, उस पर सभी प्रकार के लोग बैठे हैं। सामने एक तख़्त है। उस पर ग़लीचा बिछा है। ग़लीचे पर एक कुर्सी और एक टेबिल रक्खी है। टेबिल पर टेबिलक्लाथ है और उस पर फूलदान में फूल सजे हैं।]

ट्रेड यूनियन का मंत्री—(खड़े होकर) महाशयो ! हज़रात ! लेडीज़ एण्ड जेंटिलमेन ! मैं प्रस्ताव करता हूँ, तजवीज़ पेश करता हूँ, रिज़ोल्यूशन मूव करता हूँ कि आज की सभा के सभापति, सदर, प्रेसीडेंट हमारे यहाँ के पारसी सेठ साहब मिस्टर वर्किंग बाक्सवाला बनाये जावें। (बैठ जाता है।)

एक आदमी—(खड़े होकर) मैं इस तजवीज़ की ताईद करता हूँ।

[एक मोटा-सा वृद्ध पारसी, जो सफ़ेद ट्विल के पारसी कालर का कोट और उसी कपड़े का पतलून पहने तथा सिर पर ऊँची काली पारसी पगड़ी लगाये है, उठकर कुर्सी पर बैठता है। ताली बजती है।]

वर्किंग बाक्सवाला—(खड़े होकर) आपकूँ मालुम हे कि वोटरों का ये मिटिंग इस बात कूँ ते कर देने कूँ बुलाया गया है कि इलेक्शन में किसकूँ वोट देना। अब इस मामले कूँ आपकूँ ट्रेड यूनियन का सेक्रेटरी साब मिस्टर अगरवाला समजायगा। (बैठ जाता है)

अगरवाला—(खड़े होकर, इधर-उधर घूमते, हाथ हिलाते और पैर पटकते हुए।) सभापति महोदय ! जनाबे सदर ! मिस्टर प्रेसीडेंट ! महाशयो ! हज़रात ! लेडीज़ एण्ड जेंटिलमेन ! आज जिस बात का आपको निर्णय करना है, जिस बात का तस्फ़िया करने के लिए आप यहाँ तशरीफ़ लाये हैं, जिस सब्जेक्ट पर आपको डिसीशन देना है, वह बड़ा आवश्यक प्रश्न है, बहुत बड़ा अहम मसला है, आपके लाइफ़ एण्ड डेथ का क्वेश्चन है।

कुछ व्यक्ति—हिअर हिअर, हिअर हिअर।

अगरवाला—जिसे आप तीन वर्ष के लिए, तीन सालों के लिए, फ़ार थ्री लांग इयर्स, माइंड दैट, धारासभा में निर्वाचित कर भेजते हैं, क़ानून बनाने की मजलिस में चुनते हैं, कौंसिल के लिए इलैक्ट करते हैं, उसे फिर आप तीन वर्ष के पूर्व, तीन सालों के पहले, बिफ़ोर थ्री इयर्स, उस पद, उस ओहदे, उस पोजीशन से हटा नहीं सकते, अलग नहीं कर सकते, रिमूव करना इम्पासिबिल हो जाता है।

कुछ व्यक्ति—ज़रूर, ज़रूर।

अगरवाला—वह लगातार, मुतवातिर, कंटीन्युअसली, तीन वर्षों तक, तीन सालों तक, फ़ार थ्री लांग इयर्स, माइंट दैट, आपका प्रतिनिधि, आपका नुमाइंदा, आपका रिप्रेज़ेंटेटिव रहता है।

कुछ व्यक्ति—बेशक, बेशक।

अगरवाला—गत चुनाव में आपने जिस साम्यवादी दल को निर्वाचित किया था, जिस....देखिए, क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं, ख़ैर, सब लोगों को एक-सा कर देनेवाले जिस फ़िरक़े को चुना था, जिस सोशलिस्ट पार्टी को इलैक्ट किया था, उसने आपके हितों की कहाँ तक रक्षा की है, आपके हुक़ूक़ों की कहाँ तक हिफ़ाज़त की है, आपके इंटरेस्ट्स को कहाँ तक सेफ़गार्ड किया है, इस पर आपको ध्यान देना चाहिए, ग़ौर फ़रमाना चाहिए, कंसीडर करना चाहिए।

कुछ व्यक्ति—ज़रूर, ज़रूर।

अगरवाला—यह दल, यह फ़िरक़ा, यह पार्टी, केवल कहने के लिए, सिर्फ़ नाम के लिए, ओनली इन नेम, साम्यवादी है, सोशलिस्ट है। यथार्थ में, दरहक़ीक़त, इनरिअल्टी, इसके सब संदस्य, नुमाइन्दे, मेम्बर्स, स्वार्थी हैं, ख़ुदग़रज़ हैं, सैलफ़िश हैं।

कुछ व्यक्ति—हिअर हिअर, हिअर हिअर।

अगरवाला—इतना ही नहीं महाशयो! इतना ही नहीं बिरादरान! इतना ही नहीं लेडीज़ एंड जेंटिलमेन! सब धूर्त और पाखंडी हैं, सब धोखेबाज़ और दग़ाबाज़ हैं,—सब ट्रेटर्स और स्काउंड्रल्स हैं।

कुछ लोग—हिअर हिअर, हिअर हिअर।

अगरवाला—इन्होंने गत तीन वर्षों तक कितना लाभ उठाया, गुज़िश्ता तीन सालों में कितनी ख़ुदग़र्ज़ी की, हाउ सैलफ़िश दे हैड बीन फ़ार दि लास्ट थ्री इयर्स, इस पर थोड़ा-सा विचार कीजिए, तह में जाकर ज़रा ग़ौर फ़रमाइए, थिंक ओवर दी होल प्रॉब्लेम्।

कुछ लोग—बेशक, बेशक।

अगरवाला—देखिए सज्जनो! हज़रात! लेडीज़ एंड जेंटिलमेन! इनके लीडर मिस्टर शक्तिपाल, जो अपने को कॉमरेड कहते हैं, सोशलिस्ट बतलाते हैं, कहते हैं सब सम्पत्तिशालियों, जायदादवालों, प्रापर्टी होल्डर्स की सम्पत्ति समाज की हो जाना चाहिए, मुल्क की हो जाना चाहिए, नेशनलाइज़ कर डालना चाहिए, सबकी आय बराबर हो जाना चाहिए, सबकी आमदनी एकसी तक़सीम हो जाना चाहिए, सबकी इनकम का इक्वल डिस्ट्रीब्यूशन हो जाना चाहिए, सबको भोजन-वस्त्र और घर, खाना-कपड़े और मकान, फ़ूड क्लोद एंड हाउसिंग एक-से ही जाना चाहिए, उनकी ही दशा देखिए, उनके ही हाल पर ग़ौर फ़रमाइए, लुक एट हिज़ ओन वे आफ़ लिविंग।

एक आदमी—अरे, तीन हज़ार रुपये महीना चुपचाप जेब में रख लेता है।

दूसरा—बड़ा अच्छा खाना खाता है, विलायत के बावर्ची का बनाया हुआ।

तीसरा—और पेरिस के बने कपड़े पहनता है।

चौथा—उम्दा-से-उम्दा बँगले में रहता है।

कुछ व्यक्ति—शेम, शेम, शेम।

अगरवाला—बिलकुल ठीक। आप लोग तो स्वयं ही सब कुछ जानते हैं, ख़ुद ही सब हालात से वाक़िफ़ हैं, यू आल हैव ए कीन इन साइट। साम्यवाद, सोशलिज़्म का राज, उसकी हुकूमत, उसका टेन यों हो सकता है?

कुछ लोग—हरगिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं।

अगरवाला—उनके शेष सब लोग भी, बाक़ी के हज़रात भी, दि अदर मेम्बर्स आलसो, ऐसे ही हैं। अधिक भाषण की आवश्यकता नहीं है, ज़्यादा लम्बी तक़रीर की ज़रूरत नहीं है, नो लांग स्पीच इज़ रिक्वायर्ड। कहिए आप इनको वोट देंगे?

ज़ोर की आवाज़ें—कभी नहीं, कभी नहीं।

अगरवाला—तो अब महाशयो! हज़रात! लेडीज़ एंड जेंटिलमेन! मैं एक प्रस्ताव आपकी सेवा में उपस्थित करता हूँ, एक तजवीज़ आपकी ख़िदमत में पेश करता हूँ, एम मूविंग ए रिज़ोल्यूशन नाउ। (जेब में से एक काग़ज़ निकालकर पढ़ता है।) "यह मतदाताओं की सभा निश्चय करती है कि श्रीयुत शक्तिपाल वर्मा का साम्यवादी दल स्वार्थियों का एक गुट है, अतः अगले निर्वाचन में उसे कोई मत न दे।" उर्दू और अँगरेज़ी में इसका यह मतलब........

ज़ोर की आवाज़ें—हम सब समझ गये, सब समझ गये।

अगरवाला—अच्छी बात है। (बैठता है, ताली बजती है।)

वर्किंग बाक्सवाला—(खड़े हो) अब इस रिज़ोल्यूशन कूँ मिस्टर विनयकुमार मजूमदार टेका आयेगा। (बैठ जाता है।)

एक बंगाली—(खड़े होकर) शॅभापॅती मॅहाशॅय और मॅहाशॅय लोगो! हॅम ईश रिज़ोल्यूशन का मॅ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से शैकिंड कॅरता हूँ। (कुछ तालियाँ बजती हैं।) हमारा शुजॅलां शुफॅलां मॅलयॅज शीतलां जोठो बंगभूमि है, ऊशका लोग हॅमारा बंगला भाई जोठो शेक्रेटरियॅट में काम कॅरता ऊन शॅब लोग शे हॅम खूब ठो मिलता हूँ। ऊन शॅब लोग की ईन ॲपकंट्री का शाला खोट्टा लोग का ईश शोशलिस्ट पार्टी और ऊशका लीडर ने खूब ठो तंग किया है।

कुछ व्यक्ति—शेम शेम।

बंगाली—ऊनका रॅविबार का बी छुट्टी नेई। रात-रात खूब ठो काम कॅरना पॅड़ता है। (हाथ हिलाकर) कोई बंगला भाई ईश पार्टी को वोट नेई दे।

(बैठ जाता है, ताली बजती है।)

वर्किंग बाक्सवाला—(खड़े होकर) अब इस रिज़ोल्यूशन कूँ सर्दार निहालसिंह टेका आयेगा। (बैठ जाता है।)

एक सिख—(हाथ में मोटा-सा डंडा ले खड़े होकर) अरे, इक भी हुश्यार ठेकेदार इस पार्टी दे नेड़े नई जायगा। पी० डबल्यू० डी० में इक दो ठेकदाराँ दी ईमार्त गिराई हो, हजाराँ दी गिरा दई।

कुछ व्यक्ति—शेम शेम।

सिख—(आँख और हाथ से इशारा करता है।) क्यूँ पंजाबी भाई! बात समज लई?

कुछ व्यक्ति—समज लई।

सिख—अगर कोई नामर्द डर दे वोट देने जावे, तो वस की मत सुणो बहादरी से इस तराँ (सोटा घुमाकर) इक-दो-तीन। सोटा दा काम बड़ा ओखा है। सत्य श्री अकाल। (बैठता है।)

जनता—बोले सो निहाल।

वर्किंग बाक्सवाला—(खड़े होकर) अब इस रिज़ोल्यूशन कूँ उरकुड़ा पंवार टेका आयेगा। (बैठता है।)

एक मराठा—(खड़े होकर अपनी बड़ी-सी लाल पगड़ी सम्हालते हुए) पोलपाट लाटणा लेकर घर में पतल्या पतल्या पोल्या लटवाता और खाता हे, चांगला-चांगला कापड़ पेनता हे, मोठ्या-मोठ्या बंगल्या में रेता हे और सोशलिस्ट बनता है। कोलसा जितका उगालावा तितका काला। और ऊसका साथी—सुई आगे दोरा।

कुछ व्यक्ति—शेम शेम।

मराठा—रांगड़ा कहीं का ऊसको और ऊसका साथी को कोई मराठा वोट नहीं देगा। (बैठता है। ताली बजती है।)

वर्किंग बाक्सवाला—(खड़े होकर) तो आप सबकूँ ये रिज़ोल्यूशन मंज़ूर है?

ज़ोर की आवाज़ें—मंज़ूर है, मंज़ूर है।

वर्किंग बाक्सवाला—अब ये मिटिंग ख़तम होता है।

[लोग उठते हैं, परदा गिरता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सेवाकुटी के बाहर का मैदान

समय—संध्या

[दीनानाथ और कमला का प्रवेश।]

कमला—(चारों ओर देखकर) तो इन संस्थाओं के लिए वे इमारतें कुटी के दोनों ओर बनेंगी?

दीनानाथ—हाँ कमला, दोनों ओर।

कमला—कितने दिन में बन जायँगी?

दीनानाथ—शीघ्र ही कमला, कुछ बहुत बड़ी तो बनना नहीं है। अब संस्थाओं का काम फुटफैल स्थानों पर किराये के मकानों से नहीं चलता, इसी लिए छोटे-छोटे मकान बनवा देना है। इस निर्धन देश में इतना धन भी कहाँ है, जो संस्थाओं की भी बड़ी-बड़ी इमारतों में व्यय किया जाय।

कमला—और कुटी ऐसी ही रहेगी?

दीनानाथ—कुटी के परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है। हम लोगों का काम इतने में अच्छी प्रकार चल जाता है।

कमला—पर वे बच्चे जो बड़े हो रहे हैं, उनका विवाह आदि भी तो होगा या नहीं?

दीनानाथ—यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। फिर जब वे विवाह करेंगे तो स्वयं अपना प्रबन्ध सोचेंगे, हमें उसकी चिंता की क्या आवश्यकता है?

कमला—परन्तु……

[दो युवकों का प्रवेश]

एक युवक—(दीनानाथ से) चुनाव में शक्तिपाल और उसका साम्यवादी दल हार गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनानाथ—वह तो भासता ही था, क्योंकि कई प्रभावशाली व्यक्ति तो इस बार उनके दल की ओर से खड़े ही नहीं हुए थे।

दूसरा युवक—उनके दल को लोगों ने धोखा भी दिया। उनकी मोटरों में बैठ-बैठकर गये, पर वोट उनके दल के उम्मीदवारों को नहीं दिये।

दीनानाथ—तो शक्तिपाल का साम्यवाद समाप्त हो गया? मैंने उनसे कहा था कि इस देश में इस समय साम्यवाद इस प्रकार स्थापित नहीं हो सकता, परन्तु (कुछ ठहरकर) ठहरो-ठहरो, कमला, तुमने देखा मेरे हृदय का स्वार्थ? पहचाना इस स्वार्थ को? स्वार्थ! ओह! (सिर हिलाकर) यह स्वार्थ बड़ी अद्भुत वस्तु है।

कमला—(आश्चर्य से) इसमें आपका क्या स्वार्थ हो सकता है?

दीनानाथ—कमला, तुम अब तक नहीं समझतीं, अब तक नहीं। (एक युवक से) तुमने इस स्वार्थ को पहचाना?

युवक—(कुछ सोचकर) जी, मुझे भी कुछ ज्ञात नहीं होता।

दीनानाथ—(दूसरे युवक से) तुमने पहचाना?

युवक—(कुछ सोचते हुए) जी, मेरी समझ में भी नहीं आता।

दीनानाथ—सुनो, मुझे शक्तिपाल और उसके दल की हार से हर्ष हुआ है। मैं तो चुनाव में खड़ा नहीं हुआ था, न मेरा कोई दल ही था, तुम कहोगे, मेरा प्रत्यक्ष तो कोई स्वार्थ नहीं था।

एक युवक—अवश्य पिताजी।

दूसरा युवक—निःसन्देह।

दीनानाथ—ठीक है, पर इसमें मेरा सूक्ष्म स्वार्थ था और उसका एक आधार है। जब शक्तिपाल एल्-एल्० बी० पास हुए थे, उस समय इस बात पर वाद-विवाद हो गया था कि मुझे क्या करना चाहिए। शक्तिपाल ने मेरे इस त्यागपूर्ण दीनसेवा के सेवा-पथ को निरर्थक बता, राजनीतिक सत्ता द्वारा साम्यवाद की स्थापना करना अपना सेवा-पथ बताया था। उनका मत था कि व्यक्तिगत स्वार्थत्यागपूर्ण जीवन और दीनों की सेवा से कुछ नहीं हो सकता, और मेरा मत था कि हर बात के लिए सबसे पहले व्यक्तिगत जीवन के स्वार्थत्यागपूर्ण होने एवं जब तक दीन-दुखी हैं तब तक उनकी सेवा करने की आवश्यकता है। आज जब शक्तिपाल और उनका दल हार गया, तब मुझे इसलिए हर्ष हुआ कि एक प्रकार से उनका मत हारा। विषय-वासनाओं के त्याग के पश्चात् अपनी अकीर्ति सुनकर मुझे दुःख हुआ था, क्योंकि कीर्ति सुनने का मेरा स्वार्थ मेरे हृदय में शेष था। अब अपने विरुद्ध मत की हार सुन मुझे हर्ष हुआ है, क्योंकि मेरा मत ही सर्वोत्तम सिद्ध हो, इसका मुझे स्वार्थ है।

एक युवक—परन्तु पिताजी, अपने मत को सर्वोच्च सिद्ध करने का यत्न किये विना, उस मत के द्वारा संसार की सेवा कैसे हो सकती है?

दीनानाथ—अपने मत के प्रचार का प्रत्येक को अधिकार है, पर दूसरे का मत मेरे मत से नीचा है और दूसरे के मत की हार होकर मेरे मत की विजय हो, यह प्रवृत्ति उस मत में आसक्ति है। संसार, उसके सम्मुख सर्वोत्तम मत आते ही स्वयं उसे ग्रहण कर लेता है। तुम लोगों को ये बातें बहुत छोटी-छोटी मालूम होती होंगी, पर हृदय की ये छोटी-छोटी प्रवृत्तियाँ यथार्थ में बहुत बड़ी शक्तियाँ हैं। इनके अव्यक्त रहने के कारण ये स्थूल दृष्टि से महत्त्व की नहीं देख पड़तीं, पर संसार में विद्युत्, वाष्प आदि अव्यक्त शक्तियों के समान ही ये भी बड़ी ही प्रबल होती हैं। यह स्वार्थ बड़ी सूक्ष्म, प्रबल और अव्यक्त शक्ति है। अब तक मैं स्वार्थ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका हूँ, अभी तक यह परास्त नहीं हुआ है। न-जाने इस पथ में अभी तक कितनी सीढ़ियाँ शेष हैं; न-जाने अभी मुझे कितनी परीक्षाएँ और देनी हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि यात्रा लंबी उसे ही जान पड़ती है, जो थक गया हो। मैं अपनी यात्रा से अभी थोड़ा भी थकित नहीं हुआ हूँ, थोड़ा भी नहीं।

दूसरा युवक—पिताजी, जैसे आप हो गये हैं, वैसे हो जाने पर भी आप सदा अपने में दोष ही देखा करते हैं।

दीनानाथ—(कुछ सोचते हुए) हाँ, क्योंकि मैं सबसे बड़ा दोष अपने में दोष न देखने को समझता हूँ।

यवनिका पतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृति

श्रीरामाधार त्रिपाठी 'जीवन'

(१)

हो रहा तंद्रिल शांत में लीन-सा सो रहा संप्रति सारा समाज था ;
सालस मुद्रित लोचनों में सुख से सजा स्वप्न का स्वर्णिम साज था।
भावना का इस संसृति में मधु मूकता का रहा राज विराज था ;
तौर ये और ही जीवन का कुछ ही पलों के पहले अभी आज था।

(२)

मुसकाती मनोरम मौन मना उर भौन के तोड़ती ताले चली ;
चुपके-चुपके निज नूपुरों की झनकार सजीव सम्हाले चली।
लिपटी लघु लाज से लालसा से मुँह पै घना घूँघट डाले चली ;
इस विश्व की शून्यता में किस ओर कहाँ अरी बावली बाले, चली।

(३)

उस भूली-भुलाई हुई पिछली पहचान की एक निशानी लिये ;
जिसे भेदना दूर की बात, उसी मनोवेदना की ये रवानी लिये।
उर में जलती जहाँ आग वहाँ दुखिया दृगों में बस पानी लिये ;
कहने कहाँ आई कही हुई सी किसी काल की कोई कहानी लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

किस कामना से जग की दिशा से दृगों को मुद मान के मींचती आई ;
अपनेपन का कलाकोष अपार हज़ार करों से उलीचती आई ।
जलती हुई जान को जीवन को विष-वेदना-वारि से सींचती आई ;
इस धूमिल अंतर के पट पै तसवीर ये कौन-सी खींचती आई ।

(५)

सुध से किसी एक की साधभरी सबकी सुध-साधना खोने चली ;
मन की मरुभूमि में कामना के कुछ बीज क्यों व्यर्थ ही बोने चली ।
इस एक ही बूँद में संसृति की वहती हुई नैया डुबोने चली ;
सजके यह साज जो आज यहाँ अपनी हा समाधि पै रोने चली ।

(६)

सामना संकटों का न पड़े कहीं, कामना का लगा मेला न हो ;
मेल मिले मन का न यहाँ खुलके कभी खेल ये खेला न हो ।
स्वार्थभरी इस संसृति से दुखी जीवन की अवहेला न हो ;
चूर न चाह हो; दूर कभी मुझसे, मदहोशी की वेला न हो ।

(७)

अनुरागिनी तू अपनी तुला पै उर की व्यथा-वेदना तोल तो दे ;
सबसे जो सदा ठुकराया गया, उसी जीवन का कर मोल तो दे ।
प्रतिकूलता से भरी भावना का कुछ भेद ओ सुन्दरी, खोल तो दे ;
विधि वाम ने दी तुझे प्रेरणा क्या, ज़रा सामने आकर बोल तो दे ।

(८)

प्यार न जो भर पाया किसी उर में उमड़ा हुआ प्यार ये तेरा ;
हार न हो सका जो किसी का व्यथा-वेदना का उपहार ये तेरा ।
गाया न गीत सँयोग का जो बजती हुई बीन का तार ये तेरा ;
तो तुझको ही मुबारक हो इतने दिनों पे अभिसार ये तेरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवादी

श्रीनीलाम्बर घोषाल

(१)

"समय काटे नहीं कटता।"

समाजवादी नागरदास बात-बात में यही कहते थे। फिर भी समय कटता था।

अमावास्या की अंधकारमयी निशा में छत पर टहलते हुए वह न-जाने क्या-क्या सोचते। घड़ी नियमानुसार समय कटने की सूचना देती।

वास्तव में नागरदास की चिन्ताओं की सीमा नहीं थी। हुआ करें वह केवल मैट्रिक पास। उनका अध्ययन किसी एम्० ए० से कम नहीं था। दुःख था तो केवल इतना ही कि उनके अध्ययन का विषय था...समाजवाद

और भरोसा, एक हिन्दी-साप्ताहिक के सम्पादकीय विभाग में चालीस रुपये की नौकरी।

वह भी कभी रहती, कभी न रहती।

गुज़ारा बड़ी कठिनाई से होता। नागरदास जिस दिन चाय पीते, उस दिन बच्चों के लिए दूध कम हो जाता। लिहाज़ा चाय पीना ही छोड़ दिया। साथ देती केवल पिस्तौल मार्के की बीड़ी और लाइब्रेरी से लाई हुई बड़ी-बड़ी पुस्तकें।

लेनिन...कार्लमार्क्स...हेगेस...मेज़िनी।

"रुपया मनुष्य के लिए नहीं, आवश्यकताओं के लिए है।"

परन्तु कौन सुनता है? इस सत्य के विरुद्ध आज सारा संसार एक हो रहा है।

एक भारतीय नेता का कथन--धन का बँटवारा यदि मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार हो तो संसार से दान, दया, धर्म लुप्त हो जायँगे।

नागरदास कहते—हो जाने दीजिए, इन्हें लुप्त! हम दान नहीं चाहते, दया नहीं चाहते। हम चाहते हैं केवल अपना अधिकार...अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति।

"यदि सम्भव हो तो शान्ति से, नहीं तो आवश्यकता होने पर शक्ति से।"

नागरदास के शरीर का रक्त विद्रोह करता। दिन-भर की मेहनत के बाद ग़रीब घसियारा जब केवल सूखी रोटी खाकर पेड़ के नीचे विश्राम करता है, तब कौन उसकी ख़बर लेता है?

हुँ, दान...दया...धर्म!

अपने मकान के सामने चारपाई पर बैठे हुए वह यही सब सोचा करते। सामने से पड़ोसी रामनारायण बाबू मित्रों सहित मोटर पर सैर करने निकलते। हाथ में सोने की घड़ी...बढ़िया सिल्क का कुरता।

नागरदास उस ओर से मुँह फेर लेते। स्त्री कहती—अभी तक चूल्हा नहीं सुलगा। कुछ उधार ला सको तो...

नागरदास फटी चप्पल पहनकर बाज़ार की ओर चल पड़ते।

घड़ी में सात बजते ही पड़ोसी के रेडियो से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना मिलती—अब हम अपना ख़ास देहाती प्रोग्राम शुरू करते हैं।

अर्धनग्न, ग़रीब किसानों के साथ सभ्य जगत् की विचित्र समवेदना!

नागरदास पागलों की तरह खिलखिलाकर हँस पड़ते।

(२)

बच्चे की बीमारी। ग़रीब-से-ग़रीब माता-पिता भी चिकित्सा कराये बिना नहीं रह सकते। दस दिन में ही नागरदास अपनी सारी तनख़्वाह ख़त्म कर चुके।

मित्रों ने कहा—ज़मींदार नरेश बाबू बड़े ही सज्जन और दयालु हैं। उनसे कहो, अवश्य सहायता करेंगे।

बाध्य होकर नागरदास को सहायता के लिए जाना पड़ा।

परन्तु बड़े आदमी तो बड़े ही थे। ग़रीबों की दुःख-भरी गाथा केवल अपनी अभिज्ञता बढ़ाने के लिए ही सुनते थे। बीमारी का हाल सुनने पर किसी दयालु होमियोपैथ का नाम और पता लिखवा देते। कभी-कभी दो-चार आने से सहायता करके दान, दया, धर्म की सार्थकता का परिचय देते। अधिक धन का प्रश्न उठने पर ग़रीबों की चाल-बाज़ियों का ज़िक्र करते हुए अपने मित्रों को साव-धान करते।

नागरदास के दस रुपये माँगने पर उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। "सोचकर देखूँगा" कहकर वह अपने किसी ज़रूरी काम पर चले गये।

नागरदास वहाँ और एक पल भी नहीं ठहर सके। बड़े आदमी आये और चले गये। छोड़ गये केवल वातावरण में एक दुर्गंध... मोटर निकल जाने के बाद पेट्रोल के गंदे धुएँ की तरह।

धीरे-धीरे नागरदास वहाँ से चल पड़े। शायद पुरुष होने के कारण ही उनकी आँखों से अश्रुधारा नहीं बह सकी थी। फिर भी नरेश बाबू के व्यवहार से आज वह हृदय में तीव्र वेदना अनुभव कर रहे थे। पास ही एक बग़ीचे में बैठकर नागरदास सोचने लगे।

अतीत जीवन की घटनाएँ...

एक समय था, जब वह विधाता की इस सृष्टि को कवितामय समझते थे। फूलों की सुगन्ध और वसन्त-वायु के झोंके उनके हृदय में आशा और उत्साह का संचार करते थे। उनमें विद्या थी, बुद्धि थी, प्रकृति के सौन्दर्य को समझने की शक्ति भी थी। यदि स्नेह के साथ थोड़ा जल, थोड़ी वायु, थोड़ा ताप मिलता तो पुष्प की तरह वह भी इस जगत् को सौरभमय बना देते।

परन्तु वह एक स्वप्न था, जो यथार्थता के सामने आते ही टूटकर नष्ट-भ्रष्ट हो गया। मैट्रिक पास करते ही पिता की मृत्यु हुई। फिर रिश्तेदारों की चालबाज़ियों में पड़कर थोड़ी-बहुत सम्पत्ति से भी हाथ धोना पड़ा।

और आज...

एक नौकरी, वह अन्न-वस्त्र की समस्या का भी समाधान नहीं कर सकती। जीवन में किसी दिन सुख और शान्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। बच्चे की बीमारी का इलाज वह दस दिन से ज़्यादा नहीं करा सकते।

नागरदास अंधकार में धीरे-धीरे अपने घर की ओर चल पड़े। पीड़ित शिशु के सिर पर हाथ रखकर प्रथम बार उनकी आँखों से अश्रुधारा बह चली।

दैन्य की ग्लानि... निराशा की वेदना। दुःख... पराजय।

और यह लेख?

नागरदास-जैसे ही समाजवादी की निद्रा-विहीन रात्रि का एक असफल प्रयास!

कारण—

समय काटे नहीं कटता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रश और दतून

श्रीशीतलासहाय बी० ए०

आजकल शहरों में ख़ास तौर से, और क़स्बों तथा गाँवों में कभी-कभी, दाँत की सफ़ाई के लिए ब्रश और मंजन का इस्तेमाल बढ़ता हुआ दिखाई देता है। जो लोग इनका इस्तेमाल करते हैं, वे अपने दिल में समझते हैं कि वे हिन्दुस्तान के देहातीपन से ऊँचे उठ रहे हैं और अर्वाचीन युग के नये सुधार को अपने घरों में ला रहे हैं। मैं भी दस-पन्द्रह बरस पहले इसी विचार का था। लेकिन इतने दिनों के अनुभव ने मुझे अपने विचार बदलने पर मजबूर कर दिया है। ब्रश के इस्तेमाल में न तो मैं कोई वैज्ञानिक फ़ायदा समझता हूँ और न अपने देश-वासियों की स्थिति जानते हुए यह कह सकता हूँ कि ब्रश की प्रथा को प्रचलित करना मुनासिब होगा।

मैं यह जानता हूँ कि अगर एक आदमी अपने दाँत की सफ़ाई पर महीने में दो रुपया ख़र्च करना चाहे तो ब्रश नुक़सान नहीं कर सकता। फिर भी दतून के मुक़ाबिले में इसके ज़्यादा गुणकारी होने में मुझे शक है। बहरहाल मेरी पहली कठिनाई तो इस बात से पैदा हुई कि मुझे २) फ़ी आदमी दाँत की सफ़ाई पर ख़र्च करना अपव्यय मालूम पड़ा, जब कि वही काम हम एक आने महीने में उससे बेहतर कर सकते हैं। जिस कुटुम्ब में स्त्री-पुरुष और तीन बच्चे हों और वह कुटुम्ब मध्यवर्ग का हो, वह १०) महीने दाँत की सफ़ाई में ख़र्च नहीं कर सकता। मैं तो समझता हूँ ५००) महीने से कम आमदनी का कुटुम्ब अपने दाँतों की सफ़ाई के लिए १०) महीना नहीं ख़र्च कर सकता। ब्रश और पेस्ट अर्थात् मंजन का इस्तेमाल इसलिए मध्यवर्ग के कुटुम्ब के वास्ते आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक बात नहीं रह जाती। फिर गाँव में रहनेवाले करोड़ों किसानों के लिए कहना ही क्या?

आप कह सकते हैं कि २) का अन्दाज़ा बहुत ज़्यादा है। बारह आने में काम चल सकता है। मैं जानता हूँ कि लोग ॥।) आने में काम चलाते हैं और पछताते हैं। तीन-चार आने का ब्रश ख़रीदते हैं और उसे साल भर तक रगड़ते हैं। छः-सात आने में मंजन का ट्यूब ख़रीदते हैं, महीने में दो ख़रीदते हैं और कुछ बच जाता है। अनेक ऐसे सज्जनों को मैंने देखा है। इनका ब्रश क्या था, दुर्गंध की लकड़ी थी। उसमें से सख़्त बदबू निकलती थी। केवल फ़ैशन बनाये रखने की प्रबल प्रेरणा या अज्ञान इनको इस बदबूदार ब्रश को नित्यप्रति अपने मुँह में डालने के लिए मजबूर कर सकता था। बात यह होती है कि हम अच्छे-से-अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रश क्यों न ख़रीदें, कुछ दिनों के बाद इसके हड्डी-वाले हिस्से पर, जिसमें कूचियाँ जमाई रहती हैं, मैल की एक तह जम जाती है, और इसमें ज़हरीले कीड़े पैदा हो जाते हैं; जो दाँतों में पहुँचकर बीमारी पैदा कर देते हैं। पुराना ब्रश इसलिए फ़ायदा पहुँचाने के बजाय नुक़सान पहुँचाता है। ब्रश का सबसे बड़ा फ़ायदा यह है कि वह दाँत के बीच के हिस्से से खाने के टुकड़े निकाल सकता है, जो काम पतली दतूनों से नहीं होता। मोटी दतूनों की कूचियाँ ब्रश की तरह बन जाती हैं और उनसे भी यह काम लिया जा सकता है। जो लोग दिनभर पान खाया करते हैं या मांस खाते हैं, उनके दाँतों में रेशे घुस जाते हैं। साग के भी रेशे दाँतों में घुस जाते हैं, और ये सड़ जाते हैं। किन्तु मेरा यह अनुभव है कि अगर खाने के बाद कुल्ला कर लिया जाय—और अच्छी तरह से—तो यह मौक़ा ही नहीं आता कि कोई चीज़ दाँत के बीच में जाकर फँसी रह जाय और वहाँ सड़ा करे। अगर दाँतों की बनावट ख़राब है तो नीम का सूखा सींका ख़लाल करने के लिए काम में ला सकते हैं। चाँदी की दत-खोदनी भी इस काम के लिए अच्छी चीज़ है। ख़राबी आजकल यह कि कुल्ला करने की आदत या प्रथा अब कम हो रही है। आपको शायद यह मालूम होगा कि अँगरेज़ लोग कुल्ला करना नहीं जानते। जैसे अँगरेज़ के लिए यह नामुमकिन है कि वह पलथी मारकर बैठे, वैसे ही वह कुल्ला करना नहीं जानता। उनके यहाँ यह रस्म ही नहीं। उनकी भाषा में "कुल्ला" के लिए कोई शब्द भी नहीं पाया जाता। उन्हीं की नक़ल में शायद हम लोग भी कुल्ला नहीं करते। लेकिन सच तो यह है कि कुल्ला करना दाँतों को साफ़ रखने के लिए बहुत ज़रूरी है।

अब हम दतून करने का तरीक़ा भी भूलते जाते हैं। वैज्ञानिक रूप से इसका प्रयोग नहीं करते और जब दाँतों का स्वास्थ्य ख़राब होने लगता है तो दोष दतून को देते हैं।

दतून की पहले कूची बनानी चाहिए। बड़े लोगों के यहाँ दतून के छिलके को कुछ काट डालते हैं, ताकि मुँह को कड़वा न लगे। नीम की दतून के छिलके में बहुत गुणकारी अंश रहते हैं। दाढ़ों से दतून चबाने पर ये लाभदायक चीज़ें मुँह भर को साफ़ कर देती हैं और दाढ़ों का व्यायाम हो जाता है। जितनी मोटी दतून होती है, कूची भी उतनी ही अच्छी बनती है। नीम, बबूल, थूहर इत्यादि अनेक क़िस्म की दतूनों के अलग-अलग गुण हैं। कूची बन जाने पर कूची को साफ़ करके दाँतों पर पहले लम्बा कर इसे रगड़ना चाहिए और दो दाँतों के बीच के हिस्से के अन्दर कूची पहुँचाकर उनकी सफ़ाई का प्रयत्न करना चाहिए। एक मर्तबा इस प्रकार करके कुल्ला कर डालना चाहिए और कूची धो डालनी चाहिए। फिर इसी तरह दो दाँतों के बीच के हिस्से से गन्दगी निकालने की कोशिश करनी चाहिए; फिर पूर्ववत् कुल्ला करना चाहिए, कूची साफ़ कर लेनी चाहिए। इसके बाद दाँतों के पिछले हिस्से में कूची को सब जगह पहुँचाना चाहिए। इसमें ज़रा भी कठिनाई नहीं होती। कूची को अँगूठे से दबाकर ऊपर के दाँतों के पिछले हिस्से की ख़ूब सफ़ाई हो सकती है। यह क्रिया भी दो दफ़ा करनी चाहिए। इसके बाद वह क्रिया आती है, जिससे पायरिया कभी न हो; यानी दतून से मसूढ़ों को हलके-हलके रगड़ना चाहिए। दो दफ़ा रगड़ने के बाद ज़बान साफ़ कर डालना चाहिए और उँगलियों से कंठ को। ब्रश में इसकी गुंजाइश नहीं होती और न अँगरेज़ी संस्कृति में इसका कोई स्थान ही है। लेकिन गले की बीमारी से बचने का इससे उत्तम कोई उपाय नहीं।

यह जो कुछ मैंने लिखा, वह स्वस्थ दाँतों को स्वस्थ रखने की तरकीब है। लेकिन रुग्ण दाँतों के लिए तो डाक्टर-वैद्य की ज़रूरत पड़ेगी ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा का विकास

श्रीरामविलास शर्मा एम्० ए०

राष्ट्रपति की एक प्रिय दलील, जो वह राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में दिया करते हैं, यह है कि यदि हिंदीवाले अरबी - फ़ारसी के शब्द न अपनावेंगे तो उनकी भाषा का विकासक्रम रुक जायगा। अन्य राजनीतिज्ञों ने भी घट-बढ़कर यही बात कही है कि जीवित भाषा का यह लक्षण ही है कि वह दूसरी भाषा के शब्दों को अपनावे। न अपनाने से वह संकुचित साहित्यिक भाषा होकर नष्ट हो जायगी। बात सुनने में बहुत सीधी और तर्कयुक्त जान पड़ती है। अँगरेज़ी एक जीवित भाषा है। उसमें हिंदुस्तान, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, सभी देशों के शब्द हैं और इसी लिए वह संसार की भाषाओं में अपना ऊँचा स्थान बनाये है। तब हमीं यदि संकुचित वृत्ति से काम लेंगे तो भाषा का विकास कैसे सम्भव होगा ? इसलिए प्रश्न उठता है, हिंदुस्तानी के नाम पर प्रचलित उर्दू का विरोध करनेवाले हिंदी का हित करते हैं या अहित ?

इसका निर्णय करने के लिए हमें भाषा-विकास के नियमों को थोड़ा और समीप से देखना होगा। अँगरेज़ हिंदुस्तान में आये और उनका भारतवासियों से सम्पर्क हुआ; भारत की भाषाओं से उन्होंने शब्द लिये और भारत की भाषाओं में भी उनसे शब्द आये। देखना यह है कि इन शब्दों के आने की रीति क्या दोनों भाषाओं में एक ही है ? यदि एक ही तो भाषा-विकास का एक ही सिद्धांत दोनों पर लागू होगा। यदि नहीं तो दोनों के विकास के सिद्धांत अलग-अलग हैं और हिंदी के लिए केवल जीवित भाषा के शब्द अपनाने का उदाहरण देना भ्रम उत्पन्न करना है।

अँगरेज़ी ने किस प्रकार के शब्द भारत की भाषाओं से लिये हैं ? अधिकतर उन वस्तुओं के नाम जो विलायत में नहीं हैं। उन वस्तुओं से अँगरेज़ों को काम पड़ता था; उनके लिए उनके यहाँ शब्द न थे। उन्होंने भारतीय शब्दों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनाया। जैसे घी, पीपल, जूट, चटनी आदि। और बहुत-से शब्द अँगरेज़ी में इसलिए आये हैं कि जो अँगरेज भारत में आते थे, वे लौटकर कुछ भारतीय शब्दों का प्रयोग यह दिखाने को करते थे कि वे विदेश हो आये हैं। इस तरह बोअर-युद्ध के समय अफ़्रीका के बहुत-से शब्द अँगरेज़ी में आये थे। अधिकांशतः शब्द एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही अपनाये गये हैं। 'ताँगा' को अगर साहब 'टाँगा' न कहें तो सवारी किस पर करें? फिर भी हिन्दुस्तानी शब्द को अँगरेज़ वह स्थान देता है, जिससे वह निम्न भाषा का अलग से मालूम पड़ता है। हिंदुस्तान के शब्द घुल-मिलकर अँगरेज़ी में एक नहीं हो गये, जैसे उसमें फ्रेंच से लिये गये शब्द हो गये हैं। साहब जब बख़्शीश कहता है, तब वह जानता है कि यह किसी साहब और नेटिव के बीच का शब्द है। अँगरेज़ अँगरेज़ को बख़्शीश नहीं देता। इसी तरह जब किसी को अत्यधिक नीचा कहना होता है तो तामिल से पैरिया शब्द का प्रयोग होता है और उससे अँगरेज़ याद दिलाता है कि हिंदुस्तान में इस तरह के दलित लोग भी हैं। बहुधा यहाँ के शब्दों का प्रयोग एक हास्य उत्पन्न करने के लिए होता है। राजनीति के 'पंडितों' का प्रयोग अख़बारी अँगरेज़ी में बहुधा देखने को मिलता है। हमारे यहाँ 'पंडित' का आदरसूचक अर्थ है; अँगरेज़ी में उसका अर्थ झक्की, किताबी कीड़ा के नज़दीक है। ऐसे ही अवतार, जैगरनाट आदि। विजेता जाति जब विजित जाति के शब्दों को लेती है, तब वह कभी नहीं भूलती कि वह विजेता है। जैसा उसका संबंध राजनीति और सामाजिक व्यवहार में विजित जाति से होता है, वैसा भाषा में भी दिखाई देता है।

अँगरेज़ी भाषा हिंदुस्तान के शब्दों को इस प्रकार ग्रहण करती है; हिंदुस्तान-विजय के चिह्न उसमें वर्तमान रहते हैं। लेकिन शब्द एक में घुलते-मिलते नहीं, जैसे कि अँगरेज़ और हिंदुस्तानी एक में नहीं मिलते, जब तक कि हिंदुस्तानी अपना हिंदुस्तानीपन ही न छोड़ दे और अँगरेज़ का, बख़्शीश शब्द की तरह, कृपापात्र न बन जाय। इसके विपरीत हिंदी में भी अँगरेज़ी शब्दों का प्रयोग होता है। अँगरेज़ी के उद्धरण देकर हम अपने लेखों की शोभा बढ़ाते हैं। पुस्तक नहीं पढ़ी तो शेक्सपियर या शेली का नाम ही लेकर अपने को और अपने लेख को कृतार्थ करते हैं। भाषा में जहाँ-तहाँ अँगरेज़ी के शब्दों को रखना तो साधारण बात है। बोलचाल में तो पठित वर्ग आधे शब्द अँगरेज़ी के प्रयोग करता ही है। 'रूपाभ' के एक अंक में श्रीशिवाधार पांडेय ने इसका एक सुन्दर उदाहरण दिया था। अभी साहित्य में उसी परिमाण में अँगरेज़ी शब्दों की भरती नहीं हुई; लेकिन प्रगतिशील लोगों का कहना है कि पारिभाषिक शब्द सब अँगरेज़ी से लेने चाहिए। इसका मतलब यह है कि जो भी शब्द उर्दू भाषी के लिए कठिन मालूम पड़े, उसे हटाकर अँगरेज़ी का शब्द रखना चाहिए। अभी हिंदी के शब्द उर्दू वाले की समझ में नहीं आते; उर्दू के शब्द हिंदीवाले की समझ में नहीं आते। पहले हिंदी-उर्दू को छानकर हिंदुस्तानी निकाली जाय, फिर उसमें अँगरेज़ी की रेत मिलाई जाय। जो भाषा बनेगी, वह चाहे दोनों की समझ में न आवे, लेकिन किसी को किरकिरी न मालूम पड़ेगी; क्योंकि उसमें संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के शब्दों के स्थान में अँगरेज़ी के शब्द रहेंगे। यह भाषा की अवार्ड कम्यूनल अवार्ड से भी बढ़कर है।

अर्थात् यह भी भाषा का विकास है, वह विकास जिसमें हिंदुस्तानियों की ग़ुलामी पग-पग पर लिखी है। यदि ऐसे ही भाषा का गला घोटना था तो राष्ट्र-भाषा का प्रश्न ही क्यों उठाया? राष्ट्र को स्वतंत्र करना चाहते हैं, इसलिए भाषा भी अपनी चाहिए। लेकिन अपनी भाषा को लेकर खड़े होने की ताब नहीं है? दूसरी भाषा के शब्दों को भर लेना ही विकास नहीं कहलाता। हम अपनी भाषा का विकास एक विद्रोही, सचेत, उन्नतिशील राष्ट्र की भाषा के विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाँति चाहते हैं। हम पतित पददलित जाति की भाषा के मरण को और दूसरी भाषा द्वारा उसके स्थान-ग्रहण को भाषा का विकास नहीं मानते। संसार में इस प्रकार का विकास बहुत कम भाषाओं को प्राप्त होता है, जहाँ वे अपनी जातीयता की रक्षा करते हुए दूसरी भाषाओं से आदान-प्रदान जारी रखते हैं। जर्मन, इटालियन, किसी हद तक .फ्रेंच इस प्रकार की भाषाएँ हैं। अँगरेज़ी नहीं है। भाषा के नाम पर अँगरेज़ी का जो महत्त्व हिंदुस्तान में है, वह अँगरेज़ों की हुकूमत के कारण और हमारे अज्ञान से। भाषागत विशेषताएँ उसकी बहुत कम हैं। अँगरेज़ी के सम्बन्ध में यदि किसी को यह बात निंदात्मक लगे तो वह कोई भी कोष उठाकर शब्दों की व्युत्पत्ति की ओर ध्यान दे। अँगरेज़ी भाषा को जन्म दिया है इँगलैंड पर आक्रमण कर विजय पानेवाले शासकों ने। जर्मन और स्कैंडिनेवियन विजेताओं ने अँगरेज़ों को अपने शब्द दिये और सबसे अधिक .फ्रांस के नार्मन विजेताओं ने उनकी भाषा को गढ़ा। नार्मन विजेताओं की भाषा के आगे ऐंग्लोसैक्सन भाषा को लोग हेय समझने लगे। विजेता अधिक सभ्य थे; वे सचमुच एक बर्बर जाति को सभ्य बना रहे थे। इसलिए सभ्यता के विचार से ही तमाम अँगरेज़ .फ्रेंच शब्दों का व्यवहार करने लगे। राज्य और शासन से सम्बन्ध रखनेवाले अधिकांश शब्द अँगरेज़ों ने .फ्रेंच से सीखे, अडमिनिस्ट्रेशन, क्राउन, स्टेट, गवर्नमेंट, पार्लमेंट, प्रिंस, पियर, चांसलर इत्यादि। उस समय अँगरेज़ों पर जो विदेशी शासन हुआ, उसकी अमिट छाप उनकी भाषा पर पड़ी हुई है। उनकी भाषा का इतिहास बतलाता है कि अँगरेज़ों में अपनी भाषा का अभिमान नहीं था और विजेताओं ने उनके देश पर ही नहीं, उनकी आत्मा पर भी अधिकार कर लिया था। उनकी भाषा में विरोध करने की शक्ति न थी, जैसे कि देश के वीरों में विजेताओं से भिड़ने की सामर्थ्य न थी। एक उक्ति प्रसिद्ध है कि इँगलैंड के जानवर अपने जीवन-काल में अँगरेज़ी नाम से पुकारे जाते थे, लेकिन जब उनका मांस सजकर मेज़ पर आता था तो उसका .फ्रेंच नाम हो जाता था। जैसे शीप काफ़, स्वाइन, डियर आदि का मांस मटन, वील, पोर्क, वेनीसन आदि बनकर आता था। इसका कारण यह कि जानवरों को पालते थे अँगरेज़, परन्तु उनका मांस खाते थे .फ्रेंच। वस्तुतः शब्दभंडार के लिए अँगरेज़ी भाषा फ्रेंच, लैटिन और ग्रीक का मुँह जोहती है; उसमें उच्चारण और व्याकरण की अनियमित विचित्रताओं को छोड़कर अपनी विशेषता बहुत कम है। ऐसी भाषा के शब्दों को भरकर हमें हिंदी का विकास नहीं करना है।

जिस जातीय जागरण का अँगरेज़ी में अभाव था, वह हमें हिन्दी में मिलता है। जब नार्मन योद्धाओं ने इँगलैंड पर आक्रमण किया था, उस समय अँगरेज़ी भाषा और साहित्य अविकसित और वहाँ के निवासी प्रायः असभ्य थे। इसी लिए नार्मन उन्हें एक नई सभ्यता में दीक्षित कर सके। मुसलमान आक्रमणकारियों के लिए यह सुविधा न थी। हिन्दुस्तान में आकर वे एक पुरानी सभ्यता को नष्ट करनेवाले सिद्ध हुए, असभ्य और बर्बर जाति को सभ्यता का पाठ पढ़ानेवाले नहीं। केवल जब मुसलमान शासन यहाँ धीरे-धीरे जड़ जमा चुका, तब उसने कला-कौशल में उन्नति की और अपने पतनकाल में वह एक नई भाषा गढ़ने लगा। यह हिन्दुस्तान के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति का प्रमाण है कि मुसलमानों के आक्रमणकाल से ही हिन्दी का विकास हुआ और जब विदेशी शासन अपनी समृद्धि पर था, तब हिन्दी का पुराना साहित्य अपने विकास के शिखर पर था। यहाँ तक कि हिन्दी की संस्कृति से विजेता जाति के अनेक विद्वान् और साहित्यिक भी प्रभावित हुए और उन्होंने उस समय की साहित्यिक हिन्दी में कृतियाँ रचकर अपने को धन्य माना। शायद संसार के इतिहास में हिन्दी के लिए यह अनोखी बात है कि आक्रमणकारी विजेताओं ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजितों की भाषा को इस प्रकार अपनाया है, यद्यपि हिन्दी को राजाश्रय प्राप्त न था। राजकाज सब फ़ारसी में होता था, जिसकी छाप आज के सम्मनों और नोटिसों में हमें मिलती है, फिर भी हिन्दी केवल अपने साहित्य और अपनी संस्कृति के बल पर विदेशी साहित्यिकों को प्रभावित कर सकी। और क्या हिन्दी ने अरबी-फ़ारसी से शब्द लिये नहीं ? लिये क्यों नहीं, लेकिन निष्प्राण अँगरेज़ी की भाँति नहीं, जिसने फ्रेंच शब्दों से अपना भंडार भर-कर अपना अस्तित्व ही खो दिया। जैसे रामायण में विदेशी भाषाओं के शब्द हैं, उसी परिमाण में एक जीवित भाषा दूसरी भाषा के शब्दों को लेती है। जैसे लोग हिन्दुस्तानी में लेना चाहते हैं, उस तरह नहीं।

हिंदी के विपरीत एक अन्य भाषा का भी विकास हुआ है, उर्दू का। केवल मानव-स्वभाव, मनुष्य की इच्छामात्र एक भाषा के सृजन में कहाँ तक उत्तर-दायी हो सकती है, इसका उर्दू एक अच्छा उदाहरण है। जो लोग कहते हैं, भाषा अपने आप बनती है, बनाने से नहीं, वे भूल जाते हैं कि मनुष्य अपने बदलते संस्कारों के अनुसार भाषा को भी बनाता-सुधारता है। भाषा-विकास के मूल में उस भाषा के बोलनेवाले का चरित्र रहता है। जो लोग उर्दू को जन्म दे रहे थे, उनके मन में भी एक प्रकार का संस्कार था, वही संस्कार जो आजकल हिंदी में अँग-रेज़ी शब्द अपनानेवालों के मन में है। अँगरेज़ी शब्दों का प्रयोग कर हम अपने आपको शिक्षित और सभ्य बताना चाहते हैं, वैसे ही भारतीय भाषा और संस्कृति से असंतुष्ट कुछ लोगों ने फ़ारसी शब्दों का प्रयोग करना सीखा था। असम्भव नहीं कि यह इच्छा पहलेपहल हिंदुओं के मन में ही पनपी हो ; क्योंकि विजित ही अपने आपको शिक्षित और सभ्य घोषित करने के लिए लालायित रहता है। भारतीय भाषाओं के विकास-क्रम को तोड़कर कुछ सभ्य कहलाने के लिए उत्सुक व्यक्तियों ने साहित्यिक उर्दू की नींव डाली। जिस तरह इस भाषा का विकास मानव-स्वभाव की एक दुर्बलता पर निर्भर था, वैसे ही अँगरेज़ी-मिश्रित एक नई भाषा इँगलिस्तानी भी उसी तरह की निर्बलता का सहारा ले पनप रही है। यह सब देख-सुनकर स्व० प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में एक पात्र के मुँह से कहलाया था, "फ़ारस और काबुल के मूर्ख सिपाहियों और हिंदू व्यापारियों के समागम से उर्दू जैसी भाषा का प्रादुर्भाव हो गया। अगर हमारे देश के भिन्न-भिन्न प्रांतों के विद्वज्जन परस्पर अपनी ही भाषा में सम्भाषण करते तो अब तक कभी की एक सार्वदेशिक भाषा बन गई होती। जब तक आप जैसे विद्वान् लोग अँगरेज़ी के भक्त बने रहेंगे, कभी एक सार्वदेशिक भाषा का जन्म न होगा। ...मुझे उससे (अँगरेज़ी से) ऐसी ही घृणा होती है, जैसी किसी अँगरेज़ के उतारे कपड़े पहनने से।"

कुछ लोग समझते हैं हिंदी-उर्दू के विभाजन का कारण हिंदी में संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्दों का प्रयोग है। इसलिए उस प्रकार के शब्दों का प्रयोग वे आधुनिक हिंदी में भी आपत्तिजनक समझते हैं। इनका कहना है, साहित्य जनसाधारण की, अर्थात् हिंदी-उर्दू भाषी दोनों की समझ में आने-वाली, खाना-पीना और जै रामजी आदाब अर्ज़वाली भाषा में रचा जा सकता है। परन्तु जनसाधारण की भाषा में शब्द बहुत थोड़े होते हैं और विचारों को प्रकट करने के लिए उनमें सामर्थ्य नहीं होती। साहित्य में हम जो भाषा लिखते हैं, उसमें पहले जनसाधारण की ही भाषा का प्रयोग करते हैं। जब उसमें शब्द नहीं मिलते तो हम उस भाषा का सहारा लेते हैं, जो उस साधारण भाषा की जननी हो या जिसकी प्रकृति उसके अत्यधिक निकट हो। साधारण हिंदी संस्कृत और प्राकृत से निकली है; स्वभावतः आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हीं में से शब्द लेती है। तुलसीदास की रामायण, जिससे अधिक लोकप्रिय पुस्तक संसार में दूसरी नहीं है, इस बात को स्पष्ट करती है। जनसाधारण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों को अपनाते हुए भी, जहाँ जैसी जरूरत हुई, तुलसीदास ने संस्कृत-प्राकृत के आधार पर शब्दों को रक्खा है। और, इस तरह उन्होंने भाषा की प्रकृति की रक्षा की है। दूसरा विचार शैली का भी होता है। यदि किसी ने "रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका" लिख दिया तो इससे उस शैली में ही बट्टा नहीं लगता। उस शैली को हम आदर्श न मानें, पर उसमें प्रसादगुणयुक्त आलंकारिकता है ही। वह भी साहित्य का एक अंग है। जहाँ शैली का सुचारु निर्वाह नहीं होता, वहाँ वह भोंडी लगती है, जैसे कोई भी शैली ठीक से निबाही न जाने से भोंडी लगेगी। परन्तु उसी शैली में "दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला। तरु-शिखा पर थी अब राजती, कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।" यह भी तो लिखा गया है और लोकप्रिय तुलसीदास ने भी अपने अनेक लोकप्रिय छंद इस शैली में लिखे हैं, जैसे 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय दारुनम्' इत्यादि।

हिंदी में किस प्रकार के शब्द लेने से उ प्रकृति की रक्षा होती है, इसके प्रमाण हिंदी लिखनेवाले मुसलमान कवि ही हैं। जायसी, रहीम, रसखान आदि की भाषा से उर्दू का मुक़ाबला कीजिए, दोनों का भेद स्पष्ट हो जायगा। दूसरी ओर उनकी भाषा से आधुनिक हिंदी को मिलाइए तो पता चल जायगा, भाषा के भेद के लिए कौन उत्तरदायी है। हिंदी का जो विकासक्रम रहा है, वह हिंदी का ही नहीं, बँगला, मराठी, गुजराती आदि भारत की अन्य भाषाओं का भी रहा है। इन भाषाओं के उद्भव में समानता होने से उनके विकास में भी समानता रही है। परन्तु उर्दू का पूर्वरूप हिंदी होते हुए भी, अन्य भाषाओं की भाँति एक उद्भव होते हुए भी, उसका विकास भारत की अन्य भाषाओं से भिन्न है। कारण यह कि हिंदी को सहज विकसने न देकर उस पर विदेशी इमारत खड़ी की गई है। उर्दू की उत्पत्ति के लिए मुसलमानों को उत्तरदायी ठहराना उतना ही भ्रमपूर्ण है, जितना इँगलिस्तानी के लिए अँगरेज़ों को ठहराना होगा। इँगलिस्तानी के निर्माण में हिंदी-उर्दू बोलनेवालों की ही एक मनोवृत्ति है; वैसे ही उर्दू के विकास के लिए हिंदी बोलनेवालों की एक मनोवृत्ति उत्तरदायी थी, यद्यपि उन हिन्दी बोलनेवालों में मुसलमान भी थे।

जो देश की राष्ट्रभाषा हो, उसकी प्रकृति शहर की ही नहीं, गाँवों की भाषा से भी मिलनी चाहिए। मिलनी ही न चाहिए, वहाँ से भरसक उसे शब्द भी लेने चाहिए। प्रत्येक साहित्यिक और साधु भाषा पहले एक संकुचित ग्राम्य भाषा या बोली होती है। व्रजभाषा व्रज की बोली थी, वैसे ही खड़ी बोली उत्तर भारत के विशिष्ट भागों की बोली थी। भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी ऐसा हुआ है कि लोगों ने एक बोली को छोड़कर दूसरी को साधु भाषा स्वीकार किया है। फ्रांस में त्रूबादूरों की पुरानी प्रोवाँसाल बोली को छोड़कर मध्य फ्रांस की बोली को ही साधु भाषा माना गया। हमारे यहाँ भी व्रज-भाषा को छोड़कर खड़ी बोली को साधु भाषा माना गया। उसका प्रधान कारण यह था, कि खड़ी बोली के बोलनेवालों की संख्या अधिक थी और वह युग की आवश्यकतानुसार गद्य के अधिक उपयुक्त थी। पर वह एक "बोली" ही थी और उसमें भारत की अन्य बोलियों से मैत्री करने की सामर्थ्य वर्तमान है। गाँवों में जहाँ हिन्दू-मुसलमान का नगरवाला भेद-भाव नहीं है, वहाँ वे एक ही देहाती भाषा बोलते हैं। देहात की बोलियाँ हिन्दी से कितना मिलती हैं, यह बताने की ज़रूरत नहीं। लेकिन जो लोग रोमन लिपि और अँगरेज़ी के पारिभाषिक शब्दों से सजी एक विकसित भाषा इन देहातियों को सिखाना चाहते हैं, उन्हें बताने की ज़रूरत है कि आप इस तरह उन देहातियों के साथ मज़ाक़ करते हैं। आपकी गुलामी आपको मुबारक हो; ऐसा विकास हिंदी के लिए घातक है। जो लोग एक भाषा चाहते हैं, वे जायसी और रसखान की भाँति यहाँ की भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीखें और उसमें लिखें-पढ़ें। विदेशी शब्दों का मोह वे त्याग दें। दूसरी भाषा के शब्द अपनाने में हिंदी सदा से उदार रही है, सचमुच एक जीवित भाषा की ही भाँति। यह उसे सिखाने-समझाने की बात नहीं है। उसकी राष्ट्रीय उपयोगिता यह है कि उसकी प्रकृति भारत की अन्य भाषाओं से मिलती है, उसका विकास उन्हीं के विकास से मिलता-जुलता है। गाँवों की बोलियों से मैत्री करने की, उनसे शब्द अपनाने की उसमें सर्वाधिक सामर्थ्य है। भाषा के विकास का अर्थ है, वह अपनी जातीयता, अपना देसीपन विकसित करे; जन-साधारण के निकट-से-निकट आकर वह ऊँचे-से-ऊँचे विचारों के प्रतिपादन में समर्थ हो। उसकी प्रकृति सर्वाधिक जन-समुदाय के संस्कारों से मेल खाती हो, उसके विकास के मूल में एक स्वतंत्र और उग्र चेतना काम कर रही हो। हम चाहते हैं, विकास हिंदी का ही हो; उसे बदलकर एक दूसरी नई भाषा न गढ़ी जाय।

भारतीय कला-कौशल को उन्नत करने का साधन

देहली क्लाथ मिल्स के बनाये हुए

टेपस्टरी और परदों के कपड़े

खरीद कीजिए

नये डिज़ाइन **उचित दाम**

हिन्दुस्तानी कारीगरों, रुई और रुपया से तैयार होते हैं

देहली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स लि० देहली

यू० पी०, बिहार और राजपूताने में हमारी एजेन्सियाँ—

लखनऊ—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, गूँगा नवाब का महल।

कानपुर—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, काहू की कोठी।

आगरा—देहली क्लाथ एण्ड मिल्स रिटेल शाप, जौहरी बाजार।

गया—मेसर्स रा० ब० रामचन्द्रराम-हरिप्रसाद।

जयपुर—मेसर्स कन्हैयालाल मोतीराम, खांडा, हवामहल।

अजमेर—मेसर्स कन्हैयालाल ब्रजमोहनलाल, कैसरगंज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन कहानी-लेखक बनाम संपादक

श्री रा० र० खाडिलकर

नये लेखक अकसर यह शिकायत करते सुने जाते हैं कि संपादक हमारी रचनाओं को प्रकाश में लाकर हमें उत्साहित नहीं करते। इस सम्बन्ध में एक नव-लेखक ने हिन्दी साप्ताहिक और मासिक पत्रों के कई सम्पादकों के पास चिट्ठियाँ भेजकर उनके मत 'विशाल भारत' में प्रकाशित कराये थे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के गत काशी-अधिवेशन के अंतर्गत हुए नवयुवक-सम्मेलन में भी उक्त लेखक ने एक प्रस्ताव पेश किया था।

कहानियों से अधिक प्रेम

सम्पादकीय विभाग में काम करनेवालों का यह अनुभव है कि नवीन लेखकों में ९५ प्रतिशत से अधिक कहानी-लेखक (या 'कवि') होते हैं। नये लेखकों का शायद यह ख़याल रहता है कि कहानियाँ लिखना सबसे आसान काम है। ऊटपटाँग, बेसिर-पैर के साट लिये जाते हैं, और शुद्ध-अशुद्ध लिखने की इन लेखकों को परवा नहीं रहती। ऐसी स्थिति में सम्पादक अगर नवीन लेखकों की कृतियाँ छापने में असमर्थ हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हमें स्मरण है कि उपर्युक्त पत्र-लेखक को उत्तर देते हुए 'सरस्वती'-सम्पादक ने लिखा था—हमें १०-२० 'कहानियाँ' रोज़ाना लौटानी पड़ती हैं, फिर भी सौ के लगभग कहानियाँ हर समय चुनी रक्खी रहती हैं। हमारा ख़ुद का भी यही अनुभव है।

दो सम्पादकों की राय

अभी हाल में पूने के एक प्रकाशक ने 'साभार-परत' (सधन्यवाद वापस) नामक मराठी कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित किया है। इस संग्रह में सम्पादकों द्वारा लौटाई गई 'उदीयमान' कहानी-लेखकों की अस्वीकृत कहानियों में से २२ का प्रकाशन किया गया है। इस संग्रह की प्रस्तावना में सम्पादकों की काफ़ी आलोचना की गई है। पूने के 'त्रिकाल' के सम्पादक ने पुस्तक की समालोचना करते समय इस आलोचना का जो उत्तर दिया है, वह पढ़ने लायक़ है। सम्पादक लिखते हैं कि गत छः वर्षों के सम्पादकीय अनुभव से मैं यह साफ़-साफ़ कह सकता हूँ कि सम्पादक और कहानी-लेखक, इन दोनों में अगर कोई अधिक अन्याय करता है तो वह लेखक ही है। शुद्ध और साफ़ लिखना भी जिन्हें नहीं आता, वे यह चाहते हैं कि हमारी कहानियाँ पत्रों में छपें और हम विद्वान् कहलाकर समाज में प्रतिष्ठा पावें। कहानी लिखनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवकों की आजकल इतनी बाढ़ आई है कि इन सबकी भद्दी और दायित्वहीन रचनाएँ सिर्फ़ देखने के लिए दो सहकारी सम्पादक रखने पड़ेंगे और उनकी आँखें न बिगड़ें, इसलिए आँखों का बीमा कराना पड़ेगा। सम्पादकों को गालियाँ देने के बजाय उन पर दया आनी चाहिए। कहानी-लेखक सम्पादकों को इतना तंग करते हैं कि हर कहानी के लेखक से कुछ फ़ीस ली जाय तो भी अन्याय न होगा।

इसी विषय पर बम्बई से निकलनेवाले 'चित्रा' साप्ताहिक में एक सहकारी सम्पादक ने अपना अनुभव लिखा है। वे लिखते हैं कि 'साभार परत' के लिए आई हुई २५० कहानियों में से ३२ ही प्रकाशित करने लायक़ समझी गईं। ऐसी हालत में सम्पादक के पास रोज़ डाक से आनेवाली कहानियों के ढेर में से अच्छी कहानियाँ चुनना कितना कठिन कार्य होगा, यह बात प्रस्तावना-लेखक ने नहीं सोची।

सम्पादक आगे लिखते हैं कि मेरा अनुभव यह है कि २० कहानियाँ पढ़ने पर एक कहानी प्रकाशन के लायक़ निकलती है और वह भी सबसे अच्छी नहीं, पर सबसे कम ख़राब समझकर चुनी जाती है। किसी नये लेखक को उत्साहित करने के लिए अगर उसकी मामूली तौर पर अच्छी कोई कहानी एक बार छाप दी जाय तो वह अपने को उत्कृष्ट कहानी-लेखक समझने लगता है और शीघ्र ही सम्पादकों पर उसकी कहानियों की वर्षा होने लगती है। इस तरह के लेखक मेहनत करना नहीं चाहते, प्रसिद्ध होना चाहते हैं और सिवा प्रेम के उनको कोई कथानक भी नहीं मिलता। बहुत-से लेखक स्त्रियों के नाम पर लेख भेजते हैं और समझते हैं कि इससे संपादक को दया आ जायगी। लेखक समझते हैं कि संपादक को कहानियाँ पढ़ने के सिवा और कोई काम ही नहीं रहता। कहानी आते ही दो-चार दिन के बाद तक़ाज़े की चिट्ठियाँ आने लगती हैं और धमकी भी दी जाती है कि अगर आप नहीं छापते तो हम अपनी कहानी दूसरी जगह भेज देंगे।

अन्य भाषाओं की कृतियों की चोरी करने से भी ये लेखक बाज़ नहीं आते। ऐसी हालत में 'बिना अपने मरे स्वर्ग नहीं देखा जाता' इस उक्ति के अनुसार बिना संपादक हुए संपादकों पर व्यर्थ की टीका करना ठीक नहीं कहा जा सकता। संपादक की कठिनाइयाँ अन्य लोग नहीं जान सकते। उसे लेखकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है, इसलिए उनको अप्रसन्न कर वह अपना काम कैसे चला सकता है?

हमारा अनुभव

हमारा ख़ुद का जो अनुभव है, उससे हम कह सकते हैं कि ऊपर दो महाराष्ट्र संपादकों ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे हिन्दी-जगत् के लिए भी लागू होते हैं। महीने में हमारे पास कोई ५०-६० कहानियाँ आती हैं। इसी सप्ताह में आई हुई कम-से-कम बीस कहानियाँ हम लोगों ने पढ़ीं। उनमें से सिर्फ़ दो कहानियाँ देने लायक़ समझी गईं। नवीन कहानी-लेखक कथानक के सामंजस्य पर ध्यान रखने की बिलकुल आवश्यकता ही नहीं समझते और न वे घटनाओं की स्वाभाविकता अथवा कथा-प्रवाह की समीचीनता का ही ख़याल रखते हैं।

कागज़ के दोनों ओर बिना हाशिया छोड़े सटासटाकर लापरवाही से लिखी हुई सतरों को पढ़ने की सज़ा तो संपादक को प्रायः मिलती ही रहती है।

इन सब आफ़तों के बाद भी जब कोई यह कहते सुना जाता है कि संपादकों की तो बड़ी शान रहती है, वे क्यों नये लेखकों की परवा करने लगे, तब बरबस मुँह से निकल जाता है—दुर्भाग्य हमारा और क्या!

(साप्ताहिक "आज" से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन का शासक-परिवार

श्रीदीनदयालु शास्त्री

अभी पच्चीस-तीस वर्ष पहले तक चीन भी एशिया के अन्य देशों की भाँति राजतंत्र देश था। सन् १९११ में वहाँ क्रांति का पदार्पण हुआ और सदियों से चले आ रहे मंचू सम्राटों को उस देश से बिदा मिल गई। सम्राट् के स्थान पर क्रांति के सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय नेता डॉक्टर सनयात सेन चीनी प्रजातंत्र के प्रथम राष्ट्रपति नियत हुए। डॉ० सनयात सेन का ध्येय था चीन को एक संगठित, सुशिक्षित व संयुक्त राष्ट्र बनाना। वे जानते थे कि देश में क्रांति की जो लहर उठी है, वह तभी स्थायी रह सकती है, जब उसके पीछे उसके संचालन व नियंत्रण के लिए चीनी जनता का अक्षय सहयोग बना रहे। इसी उद्देश्य से डॉ० सनयात सेन ने कुओ-मिन-तांग नाम का राष्ट्रीय दल स्थापित किया था। कुओ-मिन-तांग का अर्थ है राष्ट्रवादी जनता का संघ। दल की स्थापना के समय डॉ० सनयात ने इस दल के तीन मुख्य कार्य बतलाये थे—देश में राष्ट्रीयता का प्रचार, जनतंत्रवाद की स्थापना तथा जनता को आजीविका देना। इन तीनों का स्पष्ट अभिप्राय है १—चीन को एक संयुक्त राष्ट्र बनाया जाय और उसके भिन्न-भिन्न प्रदेशों से विदेशियों का दख़ल हटा दिया जाय। २—संयुक्त राष्ट्र चीन का शासन जनतंत्र के सिद्धांतों के अनुसार धारासभाओं द्वारा किया जाय। ३—देश की करोड़ों भूखी नंगी जनता सम्पन्न बने व सुविधा से अपनी आजीविका पा सके, चीनी-शासन का यही मुख्य ध्येय हो। क्रांति के बाद से अब तक प्रजातंत्र चीन का शासन विविध रूपों में कुओ-मिन-तांग नाम के इसी दल के हाथों में रहा है। जब तक डॉ० सनयात सेन ज़िन्दा रहे, इस दल व देश के प्रमुख कर्णधार वही समझे जाते रहे। किन्तु उनके देहान्त के बाद चीन देश के शासन की ज़िम्मेदारी अधिकतर कुओ-मिन-तांग के भिन्न-भिन्न कार्यकर्त्ताओं के सिर पर आ पड़ी। इन कार्यकर्त्ताओं में भी सुंग-परिवार का नाम सर्वोपरि है, जो आजकल यथार्थ में चीन का शासन-चक्र चला रहा है।

वंश-परिचय

इस सुंग-परिवार के जन्मदाता श्री चार्ल्स जोन्स सुंग थे। कहा जाता है, वे दक्षिणी चीन के एक टापू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हैनान) के रहनेवाले थे और बचपन में ही विद्याध्ययन के लिए अमेरिका चले गये थे। वहाँ अपने मित्रों की मदद से चार्ल्स सुंग ने उच्च शिक्षा ग्रहण की और वाण्डरबिल्ट-विश्वविद्यालय से स्नातक बने। अमेरिका में प्रवास करते समय ही चार्ल्स सुंग ने बौद्धधर्म का त्याग कर ईसाई-मत की दीक्षा ले ली थी। शिक्षा की समाप्ति के बाद वे चीन लौट आये और शंघाई में रहकर अँगरेज़ी का अध्यापन कार्य करने लगे। साथ ही ईसाई-मत का प्रचार भी जारी रहा। शंघाई में पर्याप्त प्रसिद्धि पा लेने के बाद चार्ल्स सुंग ने शिक्षण का यह कार्य छोड़ दिया और चीनी भाषा में बाइबिल का अनुवाद कर उसके प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया। उन दिनों चीन में ईसाई-मत की लहर नई-नई चली थी, अतः चार्ल्स सुंग को इस व्यवसाय में अच्छा लाभ हुआ और उनका ध्यान अन्य व्यवसायों की ओर गया। शंघाई में रहते हुए ही चार्ल्स सुंग ने नी नाम की एक शिक्षिता ईसाई कन्या से ब्याह कर लिया था। बाद में सुंग-परिवार में ६ सन्तानें हुईं—तीन कन्याएँ व तीन बालक। अनुभवी माता-पिता ने इन छहों सन्तानों की शिक्षा का पूर्ण ध्यान रक्खा और सभी बालकों व बालिकाओं को उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका भेजा। अमेरिका के प्रवास व वहाँ के आज़ाद वायु-मण्डल के कारण सुंग-परिवार के ये ६ रत्न जब शिक्षा पाकर अपने देश को लौटे, तब उसकी आज़ादी के लिए होनेवाली क्रांति में शामिल हो गये। उसी क्रांति का यह परिणाम है कि आज सुंग नाम का यह परिवार चीन देश का यथार्थ में शासक बन रहा है।

एलिङ् व उसके पति

सुंग-परिवार की सबसे बड़ी कन्या का नाम है एलिङ् अर्थात् स्नेहलता। एलिङ् का जन्म सन् १८८८ में हुआ था और अमेरिका की जार्जिया रियासत के वेसलियन कालिज में उसने शिक्षा पाई थी। शिक्षण समाप्त कर जब वह घर लौटी, तब बड़ी लगन के साथ चीनी क्रांति के लिए कार्य करने लगी। एलिङ् ने उन दिनों कुछ समय के लिए डॉ० सनयात सेन के मंत्रित्व का भी काम किया था; किन्तु जब उन दोनों में स्नेह-सम्बन्ध कुछ अधिक बढ़ने लगा, तब उसने यह कार्य छोड़ दिया और डॉ० कुंग नाम के एक चीनी विद्वान् से विवाह कर लिया। डॉ० कुंग यद्यपि ईसाई-धर्म के उपासक हैं, किन्तु वे प्राचीन चीन के सर्वोपरि धर्माचार्य कानफ़ूशस के वंशज हैं। डॉ० कुंग ने अमेरिका के येल-विद्यापीठ में शिक्षा पाई है और चीनी क्रांति के लिए बहुत कार्य किया है। एलिङ् की भेंट डॉ० कुंग से जापान में हुई थी, जहाँ वे एक ईसाई मिशन में कार्य करते थे। आज यही डॉ० कुंग चीन के प्रधान मंत्री हैं और साथ-साथ अर्थसचिव भी। उनकी धर्म-पत्नी एलिङ् सदा उनके राजकार्यों में हिस्सा बँटाती हैं।

डॉ० कुंग अपने देश को संयुक्त, समृद्ध व उन्नत देखना चाहते हैं और इसके लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। उनका परिवार चीन के सर्वाधिक समृद्ध परिवारों में है। सुंग-परिवार से सम्बन्ध हो जाने के कारण तो उस परिवार के ऐश्वर्य में और भी अधिक वृद्धि हुई है। समय-समय पर इन दोनों कुंग व सुंग-परिवारों से चीन की राष्ट्रीय सरकार को भरपूर मदद मिलती रही है। इसलिए भी डॉ० कुंग का देश के प्रधान मंत्री के पद पर होना विशेष महत्त्व रखता है। श्रीमती कुंग एक योग्य, साहसी व इरादे की पक्की स्त्री हैं, तथा चीन के आर्थिक निर्माण में उनका अपना ही स्थान है। व्यापार व व्यवसाय में उन्हें विशेष रुचि है, अतः राजनीति की अपेक्षा उनका ध्यान इसी ओर अधिक जाता है। डॉ० कुंग का बड़ा लड़का डेविड चीन की सेंट्रल ट्रस्ट कम्पनी का सहायक डाइरेक्टर है। इसी कम्पनी की मार्फ़त चीन की सरकार अपना सब सामान ख़रीदती है। ऐसी बड़ी कम्पनी का कार्य-भार नवयुवक डेविड के हाथ में होना स्पष्ट बतलाता है कि कुंग परिवार का उस देश के राजनीतिक व आर्थिक निर्माण में क्या महत्त्व है।

डॉ० सनयात सेन की पत्नी

सुंग-परिवार की दूसरी कन्या का नाम है चिङ्लिङ् यानी आनन्दलता। चिङ्लिङ् की शिक्षा भी अपनी बड़ी बहन की भाँति अमेरिका के वेसलियन कालिज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई है। शिक्षा प्राप्त कर जब वह अपने देश में लौटीं, तब क्रांति के नायक डाक्टर सनयात सेन के मंत्री का कार्य करने लगीं। दोनों की विचारधारा में इतना सामंजस्य था कि यह सम्बन्ध अधिक गहरा हो गया और अन्त में विवाह के रूप में परिणत हुआ। चिङ्लिङ् का स्वभाव नम्र व वाणी मधुर है। रूपराशि की तो वह खान है। उसका जन्म सन् १८९० में हुआ था, किन्तु पचास वर्ष की इस बड़ी उम्र में भी वह बीस वर्ष की युवती-सी जान पड़ती है। क्रान्ति के पहले व बाद में भी डा० सनयात सेन का जीवन कठिन तपस्या का था। चिङ्लिङ् ने उन कठिन दिनों में भी सदा अपने पति का साथ दिया है। डा० सन की अर्धांगिनी होने का उसे बड़ा गर्व है, और वह आज भी देशभक्ति, त्याग व तपस्या की प्रतिमूर्ति है। डा० सनयात सेन के देहान्त के बाद जब चीन के शासकदल कुओ-मिन-तांग में मतभेद पैदा हुआ, तब चिङ्लिङ् ने वामपक्ष से सहमति प्रकट की। उसका कहना था कि चियाङ् काई शेक, डा० कुंग आदि दक्षिणपक्ष के नेता क्रान्ति की यथार्थ भावना को नहीं समझते। वे यद्यपि सनयात सेन को अपना राजनैतिक गुरु मानते हैं, किन्तु उनका दिल पूँजीवादी है, अतः इस नाते से वे ग़रीबों की कठिनाइयों को समझने में असमर्थ रहते हैं। मुझे तो अपने पति के पथ पर चलना है और इस नाते वामपक्ष से सहानुभूति रखना मेरा कर्तव्य है।

इस मतभेद के बाद से चिङ्लिङ् एक तरह से चीन की राजनीति से रिटायर होकर हांगकांग में एकान्त जीवन व्यतीत करती हैं। उनके परिवार के लोगों के पास धन है, समृद्धि है और है देश का सारा शासन-सूत्र, किन्तु चिङ्लिङ् एक सामान्य चीनी महिला की तरह हांगकांग में रहती हैं और हमेशा इस प्रयत्न में लगी रहती हैं कि किस प्रकार उनके देश का शासन समाजवाद के आधार पर आश्रित हो और वह देश जापानी ग़ुलामी की ज़ंजीरों को अपने गले से उतार फेंके। चीन के सर्वेसर्वा चियाङ् काई शेक से चिङ्लिङ् को बड़ी घृणा है; क्योंकि वह कम्यूनिस्टों को अपने देश से निकाल देना चाहता है, जब कि चिङ्लिङ् की खुली सहानुभूति वामपक्ष या कम्यूनिस्टों से है। हांगकांग में दरिद्रता का जीवन व्यतीत करती हुई भी चिङ्लिङ् सदा वामपक्ष के कार्यों में मदद देती रही हैं। यह ख़ुशी की बात है कि अब दो वर्ष से जापानी साम्राज्यवाद से मुठभेड़ लेने के लिए चियाङ् काई शेक चीन के सब दलों का सहयोग प्राप्त कर रहा है। देश के इस आड़े समय में चीन के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० सनयात सेन की धर्मपत्नी चिङ्लिङ् का वामपक्ष भी इस महायज्ञ में पूर्णाहुति देने में जी-जान से लगा है।

चियाङ् काई शेक व उनकी पत्नी

पिछले दो वर्ष से चीन व जापान में घोर युद्ध चल रहा है। इस युद्ध में चीनी सेनाओं का नेतृत्व जनरल चियाङ् काई शेक के हाथों में है। जनरल चियाङ काई शेक न केवल चीन के सेनापति हैं, अपितु वे उस देश के शासनसूत्र के यथार्थ संचालक हैं। वे पहले चीन के प्रधान मंत्री के पद पर अनेक बार रह चुके हैं, किन्तु सैनिक कार्यों में विशेष रुचि होने के कारण देश का सेनासचिव होना वे अधिक पसन्द करते हैं, और वे यह जानते हैं कि जापानी विभीषिका के रहते चीन का सेनापति ही देश के शासन की बागडोर अपने हाथ में रक्खेगा। सुंग-परिवार की तीसरी कन्या मीलिङ् का विवाह चीन के इसी जनरल से हुआ है।

मीलिङ् का शब्दार्थ है सुषमा। इसका जन्म सन् १८९८ में हुआ है और शिक्षा-दीक्षा हुई है अमेरिका के वेलेसली कालिज में। अमेरिका के जीवन का मीलिङ् पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। यहाँ तक कि वह चीन की संस्कृति की अपेक्षा अमेरिका व योरप की संस्कृति को मानव-समाज के लिए अधिक उपयोगी समझती है। सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का मीलिङ् को व्यसन-सा है। बहुधा उसकी योग्यता, शक्ति व स्फूर्ति को देखकर अचरज-सा होता है। वह जनरल चियाङ काई शेक की अनुरक्ता पत्नी है, और सदा उनके कार्यों में विशेष दिलचस्पी लेती है। चियाङ् काई शेक को भी मीलिङ के कर्तृत्व में बड़ा भरोसा है और इसी आधार पर देश के शासन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी अनेक कार्य वह उससे करा लेता है। मीलिङ् एक समय चीन की हवाई सेना की अध्यक्ष भी रही है। उन दिनों उस देश में हवाई सेना का प्रारंभ-सा था। चियाङ् काई शेक ने मीलिङ् को हवाई शिक्षा दी और इस विभाग के संगठन का काम सौंपा। मीलिङ् को इस कार्य में बड़ी सफलता मिली। देश की जनता में वह अधिक आदर का पात्र बन गई। वह एक योग्य सलाहकार व राजनीति में प्रवीण महिला है। विदेशी पत्रकारों व राजदूतों से भेंट का कार्य प्रायः मीलिङ् को ही करना होता है। वह अपने मधुर व आकर्षक व्यवहार द्वारा इस कार्य को इस सुन्दरता से निबाहती है कि जानकार लोग वाह-वाह कह उठते हैं। बहुत-से विदेशी पत्रकारों का मत है कि मीलिङ् का जनरल चियाङ् काई शेक पर इतना अधिक प्रभाव है कि यथार्थ में चीन में जो कुछ होता है, वह मीलिङ् का कराया होता है। किन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। वह अपने पति की सहज परामर्शदात्री है और बहुधा उसका परामर्श बड़े लाभ का होता है। लेकिन अनेक बार चियाङ् काई शेक अपने कार्यों में आज़ादी से भी काम लेते हैं।

सुशिक्षित व समझदार होते हुए मीलिङ् की विचार-धारा अधिक उदार नहीं है। अपने पति के समान वह भी कम्यूनिज़्म की घोर विरोधिनी है। उसका यह विरोध इतना बढ़ गया है कि वह इस विषय का साहित्य भी नहीं पढ़ना चाहती, और इसी कारण अपनी बड़ी बहन चिङ्लिङ् से मिलना भी उसे पसन्द नहीं है। यह होते हुए भी उसमें साहस हद दर्जे का है। वह अपने पति के साथ रहना हमेशा पसन्द करती है, चाहे इसके लिए उसे अपनी जान जोखिम में डालनी पड़े। आज से ढाई वर्ष पूर्व सियान-प्रदेश में चीनी कम्यूनिस्टों के नेता मार्शल चाङ् सुलिहांग ने जब जनरल चियाङ् काई शेक को गिरफ़्तार कर लिया था तो मीलिङ् स्वयं अकेले हवाई जहाज़ पर बैठकर सियान पहुँची थी और कम्यूनिस्टों से अपने पति को स्वतंत्र कराने में कामयाब हुई थी। तब से चीन के कम्यूनिस्ट जनरल चियाङ् काई शेक के साथ मिलकर जापान से मोर्चा ले रहे हैं।

मीलिङ् का चेहरा हँसमुख और स्वभाव सौम्य है। उसे स्थापत्य-कला में विशेष रुचि है। इसके साथ ही देहात-सुधार के कामों में भी वह काफ़ी समय देती है। मीलिङ् के प्रयत्न से चीन के देहात में जगह-जगह नव-जीवन सभाएँ क़ायम की गई हैं, जिनके द्वारा उस देश के गाँवों में संगठन, शिक्षा, सफ़ाई व स्वास्थ्य का प्रबन्ध किया जाता है। उसे अपनी मातृ-भाषा को सरल बनाने की भी चिन्ता रहती है, और इसके लिए वह सदा प्रयत्नशील रहती है। इन अनेक प्रवृत्तियों के कारण ही मीलिङ् का चीन के नेताओं में विशेष स्थान है, और यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि यदि जनरल चियाङ् काई शेक चीन के सर्वेसर्वा हैं तो उनकी पत्नी मीलिङ् उस देश की सर्वाधिक प्रसिद्ध महिला हैं। वस्तुतः इस दम्पति के कारण ही चीन का भाग्य-सूर्य आज चमक रहा है, अन्यथा जापानी कालमेघ के सामने वह कभी का अस्त हो गया होता।

मतभेद

सुंग-परिवार की इन तीन बहनों का चीन देश में इतना अधिक व्यापक प्रभाव होते हुए भी उनमें परस्पर नहीं बनती। एलिङ् व मीलिङ् में परस्पर बड़ा स्नेह है, किन्तु वे दोनों ही मँझली बहन चिङ्लिङ् से विरोध भाव रखती हैं। चिङ्लिङ् चीनी क्रांति के प्रवर्तक डा० सनयात सेन की पत्नी हैं। पति के जीवित रहते चीनी जनता में उसका बड़ा मान था; लेकिन आज अपने विचारों के कारण वह एकांत जीवन व्यतीत करने को बाध्य है। इसके विपरीत उसकी बड़ी व छोटी बहनें चीन के प्रधान मंत्री व सेनापति की पत्नी होने के नाते देश के शासन-सूत्र की सञ्चालिका हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि चीन देश का मौजूदा निज़ाम सुंग-परिवार की मँझली बहन के पति द्वारा प्रारम्भ किया गया था, किन्तु आज उसका संचालन उसकी दो बहनों के पतियों के हाथ में है, यानी जो बीज मँझली बहन चिङ्लिङ् द्वारा बोया गया था, उसका फल एलिङ् व मीलिङ् को मिल रहा है।

अर्थ-सचिव ज़ेवेन

सुंग-परिवार में तीन बहनों के बाद तीन भाइयों का नम्बर आता है। इनमें से बड़े का नाम ज़ेवेन सुंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ज़ेवेन ने अमेरिका के हावर्ड व कोलम्बिया नाम के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई है। वह स्वभाव का थोड़ा ज़िद्दी, लेकिन अत्यन्त मेहनती व हिम्मती है। उसकी सचाई व ईमानदारी की चीन देश में सर्वत्र ख्याति है। ज़ेवेन अर्थशास्त्र का प्रकाण्ड पंडित है, और दस वर्ष तक राष्ट्रीय सरकार का अर्थ-सचिव रहा है। इस अवधि में उसने वहाँ के बजट को संतुलित किया है, चुंगी में सुधार किया है और विविध टैक्सों में कमी की है। चीन की नवीन मुद्रा ज़ेवेन की ही प्रचलित की हुई है, और इसके नियंत्रण के लिए एक पृथक् बैंक खोला गया है। ज़ेवेन ने देश में रिश्वतख़ोरी को बन्द करने का सदा प्रयत्न किया है, और फ़ौजी ख़र्च को घटाने की सलाह दी है। जनरल चियाङ् काई शेक ज़ेवेन की फ़ौजी ख़र्च घटाने की नीति के सदा समालोचक रहे हैं, इसलिए सन् १९३३ से ज़ेवेन ने अर्थ-सचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया है, और अपना स्वतंत्र व्यापार चलाया है।

ज़ेवेन व चियाङ् काई शेक में मतभेद का दूसरा कारण है जनरल की जापान के साथ सहयोग की नीति। ज़ेवेन वामपक्ष के अनुयायी हैं, और इसलिए चीन में जापान के प्रवेश को ख़तरनाक समझते हैं। चीन के वर्तमान राष्ट्रीय नेताओं में अकेले ज़ेवेन ही ऐसे हैं, जो सदा जापान से मोर्चा लेने के पक्ष में रहे हैं। सन् १९३३-३४ में वे अपनी स्वतंत्र सेना लेकर एक दफ़ा जापान से भिड़ भी चुके हैं, यद्यपि चियाङ् काई शेक के विरोध के कारण इस लड़ाई में उन्हें काफ़ी हानि उठाकर पराजय का मुँह देखना पड़ा था। गत दो-तीन वर्ष से चीन व जापान में जो संघर्ष जारी है, उसका श्रीगणेश भी शंघाई में ज़ेवेन के मकान पर एकत्र चीनी सेनापतियों की मंत्रणा से हुआ था। बाद में जनता के तीव्र आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप जनरल चियाङ् काई शेक को इस संघर्ष का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ा। इस विरोधिनी नीति के कारण ही जापानी सेना-विभाग ज़ेवेन को चीन का सबसे अधिक ख़तरनाक व्यक्ति समझता है। इन दिनों ज़ेवेन चीन की हवाई सेना का अध्यक्ष है और बड़ी सरगर्मी से जापानी सेनाओं पर हमला करने के लिए तत्पर रहता है।

ज़ेवेन का अपनी मँझली बहन चिङ्लिङ् से बड़ा स्नेह-सम्बन्ध है। हो भी क्यों न? सारे परिवार में केवल उन्हीं दो में विचार-साम्य है। ज़ेवेन व चिङ्लिङ् दोनों कम्यूनिस्ट विचारों के हैं और धनी परिवार में जन्म लेकर भी केवल विचारों के कारण उन्हें दरिद्रता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है; लेकिन वे दोनों इस जीवन में भी प्रसन्नचित्त दिखाई देते हैं। ज़ेवेन प्रायः हांगकांग जाकर अपनी बहन से मिलता है और समय-समय पर उसकी आर्थिक सहायता भी करता है। उग्र राष्ट्रीय विचारों के कारण ज़ेवेन का चीन में बड़ा आदर है, यद्यपि क्रियात्मक दृष्टि से बहुत-से लोग उसके विचारों से सहमत नहीं हैं।

अन्य दो भाई

सुंग-परिवार के दूसरे भाई ज़ेलिहांग की शिक्षा अमेरिका के वाण्डरबिल-विश्वविद्यालय में हुई है। वे चीन देश के प्रसिद्ध व्यवसायी व व्यापारी हैं, और उनकी गणना देश के अन्यतम धनियों में की जाती है। ज़ेलिहांग चीन के केन्द्रीय बैंक के डाइरेक्टर व वाम्पोआ फ़ौजी कालिज के संचालकों में है। देश की राजनीति से वे असम्बद्ध-से हैं। लेकिन जब से चीन-जापान का परस्पर युद्ध शुरू हुआ है, राष्ट्रीय सरकार को लड़ाई का सामान मुहय्या करने में वे अग्रसर हैं। तीसरे भाई ज़ेअन ने भी अमेरिका में शिक्षा पाई है। वे यद्यपि अभी नवयुवक ही हैं, किन्तु देश के नमक-व्यापार का एकाधिकार जिस कम्पनी के हाथ में है, उसके प्रबन्ध में ज़ेअन का बड़ा हाथ है।

शासक-परिवार

इस प्रकार स्पष्ट है कि चीन के शासन का अधिक बोझ सुंग-परिवार व उससे सम्बद्ध कुछ व्यक्तियों के कन्धों पर है। शासन के अतिरिक्त उस देश के आर्थिक नियंत्रण में भी इस परिवार का बड़ा दायित्व है। कहा जाता है, यह सुंग-परिवार चीन का सबसे अधिक समृद्ध परिवार है। इस परिवार में भी देश के प्रधान मंत्री डॉ० कुंग के कुटुम्बी व ज़ेलिहांग सुंग अपेक्षाकृत अधिक धनी हैं। अकेले कुंग-कुटुम्ब के पास ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीस-पचीस करोड़ रुपये की सम्पत्ति कूती जाता है। आज चीन की राष्ट्रीय सरकार व उसके सेनापति जनरल चियाङ् काई शेक जो निश्चिन्त होकर जापान से मोर्चा लेने में लगे हैं, उसमें इस सुंग-परिवार का ही धन अधिक मदद दे रहा है। फिर इस परिवार के भिन्न-भिन्न व्यक्ति जो राजनीतिक व सैनिक मदद देश की कर रहे हैं, उसका तो बखान ही नहीं किया जा सकता।

विवशता

श्री जयनाथ नलिन

मैं देख रहा हूँ विवश, प्रवाहित होते कलकल स्नेह-धार,
मैं देख रहा हूँ भिक्षुक-सा, लुट रहा मुक्त-हाथों दुलार।
दे रहीं निमंत्रण पीने का, मतवाली लहरें बार-बार,
मैं खड़ा किनारे बन्दी-सा रह जाता हूँ मन मार-मार।
मैं देख रहा हूँ सजल घटाओं की उमड़ी-घुमड़ी बहार,
मैं देख रहा चिर तृषित, बरसती सावन की रिमझिम फुहार।
मैं देख रहा, मधु बाँट रही, साक़ी बाला कितनी उदार,
मुझको न बूँद भी मिल पाती, मेरी निष्फल प्यासी पुकार!
आता है मदमाता बसन्त, मुस्काने लगते मृदुल फूल,
मैं फूल न छूने भी पाता, चुभ जाते लाखों विषम शूल।
'कू-कू' कोयल उठती पुकार, जग जाता उर वेदना भूल,
हो जाती मेरे हृदय-पार, वह बन कोयल की हृदय-हूल।
मैं देख रहा हूँ आतुर-सा, जग खेल रहा है प्रेम-फाग,
यौवन-मद-डूबी बालाएँ, मुस्काकर बरसातीं पराग।
गा स्नेह-राग मैं रचूँ रास, ऐसा है मेरा कहाँ भाग,
सब रास-राग उन्माद फाग, बन जाते जीवन के विहाग!
मैं तड़प रहा हूँ चातक-सा जागी प्राणों में प्रबल प्यास,
पी जाने को हो उठा हृदय आकुल वसुधा-भर की मिठास!
मैं छू न सकूँगा एक बूँद कितने व्याकुल! उफ़, विवश प्रान—
सम्मुख लहराता झूम-झूम मादक मदिरा-सागर महान!
कितना व्याकुल! कितना आतुर! कितने ही जीवन में अभाव,
सारे मानस-अरमान बहे जाते, बन-बनकर नयन-स्राव।
मैं विवश विकल ढो रहा आह! अभिलाषाओं का असह भार,
भर-भर आँखों में अश्रु मुझे क्यों देख रहा है आज प्यार!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ इस दिशा में भी

श्रीमूलचन्द अग्रवाल

जैनेन्द्र, प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला आदि की अमर कृतियों से हटकर जब हम हिन्दी-संसार का साहित्य खोलकर बैठते हैं....तो सब खोखला-सा नज़र आता है....। यहाँ-वहाँ रेशम के दो-एक टुकड़े ज़रूर पड़े मिल जाते हैं....और जिनके लिए हम सदैव उन कलाकारों के आभारी हैं....पर इसके अतिरिक्त इस हिन्दी-साहित्य की गठरी में एक तो कुछ है ही नहीं और यदि है भी तो वह कूड़े-करकट से कुछ अधिक नहीं है।

आज हम इस बात के लिए फिर रहे हैं कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो....हम इसके लिए जी-जान से कोशिश कर रहे हैं....पर क्यों? इसलिए कि यह हमारी ख़ुद की अपनी भाषा है।....अपनों से सभी को प्यार होता है....मुहब्बत होती है और अपनों के लिए लोग जान तक दे डालते हैं....फिर आख़िर यहाँ तो महज़ काग़ज़ी घोड़े दौड़ाना है। न जान पर ख़तरा....न कुछ न कुछ....

पर आज यदि सच पूछो....या तराज़ू पर लेकर तौलो....या दिल पर हाथ रखकर ही कहो कितने कह सकते हैं....कि हिन्दी में राष्ट्र-भाषा होने की क्षमता है....। अपना दही सभी को मीठा लगता है। उसे खट्टा बतायेगा भी तो कौन? इने-गिने पन्द्रह-बीस पेपर निकलते हैं और उसमें भी न-जाने कितने कैसे चल रहे हैं....इसे हम आपसे अधिक और समझ ही कौन सकता है।

हिन्दी में सात या आठ दैनिक निकलते हैं.... जिनमें 'आज' और 'प्रताप' की कुछ आवाज़ है!.... पर न तो इनमें कोई समाचार निकलते हैं और न पढ़ने लायक़ लेख! दोनों में ज़रूरत से अधिक विज्ञापन रहता है....और ख़ासकर 'आज' का पहला पेज और आख़िर का पेज तो मानो इसके लिए रिज़र्व है....और तुर्रा यह है....कि आते हैं गिने-गिनाये आठ पेज!....

अधिक लिखना व्यर्थ है....प्रेमचन्द के दो उपन्यास.... प्रसाद की 'तितली' और निराला की 'अलका' लेकर तो हम विश्व में ढिंढोरा पीटते फिर नहीं सकते कि यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा साहित्य....। ज़रा आकर इस साहित्य की झोली में झाँकिए तो आपको मोती-ही-मोती मिलेंगे....ये तो आपने उथले में ही पा लिये हैं।

इने-गिने तो उपन्यास-लेखक हैं और उसमें भी ऐसे हैं, जिनकी पूरी किताब पढ़ने के लिए भी कसरत की आवश्यकता पड़ती है। पूरी दिमाग़ी और दिली ताक़त लगाकर पढ़ने बैठिए तो पढ़ सकेंगे और नहीं तो दस-बीस या बहुत-से-बहुत पचास पेज पढ़कर छोड़ देंगे। दम भरेंगे कि देखो....मनोविज्ञान की यह सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है....इसके लेखक हिन्दी के एक ही विद्वान् हैं....और साथ-ही-साथ....कुल चार पात्रों को लेकर पूरा ३४० पेज का उपन्यास बना दिया गया है।....और जब तीन रुपये....अड़तालीस आने ख़र्चकर पढ़ने बैठो....तो बीस पेज से अधिक न पढ़ सको।

मैं 'सुनीता' की ही चर्चा कर रहा हूँ। सत्या, हरि-प्रसन्न, सुनीता और श्रीकान्त—इनको ही लेकर हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में स्थान पानेवाली इस रचना की रचना हुई है। इस पर ख़ूब टिप्पणियाँ हुईं और जब मेरे एक मित्र ख़रीदकर पढ़ने बैठे....तो बीस पेज से अधिक न पढ़ सके!....उन्होंने दूसरे को पढ़ने को दी और दूसरे ने तीसरे को। बीस-बाइस हाथों में घूमने के बाद मेरे हाथों में आई....और जब मैंने उसके विषय में अपनी मित्र-मण्डली से पूछा तो केवल दो ही कह सके थे कि उन्होंने धैर्यपूर्वक सब विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए उसे ख़तम किया है!

हमें कला कला की आवाज़ से दूर रहना है।....कला है भी वह किस काम की जो हमें प्राण न दे सके.... हममें रूह न फूँक दे....या हमारा घण्टे दो घण्टे मनोरंजन भी न कर सके! कला हमारे जीवन से पास हमारे जीवन की वस्तु हो....तभी तो हमें छू सकेगी। सुनीता....उठाकर बैठिए तो....आप कितने पेज पढ़ सकेंगे।

हिंदी-पद्य-साहित्य कुछ भरा-सा दिखाई देता है। ढेर से कवि दिखाई पड़ते हैं....और यदि कुछ बन नहीं सके हैं तो दो-चार यहाँ-वहाँ से दोस्तों को इकट्ठा कर....एक तूफ़ान खड़ाकर....अपने नाम का ढिंढोरा पीट....कुछ इसी तरह रास्ता बनाकर घुस पड़े हैं....और वे ऐसे हैं....जिनका नाम सदैव इज़्ज़त के साथ लिया जाता है।

....पर फिर भी पद्य-साहित्य भरा-सा है! चित्र-रेखा, साकेत, यशोधरा, सान्ध्य संगीत, निशा-निमन्त्रण कामायनी आदि ऐसी रचनाएँ हैं, जिन पर किसी भी भाषा को गर्व हो सकता है....पर....यहाँ पर एक और नई बीमारी है....। एक नई अभी हाल ही की निकली हुई एक सुन्दर मधुर पुस्तक है 'यामा'....क़ीमत है ६ रु०। मैंने हिसाब लगाया है कि यदि मैं चार महीने दूध न देखूँ....तो इसे ख़रीद सकता हूँ....। उस परवर-दिगार की क़सम....जिस रोज़ से मैंने किताब देखी है.... उसी रोज़ से दूध पीना छोड़ दिया है....। आज पन्द्रह दिन हो गये हैं....न-मालूम ये पन्द्रह दिन और तीन महीने कैसे कटेंगे।

यदि महादेवी वर्मा या किताबिस्तान प्रेस....या कोई और महोदय मेरे ऊपर कृपा कर सकते हैं तो मैं सदैव उनका आभारी रहूँगा!

तो वाक़ई सवाल यह उठता है कि इस हरी-भरी झोली में जो ये दो-चार मोती लटक रहे हैं....वे सच-मुच क्या हम सबकी पहुँच के बाहर हो जायँ....हम केवल देख-देखकर ललचें....छू लें, पर रख न सकें....। यदि ऐसा है....तो उसका एक सस्ता संस्करण निकाला जा सकता है....जिसमें घटिया काग़ज़ हो....और पेंटिंग्ज़ न हों....पर कम-से-कम सर्वसाधारण के लिए सुलभ तो हो!

अब और आगे बढ़िए....। सब पोल-ही-पोल है.... विज्ञान-सम्बन्धी कोई पुस्तक है ही नहीं....यात्रा, भूगोल....

तो इस अमर साहित्य से दूर एक और भी साहित्य है, जो केवल मनोरंजन की दृष्टि को सामने लेकर लिखा जाता है। यह साहित्य सदैव का साहित्य नहीं, अमर साहित्य नहीं, दिन का साहित्य है और जिसकी ज़रूरत हमें आपको बुरी तरह महसूस हो रही है। एक नये हिन्दी सीखनेवाले को बताइए तो आप क्या पढ़ने की सलाह देंगे। क्या कहेंगे—लो यह 'कंकाल' है....इसे ले जाकर पढ़ना, यह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों में से एक है....। ज़रा दूसरे दिन जाकर पूछिए उसने कितने पेज पढ़े हैं।

मेरे बहुत कहने पर मेरे एक मित्र ने हिन्दी पढ़ी थी....। जब धीरे-धीरे पढ़ने लगे तो मेरे पास पूछने आये 'कोई किताब बताइए तो....जिसमें मन लगे।' मैंने उठाकर उन्हें 'पिपासा' पढ़ने को दे दी। दूसरे दिन किताब लौटाकर बोले, "वल्लाह! आपने भी क्या किताब दी है। सारी ताक़त लगाकर भी २० पेज से ज़्यादा न पढ़ सका! अरे नये-नये पढ़नेवाले हैं! ऐसी बात चाहिए, जिसमें पहले पेज से ही मन लगने लगे।"

और उस दिन मैंने इस कमी को महसूस किया था! कोई ऐसी किताब ही न दिखी जो उन्हें फँसा लेती!....उस दिन मैंने महसूस किया था....कि जिस दिन पहलेपहल मैंने अँग्रेज़ी के उपन्यास....पढ़ना प्रारम्भ किये थे....उस दिन कुछ मेरी भी यही इच्छा हुई थी....मेरी अपने मित्रों से कुछ ऐसी ही माँग हुई थी। कई बार सामाजिक उपन्यासों को लेकर पढ़ने की कोशिश की....पर वहाँ हटना पड़ा....फिर कुछ ऐसे-वैसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखकों के उपन्यास उठाये, पर उन्हें भी रख देना पड़ा....कोई भी १०-१२ पेज से अधिक न पढ़ सका। और फिर क़रीब-क़रीब मैं इस अँग्रेज़ी-साहित्य से उदासीन-सा हो गया था.... कि मेरे एक मित्र ने मुझे एक उपन्यास पढ़ने को दिया—"Mysterious disappearance"

मुझे छः वर्ष पहले का वह दिन ठीक तरह याद है। किताब लेकर बैठा तो विना ख़तम किये उठने की इच्छा ही न हुई!

कहानी बहुत उलझी-सी है....और इसीलिए तबियत उलझी-सी रहती है।....एक महाशय की पत्नी एक पत्र पढ़कर कहीं बाहर जाती है और फिर लन्दन के विक्टोरिया-स्टेशन से इस प्रकार ग़ायब हो जाती है कि कुछ पता ही नहीं चलता। खोई हुई पत्नी को ढूँढ़ने की पति महोदय हर चन्द कोशिश करते हैं, पर उन्हें निराश होना पड़ता है!—

फिर एक दिन एक औरत की लाश लन्दन की प्रसिद्ध नदी टेम्स में पड़ी मिलती है। पूछे जाने पर उपर्युक्त महोदय और उनकी दासी दोनों ही नाहीं कर देते हैं कि वह उनकी खोई हुई निधि नहीं है। पर उपर्युक्त महाशय के मित्र को पूरा शक था कि वह उनकी पत्नी ही है और वह इसी बात को मान आगे बढ़ता है!

फिर एक दिन कहानी और भी उलझ जाती है, जब कि दासी भी इसी प्रकार ग़ायब हो जाती है। मित्र को दासी पर शक होता है और वह उन्हें थिएटर में नौकरी करती हुई मिल जाती है।

यहाँ पति महोदय के नाम उनकी पत्नी का पत्र आता है कि वह अमन-चैन से है; वे उसकी फ़िक्र न करें। यह पत्र मित्र को दिखाये जाने पर, वह इस पत्र को जाली बताता है और इस सूत्र के बल पर वह खोज निकालता है कि यह पत्र दासी द्वारा भेजा गया है!

कहानी अपनी पूरी शक्ति से दौड़ती जाती है.... और आख़िर के दो पेजों में ख़ूनी का पता चलता है....और वह निकलता है उसका पति। पुलिस जब पकड़ने जाती है तो उसकी लाश मिलती है। वह ख़ुद आत्महत्या कर लेता है....और मित्र के नाम एक पत्र लिख जाता है, जिसमें वह अपना अपराध स्वीकार कर लेता है!

उपन्यास इतना अच्छा था कि लेकर छोड़ने की इच्छा ही नहीं हुई। फिर एक और उपन्यास जासूस-सम्राट् ब्लेक और उनकी मधुर प्रतिद्वन्द्विनी अमेलिया की दो-दो चोंचों का पढ़ा था। वह भी मुझे बहुत अच्छा लगा।

मुझे तो कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि जिस प्रकार घर के ज़नानख़ाने या सबसे सुन्दर स्थान में घुसने के लिए....दरवाज़े पर दरवाज़े....सीढ़ियों पर सीढ़ियाँ लाँघनी पड़ती हैं....उसी प्रकार साहित्य के मधुर प्रांगण में पहुँचने के पहले देहली और दरवाज़े को पार करना आवश्यक-सा हो जाता है। विना इनको पार किये घर के आँगन तक पहुँचना असम्भव-सा ही है। तेरहवीं सीढ़ी पर चढ़ने के लिए पहली और बीच की सीढ़ियों पर चढ़ना उतना ही आवश्यक है, जितना मनुष्य के शरीर के लिए भोजन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो एक सीधा-सादा-सा ख़्याल है कि आँगन बनाने के पहले देहली तो बनानी ही पड़ती है....इसलिए आँगन से पहले देहली ही क्यों न बनाई जाय....जो इस विस्तृत संसार के कोने-कोने में सदैव से होता आया है। घर बनाने के पहले नींव को सुदृढ़ करना आवश्यक-सा जो है। आज मैं जानता हूँ कि ये दलीलें....ये कहावतें कुछ थोथी-सी हो चली हैं....इनके रोज़ के उपयोग ने इन्हें मार-सा डाला है, पर यह भी सत्य है कि इनका रोज़मर्रा उपयोग में आना ही इनकी सचाई का जीता-जागता उदाहरण है।

तो अपने साहित्य को सुन्दर और सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस दिशा में भी कुछ कार्य करें। अपने साहित्य के बाहरी रूप को इस प्रकार सजावें कि वह देखने में ही सुन्दर और आकर्षक जान पड़े। इस अपने हमारे स्वयं के साहित्य में हम वह एक चुम्बकीय शक्ति भर दें कि लोग दौड़ते हुए हमारे साहित्य की ओर आवें और किताबें पढ़ें। यही कुछ किताबें पढ़ दूसरों से इनकी प्रशंसा करें।

उपर्युक्त किताब, जिसकी मैंने कहानी कुछ थोड़े से रूप में दी है, अब तक ३५ बार छप चुकी है! एक और किताब है Missing Million 'खोया हुआ करोड़पति'। इसके लेखक हैं—Edgar Wallace। आज तक इस किताब के ५० संस्करण हो चुके हैं। इसके लेखक के लिए लंदन का एक प्रसिद्ध पत्र लिखता है—

It is impossible not to be thrilled by Edgar Wallace'.

× × ×

बनारस के प्रकाशकों ने इस दिशा में कुछ कार्य किया है और जिसमें लहरी-बुकडिपो का पहला नाम आता है। 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्तासन्तति' के क़रीब २५ संस्करण हो चुके हैं, और आज भी ये २८ भाग उसी चाव से पढ़े जाते हैं, जिस चाव से आज से कोई दस वर्ष पूर्व पढ़े जाते थे। कहते हैं, केवल इसे पढ़ने के लिए ही लोगों ने हिन्दी सीखी थी। फिर आज तो इसके उर्दू में भी कई संस्करण हो चुके हैं।

लाल पंजा, मृत्यु-किरण और सफ़ेद शैतान अपने ढंग के निराले ही उपन्यास हैं। आप इन्हें वैज्ञानिक उपन्यास भी कह सकते हैं। जिस मृत्यु-किरण (Death Ray) का स्वप्न इसके लेखक ने आज से कोई पाँच वर्ष पूर्व देखा था....आज वह इस युद्ध में क़रीब-क़रीब सच ही दिखाई दे रहा है।

इसी प्रकार अँगरेज़ी भाषा में भी १८०० के क़रीब एक उपन्यास लिखा गया था। किताब का नाम था 'समुद्र के गर्भ में २० हज़ार यात्राएँ।' इस पुस्तक में लेखक ने पनडुब्बी जहाज़ों का वर्णन किया था....और यही पनडुब्बी जहाज़ सन् १९१४ के विश्वव्यापी युद्ध में ब्रिटिश सल्तनत के ख़िलाफ़ सबसे भयंकर शस्त्र था!

राहुलजी ने भी यात्रा-सम्बन्धी तीन या चार उपन्यास लिखे हैं....पर जो क़रीब-क़रीब नहीं के बराबर हैं। 'जादू का मुल्क', 'सोने की ढाल', 'विस्मृति के गर्भ में' आपके अपने ढंग के निराले ही उपन्यास हैं। इन्हें उठाकर फिर छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की खोज के बारे में कोई उपन्यास भी नहीं है....उपन्यास लिखना तो दूर....अनुवाद तक नहीं है। हिमालय-पर्वत पर आज इतनी चढ़ाइयाँ हुईं....उनमें से एक का भी विस्तृत वर्णन हमारे सामने नहीं है....आफ़्रिका के गर्भ में जो इतने भीषण उत्पात हुए....उन तक का लेखा भी आज हमारे पास नहीं है।

दूर जाने की आवश्यकता नहीं। "विश्व-इतिहास की झलक" को छोड़ आज कोई विश्व-इतिहास की पुस्तक भी तो नहीं है। और यदि यह पुस्तक भी है....तो इस पर हमारा कोई ख़ुद का दावा नहीं है....यह पुस्तक एक दूसरी भाषा से अनुवादित है।

विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों की मैंने खोज की। दो या चार उपयोगी पुस्तकों को छोड़ मुझे कोई ऐसी पुस्तक ही नहीं मिली, जिस पर हम आज गर्व कर सकते।

तो आख़िर दो उपन्यासों को लेकर ही तो हमारे साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता! हमें इन सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशाओं में भी तो कुछ प्रयत्न करना है। भारत की प्रगतिशील प्रकाशक संस्थाएँ यदि इस पर ध्यान दें.... तो सम्भव है कुछ हो भी सके। मेरा तो सरस्वती-प्रेस, गंगा-पुस्तकमाला, नवलकिशोर-प्रेस, इण्डियन-प्रेस, सस्ता-साहित्यमण्डल, हिन्दीरत्नग्रंथाकर आदि प्रकाशक संस्थाओं से अनुरोध है कि वे इस पर ध्यान दें और अपने पग इस ओर बढ़ाकर 'कुछ इस दिशा में भी' प्रयत्न करें।

× × ×

मेरे मित्रों ने स्वयं इस विषय पर ध्यान देना शुरू किया है और उन्होंने मुझे आशा दिलाई है कि इस दिशा में वे जो भी कुछ कर सकेंगे, उठा न रक्खेंगे।

इधर कुछ हिन्दी के लेखकों से इस विषय पर मेरी बातचीत हुई थी और उन्होंने जो भी संस्था यह बीड़ा उठावेगी, उसे सहायता देने का वादा किया है।

जासूसी उपन्यास या विचित्र घटनाओं के उपन्यास बहुत सस्ते-से-सस्ते में प्रकाशित किये जायँ और इन उपन्यासों का पाकेट एडीशन निकले। क़ीमत भी अधिक-से-अधिक हो आठ आने। ट्रेन में....सफ़र करते समय....पिकनिक में जाते समय ये उपन्यास बहुत उपयोगी साबित होंगे।

मेरे मित्रों ने स्वयं Edgar Wallace के कुछ उपन्यासों का अनुवाद किया है। उसमें भारतीय रुचि और संस्कृति का खासा ध्यान रक्खा गया है....और साथ-ही-साथ राहुलजी के उपन्यासों के समान ही उन्हें भारतीय बाना पहना दिया गया है, जिससे पढ़ने और समझने में सहूलियत हो।

यदि हो सका तो 'माधुरी' के ही अगले किसी अंक में 'सफ़ेद रीछ का शिकार', जो कि एक पार्टी ने उत्तरी ध्रुव के आसपास ही किया था, लिख भेजूँगा। 'उत्तरी ध्रुव की यात्रा' पर जो मैं पुस्तक लिख रहा हूँ, उसका यह एक टुकड़ा होगा।

× × ×

हम ग़रीब हैं। आठ-आठ, दस-दस आने की किताबें ही हम ख़रीदकर पढ़ सकते हैं। ६ रु० की किताब ख़रीदने के लिए मेरे-जैसे विद्यार्थी को भी चार महीने के लिए दूध बन्द कर देना पड़ा है, फिर और लोगों की तो बात ही क्या।

मैं फिर से उन सबका, जो इस 'यामा' से सम्बन्धित हैं, ध्यान आकर्षित करते हुए कहता हूँ कि दूध न मिलने से मैं पन्द्रह रोज़ में सेरभर घट गया हूँ। यदि उन व्यक्तियों में से या अन्य किसी व्यक्ति को मेरे साथ सहानुभूति है....तो वे किताब भेज दें.... मैं उनका सदैव आभारी रहूँगा। सच, इसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वी० जी० वैशंपायन

"सुरभी, द्रौपदी, या सैरन्ध्री। क्या फ़र्क़ है इन तीन पात्रों में? सुरभी का नाट्य वेश है द्रौपदी, और द्रौपदी का छद्म वेष है सैरन्ध्री। कितने वर्षों बाद कल उसे स्टेज पर देखा।" विनय सिगरेट जलाकर फिर भूत काल के उन मधुर स्वप्नों में घुल-मिल गया।

'मेडिकल स्कूल की जिन्दगी। वही जो जीवन का स्वर्णयुग था। पैसा हाथ का मैल था और पढ़ना घर से पैसा मँगाने का साधन। सुरभी उसी स्वर्ण-युग की थी खोज। बस, एक ही बार में सब कुछ दे बैठा उसे पाने के लिए। वह प्रेम का प्याला हाथ में आया। अभी होठों से लगाने को उसे उठाया ही था कि........"

इतने में पीछे से किसी ने पुकारा, "विनय बाबू!"

विनय मानों चौंक पड़ा—"यह क्या रंगमंच की सैरन्ध्री का चीत्कार! नहीं, नहीं; यह तो स्वयं सुरभी है। अरे! पर यह क्या, जो रूप अपने में न समाता था, वह आज वेदना के सहारे टिका है।

सुरभी ने हाथ बढ़ाया। विनय का हाथ उससे जा मिला।

"बैठि..ए," विनय ने कहा।

वर्षों बीत जाने पर भी विनय आज यह न भूल सका कि कभी उसकी सुरभी से घनिष्ठता थी, मित्रता थी, जहाँ न सामाजिक शिष्टाचार की जरूरत थी और न सभ्यता की। पर वह अपनापन भी आज कुछ भूली-सी स्मृति बन गया है। इसी कारण तो......

"विनय बाबू, वर्षों बाद हमारी मुलाक़ात हुई और वह भी ऐसी अचानक, जिसका कभी स्वप्न में भी ख़याल नहीं था। क्या आप कभी सोच सकते थे कि मैं डॉक्टरी पास करने पर भी रंगमंच का आश्रय लूँगी। पर मैं क्या करती? मैं तो स्थायी जीवन से सुखी नहीं थी और न संतुष्ट ही। मैं चाहती थी रोमांस। वह मुझे डॉक्टरी में नसीब न हुआ। मैंने सिनेमा-स्टार बनकर अपनी वह इच्छा पूरी करनी चाही। जीवन के मधुमय क्षण कुछ ऐसे ही बीते। पर फिर मन में, हृदय में एक अशान्ति उत्पन्न हुई। तय किया देश-विदेश घूमना। आखिर इस नाटक-कम्पनी से सौदा तय कर हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहर घूमने निकली।" यह कहकर सुरभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँस पड़ी। पर आज उसकी हँसी में न तो वह मस्ती थी और न आकर्षण।

कुछ ठहरकर उसने कहना प्रारम्भ किया—"आह! वे दिन कैसे थे विनय बाबू। ताज की सैर और वह भी चाँदनी रात में। तुम मेरे कितने निकट आ गये थे। सिर्फ़ हँसी-हँसी में प्रेम का अंकुर जग गया। मैंने कुछ चाहा, तुम तैयार हुए। तुमने प्रेम किया और मैं भी उससे जलने लगी।"

"सुरभी, अब उन सब बातों को दुहराने से क्या लाभ? मेरी ऊँची-ऊँची रंगीन आशाओं को तुमने ही तो मिट्टी में मिलाया। नहीं तो, नहीं तो......" विनय ने दोनों हाथों से चेहरा ढक लिया।

सुरभी ने आँखें नीची कर लीं। आँखों ने हृदय की व्यथा को सींच दिया। उसने आँखें पोंछते हुए कहा—"ठीक कहते हो विनय बाबू। उस समय मैं अनुभव-शून्य थी। वास्तविकता और कल्पना को मैं एक ही समझती थी। मैं विश्वास करती थी कि मेरे हठ के आगे दुनिया आत्म-समर्पण कर देगी। अब वर्षों के अनुभव ने मुझे मेरी भूल दिखा दी है। मैंने समझ लिया है कि दाम्पत्य जीवन के बिना मानव-जीवन सुख और शान्ति नहीं पा सकता। और, उसका साधन है विवाह। कभी मैं समझती थी कि स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध केवल भोग-विलास के लिए है। मेरा विश्वास था कि विवाह केवल वासना-तृप्ति का क़ानूनी तरीक़ा है। फिर यह सब क्यों? वह प्यास तो बिना विवाह के भी बुझाई जा सकती है। अब वर्षों इस प्रकार जीवन बिताने पर मुझे अनुभव हुआ है कि इस प्यास के परे भी मानव-जीवन की कुछ प्यास है। उसकी पूर्ति वासना की तृप्ति से नहीं होती। उसे तो एक ऐसा व्यक्ति चाहिए, जो उसके दुःख-सुख का साथी बन सके; जिसके सामने वह अपना हृदय खोल सके।

कुछ देर ख़ामोशी, उसके बाद सुरभी ने फिर कहना शुरू किया—"कभी जीवन में उन्माद का तूफ़ान उठा था, और कुछ वर्षों बाद आई पश्चात्ताप की बारी। परन्तु उस समय तुम कहाँ थे? एक दिन तुमने मुझे स्वीकार करना चाहा था; परन्तु उस विवाह को मैंने ठुकरा दिया था। लेकिन जब मैं तुम्हारे पास आने को व्याकुल हुई, तब तुम्हारा पता न था। तब से न-जाने कितनी पश्चात्ताप की रातें तुम्हारी बातें सोचने में ही मैंने जागकर गुज़ारी हैं। इच्छा थी, एक बार तुम मिलो तो अपने उस पाप का प्रायश्चित्त कर डालूँ। आह! वर्षों बाद आज मेरी साध पूरी हुई। मैं तुमसे विवाह......"

इतने में किसी ने दर्वाज़े की आड़ से पुकारा—"सुनते हो जी!" एक स्त्री गोद में बच्चा लिये अन्दर घुस आई, पर वहाँ एक स्त्री को बैठा देखकर वह ज़रा घूँघट निकालकर वहीं ठिठक गई।

सुरभी उसे देखती ही रह गई। फिर उसने पुकारा—"विनय बाबू..." वह उठकर धीरे-धीरे कमरे से बाहर चली गई।

विनय देखता रहा। फिर उसने मन-ही-मन कहा—"अब वह फिर न लौटेगी।"

श्वेत कुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण, मैं औरों की भाँति झूठी प्रशंसा नहीं करता। यदि इस जड़ी के तीन ही बार के लेप से श्वेत कुष्ठ जड़ से दूर न हो, तो दूना दाम वापस दूँगा। जो चाहें -) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)

पता—महावीर-औषधालय,
४० मिश्रटोला, दरभंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशील साहित्य

श्रीराजकिशोरसिंह विद्यार्थी

प्रगति—प्र+गति, अर्थ तो साफ़ है पर प्रगति शब्द है, बड़ा व्यापक। आज इसके तरह-तरह के अनेकों अर्थ लगाये जा रहे हैं। प्रगतिशील साहित्य का अर्थ कुछ लोग मजदूरों के आन्दोलन, क्रांति की बातें और सेक्स-सम्बन्धी साहित्य समझते हैं। पर प्रगतिशील साहित्य इतना संकुचित नहीं। ये प्रगतिशील साहित्य की कुछ शाखाएँ भर हैं।

प्रगतिशील साहित्य वह है, जिसमें गति हो। पर वह गति नहीं, जो तेली के बैल में है। बल्कि वह गति, जो दुनिया की गति के साथ हो। वह गति नहीं, जो यों ही हवा में उड़ा करे। वह गति, जो असलियत पर स्थित हो और दुनियां के साथ चले। प्रगतिशील साहित्य वह है, जो परिधि बनाने के बदले, रूढ़िगत परम्परा को तोड़-फोड़कर ज़माने की पुकार के साथ आगे बढ़ता है, कभी ज़रूरत पड़ने पर उसे राह भी दिखाता जाता है। अन्तर की सुषुप्त भावनाओं को उत्तेजित कर देना ही यथेष्ट नहीं। इस तरह वे पथभ्रष्ट भी हो सकती हैं।

स्वयं प्रगतिशील साहित्यिकों में कुछ लोग ऐसे हैं, जो 'प्रगति' का प्रयोग बहुत ही संकुचित अर्थ में करते हैं। कुछ केवल एग्रेसिव ही को प्रोग्रेसिव समझते हैं। पर साहित्य-प्रसार के इस ज़माने में अनुशासन के साथ-साथ कुछ उदारता से भी काम लेना होगा।

कन्ट्रास्ट का साहित्य

मियाँ-बीबी चमचमाती हुई कार पर अपने विलायती कुत्ते से खेलते चले जा रहे हैं, पूरे मस्त और बेफ़िक्र और उसी कार से दबकर सड़क पर भीख माँगता हुआ भिखारी का लड़का घायल होकर चीख उठता है। या दो भाइयों में से एक किसी कारखाने का बाबू होकर मजे उड़ाता है और दूसरा, जिसे वह पहचान भी नहीं पाता, उसी की मातहती में सिर पटककर भी मजदूरी नहीं पाता, भूखों मरता है। इस तरह के तथा दूसरे पढ़नेवालों के दिलों में दया या असन्तोष के भाव उत्पन्न करनेवाले साहित्य को—उस साहित्य को, जिसमें समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अन्याय, रूढ़ियों के परम्परागत बन्धनों और उनके शिकार लोगों का चित्र खोलकर इसलिए रख दिया गया हो कि पढ़नेवाले या तो उस पात्र से कुछ सहानुभूति प्रकट कर दें, या उन बन्धनों के प्रति उनके दिलों में कुछ असन्तोष पैदा हो, हम प्रगतिशील साहित्य का आरम्भ कह सकते हैं। इस तरह के साहित्य में कोई विशेष प्रगति नहीं। यह प्रगति का मार्ग कुछ तैयार कर देता है, यह बात मानी जा सकती है।

असलियत

प्रगतिशील साहित्य का आधार होते हुए भी जब उसमें कुछ गति हो, तभी वह प्रगतिशील कहा जा सकता है। यह क्या कि एक अमीर और दूसरा ग़रीब । यह सब हम रोज़ ही तो देखते हैं। 'प्रगतिशीलता' के नाम पर आप साहित्य को कूड़ा-करकट से भर दें, यह ठीक नहीं।

किसान-मजदूर और क्रान्तिसम्बन्धी भावुकता-पूर्ण साहित्य केवल अपने विषय ही के कारण प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। "उलट दो, मार दो, काट दो, क्रान्ति कर दो," इस तरह की आवेश-पूर्ण चीज़ों को प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। यह तो बच्चों की दौड़ है, जो ज़रा-सी ठोकर लगी और गिरकर विलाप करने लगे।

व्यक्तिगत प्रगति

प्रगतिशील साहित्य वह है, जो न केवल लेखक को, बल्कि पढ़नेवालों को, सारी दुनिया को गति प्रदान करे। ऐसा साहित्य, जो एक आदमी की भावुकता, उसकी महत्त्वाकांक्षा को उभाड़कर या यों कहिए कि उसे अवसरवादी बनाकर हिटलर बना दे। जो आगे चलकर कुछ ही दिन बाद अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नेशन और राष्ट्र के नाम पर सारी दुनिया की प्रगति को रोक देने की कोशिश करे, दुनिया को १००० वर्ष पीछे खींच ले जाय, उसे कोई प्रगतिशील साहित्य कैसे कह सकता है?

सेक्स और प्रगति

प्रगतिशील साहित्य में सेक्ससम्बन्धी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी जानते हैं कि जो चीज़ जीवन का जनक या कारण है, उसका ज्ञान कितना आवश्यक है। उसकी उपेक्षा करने, उसका सम्यक् ज्ञान न होने, मूर्खता के कारण युवकों को तत्सम्बन्धी साहित्य के अध्ययन से रोक रखने आदि के कुफल को हम लोग काफ़ी भुगत चुके हैं और अब भी भुगत रहे हैं। जीवित रहने के लिए काम-शास्त्र का ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। अगर प्रगतिशील साहित्य उस पर प्रकाश डालता है, युवकों को ऐसे साहित्य के अध्ययन की सम्मति देता है, ऐसा साहित्य तैयार करता है, तो हमें उसे कोसने के बदले उसका स्वागत करना चाहिए।

उद्देश

प्रगतिशील साहित्य का उद्देश है, दुनिया की प्रगति में जो देश, राष्ट्र, समाज और सम्प्रदाय पीछे पड़ गये हैं, उन्हें आगे बढ़ाकर संसार की गति के साथ-साथ लगा देना। इसके लिए वह यह भी कर सकता है कि जो लोग ग़लत रास्ते पर ग़लत तरीक़ों से आगे बढ़ गये हैं और इस तरह विश्व की प्रगति में बाधा उपस्थित कर रहे हैं, उन्हें रोककर 'हाल्ट' का आर्डर दे, और साथ-साथ चलने को लाचार करे।

इसलिए प्रगतिशील साहित्य प्रोग्रेसिव के साथ-साथ एग्रेसिव और कन्स्ट्रक्टिव होने के पहले डिस्ट्रक्टिव भी हो सकता है।

दो चित्र

एक, फटेहाल औरत, गोद में अपने नवजात शिशु को दबाये चली जा रही है। बच्चा रो रहा है। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। मांस और चीथड़ों का ढेर-सी वह आकर सेठजी के दरवाज़े पर हाथ फैला देती है, एक रोटी के लिए। बच्चा भूखा है। स्तन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध नहीं है। नौकर आता है और डाँट-फटकार कर उसे निकाल देता है।

दूसरा, डाकुओं का एक गिरोह बन्दूक, पिस्तौल और भाले-बर्छी से लैस आकर सेठजी को डरा-धमकाकर बड़ी आसानी से खज़ाने की कुंजी माँग लेता है और धन लेकर चल देता है।

कहाँ प्रगति है? पहले चित्र में या दूसरे में। औरत भूख से व्याकुल होकर बच्चे सहित, नहीं तो उसका बच्चा तो अवश्य ही मर जा सकता है। दूसरे चित्र में दोनों मज़े में रहे। बाहर से हिंसात्मक देख पड़ते हुए भी यह दूसरा चित्र पहले से अधिक अहिंसात्मक है।

प्रगति और वाद

प्रगतिशील साहित्य किसी 'वाद' का समर्थक और प्रचारक नहीं। वह विश्ववाद, ज़माने की पुकार है। वह एक को बहुत दूर पशुता से भी पीछे ढकेल-कर उसी के मूल्य पर दूसरा जो इतना आगे ग़लत रास्ते पर बढ़ गया है, उसकी प्रतिक्रिया से पैदा हुआ फल है। यह सिर्फ़ पीछेवालों को आगे बढ़ाना ही नहीं चाहता, बल्कि आगे बढ़े हुए भावुक पथिकों को, जिनके अगले क़दम पर ही गहरी खन्दक है, बचाना चाहता है। वह पिछड़े, पर अब जाग्रत् लोगों से कहता है कि "आगे बढ़ो" और स्तम्भित, चकराये हुए आगेवालों को चेतावनी देता है—ख़बर-दार, वह ग़लत रास्ता है। आगे बढ़े और गढ़े में गिरे! जल्दी रास्ता बदलो और इन्हें भी साथ लेते चलो। साथ-साथ प्रगति-पथ पर आगे बढ़ो।

हिन्दी-साहित्य की प्रगति

हिन्दी में ऐसे लेखक बहुत ही कम हैं, जिन्होंने काफ़ी सोच-समझकर और अध्ययन के बाद प्रगति-शील साहित्य-सृजन की ओर पग उठाया है और क़लम उठाने के दिन से ही प्रगतिशील हैं। नये लेखकों और कवियों में, जिन्होंने प्रगतिशील साहित्य को अप-नाया है, बहुत थोड़े ऐसे हैं, जिनके आदर्श स्पष्ट और सुधरे हुए हैं। नहीं तो अधिकांश ऐसे हैं, जिन्होंने 'लाल' हँसिया-हथौड़ा आदि कुछ नाम सुन लिये हैं और उसी आधार पर मज़दूर-किसानों के हिमायती बने ज़माने भर को कोस रहे हैं। तीसरे प्रकार के हिंदी के प्रगतिशील साहित्यिकों में कुछ थोड़े से वे गुरु-जन हैं, जिन्होंने आरम्भ तो किया था 'गुन गुन' के गाने से प्रिया-विरह में तड़पते हुए, पर इधर चाहे जिस भी वजह से हो, अपना रास्ता बदलकर प्रगति-शीलता की ओर झुक पड़े हैं। हमारे प्रगतिशील साहित्य के Ideological Difference इतने अधिक और उलझे हुए हैं कि कभी-कभी ऐसा मालूम होने लगता है कि यह प्रगतिवाद भी छायावाद और रहस्य-वाद की तरह शायद चन्द दिन ही का मेहमान है। मौत तो सभी की होती है, पर अकाल मृत्यु पर दुःख होता ही है। पर फिर यह सोचकर कि इसकी जड़ हवा में नहीं, बल्कि पूर्ण सत्य और असलियत पर स्थिर है और भविष्य भी काफ़ी उज्ज्वल है, बहुत कुछ सन्तोष हो जाता है।

कुछ प्रगतिशील पुस्तकें

इधर कुछ प्रगतिशील पुस्तकें देखने को मिलीं, जिनमें 'निरालाजी' का 'कुल्ली-भाट'। दिनकर की 'हुंकार', पंत की 'युग-वाणी', बालूपुरी का 'आँखों-देखा', बेनीपुरी का 'लाल तारा', पढ़ीसजी का 'ला-मज़हब' और सुमित्राकुमारी सिन्हा की 'विवाहिता' मुख्य हैं।

'कुल्ली-भाट' उपन्यास और 'हुंकार' कविता-संग्रह, भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से पूरी प्रगति हैं। ज़माने की पुकार ने 'युग-वाणी' के कवि के कोमल स्वर में काफ़ी स्फूर्ति और असन्तोष भर दिया है। बाक़ी चार किताबें कहानी-संग्रह हैं। 'आँखों-देखा', 'ला-मज़हब' और 'विवाहिता' में करुणा, कन्ट्रास्ट आदि प्रगतिशील साहित्य की प्रारम्भिक बातें ही अधिक मात्रा में आई हैं। 'लाल तारा' से मुझे काफ़ी उम्मेद थी, पर अगर इसमें से दो कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अलग कर दें तो फिर वह दूसरे तरह की चीज़ हो जाती हैं। बाक़ी तीन किताबें पूरी-की-पूरी प्रगतिशील साहित्य के अन्दर आ जाती हैं। कुल्ली भाट और युग वाणी के द्वारा हिन्दी प्रगतिशील साहित्य को दो गुरुजन मिले हैं। दिनकर तो शुरू ही से इसे आलोकित कर रहा है। बाक़ी कहानी-लेखकों का भविष्य भी पूर्ण आशामय है और मेरा विश्वास है कि इन क़लमों की भविष्य की चीज़ें बड़े महत्त्व की होंगी।

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाईड

बाजे की पेटी बजाने को सिखानेवाली पुस्तक, ४१ रागों के आरोह, अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०८ प्रसिद्ध गायनों के स्वर-तालयुक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी सहित, तृतीय आवृत्ति, पृष्ठसंख्या २२२, क़ीमत १॥) रुपया, डाक-ख़र्च ॥), विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइये।

लेखक—कै. गुरुजी भास्कर गणेश भिडे इन्दौरकर

गोपाल सखाराम कं०

कालबादेवी रोड बम्बई

नारी के प्रति

श्रीसिद्धेश्वरप्रसादसिंह चौधरी "मंजु"

कितनी निश्छल कितनी पवित्र
तेरी मादकता है जग में ;
कितना सौरभ कितना मधुमय
आकर्षण ह तेरे दृग में।

रहती अतृप्त आकांक्षाएँ
कितनी तेरे अपनाने की ;
आकुलता रहती है प्रतिक्षण
हृत्तन्त्री - तार बजाने की।

स्वप्नलोक के गीत उठें नित
मंजुल वीणा बज जावें ;
अरमान अरे, अन्तर के वे
क्षणभर में आज पुलक जावें।

मैं - तू का भेद न रह पाये
हो जावें एक सुमन - क्यारी ;
तेरी सत्ता मिल जावे री—
मेरी सत्ता में हे नारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

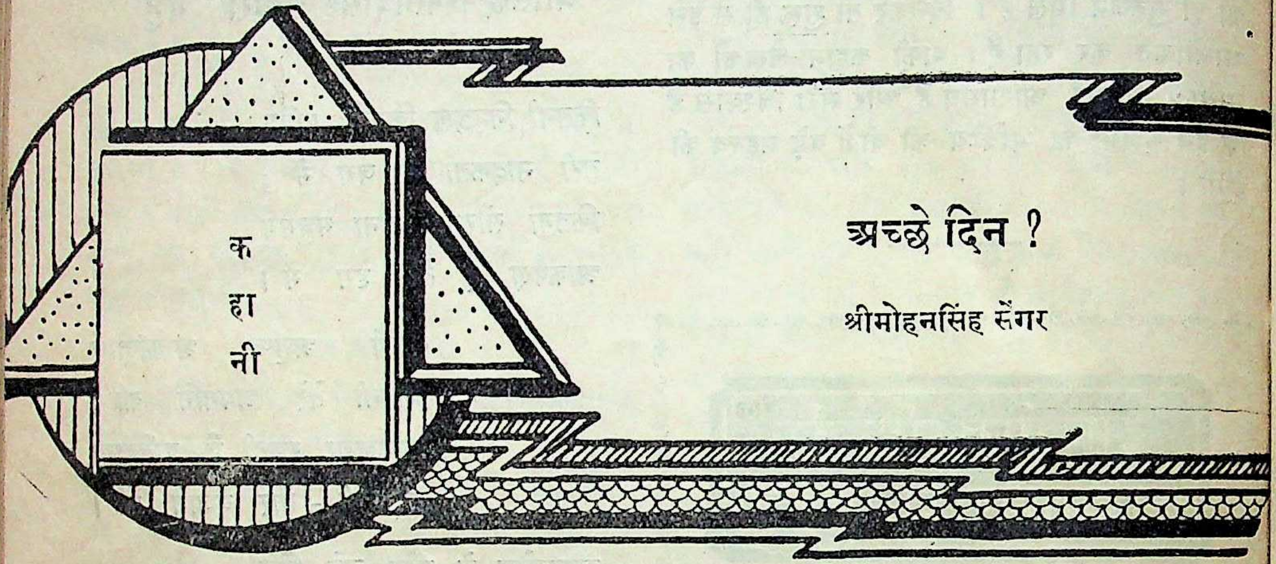

अच्छे दिन ?

श्रीमोहनसिंह सेंगर

[१]

घड़ी ने टन् टन् ११ बजाये। अभी तक रोहेम घर नहीं लौटा था। न-मालूम आज उसे इतनी देर कहाँ हो गई ? सुबह वह कुछ खाकर भी तो नहीं गया। एडा जब उसके कमरे में कॉफ़ी का प्याला लेकर गई, तो मालूम हुआ कि वह कभी का बाहर निकल चुका था। फिर दोपहर का खाना खाने भी तो वह घर नहीं आया। अब तो शाम के खाने का वक़्त भी गुज़र चुका था। पहले तो उसने कभी ऐसा नहीं किया था।

उसकी बूढ़ी मा एडोरीलीन और एडा (पत्नी) अधबुझी अँगीठी के पास बैठी शाम से ही उसका रास्ता देख रही थीं। रोहेम की प्रतीक्षा और चिन्ता में उन्हें भी जैसे भूख नहीं लग रही थी। ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जाती थी, उनकी चिन्ता भी बढ़ रही थी। 'डिज़' की धीमी रोशनी भी उनके चेहरों की मुर्दनी और आकुलता को स्पष्ट-बता रही थी।

रोहेम का ६ वर्ष का लड़का पीटर थोड़ी-सी कॉफ़ी पीकर ही सो गया था। उसे पूरी आशा थी कि आज रोहेम उसके लिए बाज़ार से छोटी-सी बंदूक़ और टैंक ज़रूर लावेगा। पर नींद के आगे वह अपनी इन प्रिय वस्तुओं की प्रतीक्षा अधिक देर न कर सका।

सहसा एक लॉरी आकर रोहेम के मकान के आगे रुकी और दूसरे ही क्षण फ़ौजी बूटों को तेज़ी से खटा-खट करते हुए रोहेम ने दरवाज़ा खोलकर घर में प्रवेश किया। एडा अपनी जाँघ पर से पीटर का सिर उठाकर नीचे रखते हुए बोली—"आज इतनी देर कहाँ लगाई ? हम लोगों की नहीं तो अपने पेट की तो फ़िक्र करनी चाहिए थी।"

"ईश्वर का शुक्रिया अदा कर बेटी कि यह अब भी आ तो गया।" एडोरीलीन ने निराशा और क्षोभ मिली मुस्कराहट के साथ कहा।

न-मालूम क्यों, आज रोहेम कुछ बोला नहीं। वह इतना हँसमुख और मसख़रे स्वभाव का था कि घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँव रखते ही जैसे हँसी का फुहारा छोड़ देता था। रोहेम आते ही पीटर को अपने सिर या कन्धे पर बिठा लेता और एडा तथा एडोरीलीन जब तक मेज़ पर खाने की चीज़ें सजातीं, वह बरामदे में पीटर को लिये नाचा-गाया करता। घर से कई क़दमों की दूरी पर से ही उसकी सीटी सुनाई देने लगती थी और पीटर दौड़कर दरवाज़े पर पहुँच जाता था। पर आज यह सब कुछ भी नहीं हुआ। एडा और एडोरीलीन रोहेम के इस आकस्मिक परिवर्तन का कारण नहीं समझ सकीं।

रोहेम ने अपना ओवर-कोट उतारा और खूँटी पर टाँगने के बजाय चारपाई पर ही डाल दिया। सिर से टोपी भी उतारकर उसने उसी पर पटक दी और दोनों हथेलियों के बीच में सिर रखकर ऐसे बैठ गया, जैसे कुछ गंभीर बात सोच रहा हो। एडोरीलीन और एडा को जब खाने की मेज़ पर बैठे-बैठे कुछ मिनट हो गये, तब भी रोहेम को वहाँ न पाकर उन्हें कुछ चिन्ता-सी हुई। एडोरीलीन ने एडा को इशारा किया कि वह जाकर रोहेम को बुला लावे।

रोहेम की क़मीज़ का एक पल्ला हाथ में लिये उसे खींचते हुए एडा रोहेम को खाने की मेज़ तक ले गई और काँपती हुई आवाज़ में अपनी सास से बोली—"यह खाना खाने को मना करते हैं।"

"मना करता है ?" एडोरीलीन ने आँखें फाड़कर रोहेम की ओर देखते हुए कहा—"मगर क्यों ? कहीं खा आया है क्या ?"

"कुछ तो खा लिया है, मा"—कुर्सी पर पूरे वज़न के साथ बैठते हुए रोहेम ने टूटती हुई आवाज़ में कहा—"और कुछ तबियत ठीक नहीं है।"

"तबियत ठीक नहीं है ? क्यों, क्या हुआ ?"

"हुआ तो अभी कुछ नहीं, पर मालूम होता है शीघ्र ही होनेवाला है। नाश के बादल सिर पर मँडरा रहे हैं।"

"यह तुम क्या कह रहे हो ?"

"ठीक ही कह रहा हूँ" रोहेम ने भरी हुई आँखों से अपनी वृद्धा मा और चिन्ता से पीली पड़ी हुई पत्नी के चेहरों को देखते हुए कहा—"मुझे अपनी नहीं, तुम्हारी फ़िक्र है। मेरे पीछे न-जाने तुम्हारा क्या होगा ?"

एडा की आँखें बरस पड़ीं। एडोरीलीन अपनी कुर्सी छोड़कर रोहेम के पास आ गई और अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुए बोली—"मेरे अच्छे बच्चे, आज तू यह क्या बहकी-बहकी बातें कर रहा है ? साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहता कि बात क्या है ?"

"रूस और जर्मनी में समझौता हो गया है और हमें......."

"क्या कहा रूस और जर्मनी में ? बोल्शेविक रूस और नाज़ी जर्मनी में समझौता ?—ह—ह—ह—ह—ऽ—ऽ—ऽ—। अरे, किस बेवक़ूफ़ ने तुझे यह कहा है ? और तूने इस पर विश्वास भी कर लिया ?"

"यह सच है।"

"सच है ? किसी ने तुझे अच्छा बेवक़ूफ़ बनाया आज। अरे, कभी साँप और नेवले में भी समझौता हुआ है ?"

"अब तक तो मुझे किसी ने बेवक़ूफ़ नहीं बनाया मां, पर तुम ज़रूर बना रही हो।"

"अच्छी बात है, कल सुबह जाकर डॉ० स्मिड्ट से पूछूँगी। उनके यहाँ तो रोज़ बर्लिन का अख़बार आता है न ? माना कि हिटलर की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, लेकिन इतना बौड़म तो वह नहीं कि अपनी क़ज़ा ख़ुद बुलावे।"

"तुम न मानो। रूस जर्मनी की मदद करेगा और जर्मनी....पोलैंड पर हमला ! हमें कल शाम को किसी 'अज्ञात स्थान' पर जाने का हुक्म हुआ है।"

इस बार एडोरीलीन कुछ न बोली। उसके काँपते हुए ओठों से सिर्फ़ इतना ही निकला—"क....ल.... शा....म....को....अ !"

[२]

शेमिट्ज़ नगर में आज सूर्योदय या प्रातःकाल जैसे हुआ ही न हो और सब लोग रात की तरह सो रहे हों, ऐसी निस्तब्धता थी। जब-तब श्मशान की मनहूस नीरवता का स्मरण हो आता था। सड़कों और रास्तों का ट्रैफ़िक पिछली शाम से ही बंद था। बिना एक भी मृत्यु हुए जैसे सब घरों में मातम मनाया जा रहा था ! रोते-बिलखते अबोध बच्चों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा, बहन तथा पत्नियों को छोड़कर आज जर्मनी के 'वीर' सैनिक पोलैंड पर 'विजय' प्राप्त करने जा रहे थे। जिन्होंने कभी चींटी को भी नहीं सताया, वे आज लाखों निर्दोष स्त्री, पुरुषों और बच्चों के ख़ून से अपने हाथ रँगने जा रहे थे। अधिकार का विश्वास और विजय का मोह जैसे मानवता पर हावी हो गया हो। जीवन और जागृति के ये संदेश-वाहक आज मृत्यु और अन्धकार को वरने जा रहे थे। न-मालूम आज इनकी विवेक-बुद्धि कहाँ गुम हो गई थी ?

सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था। अब इधर-उधर कुछ चहल-पहल नज़र आने लगी थी। सैनिकों के जाने का समय आ गया था। फ़ौजी-लारियाँ इधर से उधर चक्कर काट रही थीं। रोहेम अपनी मा और पत्नी से बिदा ले रहा था। पीटर कॉफ़ी का एक टंबलर लाया, जिसे रोहेम गट-गटकर गले से नीचे उतार गया और टंबलर पीटर के हाथों में देते हुए बोला—"पीटर, अपने बाप को भूलोगे तो नहीं ? अब शायद तुम्हारे हाथ से कॉफ़ी पीने का दूसरा मौक़ा न मिले !"

रोते-रोते एडा की हिचकी बँध गई थी। अब वह और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। रोहेम ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"कायर न बनो एडा। मैं जानता हूँ कि मैं कोई बहुत अच्छा काम करने नहीं जा रहा, पर यह इच्छा नहीं—मजबूरी है। मैं पेट के लिए नहीं, प्राणों के लिए जा रहा हूँ। डेनज़िग या कौरीडोर जर्मनी को मिल भी गये तो क्या, न-मालूम मुझ-जैसे कितने प्राणी उनका मूल्य चुकाने में बलि के बकरे बनेंगे। न-मालूम कितनी युवतियाँ विधवा होंगी और कितनी माताएँ पुत्र-विहीन।" कहते-कहते रोहेम आवेश में आ गया था। उसके नथने फूल रहे थे।

"तो फिर तुम जाते क्यों हो ? और सैनिक क्या नहीं हैं ? ईश्वर के लिए तुम न जाओ।"

"लेकिन एडा, जाकर, लड़कर, मरने में कुछ दिन लग ही जायँगे, तब तक तो मैं जीवित कह और कहवा सकूँगा। पर न जाने का मतलब तो यह है कि बिना लड़े ही मुझे अभी एकाध घंटे में ही गोली का शिकार होना पड़ेगा और मेरी लाश इसी घर में तुम लोगों की आँखों के सामने सड़ती नज़र आवेगी, या फिर ज़िन्दगी का एक-एक पल मुझे अपमान, ज़िल्लत और अकथनीय यंत्रणाओं में बिताना पड़ेगा। तुम्हें हिटलर के क़ानून-क़ायदे नहीं मालूम ?"

एडा फिर फफक-फफककर रोने लगी। एडोरीलीन के तो होश-हवास ही गुम थे। पीटर कॉफ़ी का ख़ाली टंबलर हाथ में लिये सजल नेत्रों से कभी अपनी मा और कभी पिता को देख लेता था। और कुछ उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था।

रोहेम के मस्तिष्क में एक अजीब-सा तूफ़ान उठ रहा था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे ? पर उसका कर्तव्य तो पहले ही निश्चित किया जा चुका था। अचानक घर के सामने एक फ़ौजी लॉरी आकर रुकी और दो स्टॉर्म-ट्रूपर्स ने भीतर प्रवेश किया। रोहेम तो तैयार था ही। उसके चेहरे पर उदासी की जगह अब फीकी मुस्कराहट दौड़ गई थी। न-मालूम आदमी अपने आपको यों किसलिए धोखा देता है ? अपनी पत्नी, मा या लड़के की ओर देखे बिना ही रोहेम दोनों आगन्तुकों के साथ घर से बाहर निकल आया। लॉरी उसे लेकर धूल उड़ाती हुई आगे बढ़ गई।

आज शेमिंट्ज़ से सैनिकों को लेकर ६ स्पेशल ट्रेनें प्राग के लिए रवाना होनेवाली थीं। सब सैनिक जलूस बनाकर मार्च करते हुए स्टेशन पर जाने को थे और नागरिकों को आज्ञा हुई थी कि वे उन्हें हर्ष-ध्वनि से बिदा करने और विजय की प्रार्थना करने को अधिकाधिक संख्या में उपस्थित हों। केवल बीमार, अंधे या अपाहिज ही इस कर्तव्य-पालन से मुक्त थे। शेष लोगों में से न आनेवालों पर फ़ी आदमी ७ मार्क जुर्माना किये जाने का ऐलान हो चुका था। लोगों का पेट ही मुश्किल से भरता था। ७ मार्क जुर्माना देना भला किसके बस की बात थी ? पीटर को अपनी उँगली थमाकर एडोरीलीन सैनिकों को बिदा देने के लिए चल पड़ी। उन दोनों के पीछे-पीछे सिसकियाँ भरती हुई एडा पागलों की तरह लड़खड़ाती हुई चली जा रही थी।

सड़क के दोनों ओर स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों की अपार भीड़ थी। बीच में सैनिक चार-चार की क़तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये नई वर्दियों और साज-सामान से लैस होकर अपने बूटों की नालों से सड़क की छाती कँपाते हुए मार्च कर रहे थे। हाथों में रूमाल हिलाते हुए बूढ़ों, बूढ़ियों, युवतियों और बच्चों की हर्ष-ध्वनि (?) से आकाश गूँज रहा था। 'हाइल हिटलर' के नारे कानों के पर्दे फाड़े डाल रहे थे। बैंड का मृत्यु-संगीत इस हर्ष-ध्वनि और सैनिकों के बूटों के शब्द से मिलकर एक ऐसा भयानक शोर पैदा कर रहा था कि न-मालूम कितनों के दिल बैठे जा रहे थे। सैनिकों का वह दरिया जैसे जीवन के अंतिम उफ़ान के साथ डार्डे मारता हुआ बहता जा रहा था। उसे बिदा करने को एकत्र हुई यह भीड़ हर्ष से पागल हो रही थी या विषाद से घुल रही थी, इसे समझनेवाले वहाँ कितने लोग थे ? वहाँ जो कुछ था, वह था आतंक।

एडा की हिचकी अब रुक गई थी। उसकी आँखों का पानी भी शायद सूख गया था। वह बड़ी खोज-पूर्ण दृष्टि से पास से गुज़रनेवाले हरएक सैनिक को ग़ौर से देख रही थी। सहसा उसकी नज़र रोहेम पर पड़ी। अपने साथियों के क़दम-से-क़दम मिलाये वह पत्थर की मूर्ति की तरह अकड़े हुए आगे बढ़ रहा था। एडा आनन्द से चिल्ला उठी—"रोहेम, मेरे प्यारे रोहेम !" और ज्यों ही रोहेम उसके पास से गुज़रने लगा, उसने अपने हाथ का रूमाल उसके मुँह पर फेंक दिया और पागलों की तरह चिल्लाकर बोली—"तुम कब आओगे ? जल्दी ही न ? हाँ, जल्दी आना, वर्ना मैं तो रो-रोकर मर जाऊँगी !"

रोहेम कुछ नहीं बोला। ज्यों का त्यों मूर्तिवत् चलता रहा। इस वक़्त वह ड्यूटी पर था। रुकने, एडा से बात करने या उसके प्रश्नों का उत्तर देने का उसे समय या सुपास ही कहाँ था ? पर कनखियों से उसने एडा की तरफ़ देखा ज़रूर था। फ़ौज का अनुशासन जो था। अस्ताचलगामी सूर्य की किसी किरण ने उसकी आँख में उमड़े हुए पानी को भी शायद चमका दिया था। एडा ने यह देखा था। रोहेम के ओंठ फड़के थे, यह भी उसने देखा था। उसके गले से जैसे ख़ून का एक घूँट नीचे उतरा हो, यह भी उसने देखा था। उसके कन्धे पर रक्खी हुई संगीन लगी हुई राइफ़ल कुछ हिली थी—जैसे उसका हाथ कुछ काँपा हो—यह भी एडा ने देखा था। इन सबके आधार पर वह उसके शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित शरीररूपी पिंजड़े में तिलमिलाते हुए उसके दिल की अवस्था की भी कुछ कल्पना कर सकी थी।

उसकी तन्द्रा उस समय टूटी, जब उसने देखा कि पीटर भीड़ को रोकने के लिए लगे तारों के बीच में से निकलकर रोहेम के पास पहुँच गया है और उसके रोहेम की क़मीज़ का पल्ला पकड़ने से पहले ही किसी ने एक झटके के साथ उसे पीछे खींच लिया और पूरे ज़ोर के साथ भीड़ की ओर धकेल दिया। पीटर ने एक चीख़ मारी और औंधे मुँह सड़क पर गिरा। कुछ क्षणों में भीड़ में से रास्ता बनाकर एडा जब उसके पास पहुँची, तो उसने देखा कि उसके मुँह से ख़ून गिर रहा है और न-मालूम कितने लोग दाँत पीसते हुए उसकी ओर देख रहे हैं। एडा ज़ोर से रो पड़ी और पीटर को छाती से लगाकर भीड़ में से बाहर निकल आई। एडोरीलीन आँसू पोंछते हुए उसके पीछे-पीछे चल रही थी।

बाहर आकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसके मुँह से अचानक निकला—"सत्यानाश हो इन राक्षसों का और इनके आक़ा उस कम्बख़्त हिटलर का !" उसने अपने रूमाल से पीटर के मुँह का ख़ून पोंछा और घर की तरफ़ चल दी। अभी वे लोग २०-३० क़दम ही मुश्किल से चले होंगे कि उसके कानों में आवाज़ आई—"फ़्राउ एडा, हमें आपसे कुछ कहना है।"

एडा ने पीछे मुड़कर देखा। चेहरे पर क्रूर मुस्कराहट लिये यमदूतों की तरह लम्बे-चौड़े गेस्टपो के दो जवान खड़े थे। सहसा वह एड़ी से चोटी तक काँप गई। सजल नेत्रों और फड़फड़ाते ओंठों से काँपते हुए स्वर में उसने कहा—"कहिए, क्या बात है ?"

"हर ब्राज़न ने हमें आपकी गिरफ़्तारी की आज्ञा दी है। आपको इसी समय चलना होगा।"

एडा अभी कुछ जवाब भी नहीं दे पाई थी कि एक लॉरी आकर रुकी और दोनों आदमियों सहित एडा को लेकर चल पड़ी। एडोरीलीन पीटर को अपने कंधे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर लिये हुए आँखें फाड़कर देखती ही रह गई। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।

[३]

पीपल्स-कोर्ट के पहरेदार से लेकर बड़े-से-बड़े जज तक के पास एडोरीलीन सिर पटक आई थी, पर उसे एडा के बारे में किसी ने कुछ न बताया। गेस्टपो का द्वार उसके लिए बंद हो चुका था। नज़रबंद-कैंपों में रक्खे गये लोगों की सूची उसे इसलिए नहीं बताई गई कि उसे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था। वकील इस मामले में मुँह खोलने तक का साहस नहीं करते थे। हताश होकर एडोरीलीन चुप हो बैठी थी।

रोहेम और एडा के बिना पीटर को घर अच्छा नहीं लगता था, पर अब तो एडोरीलीन के सिवा उसकी देखरेख करनेवाला और कोई नहीं था। अपना खेल भी वह भूल गया था। मुँह का घाव तो उसका भर गया था, लेकिन दिन-ब-दिन उसका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। सिपाहियों को देखते ही उसे डर-सा लगने लगता था। उसे अपने जीवन में पहलेपहल सिपाहियों को देखकर पूछा गया वह प्रश्न सहसा आज याद आ गया—"यह कौन हैं मा?" और—"यह सैनिक हैं बेटा"—एडा ने कहा था।

"लेकिन क्या ये आदमी नहीं हैं?" उसने पूछा था।

"कभी ये भी आदमी थे, पर अब तो सैनिक हैं, जिन्हें मानवता से कोई सरोकार नहीं। लड़ना, मारना और मरना ही इनका काम है।"

"पर बिना कारण या क़सूर के यह किसी को क्यों मारते हैं, मा?" उसने पूछा था।

"इसी लिए कि इनमें पाशविकता और दानवता अधिक बढ़ गई है।" एडा ने कहा था।

"पर मनुष्य मनुष्य के ख़ून का प्यासा क्यों है, मा? वह आपस में लड़ता और मारता-मरता क्यों है?"

"अभी तू इन बातों को नहीं समझ पावेगा, मेरे भोले बच्चे।" एडा ने यह कहकर उसकी सारी उत्सुकता को शान्त कर दिया था।

पर वास्तव में उसकी वह उत्सुकता शान्त तो नहीं हुई थी—दब ज़रूर गई थी। तब से बराबर वह उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचाये थी। आज जब एडोरीलीन कॉफ़ी के साथ उसे ब्लैकब्रेड खिला रही थी, तो वह गुमसुम बैठा मन-ही-मन यही प्रश्न फिर दोहरा रहा था। उसका कन्धा पकड़कर हिलाते हुए एडोरीलीन ने कहा—"पिटीमास्टर, आज तुम गुमसुम क्यों हो? ऐसा क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नहीं दादी। यही सोच रहा था कि आदमी आख़िर लड़ता क्यों है?"

"पर तुझे इसकी कैसे फ़िक्र हुई रे?"

"वैसे ही। उस दिन तुम कह रही थीं न कि पिताजी लड़ने गये हैं। वे किससे लड़ेंगे दादी?"

"अपने मुल्क के दुश्मनों से।"

"दुश्मन हमारे मुल्क के कौन हैं?"

"पोलैंड के लोग।"

"लेकिन उन्होंने हमारा क्या बिगाड़ा है?"

"वे हमारी ज़मीन का कुछ हिस्सा नहीं लौटा रहे।"

"लेकिन ज़मीन भी किसी की होती है क्या?"

"हाँ, जहाँ हम रहते हैं, वह हमारी ज़मीन है। मैं भूल गई, हमारी नहीं हिटलर की।"

"लेकिन इसके लिए लड़ने की क्या ज़रूरत?"

"इसका जवाब तो हिटलर ही दे सकता है। पर तू अभी से क्यों इन बातों की उधेड़बुन में लगा है? ज़रा बड़ा हो ले, फिर अपने आप सब कुछ जान लेगा।"

दरवाज़े पर किसी ने धीरे से दस्तक दी। एडोरीलीन ने जाकर जब किवाड़ खोले, तो देखा कि सामने ही भयंकर स्वरूप बनाये एडा खड़ी है। मुँह उसका कुम्हलाकर काला हो गया है। गालों पर मैल जम गया है, जिन पर आँसुओं की धारा से धुला हुआ हिस्सा साफ़ नज़र आता है। ओंठ सूख गये हैं और उन पर पपड़ी जम गई है। कपड़ों के मैल का तो कहना ही क्या। बीसियों जगह से वे फट गये हैं। बालों में मिट्टी पड़ी है और वे आपस में बुरी तरह उलझ गये हैं। पाँवों पर धूल जमी है। हाथों की हथेलियाँ मैल से काली पड़ रही हैं। जहाँ-तहाँ शरीर और कपड़ों पर ख़ून के दाग़ भी स्पष्ट नज़र आते हैं। एडोरीलीन ने नीचे से ऊपर तक कुछ आशंका के साथ एडा को देखा। सहसा वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँप उठी। एडा को सीने से लगाते हुए उसने कहा—"मेरी प्यारी बच्ची, तेरा यह क्या हाल है?"

"हाल पूछती हो मा, आज अपनी आँखों से साक्षात् नरक देखकर आ रही हूँ। चारपाई पर कम्बल बिछा दो, तो ज़रा लेट जाऊँ। खड़ा नहीं हुआ जाता। अंग-अंग टूट रहा है। मेरा पीटर........वह अच्छा तो है?"

एडोरीलीन उसे कन्धे के सहारे भीतर ले गई। चारपाई पर कम्बल डालकर उसे लिटा दिया। एडा का शरीर ज्वर से जल रहा था। उसकी आँखों में आज सिर्फ़ पानी ही नहीं था, आग भी थी। लेटने पर उसकी फ़्राक का सीने के पास का हिस्सा फटा होने के कारण ज़रा हट गया। एडोरीलीन की नज़र वहाँ पड़ी हुई नील पर पड़ी। उसने हाथ की उँगलियों से देखा—दोनों स्तनों के बीच का कुछ हिस्सा सूजा था और वहाँ थोड़ा-सा ख़ून भी जम गया मालूम होता था। उसने रोनी-सी आवाज़ में पूछा—"यह क्या है एडा? यहाँ यह ख़ून कैसा?"

एडा कोई उत्तर नहीं दे सकी। दोनों हाथों की हथेलियों से आँखें मूँदकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसका बिसूरना देखकर एडोरीलीन का रहा-सहा धैर्य भी जाता रहा। उसने इस घाव का कारण जानने की बहुत कोशिश की, पर एडा उसे कुछ भी न बतला सकी।

एडा के पास पीटर को छोड़कर एडोरीलीन एक टंबलर हाथ में लेकर राशन-डिपो की तरफ़ चल पड़ी। राशन-कार्ड इनचार्ज के आगे करते हुए एडोरीलीन ने बड़े विनीत स्वर में कहा—"आज मैं थोड़ा-सा दूध भी लूँगी। मेरी पुत्र-बधू बीमार है।"

इनचार्ज ने राशन-कार्ड को ग़ौर से देखते हुए कहा—"यह नामुमकिन है। दूध आपको नहीं मिल सकता। वह कुछ ख़ास अफ़सरों के घरों के लिए ही देने का हुक्म है।"

"लेकिन मेरी पुत्र-बधू जो बीमार है। वह दूध और चीनी के बिना कॉफ़ी कैसे पी सकेगी?"

"इसका जवाबदेह मैं नहीं हूँ" कहते हुए इनचार्ज ने उसका राशन-कार्ड लौटा दिया।

एक मिनट एडोरीलीन चुप रही। फिर नम्रता प्रदर्शित करते हुए धीरे से बोली—"अच्छा, अगर वैसे नहीं दे सकते तो यह लो ब्लैक-ब्रेड ले लो और इसके बदले में मुझे थोड़ा-सा दूध दे दो। तुम्हारी बड़ी दया होगी।"

"फ़्राउ एडोरीलीन, आप एक सरकारी अफ़सर को नियमभंग करने और रिश्वत लेने के लिए फुसला रही हैं। आपको मालूम है, इसका फल क्या होगा?" कठोरतापूर्वक इनचार्ज ने कहा।

एडोरीलीन नाज़ो-सलाम देकर अपना-सा मुँह लिये वहाँ से चल दी। मन-ही-मन वह कहती जा रही थी—पहले मक्खन बंद हुआ। फिर चीनी। अब दूध भी बंद हो गया। कल शायद ब्लैक-ब्रेड और कॉफ़ी का यह पानी मिलना भी बंद हो जाय। लोग फिर क्या हवा या पत्थर खाकर ज़िन्दा रहेंगे? क्या इस तरह भूखों मारकर ही हिटलर हमें सुख और समृद्धि के मार्ग पर ले जा रहा है? सत्यानाश हो इस कुलांगार का!

[४]

एडा की स्थिति सुधरने के बजाय और बिगड़ती ही गई। उसके पेट में गाँठें पड़ गई थीं। सीने में आठों पहर दर्द रहता था। पेशाब के साथ ख़ून जाना जारी था। हरारत उसे प्रायः हर वक़्त बनी ही रहती थी। एडोरीलीन ने पहले तो दो-चार घरेलू दवाइयों का प्रयोग किया। पर जब उनसे कोई लाभ नहीं हुआ, तो एडा को शेमिट्ज़ के केन्द्रीय अस्पताल में ले जाना तय किया।

दूसरे दिन सुबह उठकर एडोरीलीन ने एडा के कपड़े बदले और उसे अपने कन्धे के सहारे अस्पताल लेकर चली। अस्पताल यद्यपि उनके घर से बहुत दूर नहीं था, पर एडा वहाँ पहुँचते-पहुँचते भी काफ़ी थक गई और उसकी साँस फूल गई। अस्पताल की सीढ़ियों पर कुछ सुस्ताकर वह डॉक्टर के पास पहुँची और कहा कि एडा को अमुक-अमुक तकलीफ़ है, लिहाज़ा उसे इलाज के लिए वहाँ भर्ती कर लिया जाय।

डॉक्टर ने एक उपेक्षापूर्ण दृष्टि एडा के चेहरे की तरफ़ डाली और नाक-भौं सिकोड़कर एडोरीलीन से कहा—"अस्पताल में युद्ध के घायलों के लिए भी जगह पूरी नहीं पड़ रही है। फिर बाहर के लोगों को हम कैसे ले सकते हैं? हमें किसी भी स्थानीय मरीज़ को न लेने का सख़्त हुक्म है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास खड़े हुए एक दूसरे डॉक्टर ने कहा—"इसे ऐसी तकलीफ़ ही क्या है ? मालूम होता है, युद्ध-सेवा से जी चुराने को यह सब ढोंग किया है। जवान औरत है, शर्म नहीं आती इसे बीमार बनते ?"

एडा और एडोरीलीन की इस समय क्या दशा थी, इसे दूसरा कौन समझ सकता है ?

पहले डॉक्टर ने कहा—"कुछ दवा चाहो, तो मैं दे दूँ।"

एडोरीलीन के उत्तर देने से पहले ही एडा बोल उठी—"नहीं, धन्यवाद। ढोंग और बहाने में दवा की क्या ज़रूरत ?" एडोरीलीन का कन्धा हाथ से दबाते हुए उसने कहा—"जल्दी घर लौट चलो ; मुझसे अधिक देर खड़ा नहीं हुआ जायगा।"

उसे लेकर एडोरीलीन लौट पड़ी। घर आते-आते उसे ध्यान आया कि डॉ० स्मिड्ट के यहाँ क्यों न होते चलें। डॉ० स्मिड्ट का घर रास्ते में ही पड़ता था। वे पिछले महायुद्ध के एक पीड़ित थे, जो अपने जीवन के शेष दिन शेमिट्ज़ के क़स्बे में बिता रहे थे। एक विधवा लड़की के अलावा उनके परिवार में और कोई नहीं था। वह एक अस्पताल में नर्स थी। उसी के वेतन पर दोनों का गुज़र होता था। डॉ० स्मिड्ट का सब कुछ नाज़ियों ने ज़ब्त कर लिया था। वे अब अपनी लड़की को मिले क्वार्टर में ही रहते थे। सुबह अख़बार पढ़ना और शाम को रेडियो सुनना ही उनके मुख्य काम थे। इन दोनों के द्वारा आनेवाली ख़बरों को वे शेमिट्ज़ के आधे से अधिक लोगों को सुनाते थे। सुबह-शाम उनके यहाँ ख़बरों के शौक़ीनों का ताँता-सा बँधा रहता था।

एडा और एडोरीलीन को देखते ही डॉ० स्मिड्ट आरामकुर्सी से उठ खड़े हुए और हाथ का अख़बार मेज़ पर रख पास पड़ी कुर्सियों की ओर इशारा करते हुए मुस्कराकर बोले—"आज तो बड़े दिनों बाद दिखीं फ़ाउ एडोरीलीन। मैं तो समझा था कि तुम भी पोलैंड जीतने के लिए गई हो।"

"यों क्यों नहीं कहते डॉक्टर कि हिटलर का मर्सिया पढ़ने गई थी।" एडोरीलीन ने क्रूर हास्य के साथ कहा।

"हाँ, हाँ, वह वक़्त भी अब दूर नहीं है। रोहेम का कुछ समाचार मिला ?"

"अभी तक तो कुछ नहीं। क्यों, आपने कुछ सुना ?"

धीमे स्वर से डॉक्टर स्मिड्ट ने कहा—"वह पिछले महीने की १३ तारीख़ को केट्टोविज़ के पास लड़ता हुआ मारा गया। उसी के साथ लड़नेवाले एक सैनिक ने—जो घायल होकर पिछले हफ़्ते शेमिट्ज़ के अस्पताल में आया है—मेरिया (डॉक्टर की लड़की) को यह बतलाया है। सरकार तो इन ख़बरों को लोगों से छिपा रही है। न-मालूम कितने लोगों का वहाँ रोज़ ख़ूनख़राबा हो रहा है।"

"लेकिन मुझे तो उसकी १८ तारीख़ की चिट्ठी मिली है, जिसमें लिखा है कि वह मज़े में है।"

"पर इस बात का क्या सबूत कि वह चिट्ठी फ़र्ज़ी नहीं है ? ऐसी चिट्ठियाँ और कई लोगों के पास भी आई हैं।"

"डॉक्टर, अब हम क्या करें ? रोहेम, मेरा रोहेम, अब........"

"जो कुछ होना था, वह तो हो गया फ़ाउ एडोरीलीन। अब पछताने से क्या ?"

"हम अब क्या करेंगे डॉक्टर ?"

"ज़रा धैर्य रक्खो। इस बार सरकार ने मरे हुए सैनिकों के आश्रितों की सहायता करने का नियम भी हटा दिया है। उसके पास धरा ही क्या है ?"

"फिर हमारा क्या होगा ? एडा बीमार है। मेरे हाथ-पाँव चल नहीं रहे। पीटर तो अभी बिलकुल नासमझ बच्चा है।"

"घबराने से कुछ नहीं होगा फ़ाउ एडोरीलीन ; पर इतना विश्वास रक्खो कि हमारे दिन बहुत जल्द अच्छे आनेवाले हैं। हम चाहें तो उन्हें और भी जल्द ला सकते हैं।"

"हम ला सकते हैं ? तुम आज कह क्या रहे हो डॉक्टर।"

"ठीक ही कह रहा हूँ। ज़रा धीरे बोलो, फ़ाउ एडोरीलीन, बात करते समय यह न भूलो कि जर्मनी की दीवारों और पेड़ों के भी कान हैं।" ज़रा और धीमी आवाज़ में डॉ० स्मिड्ट ने कहा—"तुम्हें हमारी मदद करनी होगी। फिर देखना, जर्मनी की पददलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता हिटलर के फ़ौलादी पंजे से कितनी जल्दी छूटती है ?"

"वह कैसे ?" एडोरीलीन ने डॉ० स्मिड्ट के कान में कहा ।

"मेरिया की तरह तुम और एडा भी नर्स हो जाओ । तुम्हें रखवाने का ज़िम्मा मेरा है । वहाँ युद्ध के घायल सैनिकों को, जो मैं बताऊँ, वह सब कहना होगा । अस्पताल के समय के अलावा असंतुष्ट और पीड़ित जनता को क्रांति के लिए तैयार करने का कुछ काम और करना होगा । रास्ता तुम्हें मेरिया बता देगी । इस समय वह शेमिट्ज़ म्यूनीशन वर्क्स के मज़दूरों को कल से काम छोड़ने के लिए राज़ी करने गई है । पूरे एक हफ़्ते की उसकी कोशिश है । शायद आज सफलता प्राप्त कर लौटे ।"

एडोरीलीन ने एक प्रश्नभरी दृष्टि एडा की ओर डाली, जो रोना-कराहना भूलकर बड़े ध्यान से डॉक्टर स्मिड्ट की बातें सुन रही थी । बड़ी तत्परता से उसने कहा—"हमें मंज़ूर है, डॉक्टर । आज से आप हम पर जो ज़िम्मेदारी डालेंगे, उसे हम अधिक-से-अधिक गुप्त रूप से पूरा करेंगी । एक रोहेम गया तो गया, लाखों की जान तो बच जायगी । ब्रिटेन और फ़्रांस से पहले हिटलर का ख़ात्मा हम करेंगे, क्योंकि उनसे बड़ा काल वह हमारे लिए है ।"

"तब तो मुझे विश्वास हो गया कि जर्मनी के अच्छे दिन अब आ गये ।"

"तो फिर हम कब आवें ?" एडा ने पूछा ।

"आज की डाक से मैं आप दोनों के नाम भेज देता हूँ । परसों शाम तक नियुक्तियों की तार से सूचना मिल जायगी । आप कष्ट न करें । मेरिया के द्वारा मैं स्वयं आपको ख़बर करवा दूँगा ।"

"अच्छा, शुक्रिया" कहकर एडा और एडोरीलीन अपने घर की ओर चल दीं ।

स्त्री-पुरुष सबके लिये ताक़त ताज़गी से भरा हुआ

सुमधुर

झंडु द्राक्षासव

अवश्य सेवन कीजिए

(जूड़ी ज्वर) मलेरिया का महान् शत्रु

झंडु

मलेरिया मिक्श्चर

सेवन करके मलेरिया की जड़ को
नाबूद कर दीजिए

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बक्स नं० ५५१३ बंबई नं० १४ ।
यू० पी० एजेंट—कांतिलाल, आर० पारेख, चाँदनी चौक, दिल्ली ।
लखनऊ एजेंट—माताबदल पन्सारी, अमीनाबाद ।
लखनऊ स्टाकिस्ट—कौशिक आयुर्वेदिक स्टोर्स, श्रीराम रोड ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की तीन नई किताबें

[आल इंडिया रेडियो लखनऊ से १२ दिसम्बर को दिया गया भाषण]

श्रीनाथसिंह

आज मैं हिन्दी की तीन नई किताबों की चर्चा करना चाहता हूँ। पहली किताब है युगवाणी। इसके लेखक श्रीसुमित्रानन्दन पंत हिन्दी के उन ऊँचे दर्जे के कवियों में एक हैं, जिनकी आजकल की हिन्दी-कविता पर ज़बरदस्त छाप है।

युगवाणी में आपको मिलन और बिछुड़न के गीत न मिलेंगे, जैसा कि आजकल की ज़्यादातर कविताओं में मिलते हैं। हिन्दी के बहुत-से कवि यह कहा करते हैं कि कवि के लिए यह ज़रूरी नहीं कि वह अपने ज़माने के लोगों के दुःख-सुख की बात सोचे या उनकी मुश्किलों पर ग़ौर करे। वह इन बातों से ऊपर उठकर उन गीतों को गाता है, जो दुनिया में हमेशा अमर रहेंगे। श्रीसुमित्रानन्दन पंत की यह युगवाणी इस तरह की कवियों की क़ैद से निकल भागने की एक ज़बरदस्त कोशिश है। इसमें शक नहीं कि वे भी आसमान पर बादलों की नाव में घूमते हैं और उनकी नज़र भी इन्द्रधनुष और चाँदतारों पर काफ़ी रहती है। लेकिन अब वे ज़मीन पर उतर आये हैं, और इस ज़मीन पर पड़ा हुआ कूड़ा-करकट भी उन्हें प्यारा लगने लगा है। वे कहते हैं—

पीली पत्ती टूटी टहनी
छिलके कंकड़ पत्थर
कूड़ा - करकट सब कुछ भू पर
लगता सार्थक सुन्दर।

अब वे उस सवाल को हल करने में लग गये हैं, जो इस ज़माने के आदमियों के सामने हैं। वे हिन्दी के और कवियों की तरह ज़माने की इस तूफ़ानी हलचल से भागना नहीं चाहते। वे इसमें पड़ना चाहते हैं, इसको समझना चाहते हैं और दुनिया में जो इनक़लाब हो रहा है, उसके गीत गाना चाहते हैं। इसी लिए वे दूसरे कवियों की तरह नाउम्मेदी और उदासी के रास्ते पर न जाकर हिम्मत और आशा के दरवाज़े पर पहुँचते हैं। वे कहते हैं—यह पतझड़ है, डालियाँ जो सूनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ो रही हैं, वह कोई डरने की बात नहीं है। यह तो ई ज़िन्दगी की शुरुआत है। दुनिया को नये गहनों , नये रंगों से, नये कपड़ों से सजाओ; क्योंकि—

आज असुन्दर लगते सुन्दर
प्रिय पीड़ित शोषित जन
जीवन के दैन्यों से जर्जर
मानव मुख हरता मन।

आज, जो अब तक बदसूरत था, वह ख़ूबसूरत दिखाई ड़ता है, जो सताया हुआ और कुचला हुआ था, वह यारा जान पड़ता है और मोहने की ताक़त अब उस न्सान के चेहरे में समा गई है, जो ज़िन्दगी से ाजिज़ आ गया है और सब तरह से दुखी है। यही ंदेश है, जो पंतजी अपनी इस कविता के ज़रिये निया को देना चाहते हैं। उनकी नारी नाम की विता की इन लाइनों पर भी ज़रा ग़ौर कीजिए—

छिन्न करो सब स्वर्ण-पाश
उसके कोमल तन-मन के।
वे आभूषण नहीं, दाम
उसके बन्दी जीवन के।

जिन्हें तुम गहने कहते हो, वे सचमुच गहने नहीं । ये औरत को बाँध रखने के लिए सोने के जाल हैं। न्हें काट फेंको। इसी तरह उन्होंने चींटी, पासियों के ड़के, गंगा की साँझ, पूँजीपति, बीच के दर्जे के लोग, किसान, मज़दूर, प्रकाश, कोयल, सपना, पलाश, दो मित्र, नीम, ओस, बादल, लेनदेन वग़ैरह पर ७७ कवि-ाएँ लिखी हैं, और हर कविता में ऐसी बातें कही हैं, जन पर ग़ौर करने से आदमी के दिमाग़ में हलचल दा हो सकती है। वे आज़ादी का, बराबरी का, मुहब्बत ा, एक दूसरे के दुख-दर्द में शरीक होने का, भेदभाव ोड़ने का, इन्सान के भेदभाव से बने हुए नंगे रूप ो इन्सानियत से ढक देने का, ज़िन्दगी से हताश होने का, जो भी मुसीबतें सामने आ जायँ, उनको हिम्मत के साथ बर्दाश्त करने का गीत गाते हैं।

इन्सान अपने ही बनाये हुए नियम-क़ायदों में क़ैद ो गया है। उसने अपने पैरों में मज़हब की, मुल्क की, राष्ट्रीयता की, जाति की, रंग की, वर्ग की बेड़ियाँ डाल रक्खी हैं। ये ही सब चीज़ें उसके दुख-दर्द का कारण बन गई हैं। ये बातें पुराने, सूखे, बेकार, सड़े, बदरंग पत्तों की तरह झड़ पड़ें और मनुष्य की दुनिया में नये ख़यालों की हरियाली लहलहा उठे, नया मौसम आवे, और संसार फिर एक सुन्दर बग़ीचे की तरह रंग-बिरंगे फूलों से खिल उठे।

जग के सब भेदभाव हों लय,
जीवन की बाधाएँ हों क्षय,
जय हो, मानव-जीवन की जय।

पंतजी हिन्दी के शब्दों के स्वामी हैं। जैसे किसी जेनरल के हुक्म पर फ़ौजी सिपाही क़तार के क़तार बढ़ते हैं, वैसे ही पन्तजी की कविता पढ़ने से जान पड़ता है कि उनके इशारे पर हिन्दी के शब्द नाचते हैं। चतुर राज जैसे एक-एक ईंट को ख़ूबसूरती के साथ बैठाता है, वैसे ही वे एक-एक शब्द को बड़ी सफ़ाई और सावधानी से रखते हैं, और इसी लिए जो उनकी कविता समझ नहीं पाते, वे भी उसका कुछ न कुछ मज़ा ले ही लेते हैं। उनकी ऐसी कविता का एक नमूना देखिए—

देखो भू को
जीवप्रसू को
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कुञ्जित गुञ्जित
कुसुमित
भू को।

ऐसी हीरे-मोतियों की मालाओं की तरह कटी-छँटी सुडौल और ख़ूब अच्छी तरह मँजी हुई भाषा हिन्दी के किसी और कवि के पास नहीं है। इस तरह की नये ढंग की कविता लिखने में वे कहाँ तक कामयाब हुए हैं, यह तो समय ही बतावेगा; लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि हिन्दी को उन्होंने एक ऐसी चका-चौंध करनेवाली चीज़ दी है, जो अब तक उसके पास नहीं थी।

दूसरी किताब है बालद्विवेदी। यह उस महापुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कहानी है, जिसने हिन्दी को धूल में से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया है। इसके लेखक हैं पं० देवीदत्त शुक्ल। इस किताब को दूसरा व्यक्ति इतने अच्छे ढंग से नहीं लिख सकता था; क्योंकि पंडित देवीदत्त शुक्ल को स्वर्गीय आचार्य द्विवेदीजी के क़रीब रहने का और उनके साथ हिन्दी की सेवा करने का जैसा मौक़ा मिला है, वैसा किसी और को नहीं मिला। यह पहली किताब है, जिससे हमें स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के बारे में ब्योरेवार बातें मालूम हो सकती हैं। यह किताब उनकी मौत के बाद छपी है। जब वे ज़िन्दा थे, तब उनके बारे में कोई किताब नहीं निकल सकी; क्योंकि वे अपनी चर्चा बिलकुल नहीं पसन्द करते थे। उस समय हिन्दी के कई नामी-नामी लेखकों ने उनका जीवन-चरित लिखने की कोशिश की; पर वे कामयाब नहीं हुए। लेकिन हिन्दी के प्रेमी द्विवेदीजी के बारे में ज़्यादा-से-ज़्यादा जानने की और उनका ज़्यादा-से-ज़्यादा इस्तक़बाल करने की कोशिश करने लगे। नतीजा यह हुआ कि मई, सन् १९३३ में, जब वे सत्तर साल के हुए, उनकी यह सालगिरह बड़ी धूमधाम से मनाई गई। जहाँ भी हिन्दी के प्रेमी थे, बड़ी-बड़ी सभाएँ हुईं, और उनके बारे में लेक्चर हुए। सबसे बड़े जलसे बनारस और इलाहाबाद में हुए। बनारस में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया गया। यह ग्रन्थ साइज़ और सफ़हों में 'गोल्डेन बुक आफ़ टैगोर' से भी बड़ा था, जो कवि श्रीरवीन्द्र-नाथ टैगोर की ७०वीं सालगिरह पर निकला था। यह 'मालवीय कमोमेरेशन वाल्यूम' से भी बड़ा था, जो पंडित मदनमोहन मालवीय की ७०वीं सालगिरह पर निकला था। इसके अन्दर के लेख वग़ैरह भी उन दोनों मशहूर किताबों के लेखों की ही तरह मशहूर विद्वानों के लिखे हुए और बड़े क़ीमती थे। कुछ लेख ऐसे भी थे, जिनमें सिर्फ़ द्विवेदीजी की साहित्यिक बातों का ज़िक्र था। इलाहाबाद में जो जलसा हुआ था, उसमें हिन्दुस्तान-भर के हिन्दी के विद्वानों ने हिस्सा लिया और वह अपने ढंग का एक ही साहित्यिक जलसा था। उसमें भीड़ इतनी हुई थी कि उसका नाम "द्विवेदी-मेला" पड़ गया। हिन्दी में इतनी बड़ी इज़्ज़त द्विवेदीजी से पहले किसी को नहीं मिली। इसी से आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि हिन्दीवालों के दिल में उन्होंने अपने लिए क्या जगह बना ली थी।

द्विवेदीजी का जन्म १८६४ ईसवी में रायबरेली ज़िले के एक गाँव दौलतपुर में हुआ था। मामूली संस्कृत, उर्दू और अँगरेज़ी के सिवा उन्हें स्कूल में ज़्यादा पढ़ने का मौक़ा नहीं मिला। १८ साल की उम्र में पढ़ना छोड़ने पर उन्होंने अजमेर में जाकर १५) महीने पर रेलवे में नौकरी कर ली। अपनी मिहनत के बल पर धीरे-धीरे वे ज़िम्मेदारी के पद पर पहुँच गये और उन्हें अच्छी तनख़्वाह भी मिलने लगी। १९०३ में उन्होंने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और "सरस्वती" के सम्पादक हो गये। उस समय यह हिन्दी की पहली ही मासिक पत्रिका थी। इस बीच में द्विवेदीजी ने अपनी मिहनत से संस्कृत, अँगरेज़ी, उर्दू और हिन्दी में अच्छी योग्यता पैदा कर ली थी। उन्होंने अँगरेज़ी के माहवार रिसाले देखे, उनकी तड़क-भड़क का उनके ऊपर असर पड़ा। "सरस्वती" को भी उन्होंने वैसा ही बनाने की कोशिश की। लेकिन हिन्दी में उस समय लिखनेवाले न मिलते थे। जो थोड़े-बहुत लिखनेवाले थे भी, वे ग़लत-सलत लिखते थे, और उनकी ग़लती उन्हें बताई जाती थी तो वे बिगड़ते थे। इसलिए द्विवेदीजी नये-नये नामों से ख़ुद ही तरह-तरह के लेख लिखने लगे। इसके अलावा उन्होंने हिन्दी के लेखकों को लिखना सिखाया और इतनी हलचल पैदा कर दी कि हिन्दी की दिन दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी होने लगी। सन् १९२१ में जब उन्होंने आख़िरी बार "सरस्वती" से छुट्टी ली, तब हिन्दी में कितने ही रोज़ाना, हफ़्तावारी और माहवार रिसाले छपने लगे थे। सैकड़ों की तादाद में किताबें भी छपने लगी थीं। उन्हीं की कोशिशों का यह नतीजा है कि आज हिन्दी में सैकड़ों नहीं, हज़ारों लेखक, कवि और विद्वान् दिखाई पड़ रहे हैं और यह भाषा सारे हिन्दुस्तान की भाषा बनने का दावा पेश कर रही है।

द्विवेदीजी ने किस तरह गाँव की ग़रीबिनी हिन्दी को शहरों की रानी बना दिया, यही कहानी पंडित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवीदत्त शुक्ल ने बड़े ही दिलचस्प ढंग से इस किताब में लिखी है। मुमकिन है कि जब वे बन्द लिफ़ाफ़े खोले जायँ, जिन्हें द्विवेदीजी ने नागरी-प्रचारिणी-सभा में रखवा दिया था और यह हिदायत की थी कि वे उनके मरने के बाद खोले जायँ, तब कोई लेखक उनका और भी बड़ा और सुन्दर चरित्र लिखने में कामयाब हो। लेकिन जब तक कोई ऐसी किताबें सामने नहीं आतीं, तब तक यही किताब द्विवेदी-युग की बाइबिल समझी जायगी और प्रेम से पढ़ी जायगी।

अब सिर्फ़ एक किताब और बची है, जिसका कि मुझे ज़िक्र करना है। यह है "भारतीय कला-कौशल।" इसके लेखक श्री डी० बी० बरवे यू० पी० गवर्नमेंट के आर्ट्स एण्ड क्राफ़्ट्स एम्पोरियम के बिज़नेस मैनेजर हैं। उन्होंने इँगलैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, कनाडा वग़ैरह दूर-दूर के मुल्कों में हिन्दुस्तान के हाथ की बनी बहुतेरी चीज़ों को बिकते देखा है और ख़ुद भी बेचा है। विदेशों के लोग मशीन से बनी चीज़ों से ऊब-से गये हैं और हाथ की बनी चीज़ें बड़े प्रेम से ख़रीदते हैं। जो लोग यह सोचते हैं कि हिन्दुस्तान सिर्फ़ कच्चा माल ही विदेशों को भेजता है, उनको यह किताब पढ़ने से अपनी राय बदलनी पड़ेगी। एक ज़माना था, जब हिन्दुस्तान में बनी कारीगरी की चीज़ें सारी दुनिया में बिकती थीं। आज वह ज़माना नहीं रहा और वे कारीगर भी नहीं रहे। लेकिन कहीं-कहीं उनके ज़िन्दा नमूने आज भी देखने को मिल जाते हैं। हिन्दुस्तान की कारीगरी के इन नमूनों को इँगलैण्ड, अमेरिका के लोग बड़े महँगे दामों में बड़ी ख़ुशी से ख़रीदते हैं। जो लोग इस तिजारत में लगे हैं, वे थोड़ी मिहनत से ही अच्छी रक़म पैदा कर लेते हैं। श्री डी० बी० बरवे ने इस किताब में हिन्दुस्तान की उन दस्तकारियों का ज़िक्र किया है, जो अभी ज़िन्दा हैं, और जिनके लिए इँगलैण्ड, अमेरिका वग़ैरह देशों में अच्छा बाज़ार मिल सकता है।

काश्मीर के शाल और नमदों की विदेशों में बड़ी माँग है। श्री डी० बी० बरवे का तो यहाँ तक कहना है कि कभी-कभी ब्यापारियों के लिए इनकी माँगों का पूरा करना कठिन हो जाता है। इन शालों के नमूने इँगलैण्ड और अमेरिका की नुमाइशों में रक्खे जाते हैं। दिल्ली में हाथीदाँत पर बनाये हुए जाली के काम की दस्तकारी अभी तक ज़िन्दा है। विदेशियों के लिए हाथी हिन्दुस्तान की याद दिलानेवाला जानवर है। इसलिए जब वे अपने देश को लौटने लगते हैं, तब दिल्ली में हाथीदाँत का बना हाथी ख़रीदकर ज़रूर अपने साथ ले जाते हैं। जिस तरह दिल्ली में हाथी के दाँत का सफ़ेद हाथी बनता है, उसी तरह सीलोन में काले भौंरे की तरह आबनूस की काली लकड़ी का हाथी बनता है। उसे भी विदेशी बड़े शौक़ से ख़रीदकर याददाश्त के तौर पर अपने साथ ले जाते हैं। ये काले हाथी और भी मन लुभानेवाले होते हैं; क्योंकि सीलोन के कारीगर उनके पैरों में नाख़ून की जगह हाथीदाँत के टुकड़ों के नाख़ून लगाते हैं और सच्चे हाथी की तरह उनके हाथीदाँत के बने चिकने लम्बे दाँत भी लगाते हैं, उनकी पीठ, पेट, पूँछ वग़ैरह हूबहू हाथी की तरह बने होते हैं। ये हाथी घड़ी के चेन में लटकाने लायक़ छोटे हाथी से लेकर मेज़ पर पेपरवेट की तरह रखने और फ़ायर प्लेस पर रखने लायक़ तक बनते हैं।

जबसे ताजमहल बना है, तबसे लेकर आज तक आगरे में संगमरमर के छोटे-छोटे ताजमहल के नमूने बनाने का काम जारी है। ये ताजमहल हूबहू ताजमहल की तरह बने होते हैं, और विदेशी लोग इन्हें भी हिन्दुस्तान से याददाश्त के तौर पर ले जाते हैं। ये ताजमहल आठ आने से लेकर हज़ारों रुपये दाम तक के बनते और बिकते हैं। लेखक का कहना है कि पिछले तीन सौ वर्षों में बनकर बिके हुए इन छोटे-छोटे ताजमहलों का दाम जोड़ा जाय तो क़रीब-क़रीब उतना ही होगा, जितने में बादशाह शाहजहाँ ने असली ताजमहल बनवाया था। जब तक असली ताजमहल खड़ा रहेगा, तब तक आगरे में यह रोज़गार ज़िन्दा रहेगा।

फ़र्रुख़ाबाद में कपड़ों पर रंगीन छपाई करने का काम एक जाति के लोग अर्से से करते आ रहे हैं। ये लोग साध कहलाते हैं। ये परदे, पलँगपोश, टेबुल कवर, जाजिम वग़ैरह इतने अच्छे तरीक़े से सात से नौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगों तक में रँगते हैं कि सारी दुनिया में इनके कपड़ों की माँग है। ये ख़ुद ही अपना माल ले जाकर इँगलैण्ड और अमेरिका में बनाते हैं और उन देशों में इनकी बड़ी-बड़ी माल बेचनेवाली कोठियाँ खड़ी हैं। इसी तरह पंजाब में शीशम की लकड़ी पर नक़्क़ाशी, जालन्धर में लकड़ी पर लाख का रंगीन काम, सियालकोट में तलवार-बन्दूक़ की मूठ पर पच्चीकारी, मुल्तान में चाँदी पर मुलम्मे का काम, जयपुर में बारीक़ कपड़ों की रँगाई, ढाके में मलमल की बुनाई, पटना और भागलपुर में सूती कपड़ों की रँगाई, विजगापट्टम में कछुए की पीठ के डिब्बे, मैसूर में चन्दन की लकड़ी पर नक़्क़ाशी, कच्छ और सिन्ध में क़सीदे का काम, बनारस में रेशमी और ज़री के कपड़े, मिर्ज़ापुर और आगरे में क़ालीन, लखनऊ में चिकन पर क़सीदे का काम और मुरादाबाद में क़लई के बर्तन बनते हैं। इन सब चीज़ों की विदेशों में बड़ी माँग रहती है।

अभी तक इस रोज़गार में सिन्धी लोग लगे हैं। दुनिया के बड़े-बड़े बन्दरगाहों में उनकी दूकानें हैं। हिन्दुस्तान की पुरानी कारीगरी जो थोड़ी-बहुत ज़िन्दा है, उसका श्रेय इन्हीं सिन्धियों को है, जो हिन्दुस्तान का बना माल हिम्मत करके सारी दुनिया में पहुँचाते हैं।

बरवेजी ने इस किताब में सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों का ज़िक्र किया है, जो हिन्दुस्तान में बनती हैं; लेकिन जिनका मुँह-माँगा दाम इँगलैण्ड और अमेरिका के धनी लोग देते हैं। उनका कहना है कि अगर पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी इस काम में लगें तो वे तिजारत के ज़रिए विदेशों के धन का बहाव हिन्दुस्तान की तरफ़ करके उसकी ग़रीबी मिटा सकते हैं। इस नज़र से लिखी गई हिन्दी में इसके सिवा दूसरी किताब मेरे देखने में नहीं आई। यह किताब हरएक हिन्दुस्तानी को पढ़नी चाहिए।

युगवाणी का दाम १।), बालद्विवेदी का ।।) और भारतीय कला-कौशल का ।।) है। तीनों मशहूर किताबें हैं, और किसी भी बुकसेलर से मिल सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

दोषी कौन ?

श्रीदयानन्द गुप्त बी० ए०, एल्-एल्० बी०

जेठ की दोपहरी, खिली हुई धूप, तवे-सी तपती हुई कोलतार की सड़क, सिर पर केवल जलते हुए आकाश का छत्र, उसके नीचे खड़ा एक प्राणी, दीन, कातर स्वर से भिक्षा माँग रहा था। वह उधर से गुज़रनेवालों के सामने ख़ाली हाथ फैलाये रह जाता था। उसकी गोद में एकवर्षीय शिशु, कोंपल-सा कोमल, झुलसानेवाली उस तेज़ धूप में मुरझाकर उसके कन्धे से चिपका हुआ था। वह दूसरे हाथ से अपने दो और नन्हें, सुकुमार बच्चों को सहारा दिये हुए था, जिनकी अवस्था तीन और पाँच वर्ष से अधिक न होगी। दोनों बच्चे नंगे पैर थे और बिलख रहे थे।

उसने देखा एक युवक को, साइकिल पर उधर ही को आता हुआ। वह 'ग़रीब परवर, ग़रीब परवर' कहता हुआ उस युवक के सम्मुख आ खड़ा हुआ, अपने बच्चों को लिये हुए। युवक घिर गया था, वह उतर पड़ा। पसीना उसके माथे से, कनपटी से, भौंह और गालों पर बह रहा था। उसने आकाश को देखा, धूप की तेज़ी अनुभव करते हुए। वह स्वच्छ, सुन्दर रेशमी सूट पहने हुए था। भिक्षुक के अबोध बालक चिल्ला उठे, "बाबू, हम भूखे हैं, कुछ खाने को दे दो।" युवक ने बच्चों पर दृष्टि डाली और फिर एक कठोर दृष्टि उस भिखारी पर।

"अपने बाप से कहो, वह हट्टा-कट्टा है, कमाकर खिलावे।" युवक ने कहा। बच्चे क्या समझें इस भर्त्सना को, युवक की टाँगों से चिपटने लगे।

"दूर, दूर; कैसा बदमाश है, बच्चों को ख़ूब पढ़ा रक्खा है।" भिखारी ने ये वाक्य सुने। अब तक वह भिक्षुक केवल करुण मुद्रा लिये, मूक, हाथ पसारे युवक के सम्मुख खड़ा था।

"मालिक, आपके बच्चे सही-सलामत रहें, मुझे आप ही ख़िदमत में रख लें। ये बच्चे दाने-दाने को मुहताज हैं।" भिक्षुक ने कहा।

"तुझे रख लूँ तो दूसरे और भिखमंगों ने ही क्या ख़ता की है। सरकार से कह कि भिखमंगों के लिए एक सदाव्रत खोल दे।"

"मेरे लिए तो आप ही सरकार हैं मालिक। ये बे-मा के बच्चे हैं ग़रीब परवर। ख़ुदा आपको बरकत दे। इनकी मा भी गुज़र गई। यह गोद का बच्चा, सिर्फ़ एक साल का है। उसकी बीमारी में मेरी नौकरी भी जाती रही, फिर वह भी धोका दे गई। इन बच्चों की क़िस्मत, गर्दिश के दिन हैं। कहीं नौकरी भी तो नहीं मिलती। बस, एक पैसा दे दें हुज़ूर। इस बच्चे के लिए दूध मिल जायगा। ख़ुदा, आपकी जान-माल की हिफ़ाज़त करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जेल क्यों नहीं चला जाता ? कैसा बना हुआ नेक है ।"

"लेकिन, मेरे बच्चे ?"

"उन्हें भी जेल साथ ले जाना । मज़े से साथ-साथ रहना" ; कहकर युवक ने साइकिल आगे को बढ़ाई । उसकी चपेट में भिखारी का एक लड़का आकर ज़मीन पर गिर पड़ा और "अब्बा-अब्बा" कहकर रोने लगा ।

ऐसी थी वह नेक दोपहरी कि शाम तक भिखारी को एक पैसा भी नसीब न हुआ । भाग्य में ठोकरें ही लिखी हुई थीं । बच्चे भूखे बिलख रहे थे । अपने अतीत पर वह भी आँसू बहा रहा था । भविष्य उस पर क्रूर हँसी हँस रहा था । अपनी पत्नी के मरने के बाद से वह निरन्तर नौकरी की तलाश में शहर के कोने-कोने में घूमा, लेकिन उसे उपहास, व्यंग और गालियाँ ही मिलीं । पुराने मालिक ने पहले ही जवाब दे दिया था और उसकी जगह एक और को रख लिया था । उसने देखा कि नौकर को मालिक की कमी रहती है, मालिक को नौकर की नहीं । आमदनी हो या न हो, किन्तु पेट तो माँगता ही है । कुछ दिन उसने अपने बच्चों का भरण-पोषण बरतन-भाँडे आदि बेचकर किया । आज तीन दिन से वह सड़कों पर भीख माँगता फिर रहा था, लेकिन उसे तीन पैसे भी तो नहीं मिले थे । दुनिया उसे झूठा, आलसी, बदमाश समझती थी । उसे ऐसी दुनिया पर, समाज पर बेहद क्रोध आता था । उसका नाश करने की इच्छा होती थी, लेकिन वह शक्तिहीन—विवश था । उस शहर में कुत्तों को भी रोटी मिल जाती थी, किन्तु वह और उसके बच्चे कुत्तों से भी गये-बीते थे ।

भीख माँगते-माँगते वह नगर के क़ब्रस्तान के पास आया । यहीं उसकी बीवी दफ़न हुई थी । अभी दिन ही कितने हुए थे । उसकी याद उसके हृदय में हरी हो गई । कितनी नेकबख़्त थी वह कि उसकी ज़िन्दगी में वह मज़े में रहा, अब उसके मरते ही उसे भीख भी माँगनी पड़ी, लेकिन भीख भी न मिली । क़ब्रस्तान से मिली हुई मस्जिद थी । उसके क़ाज़ी साहब मुहम्मदहनीफ़ ने उसे उस दिन कितनी पाक सलाह और शिक्षा दी थी, जब उसकी बीवी का जनाज़ा क़ब्र में उतर रहा था और वह उसे दफ़न होने नहीं देता था । फूट-फूटकर रो रहा था । आज फिर क़ाज़ी साहब के सदुपदेश लेने के लिए वह अपने बच्चों को लिये हुए आगे बढ़ा । क़ाज़ी साहब अपनी बैठक में आबनूस के कामदार किताबदान पर क़ुरानशरीफ़ रक्खे हुए मूँज की चटाई पर बैठे पढ़ रहे थे । चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी । भिखारी दरवाज़े पर पहुँचकर रुक गया । उसकी हिम्मत कैसे हो कि वह क़ाज़ी साहब के कमरे में बिना उनकी आज्ञा के घुस जाय । उसे यहाँ फ़रिश्ते पहरा देते हुए मालूम देते थे । भिक्षुक के बच्चों का सिसकना अभी तक बिलकुल बन्द नहीं हुआ था । कभी-कभी एक-दो सिसकारी छूट ही पड़ती थी । वे मा के असहाय बच्चे—उनका दिल टुकड़े-टुकड़े टूट रहा था । बच्चों का सिसकना सुनकर क़ाज़ी साहब का ध्यान उधर आकर्षित हुआ । उन्होंने पूछा—

"कौन है दरवाज़े पर ?"

"सलामआलेकुम, क़ाज़ी साहब, मैं हूँ अब्दुल-लतीफ़ ।"

"क्यों सिसक रहे हो ?"

"मेरे बच्चे हैं, क़ाज़ी साहब ।"

"क्या बात है ? अन्दर आओ ।"

अब्दुललतीफ़ अपने बच्चों को लेकर अन्दर पहुँचा । क़ाज़ी साहब ने देखा उसके सुकुमार भूखे बच्चों को । उनके गाल आँसुओं से धुले हुए थे, रंग गोरा और दोहरा बदन था । अब्दुललतीफ़ ने अपनी दुःख की कहानी रो-रोकर सुनाई, किन्तु उनकी ज़बान से सिर्फ़ यही निकला—"ख़ुदा पर भरोसा रक्खो । किसी के आगे हाथ मत फैलाओ । जो उसे मंज़ूर है, वही होगा ।"

"लेकिन आप ही बतलाइए इन बच्चों को कैसे पालूँ ? क्या खिलाऊँ ? एक दाना भी तो मयस्सर नहीं हुआ । अब सब्र भी कैसे किया जाय ? आप ही कुछ इमदाद कर दें", कहकर भिखारी ने सकरुण दृष्टि से क़ाज़ी साहब की तरफ़ देखा ।

लेकिन क़ाज़ी साहब का मानों उस ओर ध्यान ही न था । वह धीरे-धीरे पाक आयतें पढ़ रहे थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिखारी कुछ देर तक तो उनके मुख की ओर ताकता रहा, फिर सहमता हुआ दबी ज़बान से बोला—

"मेरे लिए क्या हुक्म है ? कुछ तो मदद कीजिए।"

"एक बार कह दिया। वही होगा, जो उसे मंज़ूर है। अब जा सकते हो।"

क़ाज़ी साहब ने अब्दुललतीफ़ को अपने बच्चों को लेकर वहाँ से धीरे-धीरे बाहर जाते हुए देखा, मानों कुछ हुआ ही न हो। भिखारी ने भी सोचा कि मनुष्य को मनुष्य से नहीं, किन्तु उसके पैसे से ममता होती है। अगर उसे क़ाज़ी साहब से कोई तावीज़ लेना होता तो वे उसके साथ बड़ी ख़ातिर से पेश आते। भिखारी से उन्हें नाता ही क्या हो सकता था ?

लेकिन अब वह जाय तो कहाँ जाय ? इतनी बड़ी दुनिया में उसे कोई ठिकाना भी तो नहीं था। उसे अपनी बीवी का ख़ूबसूरत चेहरा क़ब्र से उठता हुआ बार-बार दिखाई देता था। वह उँगलियों से अपने बच्चों को प्यार करने के लिए बुला रही थी। हाँ, उसकी क़ब्र में उनके लिए काफ़ी जगह थी।

क़ब्रस्तान से कुछ फ़ासले पर एक पेड़ के नीचे वह बैठ गया। उसने अपने बच्चों को अपनी टाँगों पर लिटा लिया। बड़ा बच्चा किसी तरह चुप न होता था। वह बराबर खाना माँग रहा था। भिखारी उससे कह रहा था—

"बेटा, तुम्हारे लिए तुम्हारी मा खाना पकाने गई है। वह खाना पकाकर लाती होगी। फिर गरम-गरम ख़ूब खाना।"

"अब्बा, बहका रहे हो।"

"नहीं बेटा, यक़ीन रक्खो, अब भूखे न रहोगे।"

"अम्मा तो बहुत दिनों से गई हैं ?"

"पर आज शाम को लौट आवेंगी। तुम्हारी ननसाल गई हैं, बूढ़े नाना के पास। वहीं से बहुत-सा खाना लेकर आवेंगी।"

"हमें भी वहीं ले चलो।"

"बेटा, तुम्हारे लिए बुलावा नहीं आया है। अब अगर तुम आँखें बन्द कर लोगे और सोते बन जाओगे तो तुम्हारी मा बहुत जल्द आ जावेंगी।"

"अच्छा, अब्बा।"

बालक ने आँखें बन्द कर लीं आशा से। अब कुछ-कुछ अँधेरा हो आया था। दिनभर के थके-माँदे बालक बहाना करते ही सचमुच सो गये। अब्दुललतीफ़ ने धीरे-धीरे उन्हें टाँगों पर से उठाकर ज़मीन पर, वृक्ष के पत्तों पर लिटा दिया। वह बहुत देर तक बैठा आँसू बहाता रहा। उसे अपनी बीवी की याद बहुत सता रही थी। क़ब्र में वह बिलकुल बदल गई होगी। शायद वह उसे पहचान भी न सके। एक बार वह उसे देखे तो, अब वह कैसी लगती है।

वह धीरे-धीरे उठा। उसके भाग्य से रात भी अँधेरी थी। क़ब्रस्तान में घुसकर उसे अपनी पत्नी की क़ब्र ढूँढते देर न लगी। मिट्टी की क़ब्र थी। थोड़ी ही देर में उसने हाथों ही से बहुत-सी मिट्टी हटा डाली। लाश को छूते ही एक विचार बिजली की तरह उसके मस्तिष्क में दौड़ गया। अब भी वह अपने बच्चों की मदद कर सकती थी। वह कुछ ज़ेवर पहने दफ़नाई गई थी। इस विचार ने उसके और विचारों को दबा दिया। थोड़ी-सी कोशिश से ही उसके हाथ चाँदी की नथ और बालियाँ लग गईं। वह क़ब्र में मिट्टी भरकर अपराधी आत्मा की तरह दबे पाँव क़ब्रस्तान से बाहर हो गया। उसने अपने बच्चों की जान तो बचा ली। उन्हें लेकर वह जल्दी-जल्दी वहाँ से चल दिया, जिससे वह पकड़ा न जा सके। मुर्दे तो शोर मचाते ही नहीं, फिर जाग कैसे होती और वह पकड़ा ही कैसे जाता।

सवेरे उसने उन्हें बेचकर स्वयं भी ख़ूब खाया और अपने बच्चों को भी भरपेट खिलाया। उसने अपने बच्चों से कहा कि रात तुम्हारी मा खाने को दे गई थीं। आज रात को फिर सो जाना।

अगले दिन क़ाज़ी साहब को बतलाया गया कि किसी ने एक क़ब्र रात में खोदी है। उन्होंने एक आदमी पहरे के लिए नियुक्त कर दिया।

आज रात को अब्दुललतीफ़ आधी रात के बाद क़ब्रस्तान में गया। पहरेदार सो गया था। आज उसने फिर दो क़ब्रें खोदीं। उसके हाथ काफ़ी ज़ेवर लगा, कई दिन के भोजन के लिए।

अब तो क़ाज़ी साहब को अपराधी पकड़ने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता हो गई। दो आदमी क़ब्रस्तान ही में सोने लगे। आख़िर अपराधी पकड़ा ही गया।

अब्दुललतीफ़ पर मुक़दमा चलाया गया। क़ाज़ी साहब और पहरेदारों ने उसके विरुद्ध गवाही दी। उसने अपने को निर्दोष बताया। वह तहसीलदार साहब की अपने को छोड़ देने के लिए बराबर ख़ुशामद करता था। वह कहता था, "मेरा दोष ही क्या है। मैंने हर जगह प्रयत्न किया, हज़ारों प्रार्थनाएँ कीं; लेकिन किसी ने नौकर ही न रक्खा। मेरी नौकरी इन बच्चों की मा की बीमारी में जाती रही। मालिक ने छुट्टी तक न दी। वह भी मर गई और मेरी नौकरी भी जाती रही। नौकरी न मिली तो भीख माँगी। भीख न मिली तो ऐसा किया। अगर ये बच्चे भूखे मरते तो हुज़ूर के सामने न सही, पर वह ख़ुदा के सामने तो अपराधी ही ठहराया जाता। ये बे मा के बच्चे हैं। मेरे सिवा इनके कोई भी नहीं है। इन्होंने कौन-सा अपराध किया है ?

"इन्हीं के लिए उसे छोड़ दिया जाय और भविष्य के लिए उसे कोई नौकरी दे दी जाय, जिससे वह उन्हें पाल सके। अगर वह काम ठीक-ठीक न करे तो उसका दोष होगा। अगर वह ख़ाली रहना पसन्द करता हो तो वह अवश्य अपराधी है। उसने जो भी कुछ किया, अपनी और अपने बच्चों की जान बचाने के लिए। अगर वह ख़ुदा की दी हुई वस्तु की रक्षा न करता तो तब भी दोषी होता और अगर ख़ुदकुशी करता तो तब भी क़ानून उसे दोषी ठहराता। फिर उसने किसी का नुक़सान ही क्या किया ? उसने तो किसी भी आदमी की चोरी नहीं की। वह ज़ेवर तो किसी भी आदमी का नहीं था। सिर्फ़ ज़मीन में पड़ा हुआ था, उसने उसे उठा ही तो लिया। क्या कोई इन्सान कह सकता है कि यह उसकी क़ब्र है या वह उसकी चीज़ थी ? वे चीज़ें तो पड़ी पाई वस्तु के बराबर थीं। यह क़ब्र भी किसी जीवित की वस्तु नहीं। तो उसने अपराध किया तो किसके विरुद्ध ? अगर किया तो मुरदों के साथ, जिन्हें कोई शिकायत ही नहीं। फिर यह उस पर मुक़दमा कैसा ? अगर इस पर भी यह उसका क़ुसूर है तो उसकी जड़ में दुनिया ही क़ुसूरवार है। उससे वास्तव में कोई अपराध नहीं हुआ।"

लेकिन तहसीलदार साहब के सामने ये जीवित तर्क न थे, किन्तु एक पागल का प्रमाद था।

उपस्थित व्यक्तियों में से एक ने धीरे से कहा, "इसके बच्चे तो मर ही जायँगे।" अभियुक्त ने यह सुन लिया। वह बिगड़कर कहने लगा, "जी नहीं, मेरे बच्चे नाबालिग़ हैं। उन्हें कोई मुझसे अलग नहीं कर सकता। ऐसा क़ानून है। मुझे एक पढ़े-लिखे साहब ने बता दिया है। जब इन बच्चों का कोई नहीं है, ये बे मा के बच्चे हैं, तो ये मेरे ही साथ रहेंगे। मुझे जेल होगी तो ये भी मेरे साथ जेल जायँगे।"

इजलास में उसकी अनभिज्ञता पर एक हँसी की हलकी लहर दौड़ गई। वह साश्चर्य लोगों को देख रहा था।

तहसीलदार साहब ने फ़ैसला सुना दिया। उसे जेल जाने का दंड मिला एक मास के लिए।

अभियुक्त को अब भी विश्वास नहीं था कि वह वास्तव में अपराधी है, उसने कोई दोष भी किया है।

डाक्टर एन० सी० भादुड़ी
की
"बृहद् बायोकेमिक चिकित्सा-निदान"
बारह लवण के ऊपर निदान तथा चिकित्सा-सम्बन्धी हिन्दी की सर्वोत्तम पुस्तक। पृष्ठ ३००; मूल्य केवल २); डाक-व्यय अलग।
मिलने का पता—
नवलकिशोर-प्रेस बुकडिपो, हज़रतगंज, लखनऊ।
हिन्दुस्तान की तमाम प्रसिद्ध मेडिकल शोप में भी मिल सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर जानसन

(शेषांश)

श्रीप्रेमनारायण टंडन, बी० ए०, विशारद

(१११)

एक बार जानसन के व्यवहार से बासवेल नाराज़ हो गया। कारण यह था कि डाक्टर ने कुछ आदमियों के सामने बासवेल को बुरी तरह फटकार दिया था। उसे इससे इतना दुःख हुआ कि वह दिन-भर डाक्टर से अलग रहा, किसी तरह की कोई बात न की। जानसन उसकी उदासीनता देखकर सब बात समझ गया और शाम को उसने एकान्त में उससे पूछा—क्यों, क्या बात है ?

बासवेल ने क्षोभपूर्ण शब्दों में कहा—आपके व्यवहार से आज मुझे बहुत दुःख हुआ है। शायद आप जानते होंगे कि आपका जितना सम्मान मैं करता हूँ, उतना दूसरे नहीं करते ; जितनी श्रद्धा की दृष्टि से मैं देखता हूँ, दूसरे नहीं देखते ; फिर भी आपने मेरा इस प्रकार अपमान किया, जैसे..........

डाक्टर ने उसे रोकना चाहा, पर बासवेल कहता गया—आपने मेरा जो अपमान किया, उसकी मुझे चिंता नहीं ; मुझे दुःख तो इस बात का है कि आपने ऐसे आदमियों के सामने मुझे लज्जित किया, जो न आपको चाहते हैं और न मुझे ही।

जानसन ने अधिक सफ़ाई देने का प्रयत्न न करके स्पष्ट शब्दों में कहा—सत्य ही मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि मेरे व्यवहार से तुम्हें दुःख हुआ। अब मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए, जो तुम कहो, करने को तैयार हूँ।

नोट—साधारणतः जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जब आवेश अथवा अन्य किसी कारण से घनिष्ठ मित्रों में भी वाद-विवाद हो जाता है। ऐसे अवसर पर हमें डाक्टर की तरह ही अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिए ; इससे मित्र की दृष्टि में हमारा सम्मान बढ़ जायगा।

(११२)

बालकों की शिक्षा के विषय में बात छिड़ने पर डाक्टर ने कहा—मैं तो इस पक्ष में हूँ कि आरम्भ में बालक की रुचि पढ़ने की ओर बढ़ाने का ही प्रयत्न करना चाहिए। जो किताब भी वह चाहे, उसे दी जाय। उसके सामने अच्छी-बुरी पुस्तक का प्रश्न उठाना ठीक नहीं। कारण, यदि इस अवस्था में वह व्यर्थ की पुस्तकें भी पढ़ता रहा तो भी कोई हानि नहीं ; क्योंकि पढ़ने की ओर उसकी रुचि तो बढ़ेगी। आगे चलकर वह अच्छी पुस्तकें भी पढ़ेगा।

नोट—हिन्दी-प्रचार का प्रश्न आज बड़े महत्त्व का है। जो इस समस्या को हल करने के लिए प्रयत्नशील हैं, उन्हें डाक्टर के इस कथन पर भी ध्यान देना चाहिए। महात्मा गांधी ने भी कहा है—कोई भी पुस्तक पढ़ने से हमारा ज्ञान बढ़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११३)

साहित्यिक-जीवन की शुष्कता के विषय में संकेत करते हुए एक महाशय ने कहा—मेरी सम्मति में साहित्यसेवियों का जीवन नीरस और शुष्क हो जाता है ; उसमें सुख और आनन्द नहीं रहता ।

जानसन ने उसकी इस बात का विरोध करते हुए कहा—क्यों ? उनके जीवन के नीरस हो जाने का तो कोई कारण नहीं है । मेरी समझ में तो साहित्य-सेवियों का जीवन उतना ही सुखी है, जितना अन्य किसी व्यक्ति का । जीवन को सुखी बनाने के लिए उसमें भी मनोरंजन के विभिन्न साधन हैं ।

बासवेल ने भी उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा—हाँ, साहित्यसेवियों का जीवन और भी अधिक सुखी हो सकता है, यदि उन्हें विभिन्न स्थानों में भ्रमण करके रुचि-परिवर्तन का अवसर मिले ।

नोट—भारतीय साहित्यसेवियों से तो नहीं, हाँ, हिन्दी के उन साहित्यसेवियों से—जो केवल साहित्य-सेवा करके जीते हैं—मैं पूछता हूँ—क्या आपका जीवन सुखी है ?

(११४)

वक्तृत्व-कला के विषय में बात करते हुए एक महाशय ने कहा—मेरी सम्मति में अपने विचारों को प्रभावोत्पादक काव्यात्मक ढंग से व्यक्त करना ही व्याख्यान-कला है ।

जानसन ने उसका विरोध करते हुए कहा—नहीं महाशय, अपने विपक्षी की दलीलों को काटकर उनके स्थान पर अपने अधिक उपयुक्त प्रस्ताव रखने की क्षमता का नाम ही वक्तृत्व-कला है ।

महाशय ने शंका की—परन्तु यह ढंग प्रभावोत्पादक तो हो नहीं सकता ।

जानसन—प्रभाव उन्हीं पर पड़ता है, जो प्रायः चरित्रहीन होते हैं ।

(११५)

एक महाशय की मृत्यु के बाद उनके निजी पुस्तकालय की पुस्तकें बेची गईं । जो लोग उनसे परिचित न थे, वे पुस्तकों का ऐसा संग्रह देखकर आश्चर्य प्रकट करने लगे । जानसन ने इस पर कहा—उनके पुस्तकालय में इन पुस्तकों का न होना आश्चर्य का विषय होता ।

नोट—इँगलिस्तान, फ्रांस, अमेरिका, जापान आदि देशों में प्रायः सभी साहित्यसेवियों के पास निजी पुस्तकालय होता है और इसका होना उनके लिए आवश्यक है । हिन्दी के कितने साहित्यसेवियों ने पुस्तकालय का रखना आवश्यक समझा है ?

(११६)

जानसन से मित्रता हो जाने के बाद एक दिन मिस्टर विलकस ने उसको सुनाते हुए अपने दूसरे मित्र से कहा—यदि डाक्टर जानसन अपनी नई पुस्तकों का एक सेट मुझे दे दें तो मैं बड़ा कृतज्ञ हूँगा । मैं निर्धन हूँ, अतः उसे ख़रीद नहीं सकता ।

जानसन ने उसके पास एक सेट भिजवा दिया । कृतज्ञतास्वरूप विलकस डाक्टर को धन्यवाद देने गया । जानसन ने उसका बड़ा सम्मान किया ।

(११७)

बासवेल ने एक दिन जानसन से पूछा—आपको अधिक धन नहीं मिला ; क्या आपको इसका दुःख नहीं है ? आपको कोई सम्मान और पद नहीं मिला, क्या आप इससे असंतुष्ट नहीं हैं ? लोग तो उन्हें प्राप्त करने के लिए पागल-से फिरा करते हैं । आपको तीन सौ पौंड सालाना की पेंशन मिलती है । आप कोई घोड़ा-गाड़ी क्यों नहीं रखते ? अपना आफ़िस शानदार क्यों नहीं बनाते ?

डाक्टर जानसन ने सरल भाव से उत्तर दिया—अपनी निर्धनता के विषय में मैंने दुनिया से कभी शिकायत नहीं की और न इसकी आवश्यकता ही समझता हूँ । मुझे तो इसी पर आश्चर्य है कि मुझे इतना धन भी कैसे मिल गया । और सरकार से मुझे जो पेंशन मिलती है, वह भी विचित्र ही है ; न तो मैंने सरकार से इसके लिए प्रार्थना ही की थी और न मैं सरकार का मित्र ही था । जहाँ तक मुझे मालूम है, आज तक किसी को बिना माँगे सरकार से कभी कुछ मिला ही नहीं ।

नोट—कितने ऊँचे आदर्श का व्यक्ति था डाक्टर जानसन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११८)

दीन-दुखियों की सहायता करने के लिए जानसन स्वयं तो सदैव तो प्रस्तुत रहता ही था, कभी-कभी उनके लिए दूसरों से भी भिक्षा माँग लेता था। चरित्र की इस विशेषता के कारण लोग उसका बड़ा सम्मान करते थे। कारण, हम अपने लिए तो दूसरों के आगे हाथ फैलाया करते हैं; परन्तु दूसरों के लिए नहीं—इसे हम हीन दृष्टि से देखते हैं। ठीक इसके विपरीत, जानसन अपने लिए तो दूसरों से कुछ माँगना अपनी आत्मा का हनन करना समझता था; परन्तु दूसरों की सहायता करने के लिए भिक्षा माँगने में भी उसे शर्म नहीं लगती थी।

नोट—एक संस्था की मीटिंग हो रही थी। चन्दे का सवाल छिड़ा हुआ था। आवेश में मंत्री महोदय कह गये—I am not going to beg for others. इस पर लोग हँस पड़े; क्योंकि मंत्री महोदय के कहने के ढंग से यह स्पष्ट था कि वे स्वयं अपने लिए beg करने को तैयार हैं, पर दूसरे के लिए नहीं। दान और भिक्षा का यही आदर्श अब हमारे सामने रह गया है।

(११९)

मिस्टर थ्रेल के यहाँ डाक्टर बड़े सुख से रहता था। जब उसकी मृत्यु हुई, तब जानसन को बड़ा दुःख हुआ। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर जानसन ने अपनी डायरी में लिखा—

सर्वशक्तिमान् और दयासागर परमपिता परमात्मा! मेरी सहायता करो, जिससे मैं अत्यंत विनम्र होकर कृतज्ञतापूर्वक उन सुखों को याद करके इन्हें धन्यवाद दूँ, जो मैंने इनके स्थान पर उठाये हैं।

सर्वशक्तिमान्! मैं आपकी देखरेख में ही इनके परिवार को छोड़ता हूँ। इनकी रक्षा करो; इन्हें सरल मार्ग सुझाओ। हे परमपिता! मुझ पर दया करो।

(१२०)

अँगरेज़ों के चरित्र की आलोचना करते हुए डाक्टर ने एक दिन बासवेल से कहा—किसी भी राष्ट्र के जब दो व्यक्ति एकांत में, एक कमरे में मिलते हैं, तब वे दो-चार मिनट बाद ही आपस में बातचीत करने लगते हैं, परन्तु अँगरेज़ यदि एकांत कमरे में रह जायँ तो शायद खिड़कियों में जाकर बाहर की ओर ताकने लगेंगे, इस बात की ज़रा भी चिन्ता न करेंगे कि उनका साथी कौन है; किस काम से आया है आदि। अँगरेज़ जाति अभी मनुष्यता के साधारण अधिकार भी नहीं समझती।

नोट—साहित्य-सम्मेलन में इस बार मैं भी गया था। आदरणीय बा० कालिदासजी कपूर भी साथ थे। हमारे कमरे में शायद आठ आदमी थे। तीन-चार दिन हम लोग वहाँ रहे। परन्तु यह न-मालूम हुआ कि हमारे साथ कौन-कौन सज्जन ठहरे थे। इसी प्रकार सम्मेलन में भी तीन-चार बाहर के आये हुए सज्जनों में से शायद तीन-चार से ही परिचय हुआ। सत्य है, सम्मेलन में हम इसलिए जाते हैं कि अपने परिचितों से मिल लें; अपरिचितों की हमें चिन्ता नहीं रहती। तब क्या हमारे साहित्यसेवी भी मनुष्यता के साधारण नियम नहीं समझते या केवल हमीं ऐसे हैं?

(१२१)

जानसन ने एक बार कहा था—बातचीत करने में दूसरों से बढ़कर योग्यता दिखाने से जितने अधिक व्यक्ति मन-ही-मन हमसे रुष्ट होते हैं, उतने अन्य किसी कारण से नहीं। चाहे वे उस समय आपकी प्रशंसा करने लगें, परन्तु वास्तव में उनका हृदय ईर्ष्या की अग्नि से दग्ध होता रहेगा।

नोट—डाक्टर ने मानव-चरित्र का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया था, उक्त कथन का कटु सत्य इस बात का प्रमाण है।

(१२२)

जनसाधारण की पढ़ने की रुचि के विषय में बात करते हुए जानसन ने कहा—यह बड़े आश्चर्य की बात है कि संसार में लोग पढ़ते तो कम हैं, परन्तु लिखते बहुत अधिक हैं। वस्तुतः जनता के पास यदि मनोरंजन का कोई भी अन्य साधन है तो वह पढ़ने की चिन्ता नहीं करती। अतः उसमें पढ़ने की इच्छा उत्पन्न करने के लिए हमें अन्य किसी उपाय की सहायता लेनी चाहिए। पढ़ने और समझने में जितनी कठिनाई पाठक को उठानी पड़ती है, वह मिलनेवाले आनंद से कहीं कम होती है। बात यह है कि हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी हाव-भाव व्यक्त करने की क्षमता हमारी भाषा में नहीं होती। विज्ञान की पुस्तकें कोई केवल मनो-रंजन के लिए नहीं पढ़ता। मन-बहलाव के लिए तो केवल हम वे रचनाएँ पढ़ते और अपनाते हैं, जो प्रायः घटना-प्रधान होती हैं।

प्रायः कहा गया है कि लिखने में, विशेषकर कविता करने में, बड़ा आनन्द आता है। मैं भी किसी सीमा तक इससे सहमत हूँ। परन्तु इतना मानना होगा कि हमें लिखने में तभी आनन्द मिलेगा, जब हम अच्छा लिखेंगे। फिर भी अपनी रचनाएँ अकारण ही कोई दोहराने को तैयार नहीं होता। मैं अपने विषय में कह सकता हूँ कि मैं जब कविता लिखने लगता हूँ, तो ऊब जाता हूँ और अपनी लिखी पंक्तियाँ दोहराकर यह जानने का प्रयत्न करता हूँ कि कितना और लिखना रह गया।

(१२३)

१७ जून, सन् १७८३ में उसने अपने एक मित्र को बुलाने के लिए पत्र लिखा—

प्रियवर,

हमारे ईश्वर की मुझ पर कुछ ऐसी कृपा है कि उसने मेरी वाक्-शक्ति हर ली है। कौन जानता है, आगे मेरी स्मरण और चेतना-शक्ति पर भी कोप हो। अतः मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि पत्र पाते ही मेरे पास चले आओ।

तुम्हारा,
सैमुएल जानसन

परन्तु जानसन शीघ्र ही इस रोग से मुक्त हो गया और जूलाई में ही उसने एक लम्बी यात्रा की।

(१२४)

दिसम्बर के महीने में वह फिर बीमार पड़ा। उसके मित्र उसे देखने के लिए आने लगे। डाक्टर जानसन ने सदैव हँसकर उनका स्वागत किया और उनसे घंटों बातचीत की। इस बार भी सौभाग्य से उसे रोग से छुटकारा मिल गया।

(१२५)

ऊपर एक स्थान पर कहा जा चुका है कि डाक्टर जानसन "रैंबलर" (Rambler)-नामक एक पत्र का सम्पादक था। एक बार अपने मित्रों से उसने कहा—"सज्जनो, आज आपको एक बड़ी आश्चर्यजनक बात बताता हूँ। रूस की महारानी ने मेरे "रैंबलर" का रूस की भाषा में अनुवाद करने की आज्ञा दी है। अतः आज से वाल्गा (रूस की एक नदी) के किनारे लोग मेरा अध्ययन करेंगे।

बासवेल को जानसन की इस प्रसिद्धि से बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्ष से उसने पूछा—आपको इस बात से बड़ी ख़ुशी हुई होगी?

जानसन ने तत्काल उत्तर दिया—निश्चय; मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई है। मनुष्य का तो यह स्वभाव ही है कि जिस बात के लिए वह प्रयत्न करता है, उसकी सिद्धि से उसे हार्दिक प्रसन्नता होती है। इसी से मैं भी बहुत प्रसन्न हूँ।

नोट—हमें भी प्रसन्नता है कि डाक्टर को अपने जीवन-काल में ही इस प्रकार प्रसन्न होने का अवसर मिल गया। हिन्दी-साहित्यसेवी तो मौखिक प्रशंसा से भी वंचित रह जाते हैं। प्रेमचन्दजी पर जीवनभर हम चोरी का दोष लगाते रहे।

(१२६)

जून, सन् १७८४ में वह फिर बीमार हो गया। परन्तु अपनी विपत्ति और बीमारी में भी उसे निर्धन और निरीह प्राणियों की चिन्ता थी। एक भिखारी को अपने मित्र के पास भेजते हुए उसने लिखा—

मुझे दुःख है कि मैं उसे कुछ नहीं दे सका। कृपा करके इसकी इच्छा पूर्ण कर दें। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा।

(१२७)

एक संस्था में डाक्टर जानसन बैठा हुआ था। वहीं एक स्त्री भी थी, जो बड़ी उत्सुकता से डाक्टर की बातें सुन रही थी। डाक्टर के चुप होते ही उसके मुख से निकल पड़ा—ओह! डाक्टर किस ख़ूबी से बात करता है! उसका प्रत्येक वाक्य जैसे एक लेख है।

(१२८)

बासवेल ने एक बार डाक्टर से एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया। उसने बड़ा साहस करके पूछा—आपका व्यवहार प्रायः उग्र रहा है, जिसे लोगों ने अशिष्टता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाम से पुकारना शुरू किया है। क्या इस व्यवहार से आपको किसी प्रकार का लाभ पहुँचा है ? यदि आपका व्यवहार अपेक्षाकृत नम्र रहता तो क्या उससे अधिक लाभ न हुआ होता ?

इतना पूछकर बासवेल उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने स्वयं ही उत्तर देने का प्रयत्न करते हुए कहा—शायद आपके लिए इस प्रकार का व्यवहार करना आवश्यक था ; क्योंकि इसने आपकी बातों को बहुत ज़ोरदार बना दिया। यदि आप उग्र होकर बात न करते तो बहुत संभव था, आपके विरोधी आसानी से आपकी बात न मानते।

जानसन ने शांतभाव से कहा—नहीं, यह बात नहीं है। लेकिन मैं जैसा हूँ, उसी में मेरा लाभ है।

बासवेल ने परिस्थिति समझाते हुए कहा—परन्तु इतना तो आपको मानना ही पड़ेगा कि आपके उग्र स्वभाव और व्यवहार से भयभीत होकर बहुत-से लोग आपके साथ वार्तालाप करके लाभ उठाने से वंचित रह गये।

जानसन—मैं कहूँगा कि उनके पास तथ्यपूर्ण बातें थीं ही नहीं ; अन्यथा वे मुझसे कभी भयभीत न होते।

नोट—आचार्य पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी को भी उग्र स्वभाव का बताया गया है। यदि किसी महाशय से उनकी इस विषय पर बात हुई हो, तो लिखने की कृपा करें।

(१२६)

जानसन की उदारता के संबंध में यह घटना बहुत प्रसिद्ध है। एक रात को वह घर लौट रहा था। मार्ग में उसे एक निर्धन स्त्री सड़क पर पड़ी मिली। दयार्द्र होकर वह उसे अपनी पीठ पर लादकर घर ले गया और बड़ी लगन से उसने उसकी सुश्रूषा की। इसके लिए उसे शारीरिक श्रम भी करना पड़ा और उसका धन भी ख़र्च हुआ। परन्तु डाक्टर परोपकार में लगा ही रहा।

नोट—उदारता और परोपकार-सम्बन्धी ऐसे उदाहरण सम्मुख रखनेवाले ही व्यक्ति सच्चे और आदर्श मनुष्य हैं।

(१३०)

डाक्टर की प्रशंसा में एक महाशय ने एक बार कहा था—मनुष्य में गुण भी होते हैं और दोष भी। जानसन भी मनुष्य ही था। उसमें गुण भी बहुत-से थे और दोष भी। दोष सब पर प्रकट थे, परन्तु गुण बहुत-से छिपे हुए थे। यदि डाक्टर की वे सब गुप्त बातें जनता पर प्रकट कर दी जायँ कि किस-किस तरह से उसने निर्धनों की रक्षा की, आहतों के प्राण बचाये और अनाथों की सेवा की, तो जो उसके दोष दिखाते फिरते हैं, वे ही उसके सबसे बड़े प्रशंसक हो जायँगे।

यद्यपि जानसन का सम्मान उसके समकालीन धर्म, राज्य और समाज के क्षेत्र में काम करनेवाले सभी नेताओं ने नहीं किया है, तथापि इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि साहित्य-सेवा करके जीविकोपार्जन करनेवाले किसी भी व्यक्ति को, उसके समय में जानसन के समान प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि नहीं प्राप्त हुई।

(१३१)

२२ जून को उसका स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया। परन्तु वह अब भी साहित्यिक-संस्था के अधिवेशन में सदैव की भाँति नियत समय पर ही पहुँचा। वहाँ उसने अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में किसी तरह की शिकायत नहीं की और अपना काम नित्य की भाँति करता रहा। जो लोग उसकी अवस्था से परिचित थे, उन्होंने समवेदना प्रकट की और जानसन ने मुस्कराते हुए उन्हें धन्यवाद दिया।

(१३२)

डाक्टर का स्वास्थ्य नित्यप्रति गिरता देखकर उसके मित्रों ने इस बात का प्रयत्न किया कि जानसन को बचाने के लिए इतना धन एकत्र किया जाय, जिससे वह इटली में जाकर अपने अन्तिम दिन सुखपूर्वक बिता सके। जानसन को इस बात की सूचना दिये बिना ही उसके मित्रों ने धन का प्रबन्ध कर लिया। बाद को पता लगा कि स्वयं जानसन को साहित्यसेवा से इतना धन मिला है कि वह सारे योरप की यात्रा कर सकता है।

नोट—हमारे यहाँ प्रेमचन्दजी कितना धन छोड़कर मरे थे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३३)

एक मित्र से बात करते हुए जानसन ने कहा—मैंने जीवन-भर आज्ञाकारी पुत्र बनने का प्रयत्न किया है। अपने जीवन में केवल एक बार मैंने पिता की आज्ञा टाली थी ; वे मुझे बाज़ार भेजना चाहते थे और मैंने जाने से इनकार कर दिया था। परन्तु इस पाप के प्रायश्चित्त में जब-जब मौसम ख़राब आया है, मैं जाकर उसी बाज़ार में खड़ा हो गया हूँ, जहाँ मेरे पिताजी मुझे भेजना चाहते थे। आशा है, इससे मेरा अपराध उन्होंने क्षमा कर दिया होगा।

नोट—हमारे भारतीय नवयुवक देखें आज्ञा-उल्लंघन का प्रायश्चित्त इस तरह होता है, बूढ़े बाप को आँख दिखाकर नहीं।

(१३४)

जानसन का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता गया। बहुत दवा की गई, परन्तु कोई लाभ न हुआ। इस पर भी वह सदैव प्रसन्न रहता और यदि उसका कोई मित्र उससे कभी कहता—आज तो आप स्वस्थ मालूम होते हैं, तो जानसन बहुत प्रसन्न होता था।

(१३५)

अपनी मृत्यु से आठ-दस दिन पहले एक दिन जानसन ने अपने डाक्टर को शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक मैकबेथ की ये पंक्तियाँ सुनाईं—

Canst thou not minister to a mind diseas'd;
Pluck from the memory a rooted sorrow;
Raze out the written troubles of the brain;
And, with some sweet oblivion's antidote,
Cleanse the stuff'd bosom of that perilous stuff
Which weighs upon the heart ?

ये पंक्तियाँ ऐसे ही अवसर पर कही गई हैं, जब मनुष्य जीवन से निराश होकर डाक्टर से पूछता है—क्या तुम किसी तरह मुझे अच्छा नहीं कर सकते ? डाक्टर ने उत्तर में वे ही पंक्तियाँ दोहरा दीं, जो मैकबेथ से (नाटक में) डाक्टर ने कही थीं। वे पंक्तियाँ ये हैं—

"....................Therein the patient,
Must minister to himself."

इस कथन का भावार्थ यही है कि ऐसी बीमारी तभी दूर हो सकती है, जब स्वयं रोगी ही अपनी देख-भाल करे।

जानसन डाक्टर के इस उत्तर से बहुत संतुष्ट हुआ।

(१३६)

दो-तीन दिन बाद बर्क अपने साथियों के साथ उससे मिलने गया। जानसन की दशा अच्छी न थी। इसलिए बर्क ने धीरे से पूछा—हम लोगों के आने से आपको कुछ असुविधा तो न होगी ?

जानसन ने तत्काल उत्तर दिया—जिस दिन आपके आने से मुझे असुविधा होगी, उस दिन मेरा जीवन व्यर्थ हो जायगा।

इन दो साहित्य-महारथियों का यही अंतिम मिलन था।

(१३७)

मृत्यु से दो-तीन दिन पहले जानसन ने अपने डाक्टर से पूछा—आज आप साफ़-साफ़ कह दें कि मैं बचूँगा या नहीं ?

जानसन की उत्सुकता और दृढ़ता देखकर डाक्टर ने उत्तर दिया—आप अब नहीं बच सकते ; हाँ, हम....

डाक्टर ने उसकी बात काटकर कहा—तब कोई चिन्ता नहीं ; अब मुझे दवा की कोई आवश्यकता नहीं।

अपने इस निश्चय पर वह अंत समय तक डटा रहा।

(१३८)

इसके पश्चात् उसकी रुचि धर्म की ओर बहुत बढ़ गई। परमपिता परमात्मा से वह बार-बार प्रार्थना किया करता—ईश्वर ! मेरी और मेरे मित्रों की रक्षा करो। मुझ पर कृपा करो। मैं तुम्हारी शरण हूँ।

नोट—अंत समय ईश्वर पर यह विश्वास मनुष्यमात्र के लिए स्वाभाविक है।

(१३९)

जिस दिन जानसन की मृत्यु होने को थी, उसी दिन एक नवयुवती उससे मिलने के लिए आई। जानसन ने उसकी ओर देखकर कहा—ईश्वर तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कृपा करे। धर्मप्राण डाक्टर जानसन के अंतिम शब्द ये ही थे।

(१४०)

उसी दिन रात को सात बजे के लगभग उसकी मृत्यु हो गई। दूसरे दिन उसके शव के साथ लंदन के प्रायः सभी साहित्यसेवी "वेस्ट मिनिस्टर अबी"-नामक गिरजाघर को गये। इस गिरजाघर में दफ़नाए जाने का निश्चय सुनकर अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले डाक्टर जानसन को बड़ा संतोष हुआ था। *

* इस लेख का प्रथम अंश मई, ३९ की माधुरी में छपा था। उसमें मैंने नोट दिया था कि यह लेख बासवेल की लिखी डाक्टर जानसन की जीवनी का अत्यंत संक्षिप्त भावानुवाद है। अपने ढंग का हिन्दी में यह पहला जीवन-चरित्र है। क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे वयोवृद्ध साहित्य-महारथियों के मित्र अथवा शिष्य इसी ढंग से उनका जीवन-चरित्र लिखें। हिन्दी में यह लेख इसी उद्देश्य से लिखा गया है।

जो प्रकाशक पुस्तकरूप में इस जीवनी को प्रकाशित करना चाहें, वे लेखक (रानीकटरा, लखनऊ) के पते से पत्रव्यवहार करें। साथ ही, यह स्मरण रहे कि हिन्दी में अपने ढंग का यह पहला जीवन-चरित्र है।—लेखक

इसे प्रत्येक घर में रखना ज़रूरी है।

समय पर डाक्टरों के पास दौड़ने से बचायेगा

हील-एक मरहम (Regd.)

कटे, जले, चोट आदि पर लगाने का विख्यात मरहम।

लगाते ही दुर्घटनाजनित यंत्रणाओं से मुक्त करता है।

स्थानीय हमारे एजेंट से ख़रीदिये।

डाबर (डाः एस, के, बर्म्मन) लिः

विभाग नं० १३१ पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान हिन्दी-साहित्य की प्रगति

श्रीकान्तिस्वरूप गोविल बी० ए०

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से पहले हिन्दी-साहित्य का कुछ और ही रूप था। उस समय लोगों में वास्तविक साहित्यिक भावना का अभाव होने के कारण इसके विभिन्न अंगों की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था, जिससे साहित्य में न कोई नवीनता आ सकती थी और न उसकी उन्नति के लिए क्षेत्र मिल सकता था। विषय भी प्रायः एक-से और प्राचीन होते थे, जिससे विचारों में न सरसता आ सकती थी और न सुंदरता। भाषा और लेखनशैली में कोई विशेष परिवर्तन न होने के कारण रचनाओं में न सजीवता आ सकती थी, न कोई विशेषता। एक प्रकार से उस समय हिन्दी-साहित्य की वही दशा थी, जो १८वीं शताब्दी में इँगलिश-साहित्य की।

इसको इन बातों से दूर कर नया जीवन प्रदान करने-वाले भारतेन्दुजी ही थे। इन्होंने अपनी कृतियों द्वारा नवीन विषयों पर नये ढंग से प्रकाश डाला और हिन्दी-साहित्य में एक नये युग का निर्माण किया। लोगों में वास्तविक साहित्यिक भावना का प्रादुर्भाव हुआ और साहित्य के विभिन्न अंगों (जैसे आलोचना, निबन्ध, उपन्यास और कहानी, कविता, नाटक आदि) पर रचना करने की ओर ध्यान दिया जाने लगा। इससे हिन्दी-साहित्य की यथेष्ट उन्नति हुई, और हिन्दी में बड़े-बड़े मौलिक तथा सुन्दर ग्रन्थ देखने को मिले।

लेकिन साहित्यकारों के किसी विशेष अंग की ओर अधिक ध्यान देने से या लोगों की साहित्यिक रुचि के कारण ही इसमें कई दोष आ गये, जिससे हिन्दी-साहित्य को बड़ी क्षति पहुँची। साहित्य के कुछ अंगों को तो इतना महत्त्व दिया गया कि उसमें आवश्यकता से अधिक रचनाएँ होने लगीं और किसी-किसी को एक प्रकार से छोड़ ही दिया गया। फल यह हुआ कि कहीं तो अधिकता के कारण रचनाएँ उच्च कोटि की नहीं हो सकीं, और कहीं अभाव के कारण एक कमी रह गई।

उदाहरण के लिए आप कहानी-क्षेत्र को ही लीजिए। हिन्दी-साहित्य का यह अंग यथेष्ट उन्नति कर चुका है। नित्य ही नये ढंग की कहानियाँ पढ़ने को मिलती हैं, और नित्य ही नवीन लेखकों के नाम सुनने में आते हैं। लेकिन इन कहानियों में कितनी कहानियाँ कला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण होती हैं ? इन लेखकों में कितने लेखक सफल होते हैं ? अगर आप ध्यान-पूर्वक देखें तो आपको मालूम होगा कि अधिकतर कहानियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें पढ़ने को भी तबियत नहीं चाहती, और बहुत-से कहानी-लेखक ऐसे हैं, जो लेखनकला का नाम भी नहीं जानते।

उसी प्रकार हिन्दी-काव्य में आज एक अजीब हलचल मची हुई है। छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद, हलाहलवाद और न-जाने कितने वादों का जन्म हो चुका है। कवियों में एक होड़-सी लगी है और कविता-कामिनी के नित्यप्रति नये रंग-रूप में दर्शन होते हैं। लेकिन कितने कवियों में सच्ची प्रतिभा है ? कितनों को अपनी कल्पना तथा विचार-शक्ति पर अधिकार प्राप्त है ? वास्तविकता आपको बतावेगी कि केवल कुछ श्रेष्ठ कवियों को छोड़कर बाक़ी सब ऐसे हैं, जिनको मात्राओं का भी पूर्णतया ज्ञान नहीं, जो केवल तुकबन्दी कर सकते हैं।

इसके विपरीत अगर आप निबन्ध तथा आलोचनात्मक साहित्य की ओर दृष्टिपात करें तो आप एक बड़ी भारी कमी का अनुभव करेंगे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, बा० श्यामसुन्दरदास और मान्य मिश्रबन्धु आदि कुछ इनेगिने महानुभाव हैं, जिन्होंने इस ओर ध्यान दिया है। अन्यथा ऐसी रचनाओं का सर्वथा अभाव है। उसी प्रकार साहित्यिक नाटकों की कमी एक भारी कमी है। इस ओर सिवा "प्रसाद"जी के और किसी का नाम उल्लेखनीय ही नहीं है।

विषयों के बारे में भी यही हाल है। सामाजिक विषय पर जितना साहित्य आपको मिलेगा, उतना राजनीतिक या धार्मिक विषय पर नहीं। शृंगार रस और करुण रस पर जितनी रचनाएँ आपको मिलेंगी, उतनी वीर रस या हास्य रस पर नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ विषय, जिन पर बहुत अधिक लिखा जा चुका है, शुष्क और नीरस होते जाते हैं, और बहुत-से, जो कहीं अधिक प्रिय तथा महत्त्वपूर्ण हैं, प्रकाश में ही नहीं आने पाते। इतना ही नहीं, और भी बहुत-सी बातें हैं, जिनकी कमी बुरी तरह खटकती है। अन्य साहित्यों का अनुवाद, जो एक नई चीज़ होती है, उसका सर्वथा अभाव है। यात्रा और देश-विदेश-सम्बन्धी पुस्तकें जो बड़ी मनोरंजक और प्रिय लगती हैं, उनकी संख्या बहुत कम है। बड़े-बड़े विश्वकोष, जिनकी साहित्य को बड़ी आवश्यकता होती है, उनका अभाव-सा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आख़िर यह सब क्यों है ? हिन्दी-साहित्य इतनी उन्नति करने पर भी और साहित्यों से क्यों पिछड़ा हुआ है ? इतना पूर्ण होने पर भी क्यों अपूर्ण है ? आप देखेंगे कि इसके एक-दो नहीं, अनेक कारण हैं।

प्रथम तो यहाँ श्रेष्ठ और निष्पक्ष आलोचना की भारी कमी है। आलोचना साहित्य का जीवन है, और बग़ैर इसके किसी भी साहित्य की उन्नति होना नितान्त असंभव है। इसके महत्त्व के विषय में इँगलिश-साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक मि० स्टीफ़ेन का कथन है—

"Criticism is a tonic and no matter if it be harsh and temporal, it is permanent not in itself but in the effect it produces."

लेकिन यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य है कि यहाँ के साहित्यकार इसके महत्त्व को नहीं समझ पाये। एक तो इस ओर लोगों का ध्यान ही बहुत कम गया है। जो आलोचक हैं भी, उनमें ऐसों की संख्या बहुत कम है, जो इस बात का प्रयत्न करते हैं कि आलोचना पक्षपात और मनोविकारों से रहित हो। अधिकतर आलोचना आप ऐसी पावेंगे, जो दोषपूर्ण तथा व्यक्तिगत कारणों से प्रभावित होती है। इससे साहित्य को भारी क्षति पहुँचती है। एक तो आलोचनात्मक साहित्य, जो प्रत्येक साहित्य का प्रधान अंग होता है, उन्नति नहीं कर सकता। फिर सच्ची कसौटी न मिल सकने के कारण साहित्यकार अपनी रचनाओं का वास्तविक साहित्यिक मूल्य नहीं समझ पाते।

दूसरे जनसाधारण को साहित्य की ओर से अरुचि-सी है। हिन्दी में प्रायः ऐसी ही पुस्तकों की भरमार है, जो साहित्यिक न होकर या तो केवल मनोरंजन कर सकती हैं, या झूठी उत्तेजना उत्पन्न कर सकती हैं। यही हाल लेख और कविताओं का है। आप किसी साहित्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन या कवि-गोष्ठी में जाकर देखिए, केवल वे ही रचनाएँ पसन्द की जायँगी, जो ज़रा फड़कती हुई और हलकी होंगी। इस साहित्यिक अरुचि का प्रभाव यह होता है कि जो साहित्यकार अपनी रचनाओं से एक नये युग का निर्माण कर सकते हैं, वे आर्थिक कठिनाइयों से बचने के लिए प्रायः अपने क्षेत्र से नीचे उतर आते हैं, और हिन्दी-साहित्य उनकी अमर कृतियों से वंचित रह जाता है।

तीसरे हमारे साहित्यकार अधिक-से-अधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध होने की आकांक्षा रखते हैं। आप देखेंगे कि बहुत-से नवीन लेखक साहित्य में तो पीछे उतरते हैं, पहले उसके विभिन्न अंगों में ख्याति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

यों साहित्य के एक से अधिक अंगों में योग्यता प्राप्त करना असंभव नहीं है; क्योंकि हिन्दी-साहित्य में इस विषय के कई उदाहरण वर्तमान हैं। जयशंकर-प्रसादजी हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार थे; लेकिन साथ ही बहुत बड़े कवि, कहानी-लेखक और उपन्यासकार भी थे। प्रेमचन्दजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार और कहानी-लेखक तो थे ही, साथ ही एक बड़े साहित्यकार और नाटककार भी थे। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक लेखक यदि चाहे तो "प्रसाद" या प्रेमचन्द बन सकता है; क्योंकि ये बातें अनुभूति पर नहीं, ईश्वरीय प्रेरणा पर अधिक निर्भर हैं। इसलिए प्रायः यही देखा गया है कि जो साहित्यकार एक बार ही साहित्य के विभिन्न अंगों में अपनी शक्ति लगाते हैं, वे एक में भी सफल नहीं हो पाते और अपनी उदासीनता तथा उपेक्षा की दृष्टि से लिखी हुई रचनाओं से साहित्य को प्रगतिशील बनाने के बजाय उसे अवनति की ओर ले जाते हैं।

चौथे साहित्यिक रचनाओं के बारे में लोगों के बहुत ही भ्रमात्मक विचार हैं।

साहित्यिक शब्द का अर्थ प्रायः यह लगाया जाता है कि भाषा संस्कृत के शब्दों से पूर्ण हो, तथा ऐसी क्लिष्ट हो, जो सुगमता से न समझी जा सके। इसलिए बहुत-से लेखक, जिनमें प्रतिभा होती है, नहीं लिखते कि उनकी शब्दावली इतनी पूर्ण नहीं होती, और अगर लिखते भी हैं तो उसको अधिक-से-अधिक साहित्यिक बनाने के प्रयत्न में उसे बिलकुल गूढ़ और जटिल कर डालते हैं। इससे साहित्य की अधिक उन्नति नहीं हो सकती, और उनको अधिक क्षेत्र नहीं मिल सकता।

पाँचवें हिन्दी और 'हिन्दुस्तानी' का एक बहुत बड़ा प्रश्न छिड़ गया है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने तथा कुछ प्रतिक्रियावादियों ने 'हिन्दुस्तानी' की आड़ में हिन्दी भाषा का रूप बिगाड़ना प्रारम्भ कर दिया है। इसका भीषण परिणाम यह हुआ है कि आज समाचारपत्र, रेडियो, सिनेमा और अन्य जगहों में राष्ट्रीयता के नाम पर हिन्दी का गला घोटा जा रहा है। इससे हिन्दी-साहित्य की भारी क्षति हुई है। लोग अब प्रायः ऐसी ही भाषा में लिखते हैं जो हिन्दी और उर्दू का मिश्रण होती है। उदाहरण के लिए पंडित नेहरू की आत्मकथा का यह अंश देखिए—

"मेरी कहानी क्या है? बीते हुए कुछ सालों में जो ख़ास-ख़ास वाक़यात हुए, उन सबका इसमें संग्रह मेरा मक़सद नहीं है। बल्कि मेरे अन्दर क्या-क्या ख़यालात और जज़्बात पैदा हुए और बाहरी वाक़यात का मुझ पर क्या असर पड़ा, उसका इसमें बयान है। अपने दिमाग़ी उतार-चढ़ाव का हूबहू बयान करने की मैंने कोशिश की है। इसमें मैं कितना कामयाब हुआ, यह कहना मेरा काम नहीं। लेकिन ख़ास बात यह नहीं है, बल्कि मुझे वह कैसा लगा और मुझ पर उसका क्या असर पड़ा, यह है। और यही इस किताब के अच्छे और बुरे होने की कसौटी है।"

उसी प्रकार 'निराला'जी का "ठेठ" हिन्दुस्तानी भाषा में लिखा हुआ उपन्यास जिन्होंने पढ़ा है, वे देखेंगे कि वह साहित्य में कैसी चीज़ है? साहित्य के एक दूसरे अंग में ख्याति प्राप्त करने के बजाय उन्होंने अपनी पुरानी ख्याति को भी गहरा धक्का पहुँचाया है।

छठे हिन्दी की शब्दावली बहुत ही अपूर्ण है। विज्ञान के इस क्रान्तिकारी युग में, जब नित्यप्रति किसी नई वस्तु की सृष्टि होती है और नये विचारों का प्रादुर्भाव होता है, इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उनके लिए उपयुक्त शब्दों का निर्माण हो। लेकिन आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखेंगे कि आज हिन्दी-साहित्य में इस बात की भारी कमी है। विदेशी शब्दों के लिए उपयुक्त हिन्दी-शब्दों का मिलना बहुत ही कठिन है, जिससे न तो और साहित्यों के ग्रंथों के अनुवाद हो सकते हैं और न वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा अन्य विषयों पर भावपूर्ण लेख लिखे जा सकते हैं।

सातवें ऐसी साहित्य-समितियों और मासिक पत्रों की संख्या बहुत ही कम है, जो नवीन लेखकों को प्रोत्साहन दे सकें। प्रायः ऐसे लेखक प्रोत्साहन न मिलने के कारण प्रकाश में नहीं आने पाते और मरुस्थल के पुष्प की सुगंध की तरह उनकी प्रतिभा व्यर्थ ही जाती है।

यही नहीं, और भी अनेक बातें हैं, जिनके कारण हमारे साहित्य की प्रगति को गहरा धक्का लगता है। हमारा साहित्य जहाँ कई बातों में श्रेष्ठ तथा उन्नत है, वहाँ कई बातों में बहुत पिछड़ा हुआ है। अगर आज सब लोग इस कमी का अनुभव कर पूरी शक्ति से इस ओर प्रयत्न करें तो निश्चय ही हिन्दी-साहित्य की गणना संसार के प्रगतिशील साहित्यों में होने लगेगी, और हिन्दी का वह स्वर्ण-युग, जिसका हम अभी स्वप्न ही देख रहे हैं, दूर न रह सकेगा। लेकिन ऐसी भावना कब जाग्रत् होगी, यह समय ही बता सकता है।

दस हज़ार रुपये की घड़ियाँ इनाम !

हमने अपनी दवाई "जौहरे-हुस्न" रजिस्टर्ड की प्रसिद्धता के लिये १० हज़ार रुपये की घड़ियाँ दवाई के ख़रीदारों को इनाम में मुफ़्त तक़सीम करने का फ़ैसला किया है। इस दवाई के इस्तेमाल से हर जगह के बाल बग़ैर किसी तकलीफ़ के हमेशा के लिए दूर हो जाते हैं और फिर जीवन भर दोबारा इस जगह बाल कभी पैदा नहीं होते। फिर जगह रेशम की तरह मुलायम, नरम और ख़ूबसूरत हो जाती है, क़ीमत फ़ी शीशी सिर्फ़ २) रु०, इस दवाई को मशहूर करने के लिए हर शीशी के साथ एक फ़ैंसी रिस्टवाच मुफ़्त भेजी जाती है। यह घड़ी निहायत ख़ूबसूरत और मज़बूत है, मज़बूती और पायदारी की गारंटी १० साल है। गारंटी के अन्दर अगर घड़ी ख़राब हो जावे तो हम ज़िम्मेदार हैं। इक़रारनामा हर घड़ी के साथ भेजा जाता है। ज़रूरतमन्द साहब जल्द से जल्द आर्डर भेजकर इस रियायत से लाभ उठायें। नोटः—तीन शीशी दवाई के ख़रीदार को महसूल डाक मुआफ़ और तीन अदद फ़ैंसी रिस्टवाच मुफ़्त। आर्डर देते समय अपना पता साफ़ और ख़ुशख़त लिखें।

मैनेजर—दी भारत तिजारत हाउस, बुड़लाडा (एस० पी० रेलवे) पंजाब।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, धन्तोली, की पुस्तकें

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव की युगावतार के रूप से आज समस्त संसार में पूजा होती है। उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द चरित्र और विकास में भारत के सच्चे प्रतिनिधि और आदर्श नेता हैं। जड़वाद के प्राबल्य के साथ-साथ भारत में श्रीरामकृष्ण से चेतनता की तरंग उठती है, और स्वामी विवेकानन्द द्वारा समस्त संसार में व्याप्त हो जाती है। जड़वाद अपने लक्ष्य से गिर जाता है, जहाँ उसका लक्ष्य जड़ होता है। चेतनवाद अपने लक्ष्य में चेतन को रखकर गिरता नहीं, पुनः वह जड़ का विरोध नहीं करता; क्योंकि उसके स्वभाव में ही विरोध नहीं। चेतन के आश्रय से जड़ की भी उन्नति हुई है, होती है। इसका हम यहाँ अधिक विवेचन नहीं करेंगे। भारतीयता की यहीं विजय है कि वह मनुष्य को उसकी सुविधा देती हुई, विकास करती हुई, उसे उस लक्ष्य पर पहुँचाती है, जहाँ जड़वाद की पहुँच नहीं। लेकिन शिक्षा, संस्कार, संग आदि के कारण, इस तरफ़ से भारतीयों की ही आँखें बन्द होती जा रही हैं; वे कारण तक न पहुँचकर, केवल कार्य देखकर प्रभावित हो रहे हैं। इस समय देश की ऐसी हीन दशा है, फिर भी देश के त्यागी युवक, विद्याध्ययन कर, स्वामी विवेकानन्दजी के प्रतिष्ठित रामकृष्ण-मिशन में आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करके देश तथा विश्व की सेवा के लिए अधिक-से-अधिक संख्या में निकल रहे हैं। इस देश की सेवा-शुश्रूषा सबसे पहले रामकृष्ण-आश्रम ने शुरू की; ज्ञानकांड का सही-सही रूप लोगों के सामने इसी ने सबसे पहले रक्खा। स्वामी विवेकानन्दजी देश के कितने महान् पुरुष थे, यह हिन्दीभाषी बहुत कम लोग जानते हैं। जिन्होंने स्वामीजी की अँगरेज़ी किताबें या दूसरे प्रकाशकों के निकाले हुए हिन्दी-अनुवाद देखे हैं, वे थोड़ा-बहुत जानते हैं; फिर भी उन पर स्वामीजी की प्रसिद्धि का और विद्वत्ता का जितना प्रभाव है, उतना उनके विषय-विवेचन का नहीं।

यह बड़ी ख़ुशी की बात है कि स्वामी भास्करेश्वरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्दजी, अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण-आश्रम, धन्तोली, नागपुर, सी० पी० परमहंस श्रीरामकृष्णदेव और स्वामी श्रीविवेकानन्दजी के साहित्य का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं। इससे पहले रामकृष्ण-मिशन के विद्वान् संन्यासी स्वामी माधवानन्दजी ने 'समन्वय' नाम का सुन्दर मासिक अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, से निकाला था। मुझे ढाई साल तक स्वामीजी के सहयोग में पत्र का काम करने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। मैं स्वामीजी की हिन्दी का—उनके सहृदय महत्तम व्यक्तित्व का—उनकी विद्वत्ता और चरित्र का भक्त हूँ। ऐसी प्रतिभा मैंने नहीं देखी। लेकिन बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि इतने सुन्दर सुसंपादित विवेचनापूर्ण पत्र का हिन्दी में प्रचार नहीं हुआ। कुछ साल तक घाटा बर्दाश्त करते हुए आश्रम ने पत्र का प्रकाशन बन्द कर दिया। कुछ दिनों के बाद स्वामी विवेकानन्दजी के गुरुभाई, उस समय के रामकृष्ण-मिशन के प्रेसिडेण्ट स्वर्गीय स्वामी शिवानन्दजी महाराज की आज्ञा से स्वामी भास्करेश्वरानन्दजी ने धन्तोली, नागपुर, से हिन्दी में रामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य का प्रकाशन शुरू किया। हिन्दीभाषियों के लिए स्वामीजीयों की देखरेख से निकले हुए रामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य की एकान्त आवश्यकता है; स्वामीजी ने इस प्रकाशन से हिन्दी की एक कमी पूरी की।

श्रीरामकृष्ण-लीलामृत—(दो भागों में) अनुवादक, पं० द्वारकानाथ तिवारी बी० ए० एल्-एल्० बी०; प्राक्कथन महात्मा गांधी द्वारा लिखा हुआ; पृष्ठ-संख्या प्रथम भाग ३३७, दूसरा भाग ३९०; मूल्य प्रथम भाग का १।=); दूसरे भाग का १॥); सजिल्द। छपाई-सफ़ाई और काग़ज़ साधारण अच्छा; श्रीरामकृष्ण-आश्रम, धन्तोली, नागपुर, सी० पी० को लिखने से पुस्तक मिलेगी।

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव का ऐसा जीवन-चरित्र हिन्दी में न था। प्रस्तुत पुस्तक स्वर्गीय श्री ना० रा० परांजपे की लिखी मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। मराठी-पुस्तक की सामग्री श्रीरामकृष्ण के अत्यन्त प्रामाणिक जीवनचरित—उन महापुरुष के एक मुख्य शिष्य स्वामी शारदानन्दजी महाराज की लिखी बँगला-पुस्तक 'श्रीरामकृष्ण-लीला-प्रसंग'—से ली गई है। इसके अलावा कई अँगरेज़ी और बँगला-पुस्तकों का आधार लिया गया है।

महात्मा गांधी अपने प्राक्कथन में लिखते हैं—"श्रीरामकृष्ण परमहंस का जीवनचरित्र धर्म के व्यावहारिक आचरण का विवरण है। उनका जीवनचरित्र हमें ईश्वर को अपने सामने देखने की शक्ति देता है। उनके चरित्र को पढ़नेवाला मनुष्य इस निश्चय को प्राप्त किये विना नहीं रह सकता कि केवल ईश्वर ही सत्य है और शेष सब मिथ्या-भ्रम है। श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे।......इस सन्देहवादी युग में श्रीरामकृष्ण सजीव और प्रज्वलित धार्मिक विश्वास के प्रत्यक्ष उदाहरणस्वरूप हैं। इसी उदाहरण के कारण ऐसे सहस्रों स्त्री-पुरुषों की आत्मा को शांति प्राप्त हुई है, जिन्हें अन्यथा आध्यात्मिक प्रकाश से वंचित रहना पड़ता।......मेरी यही प्रार्थना है कि उनका दिव्य प्रेम इस जीवनचरित्र के सभी पाठकों को अंतःस्फूर्ति दे।"

प्रस्तुत पुस्तक के दोनों भाग श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति-ग्रंथमाला के ११ वाँ-१२वाँ पुष्प हैं। प्रथम भाग में श्रीरामकृष्ण की जन्मभूमि 'कामारपुकुर' गाँव और उनके माता-पिता का परिचय, उनकी माता चंद्रादेवी के अनुभव, उनका जन्म, बालचरित्र और पितृवियोग, उनकी किशोरावस्था, यौवन का आरंभ, साधकभाव का आरंभ, रानी रासमणि और दक्षिणेश्वर, पुजारी-पद-ग्रहण, व्याकुलता और प्रथम दर्शन, मथुरबाबू और श्रीरामकृष्ण, साधना और दिव्य उन्माद, प्रथम चार वर्ष की अन्य घटनाएँ, विवाह और पुनरागमन, भैरवी ब्राह्मणी का आगमन, वैष्णवचरण और गौरी पंडित का वृत्तान्त, क्षुधा और गात्रदाह, ब्राह्मणी चंद्र और गिरिजा का वृत्तान्त, तंत्रशास्त्र का संक्षिप्त परिचय, श्रीरामकृष्ण का तंत्रसाधन, जटाधारी और वात्सल्य-भाव-साधन, भिन्न-भिन्न साधुसंप्रदाय, पद्मलोचन और नारायण शास्त्री, मधुरभावसाधन आदि विषय हैं।

द्वितीय भाग में रामकृष्ण का वेदान्तसाधन, इस्लामधर्म और जन्मभूमिदर्शन, श्रीरामकृष्ण की तीर्थ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा, हृदयराम का वृत्तान्त, मथुर की मृत्यु और षोडशीपूजा, साधकभावसम्बन्धी कुछ और बातें, श्रीरामकृष्ण का गुरुभाव, असाधारण गुणोत्कर्ष, श्रीरामकृष्ण की शिष्यपरीक्षा, श्रीरामकृष्ण का शिष्य-प्रेम, श्रीरामकृष्ण की शिक्षणपद्धति, श्रीरामकृष्ण की विषय-प्रतिपादन करने की शैली, श्रीरामकृष्ण और श्रीकेशवचंद्र सेन, ब्राह्मसमाज और श्रीरामकृष्ण, मणिमोहन मल्लिक के घर में ब्रह्मोत्सव, श्रीरामकृष्ण के पास भक्तमंडली का आगमन, नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) का परिचय, श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्रनाथ, पानीहाटी का महोत्सव, कलकत्ते में श्रीरामकृष्ण का आगमन, श्रीरामकृष्ण का श्यामपुकुर में निवास, काशीपुर में अंतिम दिन और महासमाधि आदि विषय हैं।

पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध, जीवनचरितोपम है। श्रीरामकृष्ण का जीवन, उनकी लीला यहाँ के साधारण जनों के अस्थिमज्जागत भाव हैं, पढ़कर नई स्फूर्ति पाते हैं, जिनसे वास्तव में मनुष्य ही नई शक्ति से भर जाता है। ऐसी पुस्तक का प्रति पुस्तकालय, प्रति वाचनालय, प्रति संस्था और प्रति घर रहना आवश्यक है। रामकृष्ण नवीन धर्मसमूह के जीवित सिद्धान्त हैं। मनुष्य उनकी लीला पढ़कर, उनमें रहकर, स्वयं धर्मसमन्वय बनता है। भारत को ऐसे महापुरुष की जैसी आवश्यकता थी, भारतीयों को उनके चरित-पाठ की, साधना की, सिद्धि की वैसी ही आवश्यकता है।

—'निराला'

प्राच्य और पाश्चात्य—लेखक स्वामी विवेकानन्द, प्रकाशक पूर्वोक्त, छपाई-सफ़ाई अच्छी। मूल्य आठ आने।

अनुवादक का नाम नहीं। प्रकाशक ने निवेदन में लिखा है—"यह मूल बँगला में लिखी हुई पुस्तक का अकृत्रिम और अक्षरशः अनुवाद है। हिन्दू-राष्ट्र-निर्माण के परिपोषक विचारों का विवेकपूर्ण विवेचन इस पुस्तक में अत्यन्त सुलभ और स्फूर्तिदायिनी भाषा में किया है।"

इस पुस्तक में वर्तमान भारत का बाहरी रूप, पाश्चात्य की दृष्टि में प्राच्य, प्राच्य की दृष्टि में पाश्चात्य, प्रत्येक जाति के विभिन्न जीवनोद्देश्य, प्राच्य का उद्देश्य मुक्ति और पाश्चात्य का धर्म प्राच्य जाति ईसू और पाश्चात्य जाति कृष्ण के उपदेश का अनुसरण करते हैं, स्वधर्म की रक्षा ही जातीय कल्याण का उपाय है, फ्रांसीसी, अँगरेज़ और हिन्दुओं के दृष्टान्त से उक्त तत्त्व का समर्थन, धर्म के अलावे और किसी दूसरी चीज़ से भारत के जातीय जीवन की प्रतिष्ठा असंभव है, शक्तिमान् पुरुष ही सब समाजों का परिचालक है, पाश्चात्य देशों में राजनीति के नाम पर दिन में लूट, मनुष्य बनिये पाश्चात्य जाति के गुणों को साँचे में ढालकर लेना होगा, वर्ण-भेद का कारण, आर्य जाति, आर्य जाति का गठन और वर्ण, हिन्दू और आर्य, प्राच्य और पाश्चात्य की साधारण भिन्नताएँ, पाश्चात्य देशवासियों का धर्म शक्तिपूजा है, फ्रांस-पेरिस, भारतवर्षीय सभी संप्रदायों की मूलभित्तिस्वरूप परिणामवाद, पाश्चात्यमत से समाज का क्रमविकास, कृषक-जीवन, विवाह का आदितत्त्व, कृषिजीवी देवता और मृगयाजीवी असुरों का सम्बन्ध आदि विषयों पर स्वामी विवेकानन्दजी का सच्ची विचारधारा अँधेरे पर किरण का काम करती है। मालूम देने लगता है, वे जो कुछ कह रहे हैं, इससे बेहतरीन तरीक़ा हमारी भलाई का दूसरा नहीं हो सकता। जहाँ हिन्दू शब्द से जड़ जाति का बोध होता है, वहाँ सुसंस्कृत सभी भारत-वासियों का अधिकार समझना चाहिए। स्वामी विवेकानंद ऐसे मनुष्य नहीं थे, जो एक को ठगकर दूसरे को देते। उन्होंने आदमियत को निगाह में रखते हुए भारतीयता का तत्त्व समझाया है। यों मनुष्यमात्र को वे ऊँचे ज्ञान का अधिकारी समझते हैं—हस्ती किसी की भी नहीं मिटाना चाहते। यह पुस्तक स्वामी विवेकानन्दजी की बहुत ही प्रसिद्ध पुस्तकों में से है। अनुवाद में शुरू में जब भी संस्कृत बहुल शब्द काफ़ी आये हैं, फिर भी यह अंश थोड़ा है, बाद का अनुवाद समझते हुए साधारण पठित जनों को भी दिक़्क़त नहीं होगी। स्वामीजी के लिखने का ढंग कितना रोचक होता है, लिखना अनावश्यक है।

आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग—स्वामी विवेकानन्द, अनुवादक श्रीमधुसूदन एम० ए० एल्-एल्० बी०, प्रकाशक पूर्वोक्त, छपाई-सफ़ाई अच्छी, स्वामी विवेकानन्दजी की ध्यानमूर्ति के साथ। मूल्य ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी विवेकानन्दजी के अमेरिका में दिये हुए कुछ भाषणों का अनुवाद है। पहले भाषण में आत्मानुभूति की सीढ़ियाँ, दूसरे में व्यवहार्य आत्म-बोध की सूचनाएँ, तीसरे में मन का सामर्थ्य (राजयोग), चौथे में स्फुट गोप्य (ज्ञानयोग), पाँचवें में भक्ति और उपासना (भक्तियोग), छठे में कर्म तथा उसका रहस्य (कर्मयोग) है। स्वामी विवेकानन्दजी की विषय-प्रतिपादनशैली अद्भुत होती है। वह जैसी सरल, वैसी ही तीव्र और मर्मस्पर्शिनी होती है। विषय का उत्थापन, संचालन, प्रतिपादन वग़ैरह स्वामी विवेकानंद की पुस्तकों से कोई सीख ले। अद्भुत ऐन्द्रजालिक शक्ति है उनमें। इस छोटी-सी पुस्तक में बड़ी सहूलियत से आत्मानुभूति का प्रसंग—योग, ज्ञान, भक्ति, कर्म—समझाया गया है। थोड़े में सब कुछ। अनुवाद की भाषा बड़ी सुन्दर हुई है। हमें विश्वास है, हिन्दी-भाषी जनता अधिक संख्या में पुस्तक पढ़ेगी।

प्रेमयोग—स्वामी विवेकानन्द, अनुवादक पं० द्वारकानाथ तिवारी बी० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रकाशक पूर्वोक्त, छपाई-सफ़ाई अच्छी, स्वामीजी के एक सुन्दर चित्र के साथ, मूल्य ॥)

प्रेमयोग में पूर्व साधना, प्रथम सोपान या भक्ति की प्रथम सीढ़ियाँ, भक्ति के आचार्य, प्रतिमा की आवश्यकता, प्रतिमा के भेद, इष्ट, पूर्वभक्ति और पराभक्ति आदि विषय बड़ी सहृदयता से समझाये गये हैं। भक्तों के बड़े काम की पुस्तक है। भक्ति का विज्ञान स्वामीजी की वाणी से परिस्फुट हो गया है। अनुवाद की भाषा सरल, सरस और प्रांजल है।

—'निराला'

परिव्राजक—(मूल लेखक—स्वामी श्रीविवेकानन्दजी, पृष्ठ-संख्या १२१, मूल्य पुस्तक में नहीं लिखा। प्रकाशक—रामकृष्णआश्रम, धन्तोली, नागपुर)

इस नाम की पुस्तक मुझे श्रीनिरालाजी से पढ़ने को मिली, उन्हीं से यह भी मालूम हुआ कि इसका भाषान्तर उन्होंने ही किया है। उन्होंने बतलाया कि यह उन थोड़ी-सी रचनाओं में से एक है, जो स्वामी श्रीविवेकानन्दजी ने मूल बँगला में लिखी हैं, शेष अधिकांश उनकी पुस्तकें अँगरेज़ी में ही हैं, अँगरेज़ी से अन्य भाषाओं में अनुवाद की गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक बंगभाषा में इसी लिए विशेष रूप से समादृत है। इससे स्वामीजी का बंगभाषा पर अधिकार ही नहीं प्रकट होता, उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता और लेखन-शैली पर उस विशिष्टता की छाप भी साफ़ दिखाई देती है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इस पुस्तक के कारण ही स्वामीजी बंगभाषा के एक उच्च कोटि के लेखक की हैसियत से प्रतिष्ठित हैं।

सबसे पहले मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस पुस्तक की छपाई और तैयारी आदि अच्छी नहीं है, पुस्तक के महत्त्व के अनुरूप नहीं है। अवश्य ही इसका मुख्य कारण आश्रम की आर्थिक कठिनाई ही होगी। हिन्दी की पुस्तकों की थोड़ी बिक्री और हिन्दीभाषी समाज की आश्रम की ओर से सामूहिक उदासीनता भी इसके लिए उत्तरदायी है। और यदि इस स्थिति के रहते हुए धन्तोली आश्रम ने सस्ते मूल्य पर पुस्तक दे सकने के आशय से इसे इतने साधारण रूप में छापा हो तो इसके लिए हम आश्रमवालों को ही अकेले दोष नहीं दे सकते। तो भी पुस्तक का प्रूफ़ देखने में और कवर का काग़ज़ चुनने में आश्रम की ओर से और अधिक सावधानी दिखाने की आशा अवश्य की जा सकती थी। यह इसलिए भी कि हिन्दी में पुस्तक के इन अंगों की ओर ध्यान देने की सुरुचि अब काफ़ी आगे बढ़ चुकी है, और प्रकाशक इन अंगों की उपेक्षा करके उक्त सुरुचि का असम्मान करना और बदले में पुस्तक की बिक्री में बाधक बनना कभी नहीं चाहेंगे।

अस्तु, पुस्तक पूरी पढ़ लेने पर मुझे इस बात का हर्ष हुआ कि अनाकर्षक बाह्य के भीतर घुसकर मैंने बड़ा विमोहक दृश्य देखा और बड़े संयत, बड़े विनोद-पूर्ण अथच बड़े सूक्ष्मदर्शी और बहुज्ञ लेखक के सम्पर्क में आया। प्रश्न हो सकता है—अक्सर हुआ ही करता है कि साधु-संत और स्वामी-महात्मा लोगों से और सांसारिक बहुज्ञता से, दृश्य-दर्शन से, अथवा विनोद आदि से क्या सम्बन्ध? विशेषकर आजकल ऐसे लोगों की तादाद बढ़ रही है, जो आध्यात्मिक मार्ग को सामाजिक उन्नति या प्रगति का बाधक मानते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी प्रकार यह नहीं समझ पाते कि ये दोनों बहुत दूर तक एक साथ भी रह सकते हैं। ऐसे लोगों को यदि भारत-वर्ष का धार्मिक इतिहास पढ़ने का समय अथवा योग्यता नहीं है तो कम-से-कम स्वामी विवेकानन्दजी की यह पुस्तक अवश्य पढ़ लेनी चाहिए।

आज से ४० वर्ष पहले योरप की यात्रा करते हुए स्वामी विवेकानन्दजी ने जाति-भेद, वर्ण-भेद, योरपीय सभ्यता की पोल, विलासिता, गतानुगतिकता आदि का ऐसा मार्मिक उद्‌घाटन इस छोटी-सी पुस्तक में किया है कि हमारी आँखें खुल जाती हैं। जो लोग यह समझते हैं कि योरप में सर्वत्र समृद्धि फैली हुई है, नये आविष्कारों से बुद्धि का नवनवोन्मेष हो रहा है और जिन्हें यह मालूम करने का मौक़ा ही नहीं आया कि योरप की तड़क-भड़क और साज-सज्जा में भी वास्तविक सौंदर्य या नवीनता कितनी है और कितनी नक़लनवीसी है, कितनी बेशऊरी, कितना भद्दापन भरा हुआ है—जिन्हें कभी आँखें खोलकर देखने और समझने की नौबत नहीं आई, उनके लिए इस पुस्तक में काफ़ी जानकारी की सामग्री मिलेगी।

जिन्हें अपनी वाग्मिता के सामने सारा प्रचीन तत्त्व-ज्ञान कृत्रिम, छिछला, सत्ताधारियों की सृष्टि और नवीन प्रगति के अनुपयुक्त दिखाई देता है, वे देख सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्दजी ने आज से चालीस वर्ष पूर्व इस पुस्तक में ऐसी बातें भी लिखी हैं, जिनसे आगे आज के अग्रगामी समाजवादी भी नहीं पहुँच सके हैं। स्वामीजी एक स्थान पर लिखते हैं—"हे भारत के श्रम-जीवियो, तुम्हारे नीरव, सदा ही निन्दित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, अलकजन्द्रिया, ग्रीस, रोम, वेनिस, जेनोआ, बग़दाद, समरकंद, स्पेन, पुर्तगाल, फ़रासीसी, दिनेमार, डेच और अँगरेज़ों का क्रमान्वय से आधिपत्य हुआ और ऐश्वर्य मिला है। और तुम? कौन सोचता है इस बात को! स्वामीजी, तुम्हारे पितृ-पुरुष दो दर्शन लिख गये हैं, दस काव्य तैयार कर गये हैं, बीस मंदिर उठवाये हैं, तुम्हारी बुलंद आवाज़ से आकाश फट रहा है। और जिनके रुधिर के स्राव से मनुष्य-जाति की यह जो कुछ उन्नति हुई है, उनके गुणों का गान कौन करता है?....कोई जहाँ नहीं देखता, कोई जहाँ एक वाह वा नहीं देता, जहाँ सब लोग घृणा करते हैं, वहाँ वास करती है अपार सहिष्णुता, अनन्य प्रीति, निर्भीक कार्यकारिता?

स्वामी विवेकानन्दजी की लेखनशैली जहाँ एक ओर इतनी तीव्र और भावमय हो उठी है, वहीं दूसरी ओर उसमें हलके विनोद, चुटकियों और स्मितों की भी कमी नहीं है। बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि इस सारी पुस्तक में मुख्यतः विनोदिनी मनो-दशा की ही झलक है। (यद्यपि विनोद के भीतर भी वैराग्य का अंतःस्रोत सर्वत्र प्रवाहित है)। जहाँ कोई ऐसा पात्र, ऐसा चरित्र या ऐसी स्थिति आई, जिसमें कुछ भी वैलक्षण्य है, वहाँ स्वामीजी का मधुर, सात्त्विक और मार्मिक विनोद आरंभ हुआ।

साथ ही इस यात्रा-पुस्तक में स्वामीजी ने अपनी एक अन्य अभिरुचि का भी निदर्शन किया है, जो आजकल प्रचलित नहीं है। वह है किसी वस्तु या किसी विषय को लेकर उसकी साद्यंत व्याख्या कर जाना—उसका इतिहास-सा सामने रख देना। अवश्य ही वह वस्तु या वह विषय प्रासंगिक होता है और उसका वर्णन इतना लंबा-चौड़ा भी नहीं कि पढ़नेवालों का जी ऊब जाय। उदाहरण के लिए जहाज़ पर बैठते ही जहाज़ की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, क्रमशः किन रूपों में वह परिवर्द्धित हुआ आदि। अदन पहुँचे तो अदन का इतिहास। लालसागर, भूमध्यसागर, रोम, ग्रीस, मिस्र आदि के प्रसंग में उन-उन स्थानों की विशेषताओं और वहाँ की सभ्यताओं की उत्पत्ति, विकास, ह्रास, गुणों आदि का विशद वर्णन करने लगे हैं। फ़्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया के रहन-सहन, राज-वंशों आदि के अनेक वर्णनों से स्वामी श्रीविवेकानन्द-जी की बहुज्ञता प्रकट होती है, यद्यपि इसका सीधा सम्बन्ध यात्रा-प्रसंग से नहीं है।

इस बहुज्ञता के साथ-साथ स्वामीजी की पैनी दृष्टि, किस देश के क्या फ़ैशन हैं, क्या विशेषताएँ हैं, किन बातों में कौन आगे, कौन पीछे है, कितना आगे, कितना पीछे है, सबका यथातथ्य उद्‌घाटन उन्होंने किया है। आश्चर्य की बात है कि उन्होंने यह समझने में ज़रा भी भूल नहीं की कि योरप की सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीमटाम, प्रगति या उन्नति का मूल है रुपया और रुपये का मूल है तिजारत या व्यवसाय, जिसका मूल एक ओर है वैज्ञानिक आविष्कार और दूसरी ओर साम्राज्य-विस्तार की चेष्टा और शक्तिमत्ता। इसी से पुनः शोषण का आरंभ होता है और यह शोषण नैमित्तिक नहीं, अनिवार्य है। इसलिए अर्थ निसर्गतः अनर्थकर है। स्वामीजी की ये उपपत्तियाँ और यह निष्कर्ष है। अब इस निष्कर्ष के सम्बन्ध में दो मत चाहे हों, पर उनकी उपपत्तियाँ एकदम अकाट्य हैं—स्वामीजी की मर्मभेदिनी प्रतिभा की वे परिचायक हैं।

किन्तु स्वामी विवेकानन्दजी की प्रतिभा इतनी सर्व-दिक् थी कि उन्होंने तुरत ही पहचाना और बतलाया कि इस अर्थरूप अनर्थ का शमन नहीं हो सकता, किसी प्रकार नहीं हो सकता। वे वास्तविकता को अस्वीकार करनेवाले व्यक्ति नहीं थे। इसीलिए उन्होंने 'परिव्राजक' निबंध में आर्थिक अनर्थ को सिद्धान्ततः स्वीकार करते हुए और साथ ही उसके विरोध का संदेश देते हुए भी, भारत को दरिद्रता के विरुद्ध उठ खड़े होने और संघटित हो जाने का ही मंत्र दिया है। स्वामीजी के इस निबंध में भारतीयों के लिए कर्म-कौशल का ही योग पढ़ाया गया है। यह है एक आध्यात्मिक महापुरुष का सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण। इसमें वास्तविकता की ओर से दृष्टि बिना हटाये ही आत्मा की अमरता का—अखंडता का साक्षात्कार है!

स्वामीजी की दृष्टि कितनी तीक्ष्ण थी—कितनी अकाट्य और वास्तविक थी—इसका प्रमाण पुस्तक में पद-पद पर प्राप्त होता है। कहीं-कहीं तो दृष्टि की यथार्थता—बौद्धिकता—इतनी ऊँचे उठ गई है कि बर्नार्ड शा की naive सृष्टियाँ भी मात हो जाती हैं। केवल एक उदाहरण ही यहाँ दे सकूँगा। स्वामीजी आस्ट्रिया के उस 'प्रासाद' का विवरण देते हैं, जिसमें नेपोलियन का पुत्र क़ैद रहकर कुछ दिनों सोया था। इस नेपोलियन-पुत्र के प्रति लोगों की कल्पना कितनी ऊँची चढ़ी हुई थी, इसका पता इस बात से चलता है कि उसे लेकर 'ईग्ल' (गरुड़शावक) नाम का नाटक लिखा गया, जिसका अभिनय तत्कालीन फ्रांस की सुप्रसिद्ध अभिनेत्री मादाम बर्नहार्ड ने करके 'पेरिस नगरी में महान् आकर्षण उपस्थित कर दिया था।' नेपोलियन का उक्त पुत्र ही 'ईग्ल' या गरुड़शावक के रूप में कल्पित है। इसी प्रसंग को लेकर स्वामीजी ने लिखा है कि इस गरुड़शावक को आस्ट्रिया के कारागृह—पिंजड़े से निकालकर भगा ले जाने की चेष्टा कितने ही फ्रांसीसी लोगों ने की, पर सब निष्फल। वास्तविकता यह थी कि वह नेपोलियनपुत्र पिंजड़े से निकलने के योग्य ही न था। लोग बेकार चेष्टा कर रहे थे। अब स्वामीजी उस प्रासाद के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"प्रासाद का उद्यान बहुत ही मनोहर है। परन्तु इस समय जितने आदमी इस प्रासाद को देखने जाते हैं, सब वही बोनापार्ट-पुत्र जिस घर में सोते थे, जिसमें पढ़ते थे, जिस कमरे में उनकी मृत्यु हुई थी, यही सब देखने जाते हैं। कितने ही अहमक स्त्री-पुरुष पूछ रहे हैं 'ईग्ल' का कमरा कौन-सा है? किस बिस्तरे पर वह सोते थे?—अरे मर अहमक।.......उसे तुम लोगों ने गरुड़-पुत्र (ईग्ल) मानकर एक किताब लिखी है, और उस पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ जोड़-गाँठकर मादाम बर्नहार्ड की प्रतिभा से एक आकर्षण फैला दिया है—लेकिन यह आस्ट्रिया का रक्षी वह नाम किस तरह समझेगा, कह? इस पर उस किताब में लिखा गया है कि नेपोलियन के पुत्र को आस्ट्रिया के बादशाह ने मंत्री मेटारनिक के परामर्श से एक तरह मार ही डाला था! रक्षी (पहरेदार) 'ईग्ल' सुनकर मुँह फुलाकर बड़बड़ाता हुआ घर-द्वार दिखाने लगा—क्या करे, बक्सीस छोड़ना भी बहुत मुश्किल है!"

यह है अंध-श्रद्धा के प्रति स्वामीजी का मज़ाक़ का रूप। इस पर भी बहुत-से लोग यदि अंध-श्रद्धा को ही अध्यात्म का एकमात्र पर्याय समझें तो इसमें किसी सच्चे अध्यात्मवादी का क्या दोष?

इतने ऊँचे बुद्धिवादी होते हुए भी स्वामी विवेकानन्दजी एक आध्यात्मिक महापुरुष थे, यही विचित्रता है, जिसे बहुत कम लोग समझ पाते हैं। इसी लिए एक ओर आध्यात्मिकों और दूसरी ओर व्यावहारिक दार्शनिकों—दोनों के आक्षेप ऐसे पुरुषों को सुनने पड़ते हैं। किन्तु स्वामी विवेकानन्द जैसे महान् आध्यात्मिक नेता, और अत्यन्त उच्च कोटि के व्यवहारविद् के रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कौन कह सकता है कि इन दोनों का सामंजस्य संभव नहीं है ?

आप पूछेंगे, इसका क्या उपाय है, यह कैसे संभव है ? स्वामी विवेकानन्दजी ने प्रस्तुत 'परिव्राजक' पुस्तक में इस प्रश्न का जो उत्तर दिया है, उसे उद्धृत कर ही हम यह पुस्तक-समीक्षा समाप्त करेंगे । स्वामीजी लिखते हैं—

"गंगा और गीता हिन्दुओं की हिन्दुआनी है। उस बार मैंने भी थोड़ा-सा गंगाजल लिया था। क्या जानूँ, मौक़ा आने से ही थोड़ा-सा पी लेता। पीने के बाद ही लेकिन उस पाश्चात्य जन-स्रोत के भीतर, सभ्यता के कल्लोल के बीच, उस कोटि-कोटि मानवों के क्षिप्तप्राय द्रुत पद-संचार के भीतर, मन जैसे स्थिर हो जाया करता था। वह जन-स्रोत, वह रजोगुण का स्फालन, वह प्रतिपद-प्रतिद्वंद्वि-संघर्ष, वह विलास-भूमि, अमरावती-सदृश पेरिस, लंदन, न्यूयार्क, बर्लिन, रोम, सब लुप्त हो जाता था, और मैं सुनता था—वही 'हर, हर, हर।' देखता था वही हिमालय-क्रोड़स्थ जनशून्य विपिन और कल्लोलिनी सुरतरंगिणी जैसे हृदय में, मस्तक में, शिरा-शिरा में संचार कर रही है और गर्जना कर कर पुकार रही है—हर, हर, हर।"

यह गीता के महावाक्य 'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च' की ही सुन्दर, काव्यमय, व्यावहारिक व्याख्या है। कोरा आध्यात्मिक इस महावाक्य के केवल प्रथमार्द्ध (अनुस्मरण) का अनुसरण करने की अधूरी चेष्टा करता है और कोरा व्यवहारवादी केवल द्वितीयार्द्ध का पल्ला पकड़कर रह जाता है। किन्तु स्वामी विवेकानन्दजी के 'परिव्राजक' का साद्यन्त संदेश यह है कि हृदय में पूर्ण वैराग्य—सच्चा संन्यास—सन्निहित कर जगत् की सम्पूर्ण व्यावहारिकता का परिव्राट् की भाँति निरीक्षण करो, परीक्षण करो और श्रेयः मार्ग को प्रशस्त करो, विन्यस्त करो—

'न हि संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति'

खेद है, यात्रा-विवरण की इस पुस्तक की सुंदर वर्णनाओं की प्रशंसा छोड़कर मुझे इस रूखे-सूखे तर्क-जाल में उतरना पड़ा। किन्तु यह एक सांप्रतिक आवश्यकता थी और इसी लिए पुस्तक के इस पहलू पर मैं कुछ अधिक लिख गया। यह विषय ऐसा है, जिस पर समाधानकारक कुछ कहने के लिए स्वामी विवेकानन्द-जैसे अधिकारी पुरुष का ही आधार लेना अनिवार्य हो जाता है।

पुस्तक की भाषा कैसी है, यह यदि ऊपर के कुछ उद्धरणों से स्पष्ट नहीं हो पाया तो इतना ही और कहना पर्याप्त होगा कि भाषा निरालाजी की है और निरालाजी की भाषा कैसी होती है, यह विज्ञापन का विषय अब नहीं रहा।

नन्ददुलारे वाजपेयी एम्० ए०

'डाक्टर बनिये'

होमियोपैथिक-प्रचार मासिक पत्रिका के ग्राहक बनकर हामिमैनियन मेडिकल कालेज (गवर्नमेंट रजिस्टर्ड) से होमियोपैथिक, बायोकैमिक की सनद प्राप्त करके सैकड़ों रुपया कमाइए।

इस मासिक पत्रिका में सरल भाषा में स्त्री-पुरुष व बालकों के रोगों का वर्णन तथा चिकित्सा भली प्रकार पढ़कर सीख सकते हैं। अपने आप तथा पबलिक को लाभ पहुँचाने का यह एक सुअवसर है। एक आने का टिकट भेजकर इसका नमूना मँगवाइए।

पता—मैनेजर होमियोपैथिक-प्रचार-कार्यालय, मुरादाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—भारत में सहकारिता का आन्दोलन

“निर्धनता ही सबसे बड़ा पाप है। व्यभिचार, हत्या, ग़बन, डाकाज़नी, चोरी, झूठ आदि तो निर्धनता के मुक़ाबले में मूर्तिमान् सद्गुण हैं।”

—*बर्नार्ड शा*

सहकारी आन्दोलन काफ़ी समय से चल रहा है। हमारे देश में तो इसका उदय हुए बहुत अधिक काल नहीं हुआ, परन्तु अन्य पाश्चात्य देशों में यह आन्दोलन बहुत पहले से चल रहा है। इसका श्रीगणेश राबर्ट ओवेन (Robert Owen) के ही समय से हो गया था। सन् १८४४ में टोड लेन, रोचडेल (Toad Lane, Rochdale.) के लगभग २८ ग़रीब जुलाहों ने कुछ छोटे पैमाने पर चन्दा जमा किया, और उससे एक सहकारी दूकान की स्थापना की, जो वर्तमान सहकारिता की जन्मदात्री कही जा सकती है। इन सदस्यों ने अत्यन्त उत्साह, उदारता और सचाई के साथ दूकान का काम चलाया। मेहनत का फल अवश्य मिलता है। थोड़े ही दिनों में इस दूकान की अपूर्व उन्नति हुई। दूकान ने सैकड़ों नहीं, हज़ारों डूबते हुए ग़रीब मज़दूरों को सहारा दिया। धीरे-धीरे यह दूकान फुटकर से थोक हुई, फिर क्रमशः अपना वितरण का रूप बदलकर यह और काम—जैसे बैंकिंग, मैन्यूफैचरिंग, जहाज़ तथा मकान आदि (Building and House-owning, and Ship-owning) बनवाने और किराये पर चलाने के काम भी करने लगी।

सहकारी आन्दोलन का सर्वप्रधान उद्देश्य यही है कि तमाम बिखरे हुए व्यक्तियों को एक सामूहिक रूप प्रदान करे, जिससे वे अपनी जीविका सरलता के साथ चला सकें और समाज में अपना व्यक्तित्व क़ायम रख सकें। सहकारिता का काम पद-दलितों को उठाना है, भूखों को रोटी खिलाना है, असहायों को सहायता पहुँचाना है। हम ऊपर कह चुके हैं कि सहकारिता का जन्म ग़रीबों द्वारा ही हुआ था, अतः कुल सहकारी-वर्ग का एकमात्र उद्देश्य ग़रीबों की दशा को बदलना है। इसके लिए सच्चे कार्य-कर्त्ताओं की आवश्यकता है, जिनके अन्दर काम करने की पवित्र लगन हो, जिनकी नस-नस में देश-प्रेम समाया हो, जिनके हृदयों में ग़रीबों के प्रति हमदर्दी और उनकी गिरी हुई शोचनीय आर्थिक स्थिति को बदल देने की सच्ची अभिरुचि हो। इसके लिए, जैसा महात्माजी प्रायः कहा करते हैं, न लम्बे-चौड़े भाषणों की आवश्यकता है, न धारा-सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के क़ानूनों की। आवश्यकता केवल शुद्ध, सेवा-परायण स्त्री-पुरुषों की है।

× × ×

२—सहकारिता का आदर्श

सहकारिता का आशय केवल माली हालत को सुधारना ही नहीं है, बल्कि समाज के सदस्य होने के नाते, प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बालक, बालिका के जीवन के प्रत्येक अंग में सच्चरित्रता और सम्पन्नता लाना भी उसका एक उद्देश्य है; उनके अन्दर आदर्श की ज्योति जलानी है, जिसके प्रकाश से न केवल उनका ही व्यक्तिगत मनोमन्दिर, बल्कि सारा समाज प्रकाशित हो और हम देश में सुख-शान्ति स्थापित कर सकें। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सहकारिता का आदर्श सेवा करना है। ग़रीबों का यह सहज सहायक साधन है। परन्तु सहकारिता को समाजवाद किसी भी रूप में नहीं समझा अथवा कहा जा सकता। समाजवाद और सहकारिता में बहुत अन्तर है। सहकारिता समाज की श्रेणियों को एक नहीं करना चाहती। सहकारी आन्दोलन समाज में केवल ऐसी जागृति पैदा करना चाहता है, जिससे लोगों को—वे चाहे अमीर हों चाहे ग़रीब, चाहे मालिक हों चाहे मज़दूर—अपने हक़ों का ज्ञान हो सके और अपने अधिकार के लिए वे अपने पैरों पर खड़े होकर लड़ सकें। इस प्रकार का सहयोग न 'असहयोग' है और न क्रान्तिकारी विप्लव। यह आंदोलन तो प्रत्येक देशवासी के हाथों की ओर ताकता रहता है और सम्पूर्ण समाज का सहयोग चाहता है। वास्तव में इसके अन्दर छिपी हुई भावना और आदर्श कहीं अधिक महत्त्व की चीज़ें हैं। सहयोग ही जीवन है। बिना सहयोग के मानव-समाज स्थिर ही नहीं रह सकता।

× × ×

३—भारत की परिस्थिति

अब हम देखेंगे कि हमारे देश में सहकारी आंदोलन को कहाँ तक सफलता मिली है। परन्तु इसके पहले यह जान लेना बहुत ज़रूरी जान पड़ता है कि क्या भारत की अवस्था वैसी है, जैसी उन अन्य देशों की थी, जहाँ सहकारी आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा था, या जहाँ से इसका प्रारम्भ हुआ था। कहना न होगा, भारत की आर्थिक दशा अत्यन्त ही शोचनीय है। जैसा हम सब जानते हैं, भारत की आबादी ३५ करोड़ है, और खेती के लायक़ ज़मीन कुल २२ करोड़ एकड़ है, जो फ़ी आदमी पीछे एक एकड़ भी नहीं पड़ती। यह दशा है हमारे देश भारत की, जो कि एक कृषिप्रधान देश माना जाता है। कृषि से प्रतिवर्ष लगभग ८५० करोड़ की और दूसरे साधनों से लगभग ३५० करोड़ की आमदनी होती है। अतएव देश की वार्षिक आय का औसत प्रति व्यक्ति पीछे लगभग ३५) पड़ता है, अथवा अधिक-से-अधिक ३) प्रतिमास। जब हम एक ओर देख रहे हैं कि कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी ४ हज़ार रुपये से १० हज़ार रुपये तक की प्रतिमास आमदनी है, तब सहज ही इसका अनुमान कर सकते हैं कि कितने ही व्यक्तियों को भूखे ही रहना पड़ता होगा; क्योंकि बिना आमदनी के भोजन का और ज़रिया क्या हो सकता है। देश की वास्तविक स्थिति का ज्ञान तो देश के ७ लाख गाँवों को देखने से हो सकता है। अधिकांश जनता तो गाँवों में ही रहती है। आबादी के प्रायः ९० प्रतिशत लोगों की गिनती देहात में ही की जाती है, और १० प्रतिशत शहरों में। इन ग्रामवासियों में अधिकतर लोग खेती करने के सिवा दूसरा पेशा जानते ही नहीं। आपस में एकता का अभाव है। अलग-अलग काम करनेवाले किसान और दस्तकारों के लिए मिल-जुलकर काम करना असम्भव-सा है। इस कारण दोनों ही, किसान तथा दस्तकार, न तो प्रकृति से और न सरकारी साधनों से पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं। हमारे ग्रामवासियों में संगठन नहीं है। आज हमारा ग्रामीण-समाज छिन्न-भिन्न है। अतः ग्रामीण संस्कृति का निर्माण ही वर्तमान भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए हमको सबसे पहले समाज में संगठन पैदा करना होगा। आपस में सहयोग होना नितान्त आवश्यक है। इसी आधार पर देश में इन सहकारी समितियों का, जिनकी आजकल इतनी चर्चा हम सुन रहे हैं, जन्म हुआ है। सहकारी समितियों ने कहाँ तक देश की दशा सुधारने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri